इकाई– 1 व्यावसायिक वित्त प्रबन्ध : प्रकृति एवं क्षेत्र

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 व्यावसायिक वित्त
1.2.1 व्यावसायिक वित्त का प्रादुर्भाव
1.2.2 वित्त के प्रकार
1.2.3 व्यवसायिक वित्त कार्य की अवधारणा
1.2.4 व्यवसायिक वित्त की परिभाषा
1.2.5 व्यवसायिक वित्त की विशेषताएँ
1.2.6 व्यवसायिक वित्त की प्रकृति
1.2.7 व्यवसायिक वित्त का क्षेत्र
1.2.8 व्यवसायिक वित्त के उद्देश्य
1.2.9 व्यवसायिक वित्त का महत्व
1.2.10 व्यवसायिक वित्तीय प्रबन्धक एवं व्यवसाय
1.2.11 व्यवसायिक वित्त का अन्य विषयों के साथ सम्बन्ध
1.3 वित्तीय नियोजन
1.3.1 अर्थ एवं परिभाषा
1.3.2 वित्तीय नियोजन के प्रकार
1.3.3 श्रेष्ठ वित्तीय नियोजन की विशेषताएँ
1.3.4 वित्तीय नियोजन को निर्धारित अथवा प्रभावित करने वाले घटक
1.3.5 वित्तीय नियोजन का महत्व
1.3.6 वित्तीय नियोजन की सीमाएँ
1.4 सारांश
1.5 शब्दावली
1.6 बोध प्रश्न
1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.8 स्वपरख प्रश्न
1.9 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- व्यवसायिक वित्त क्या है तथा उसके प्रकार क्या है, के बारे में विस्तृत रुप से जान सकें।
- व्यवसायिक वित्त की विशेषताएँ, प्रकृति, क्षेत्र एवं महत्व से अवगत हो सकें।
- वित्तीय नियोजन का अर्थ व इसके प्रकार से अवगत हो सकें।
- वित्तीय नियोजन को प्रभावित करने वाले घटकों का वर्णन कर सकें।

1.1 प्रस्तावना

वित्त व्यवसाय का मूलाधार है। वित्त के बिना न तो कोई व्यवसाय प्रारम्भ किया जा सकता है आऐैर न ही उसका विकास सम्भव है। व्यवसाय में सफलता

प्राप्त करने के लिए पर्याप्त वित्त की समुचित व्यवस्था आवश्यक है। वित्त व्यवसाय का जीवन रक्त है। बिना पर्याप्त वित्त के कोई व्यवसायिक इकाई सुचारू रूप से नहीं चलायी जा सकती है। इस इकाई में वित्तीय प्रबन्ध की महत्वपूर्ण भूमिका व स्वरूप स्पष्ट करने के लिए व्यवसायिक वित्त व वित्तीय नियोजन के आशय की पृथक–पृथक विवेचना की गई है।

1.2 व्यावसायिक वित्त

आज की मानव सभ्यता की प्रगति यात्रा कई युगों से अनेक परिवर्तनों के पश्चात् वर्तमान स्वरूप में मुखरित हुई है। सभ्यता के विकास क्रम में मनुष्य जाति ने अनेक उतार–चढ़ावों का सामना किया है। वस्तु विनिमय प्रणाली से गुजरते हुए वैज्ञानिक अविष्कार, मशीनों के निर्माण, तकनीकी विकास करते हुए, अनेक वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन प्रारम्भ किया है, जिन्हें सम्पूर्ण इस मानव जाति उपभोग कर रही है। वस्तुओं के निर्माण से उपभोग तक के सम्पूर्ण क्रियाजाल में 'व्यावसायिक वित्त' मूल आधार में स्थित है। वित्त के अभाव में न तो किसी व्यवसाय को स्थापित किया जा सकता है और न ही उसे सफलतापूर्वक संचालित ही किया जा सकता है। वित्त आधुनिक व्यवसाय का 'जीवन रक्त' माना जाता है। वित्त के अभाव में अच्छी–से–अच्छी योजनाएँ एवं प्रस्ताव केवल कागजों तक ही सीमित रह जाती हैं, इसके अभाव में उन्हें मूर्त रूप नहीं दिया जा सकता है। इस प्रकार वित्त का व्यवसाय एवं वाणिज्य में वही स्थान है जो कि एक मानव शरीर में 'आत्मा' का होता है जिस प्रकार मानव शरीर में से आत्मा को निकाल दिया जाये, तो मृत मानव शरीर का कोई उपयोग नहीं रहता है, ठीक उसी प्रकार व्यवसाय रूपी शरीर से यदि वित्त को हटा दिया जाये, तो व्यवसाय की समस्त क्रियाएँ मृत शरीर की तरह ही अपने आप रुक जायेंगी।

इस प्रकार किसी भी व्यापर एवं उद्योग को चाहे व छोटे पैमाने अथवा बड़े पैमाने पर संचालित किया जा रहा है 'पर्याप्त वित्त' की महत्ती आवश्यकता होती है। पर्याप्त वित्त के अभाव में कोई भी संस्था जीवित नहीं रह सकती है, अतः संस्था के प्रबन्धकों को पर्याप्त वित्त की व्यवस्था हेतु उचित प्रबन्ध करना होगा। आवश्यकतानुसार पर्याप्त वित्त की व्यवस्था होने से कोई भी व्यवसाय एवं उद्योग विकसित एवं सफल हो सकता है।

1.2.1 व्यावसायिक वित्त का प्रादुर्भाव

इस शताब्दी के प्रारम्भ होने के पूर्व तक 'वित्त' का अध्ययन अर्थशास्त्र की विषय–सामग्री का ही एक क्षेत्र था। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में तेजी से आर्थिक विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई जिसमें छोटे–छोटे उद्योग–धन्धों की जगह बड़े–बड़े विशालकाय उद्योग स्थापित होने लगे। इन उद्योगों की अपनी समस्याओं के अतिरिक्त एक नयी तरह की समस्या प्रबन्धकों के समक्ष उत्पन्न होने लगी। यह समस्या तरलता की समस्या थी। तरलता की समस्या एवं तीसा की महान–मन्दी के समक्ष इन उद्योगों के अस्तित्व के समक्ष ही संकट उत्पन्न हो गया। इससे फर्मों के वित्तीय प्रबन्ध में आमूल–चूल परिवर्तन हुए एवं वित्त का दायरा अर्थशास्त्र की परिधि से निकलकर अपना एक स्वतन्त्र अस्तित्व कायम करने लगा।

व्यावसायिक वित्त की परम्परागत विचारधारा का उदयकाल भी बीसवीं शताब्दी का प्रारम्भिक काल माना गया है। यह विचारधारा 1950 तक अत्याधिक लोकप्रिय रही। बीसवीं शताब्दी के छठे दशक में अनेक नवीन परिवर्तनों के कारण

परम्परागत विचारधारा के स्थान पर नवीन विचारधारा का विकास हुआ, क्योंकि इन नवीन परिवर्तनों के कारण परम्परागत विचारधारा का कोई उपयोग सम्भव नहीं था। इस कारण से व्यावसायिक वित्त का स्वरूप वर्णनात्मक से विश्लेषणात्मक हो गया। अतः परम्परागत विचारधारा का महत्व दिन प्रतिदिन कम होता चला गया एवं इसका स्थान नवीन विचारधारा ने ले लिया।

1.2.2 वित्त के प्रकार

सामान्य वित्त को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है– (1) सार्वजनिक वित्त एवं (2) निजी वित्त।

(1) **सार्वजनिक वित्त**– केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार एवं स्थानीय सत्ताओं के द्वारा विभिन्न स्तरों पर वित्त का प्रयोग किया जाता है। इसके अन्तर्गत ये विभिन्न राजकीय संस्थाएँ अपने कोषों का सृजन एवं उनका उपयोग किस प्रकार करती है, का अध्ययन किया जाता है। निजी संस्थाओं की भांति सार्वजनिक संस्थाओं का उद्देश्य लाभ कमाना नहीं होकर अधिकतम सामाजिक कल्याण करना होता है। सार्वजनिक संस्थाएँ नियम, संविधान एवं अधिकतम सामाजिक कल्याण से जुड़ी होने के कारण निजी संस्थाओं की तरह अपने वित्तीय स्रोतों को एकत्र नहीं कर सकती हैं। इस प्रकार सार्वजनिक वित्त के अध्ययन के अन्तर्गत सार्वजनिक आय, सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक ऋण एवं वित्तीय प्रशासन व्यवहारों का ही अध्ययन किया जाता है।

(2) **निजी व्यय**– निजी वित्त से आशय गैर–सार्वजनिक संस्थाओं एवं व्यक्तियों के निजी वित्त प्रबन्धन से होता है। ये संस्थाएं कहां–कहां से अपने वित्तीय साधनों को एकत्र करती हैं तथा किन–किन साधनों में उनका उपयोग करती हैं का अध्ययन निजी वित्त के कार्य क्षेत्र में आता है। निजी वित्त को पुनः तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– (i) व्यक्तिगत वित्त प्रबन्धन, (ii) गैर–लाभ कमाने वाली संस्थाओं का वित्त प्रबन्धन एवं (iii) व्यावसायिक वित्त।

(i) **व्यक्तिगत वित्त प्रबन्धन**– व्यक्तिगत वित्त प्रबन्धन के अन्तर्गत व्यक्ति विशेष के आय के स्रोतों एवं उसके उपयोगों का अध्ययन किया जाता है।

(ii) **गैर–लाभ कमाने वाली संस्थाओं का वित्त प्रबन्धन**– गैर–लाभ कमाने वाली संस्थाओं के वित्त प्रबन्धन में शिक्षण संस्थाओं, धर्मार्थ ट्रस्टों, धर्मार्थ अस्पतालों एवं सांस्कृतिक विकास वाली संस्थाओं को सम्मिलित किया जाता है। इन संस्थाओं का मूल उद्देश्य सामाजिक कल्याण से जुड़ा होता है। अतः यह संस्थाएं वित्त का सृजन एवं उसका उपयोग किस प्रकार करें, जिससे अधिकतम सामाजिक कल्याण के मूल उद्देश्य पर कोई विपरीत असर परिलक्षित नहीं हों, का अध्ययन इसके अन्तर्गत किया जाता है।

(iii) **व्यावसायिक वित्त**– इसके अन्तर्गत उन संस्थाओं की वित्तीय व्यवस्था का अध्ययन किया जाता है, जिनका उद्देश्य व्यवसाय एवं व्यावसायिक क्रियाओं के द्वारा लाभार्जन करना होता है। व्यावसायिक वित्त का आशय सामान्यतः व्यावसायिक क्रियाओं के वित्त प्रबन्धन से ही लिया जाता है। व्यावसायिक वित्त दो शब्दों के योग से मिलकर बना है, (व्यावसायिक+वित्त)। व्यावसायिक शब्द के अर्थ को विस्तृत शब्दों में यदि लिया जाये तो इसे अन्तर्गत उन सब क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है, जो किसी भी व्यवसाय में लाभ कमाने के उद्देश्य की जाती है। इस प्रकार वित्त का आशय विस्तृत शब्दों में रोकड़ से लगाया जाता है। अतः 'वित्त'

शब्द से आशय रोकड़ का प्रबन्ध, उसका प्रयोग एवं नियन्त्रण से होता है। अतः इस आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि व्यावसायिक क्रियाओं के उचित संचालन एवं उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उचित शर्तों पर रोकड़ की व्यवस्था, उसके प्रयोग एवं नियन्त्रण को ही व्यावसायिक वित्त की संज्ञा प्रदान की जाती है।

1.2.3 व्यावसायिक वित्त–कार्य की आवधारणा

व्यावसायिक वित्त–कार्यों के सम्बन्ध में परम्परागत विद्वानों एवं आधुनिक विद्वानों के विचारों में बहुत अधिक अन्तर है। परम्परागत विद्वानों के अनुसार व्यावसायिक वित्त की स्थिति वर्णनात्मक थी। जबकि आधुनिक विचारधारा के पक्षधर विद्वानों की श्रेणी में व्यावसायिक वित्त वर्णनात्मक कम लेकिन विश्लेषणात्मक अधिक है। इस प्रकार व्यावसायिक वित्त–कार्य की विचारधारा को दो वर्गों में श्रेणीबद्ध किया जा सकता हैः

(i) व्यावसायिक वित्त–कार्य की परम्परागत विचारधारा

(ii) वित्त–कार्य की आधुनिक विचारधारा

(i) **व्याावसायिक वित्त–कार्य की परम्परागत विचारधारा–** इस विचारधारा के पक्षधर विद्वानों के अनुसार व्यावसायिक वित्त का सम्बन्ध केवल कोषों की व्यवस्था तक ही सीमित था तथा इसी विषय–सामग्री का स्वरूप वर्णनात्मक था। यह विचारधारा बीसवीं शताब्दी के मध्यकाल तक बहुत अधिक प्रचलित रही। इस विचारधारा के समर्थक विद्वानों में ए०एस० डेविंग, सी० डब्ल्यू० गेस्टनवर्ग, थॉमस एल० ग्रीन, ई०एस० मीड, हण्ट एण्ड विलियम्स, आदि प्रमुख विचारक थे। इस प्रकार इन विद्वानों के विचारों को निष्कर्ष रूप में संस्था हेतु पूंजी का पूर्वानुमान लगाना, पूंजी ढांचे का स्वरूप निश्चित करना एवं कोषों की व्यवस्था करना, आदि कार्यों को ही वित्त–कार्यों में सम्मिलित किया जाता था।

प्रो० सोलोमन इज़रा के अनुसार, "परम्परागत व्याख्या के अनुसार वित्त–कार्य में कोषों के साधनों पर अधिक जोर दिया जाता था, जिसका सम्बन्ध विशिष्ट प्रक्रियात्मक विवरण से होता था।"

बीसवीं शताब्दी के मध्यकाल के पश्चात् 1960 में अमेरिका की अर्थव्यवस्था में आमूल–चूल परिवर्तन हुआ एवं व्यावसायिक गतिविधियों में तेजी से बदलाव परिलक्षित होने लगे। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप इस विचारधारा के प्रति अनेक शंकाएं जन्म लेने लगीं एवं इनकी आलोचनाओं का क्रम प्रारम्भ हुआ। इनकी आलोचना के निम्न केन्द्र बिन्दु थेः–

(अ) व्यावसायिक वित्त–कार्य की यह अवधारणा एकपक्षीय है। यह केवल कोषों की व्यवस्था पर ही ध्यान केन्द्रित करती है। इन कोषों के विवेकपूर्ण प्रयोगों की ओर इसमें कोई विश्लेषण नहीं दिया गया है।

(ब) व्यवसायिकक वित्त–कार्य की यह अवधारणा केवल वर्णनात्मक है जिसके कारण इसका क्षेत्र अत्यन्त संकुचित हो गया है।

(स) व्यावसायिक वित्त–कार्य की इस विचारधारा के समर्थक विद्वानों के अनुसार वित्तीय प्रबन्ध एक यांत्रिक कार्य था, जिसकी आवश्यकता संस्था के समामेलन के समय अथवा संस्था के विस्तार के समय कभी–कभी ही पड़ती थी जबकि आधुनिक विचारधारा के आलोचकों का यह मत है कि यह निरन्तर एवं नियमित रूप से चलने वाला सतत कार्य है।

(द) व्यावसायिक वित्त–कार्य की परम्परागत विचारधारा में प्रबन्धकीय निर्णय अन्तःप्रेरणा एवं अनुभवों पर निर्भर करते थे, जिनके आधार पर लिये गये निर्णय कसौटी पर खरे भी उतर सकते थे और गलत भी हो सकते थे क्योंकि इनमें वैज्ञानिक–विश्लेषणों का अभाव पाया जाता था।

(य) व्यावसायिक वित्त–कार्य की परम्परागत विचारधारा में दीर्घकालीन कोषों के प्रबन्ध पर ही केवल ध्यान केन्द्रित किया गया है, जबकि अल्पकालीन एवं मध्यकालीन कोषों के प्रबन्ध को बिल्कुल अछूता ही छोड़ दिया गया है। अतः व्यावसायिक वित्त की आधुनिक विचारधारा का प्रार्दुभाव हुआ।

(ii) **व्यावसायिक वित्त–कार्य की आधुनिक विचारधारा–** परम्परागत वित्त–कार्य की आलोचनाओं के फलस्वरूप एवं आर्थिक ढांचे में हुए मूलभूत परिवर्तनों के कारण से नवीन अवधारणा का विकास हुआ। इस विचारधारा के पक्षधर वित्तीय शास्त्रियों में प्रो० सोलोमन इज़रा, एफ०डब्ल्यू० पैश, एम०जी० ब्राइट, वानहार्न, ई० डब्ल्यू०, वाकर, हण्ट, विलियम्स एवं डोनाल्डसन, जे०एफ० ब्रेडले आदि प्रमुख विचारक आते हैं। इनके अनुसार व्यावसायिक वित्त–कार्य केवल कोषों के दीर्घकालीन संग्रह तक ही सीमित नहीं है, बल्कि वित्त का प्रभावशाली एवं विवेकपूर्ण उपयोग करना भी है। इस प्रकार इस विचारधारा के कारण इसका स्वरूप वर्णनात्मक से विश्लेषणात्मक में परिवर्तित हो गया है। ब्रेडले के अनुसार, "वित्तीय प्रबन्ध व्यावसायिक प्रबन्ध का वह क्षेत्र है, जिसका प्रबन्ध पूंजी के सम्यक् प्रयोग एवं पूंजी के साधनों के सर्तकतापूर्ण चयन से है, ताकि व्यवसाय को इसके उद्देश्यों की पूर्ति की दिशा में निर्देशित किया जा सके।"

व्यावसायिक वित्त–कार्य की आधुनिक विचारधारा की निम्नलिखित विशेषताएं परिलक्ष्ज्ञित होती हैः

(अ) आधुनिक विचारधारा के अन्तर्गत व्यावसायिक वित्त का स्वरूप विश्लेषणात्मक एवं व्यापक हो गया है। इसमें कोषों के साधनों एवं उसके विवेकपूर्ण उपयोग पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया गया है।

(ब) व्यावसायिक वित्त–कार्य की आधुनिक विचारधारा के अन्तर्गत वित्तीय निर्णयों के आधार एवं उनके वैज्ञानिक विश्लेषण एवं नवीनतम तकनीकी विधियों पर निर्भर करता है।

(स) व्यावसायिक वित्त–कार्य निरन्तर चलने वाला नियमित कार्य है।

(द) व्यावसायिक वित्त–कार्य की इस अवधारणा के अन्तर्गत अब व्यापसायिक सफलता का श्रेय वित्तीय प्रबन्धकों को भी दिया जाने लगा।

(य) व्यावसायिक वित्त–कार्य की प्रकृति मूलतः केन्द्रीयकृत है, जिसके चारों ओर समस्त आर्थिक क्रियाएँ इसके चारों ओर चक्कर लगाती हैं।

इस प्रकार व्यावसायिक वित्त–कार्य की आधुनिक विचारधारा ने पूर्व में प्रचलित परम्परागत विचारधारा में आमूल–चूल परिवर्तन किया है। इसमें प्रबन्ध की एक गतिविधि के रूप में व्यापसायिक वित्त की विषय–वस्तु में विकास के साथ–साथ इसमें और भी परिवर्तन हो रहा है। अतः वित्त–कार्य एक व्यापक क्रिया है, जिसमें व्यावसायिक संस्था की समस्त वित्तीय क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता हैं।

1.2.4 व्यावसायिक वित्त की परिभाषा

व्यावसायिक वित्त को वित्तीय प्रबन्ध भी कहा जाता है। पूर्वकाल में इसे निगम वित्त के नाम से जाना जाता था। व्यावसायिक वित्त की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं:

गुथमैन एवं डूगल के अनुसार, "विस्तृत अर्थ में व्यावसायिक वित्त को ऐसी क्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो व्यवसाय में प्रयुक्त कोषों के नियोजन, प्राप्ति, नियन्त्रण एवं प्रशासन से सम्बन्धित है।"

एफ०डब्ल्यू० पैश के अनुसार, "आधुनिक मुद्रा के प्रयोग वाली अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत 'वित्त' से आशय होता है कि मुद्रा को उस समय अनुकूल शर्तों पर उपलब्ध कराना होता है, जिस समय उसकी आवश्यकता अथवा जरूरत हो।"

आर०सी० ओसबोर्न के अनुसार, "वित्त–कार्य, व्यवसाय द्वारा कोषों की प्राप्ति एवं उसके उपयोग से सम्बन्धित प्रक्रिया है।"

पी०जी० हेस्टिंग के अनुसार, "व्यावसायिक–वित्त धन प्राप्त करने तथा व्यय करने की कला एवं विज्ञान का नाम है।"

बोनिविले एवं डिवे के अनुसार, "वित्त प्रबन्धन में व्यवसाय के सम्बन्ध में उपयोग होने वाले किसी भी प्रकार के कोषों, पूंजी या मुद्रा को प्राप्त करना एवं प्रबन्ध करना सन्निहित है।"

प्रेथर एवं वर्ट के अनुसार, "व्यावसायिक वित्त मुख्यतः उद्योग के गैर–वित्तीय क्षेत्रों में क्रियारत निजी स्वामित्व वाली व्यावसायिक इकाइयों द्वारा कोषों की प्राप्ति, उनका प्रशासन एवं उनके वितरण की विवेचना करता है।"

हावर्ड एवं ऑप्टन के अनुसार, "वित्तीय प्रबन्ध से आशय वित्त क्रियाओं पर नियोजन एवं नियन्त्रण की क्रिया को लागू करने से होता है।"

प्रो० हसबैण्ड एवं डॉकरी के अनुसार, "विभिन्न आर्थिक एवं व्यावसायिक गतिविधियों को एक सूत्र में बांधने के लिए किसी एक ऐसे साधन की आवश्यकता होती है जो उन्हें सुचारू रूप से निर्देशित कर सके और व्यावसायिक वित्त ही वह शक्तिशाली साधन है जो इस कार्य को उचित प्रकार से सम्पादित करता है।"

वेस्टन तथा ब्रीघम के अनुसार, "व्यावसायिक वित्त वित्तीय निर्णय लेने का वह क्षेत्र है जो व्यक्तिगत उद्देश्यों एवं उपक्रम के लक्ष्यों में एकरूपता स्थापित करता है।"

सी०पी० श्रीवास्तव के अनुसाार, "वित्त पहियों के लिए तेल, हड्डियों का सार, नाड़ियों का रक्त और सभी व्यापारों, वाणिज्य एवं उद्योगों की आत्मा है।"

सोलोमन इज़रा के अनुसार, "वित्तीय प्रबन्ध का आशय एक महत्वपूर्ण आर्थिक स्रोत अर्थात् पूंजी कोष के कुशलतम उपयोग से है।"

जे०एल० मैसी के अनुसार, "वित्तीय प्रबन्ध व्यवसाय की वह क्रियात्मक प्रक्रिया है जो उपक्रम के कुशलतापूर्वक संचालन के लिए आवश्यक वित्त प्राप्ति एवं उसके प्रभावशाली उपयोग हेतु उत्तरदायी होती है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर व्यवसायिकक वित्त के निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है–

व्यावसायिक वित्त ज्ञान की वह शाखा है, जिसमें निजी/सार्वजनिक व्यावसायिक इकाइयों द्वारा अपनी गतिविधियों को सुगमतापूर्वक सम्पादित करने हेतु उचित शर्तों पर पर्याप्त वित्त की व्यवस्था करना होता है एवं इस प्रकार उपलब्ध वित्त का नियोजन एवं अकूलतम प्रयोग, नियन्त्रण एवं प्रशासन को इसमें

शामिल किया जाता है जिसके फलस्वरूप इन क्रियाओं से उन सभी संस्थाओं का लाभ अधिकतम हो सके।

1.2.5 व्यावसायिक वित्त की विशेषताएँ

व्यावसायिक वित्त की उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर व्यवसायिक वित्त की निम्न विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं:

(1) **निरन्तर प्रशासनिक कार्य–** प्राचीनकाल में व्यावसायिक वित्त का प्रमुख कार्य केवल कोषों की व्यवस्था करने तक ही सीमित था, लेकिन वर्तमान समय में व्यावसायिक वित्त का कार्य कोषों की व्यवस्था के साथ–साथ, कोषों का नियोजन, कोषों का अनुकूलतम प्रयोग, कोषों का नियन्त्रण एवं प्रशासन तक विस्तृत हो गया। यह प्रक्रिया व्यवसाय के अन्तर्गत निरन्तर चलती रहती है।

(2) **प्रबन्ध का अभिन्न अंग–** व्यावसायिक वित्त प्रबन्ध की एक अनिवार्य शाखा है। इसे यदि प्रबन्ध की 'रीढ़ की हड्डी' कहा जाये तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। समस्त आर्थिक क्रियाओं का केन्द्र बिन्दु वित्तीय प्रबन्ध होता है। इसी प्रकार व्यवसाय में समस्त आर्थिक क्रियाओं को सम्पादित किया जाता है, जिनमें प्रत्येक के साथ वित्त अनिवार्यतः समाहित होता है। प्रो० सोलोमन इज़रा के अनुसार, "वित्तीय प्रबन्ध को कोषों की व्यवस्था करने से सम्बन्धित एक कर्मचारी गतिविधि के रूप में नहीं देखा जाता है, बल्कि इसे सम्पूर्ण प्रबन्ध के एक अभिन्न अंग के रूप में देखा जाता है।"

(3) **लेखांकन कार्य से भिन्न–** लेखांकन का कार्य समंकों एवं लेन–देनों की सहायता से लेखा पुस्तकों एवं खातों को तैयार करना होता है। व्यावसायिक वित्त का कार्य इन समंकों के विश्लेषण द्वारा निर्णयन से सम्बन्धित होता है।

(4) **निर्णयन का आधार–** व्यावसायिक वित्त प्रबन्ध का एक अभिन्न अंग है तथा निर्णयन प्रबन्ध का प्रमुख कार्य होता है। प्राचीनकाल में निर्णयन का कार्य पूर्व अनुभवों अथवा अन्तःप्रेरणा के आधार पर लिया जाता था, लेकिन वर्तमान युग में इस गलाकाट प्रतिस्पर्द्धा का सामना करने हेतु एवं अपने अस्तित्व को बनाये रखने हेतु निर्णयन जैसे महत्वपूर्ण बिन्दु को परम्परागत विधियों तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता है। वर्तमान में निर्णयन व्यावसायिक वित्त का 'मूलाधार' बिन्दु है, जिसके आधार पर समस्त व्यावसायिक क्रियाएँ निर्भर करती हैं।

(5) **विश्लेषणात्मक–** व्यावसायिक वित्त अपने प्रारम्भिक काल में वर्णनात्मक प्रकृति का था। आधुनिक काल में इसका स्वरूप वर्णनात्मक कम लेकिन विश्लेषणात्मक अधिक हो गया है। इसके अन्तर्गत नवीनतम सांख्यिकीय विधियों एवं गणितीय सूत्रों के प्रयोग द्वारा कोषों के स्रोतों एवं उपयोगों एवं उनसे सम्बन्धित विभिन्न विकल्पों का विश्लेषणत्मक निर्वचन किया जाता है। इस प्रकार यह एक विश्लेषणात्मक तकनीक है।

(6) **वैज्ञानिक प्रकृति–** व्यावसायिक वित्त की प्रकृति वैज्ञानिक है। विज्ञान को 'ज्ञान' का क्रमबद्ध रूप कहा जाता है, जो कार्य एवं कारण के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। अतः किसी घटना का घटित होना क्रमिक विज्ञान की परिधि में आता है। व्यावसायिक वित्त भी इसी प्रकृत्ति का है। इसमें भी कार्य एवं कारण के बीच सामंजस्य स्थापित किया जाता है, सांख्यिकीय एवं गणितीय सूत्रों द्वारा उसका विश्लेषण किया जाता है तथा उसके आधार पर किसी निष्कर्ष पर पहुंचा जाता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी संस्था को वित्त की आवश्यकता है तो

किन–किन साधनों से यह वित्त जुटाया जा सकता है, प्रत्येक साधन का अंशधारियों की लाभदायकता पर क्या प्रभाव पड़ेगा, आदि का विश्लेषण करने के उपरान्त ही किसी निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है। अतः व्यावसायिक वित्त वैज्ञानिक प्रकृति का होता है।

(7) **व्यापक क्षेत्र–** व्यावसायिक वित्त का क्षेत्र आधुनिक काल में अत्याधिक व्यापक एवं दुरुह हो गया है। वर्तमान में इसके क्षेत्र के अन्तर्गत वित्तीय नियोजन, वित्त की उपलब्धता, सम्पत्तियों का प्रबन्ध आय का प्रबन्ध, सामग्री का प्रबन्ध, वित्तीय नियन्त्रण, लाभ नियोजन एवं नियन्त्रण, आदि क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है, जबकि पूर्व में व्यावसायिक वित्त का प्रमुख कार्य केवल कोषों की पूर्ति तक ही सीमित था।

(8) **व्यावसायिक समन्वय–** व्यावसायिक वित्त ही समस्त व्यावसायिक गतिविधियों के मूल आधार में स्थित होता है। 'वित्त' ही वह एकमात्र साधन है, जो इन व्यावसायिक गतिविधियों को एक सूत्र में बाँधे रखता है। समन्वय के अभाव में कोई भी व्यावसायिक संस्था न तो अपनी लागतों पर नियन्त्रण रख सकती है और न ही पूर्व नियोजित लाभों को प्राप्त करने में समर्थ हो सकती है। व्यावसायिक वित्त में विचरणांश विश्लेषण एवं बजटरी नियन्त्रण तकनीक के द्वारा निर्धारित प्रमाप एवं वास्तविक आंकड़ों के मध्य समन्वय स्थापित किया जाता है, जिससे लागतों पर नियन्त्रण होता है एवं साधनों के अनुकूलतम उपयोग से पूर्व नियोजित लाभों को प्राप्त करने में सफलता मिलती है।

(9) **कार्य निष्पत्ति का मापक–** वर्तमान समय में बहुराष्ट्रीय निगमों के भारत में प्रवेश के पश्चात् भारतीय निगमों का स्वरूप भी अतिविस्तृत हो गया है। इसके फलस्वरूप व्यावसायिक वित्त का कार्य अधिकाधिक जटिल, दुरुह एवं विशिष्टता की ओर अग्रसर हो रहा है। वित्त को व्यवसाय का 'साधन' मानने के साथ–साथ 'साध्य' भी माना जाता है। अतः व्यावसायिक वित्त का कार्य 'वित्त' के द्वारा 'वित्त' का ही अर्जन करना मात्र है। किसी भी व्यवसाय की कार्य–निष्पति का मूल्यांकन उस संस्था के वित्तीय परिणाम ही होते हैं। इनका मूल्यांकन संस्था के विगत वर्षों की प्रगति की तुलना, चालू वर्ष के सम्पन्न कार्यों एवं वित्तीय विश्लेषण की नवीनतम तकनीकों (जैसे अनुपात विश्लेषण, कोष प्रवाह, रोकड़, प्रवाह, विचरणांश विश्लेषण), आदि के माध्यम से की जाती है। इस प्रकार यह कार्य–निष्पत्ति का मापक यंत्र है।

(10) **व्यावसायिक सफलता का आधार–** बहुराष्ट्रीय निगमों के भारत प्रवेश के पश्चात् अब भारत में भी खुले दिल से यह स्वीकार किया जाने लगा है कि वित्तीय संस्था की सफलता में वित्तीय प्रबन्धकों की अहम् भूमिका होती है। वित्तीय प्रबन्धक कार्यों की निष्पत्ति विषय प्रतिवेदन को उच्च प्रबन्ध के समक्ष इस प्रकार से प्रस्तुत करते हैं कि उच्च प्रबन्ध सरलता से संस्था का मूल्यांकन एवं निर्णय लेने में सफल हो जाते हैं। इस प्रकार व्यावसायिक वित्त सफलता का आधार बनता है।

(11) **सभी संस्थाओं में लागू–** व्यावसायिक वित्त केवल लाभ कमाने के उद्देश्य से स्थापित निजी एवं सार्वजनिक संस्थाओं में ही लागू होता है, यह विचार व्यावसायिक वित्त के क्षेत्र को अत्यन्त सीमित करता है, जबकि रेमण्ड चैम्बर्स के अनुसार, "व्यावसायिक वित्त के अन्तर्गत किसी भी प्रकार के उपक्रम या संगठन या संस्था का अध्ययन किया जा सकता है, चाहे इसका उद्देश्य या संविधान कैसे भी

क्यों न हो।" इस प्रकार व्यावसायिक वित्त में लाभार्जन के उद्देश्य से निर्मित संस्थाओं के अतिरिक्त गैर–लाभ अर्जन वाली संस्थाओं को भी सम्मिलित किया जाता है।

1.2.6 व्यावसायिक वित्त की प्रकृति

व्यावसायिक वित्त ही समस्त व्यावसायिक गतिविधियों के केन्द्र में स्थित होता है। अतः प्रबन्ध के विभिन्न क्षेत्रों में इसका स्वभाव केन्द्रीयकृत माना जाता है। व्यावसायिक वित्त की प्रकृति जानने हेतु इस विचार का परीक्षण करना पड़ेगा कि यह विज्ञान है अथवा कला अथवा दोनों।

व्यावसायिक वित्त एक विज्ञान है– व्यावसायिक वित्त को विज्ञान मानने के पक्ष में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं:

(अ) **वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग–** जिन वित्तीय शास्त्रियों की नज़र में व्यावसायिक वित्त विज्ञान है, उनका मानना है कि आर्थिक नियमों व सिद्धान्तों के निर्माण में व्यावसायिक वित्त वैज्ञानिक रीतियों का प्रयोग करता है। यह संस्थाओं के व्यवहार का क्रमबद्ध अध्ययन करता है, वित्त से सम्बन्धित प्रचलित धारणाओं की वैज्ञानिक रीति से जांच करता है और इनके आधार पर वित्तीय नियमों का सृजन भी करता है, वित्त से सम्बन्धित प्रचलित धारणाओं की वैज्ञानिक रीति से जांच करता है और इनके आधार पर वित्तीय नियमों का सृजन भी करता है। इस प्रकार व्यावसायिक वित्त वैज्ञानिक रीतियों का प्रयोग करने के कारण विज्ञान की श्रेणी में सम्मिलित किया जाता है।

(ब) **मुद्रा का मापक–** विज्ञान के अन्तर्गत मापन कार्य हेतु जिस प्रकार भौतिक तुला का प्रयोग किया जाता है, ठीक उसी प्रकार व्यावसायिक वित्त में मुद्रा का मापदण्ड परिणमों को निश्चित रूप प्रदान करने में सहायता करता है। इस प्रकार मुद्रा के द्वारा आर्थिक घटनाओं में निश्चितता का पुट लाया जा सकता है।

(स) **भविष्यवाणी की शक्ति–** विज्ञान के अन्तर्गत भविष्यवाणी करने की सामर्थ्य होती है। ठीक उसी प्रकार से व्यावसायिक वित्त में भी भविष्यवाणी करने की शक्ति होती है। आधुनिप विचारधारा के अन्तर्गत वर्तमान समय में सांख्यिकीय एवं गणित का समावेश व्यावसायिक वित्त में होने से उसकी भविष्यवाणी करने की शक्ति और भी अधिक तीव्र हो गयी है।

(द) **विषय का क्रमबद्ध विवेचन–** व्यावसायिक वित्त ज्ञान की वह शाखा है, जिसमें तथ्यों का क्रमबद्ध अध्ययन, क्रमबद्ध विश्लेषण एवं क्रमबद्ध एकत्रीकरण किया जाता है। उदाहरण के लिए, व्यावसायिक वित्त की सम्पूर्ण विषय–सामग्री को वित्तीय नियोजन, कोषों के प्रबन्ध, वित्त–कार्य का संगठन, सम्पत्तियों का प्रबन्ध, सामग्री का प्रबन्ध, प्राप्यों का प्रबन्ध, आय का प्रबन्ध, वित्तीय नियन्त्रण एवं वित्तीय निष्पादन के मूल्यांकन में विभाजित किया गया है। इस प्रकार व्यावसायिक वित्त विज्ञान की ओर अधिक अग्रसर हो जाता है।

(य) **सिद्धान्तों का निर्माण–** विज्ञान के अन्तर्गत कारण एवं परिणाम के मध्य सम्बन्ध स्थापित करते हुए तथ्यों का क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है। यदि व्यावसायिक वित्त को इस तथ्य पर भी परखा जाये, जो यह विज्ञान की श्रेणी में सम्मिलित किया जायेगा। व्यावसायिक वित्त के अन्तर्गत वित्तीय नियोजन, पूंजीकरण, पूंजी संरचना, नवीन वित्त पूर्ति के प्रभाव, आदि के द्वारा विश्लेषण करने के पश्चात् ही 'वित्त के एकत्रीकरण' का निर्णय लिया जाता है।

अतः इस प्रकार उपरोक्त सभी बिन्दुओं का अध्ययन करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि व्यावसायिक वित्त एक विज्ञान है।

व्यावसायिक वित्त एक कला है– किसी भी कार्य को उत्तम तरीके से करने की तकनीक को कला कहा जाता है। इस प्रकार कला ज्ञान की वह शाखा है, जो निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सर्वश्रेष्ठ तरीका बताती है। विज्ञान हमें सैद्धान्तिक ज्ञान की शिक्षा देता है, जबकि कला व्यावहारिक क्रियाओं का प्रशिक्षण देती है। इस प्रकर कला, विज्ञान के मध्य एक कड़ी के रूप में कार्य करती है। व्यावसायिक वित्त के कला होने के पक्ष में निम्न तर्क दिये जा सकते हैंः–

(अ) **व्यावसायिक वित्त केवल कारण और परिणाम के मध्य ही सम्बन्ध स्थापित नहीं करता है–** व्यावसायिक वित्त केवल कारण एवं परिणाम में ही सम्बन्ध स्थापित नहीं करता है, बल्कि उसका निराकरण का सर्वश्रेष्ठ तरीका भी बताता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी संस्था के अंशों के मूल्य में कमी अति–पूंजीकरण के कारण हो रही है तो व्यावसायिक वित्त अति–पूंजीकरण की रोकथाम के उपायों की भी विवेचना करेगा।

(ब) **व्यावहारिक व्यावसायिक वित्त–** वर्तमान समय में व्यावसासिक वित्त का स्वरूप व्यावहारिक हो रहा है। इसके अन्तर्गत नवीनतम तकनीकों प्राप्यों का प्रबन्ध, रोकड़ का प्रबन्ध, स्कन्ध का प्रबन्ध आदि को सम्मिलित किया जाता है। अतः व्यावसायिक वित्त को कला के रूप में मानना अधिक उपयुक्त होगा।

(स) **विशुद्ध आर्थिक क्रियाएँ–** व्यावसायिक वित्त का सम्बन्ध केवल 'वित्त' से ही होता है, जो विशुद्ध आर्थिक क्रियाओं से सम्बन्धित होता है। किसी भी संस्था के अन्तर्गत यदि कोई ऐसी समस्या उत्पन्न होती है, जो विशुद्ध रूप से आर्थिक प्रकृति की है तो इस समस्या का पूर्ण रूप से निराकरण केवल वित्तीयशास्त्री ही कर सकता है। उदाहरणार्थ, यदि अति–पूंजीकरण अथवा अल्प–पूंजीकरण अथवा जलयुक्त पूंजी से सम्बन्धित समस्या है तो इसका निराकरण केवल वित्तीयवेत्ता जिसको इसकी पूर्ण जानकारी है, कर पायेगा। सामान्य व्यक्ति जिसने इन शब्दों को सुना तक नहीं है, इस सम्बन्ध में अपनी कोई राय व्यक्त करने में भी असमर्थ रहेगा। इस प्रकार व्यावसायिक वित्त एक कला है।

व्यावसायिक वित्त विज्ञान के साथ–साथ कला– व्यावसायिक वित्त को यदि कला का दर्जा प्रदान कर दिया जाता है, तो भी इसके वैज्ञानिक स्वरूप पर कोई आंच नहीं आती है। व्यावसायिक वित्त के अन्तर्गत सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ–साथ व्यावहारिक ज्ञान का भी सुन्दर मिश्रण है।

अतः उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि व्यावसायिक वित्त विज्ञान तथा कला दोनों हैं। आर्थिक सिद्धान्तों के केवल ज्ञान मात्र से ही काम नहीं चलाया जा सकता है, बल्कि उन सिद्धान्तों का व्यावहारिक ज्ञान होना भी अति आवश्यक होता है। व्यावसायिक वित्त इस कसौटी पर बिल्कुल खरा उतरता है। अतः व्यावसायिक वित्त कला एवं विज्ञान दोनों है तथा दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं।

1.2.7 व्यावसायिक वित्त का क्षेत्र

व्यावसायिक वित्त का क्षेत्र दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। व्यावसायिक वित्त के अन्तर्गत वित्तीय प्रबन्ध से सम्बन्धित सभी क्रियाओं को इसमें सम्मिलित किया जाता है। व्यावसायिक वित्त की विचारधारा में परिवर्तन के साथ–साथ इसके

क्षेत्र में भी व्यापक परिवर्तन हुआ है। परम्परागत अवधारणा में परिवर्तन के साथ–साथ इसके क्षेत्र में भी व्यापक परिवर्तन हुआ है। परम्परागत अवधारणा में 'वित्त' का हस्तक्षेप केवल कोषों की व्यवस्था एवं उनके प्रभाावी उपयोग तक ही सीमित था। आधुनिक विचारधारा के अन्तर्गत 'वित्त' के क्षेत्र में प्रभावी वृद्धि हुई है, व्यवसाय की कोई भी क्रिया बिना व्यावसायिक वित्त के हस्तक्षेप के सुचारु रूप से आगे नहीं बढ़ सकती है। इस प्रकार व्यावसायिक वित्त के क्षेत्र को अध्ययन हेतु निम्न क्रियाओं में बांटा जा सकता है:

(1) **वित्तीय नियोजन–** वित्तीय नियोजन में व्यावसायिक वित्त के द्वारा संस्था विशेष हेतु उद्देश्यों का निर्धारण, वित्तीय नीतियों की रचना करना एवं वित्तीय तकनीकों के प्रयोग द्वारा संस्था हेतु वित्तीय योजना का निर्माण किया जाता है। आर्थर एस० डेविंग के अनुसार, "वित्तीय नियोजन में पूंजीकरण, पूंजी संरचना का निर्धारण एवं कोषों के प्रबन्ध को सम्मिलित किया जाता है।"

(2) **वित्तीय व्यवस्था–** व्यावसायिक वित्त की इस क्रिया में वित्तीय नियोजन एवं आर्थिक पूर्वानुमानों के पश्चात् वित्त की पूर्ति किन–किन स्रोतों से की जायेगी, को सम्मिलित करते हैं। कितने वित्त की व्यवस्था अल्पकालीन स्रोतों से एवं उनके किन–किन साधनों से की जायेगी? संस्था के प्रस्तावित पूंजी ढांचे के अनुरूप वित्त की व्यवस्था करना इसमें सम्मिलित किया जाता है।

(3) **वित्तीय प्रशासन–** यह व्यावसायिक वित्त की सबसे महत्वपूर्ण क्रिया होती है। इसके अन्तर्गत वित्त विभाग एवं उपविभागों के मध्य संगठन एवं समन्वय स्थापित करना, कोषाध्यक्ष, वित्तीय नियन्त्रक, वित्तीय प्रबन्धक की नियुक्ति, उनके अधिकारों एवं दायित्वों का निर्धारण, लेखा पुस्तकों को लिखना एवं उनके रख–रखाव की व्यवस्था करना आदि शामिल होता है।

(4) **स्थायी एवं चल सम्पत्तियों का प्रबन्ध–** व्यावसायिक वित्त के कार्यक्षेत्र में स्थायी एवं चल सम्पत्ति में विनियोग को भी सम्मिलित किया जाता है। इसके अन्तर्गत स्थिर सम्पत्तियों में कितनी राशि का विनियोग किया जाये। कितनी–कितनी राशि भवन, मशीनरी, फर्नीचर एवं अन्य स्थायी सम्पत्तियों में विनियोजित की जाये, स्थिर एवं चल सम्पत्तियों की यथा समय उपलब्धता, स्कन्ध की अनुकूलतम मात्रा आदि का निर्धारण, आदि को इसके कार्यक्षेत्र में स्थान दिया जाता है।

(5) **आय एवं लाभांश का प्रबन्ध–** व्यावसायिक वित्त के कार्यक्षेत्र में आय एवं लाभांश का प्रबन्ध अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। व्यावसायिक वित्त प्रबन्ध आय के अधिकतमीकरण की नीति पर कार्य करके अंशधारियों की समता, उनके बाजार मूल्य एवं उचित लाभांश वितरण पर बल देता है। इसके अन्तर्गत लाभांश नीति, अधिलाभांश नीति एवं प्रतिधारित आय का अध्ययन किया जाता है।

(6) **वित्तीय नियन्त्रण–** व्यावसाायिक वित्त के अन्तर्गत वित्तीय नियन्त्रण में पूंजी बजटन, रोकड़ बजट एवं लोचपूर्ण बजटों को स्थान दिया गया है। इसके अन्तर्गत संस्था का वित्त विभाग वित्त कार्यों पर कड़ी निगरानी एवं पर्याप्त नियन्त्रण रखता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वित्तीय नियन्त्रण संस्था के अन्य विभागों को अपनी सीमाओं के अतिक्रमण करने से रोकता है।

(7) **वित्तीय विश्लेषण एवं मूल्यांकन–** इसके अन्तर्गत चालू वर्ष की प्रगति की तुलना गतवर्ष से अवगत कराना ताकि त्रुटियों का यथा समय निराकरण किया जा

सके, वित्त प्रबन्धक का दायित्व समझा जाता है। संस्था की भावी नीतियों एवं कार्य–विधियों में आवश्यक परिवर्तन लाने के लिए व्यावसायिक वित्त की आधुनिकतम तकनीकी विधियों जैसे अनुपात विश्लेषण, कोष–प्रवाह विश्लेषण, लागत–लाभ मात्रा विश्लेषण, रोक–प्रवाह विश्लेषण, विचरणांश विश्लेषण को प्रयोग में लाया जाता है।

(8) **अन्य क्रियाएँ–** व्यावसायिक वित्त के क्षेत्र के अन्तर्गत उपर्युक्त क्षेत्रों के अतिरिक्त निम्न अन्य क्रियाओं को भी सम्मिलित किया जाता है। उदाहरणार्थ, संस्था के विकास एवं विस्तार की स्थिति में नवीन वित्त पूर्ति के प्रभाव, पूंजी की लागत का निर्धारण उच्च प्रबन्ध को प्रतिवेदन एवं सूचनाएँ प्रस्तुतीकरण, कर नियोजन, सम्पत्तियों के बीमें, भविष्य निधि भुगतान की व्यवस्था, स्वामित्व, नियन्त्रण एवं आय पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन इसके विषय क्षेत्र में सम्मिलित किये जाते हैं।

1.2.8 व्यावसायिक वित्त के उद्देश्य

व्यावसायिक वित्त का प्रमुख उद्देश्य न्यूनतम वित्तीय साधनों द्वारा अधिकतम लाभों को अर्जित करना होता है, व्यावसायिक वित्त का यह उद्देश्य अत्यधिक महत्वपूर्ण है, लेकिन वित्तीय शास्त्रियों ने इसके 'अतिकतम लाभ' शब्द को उचित नहीं मानते है। वे अधिकतम लाभ के स्थान पर 'अनुकूलतम लाभ' होना अत्याधिक उचित रहेगा इस सम्बन्ध में सोलोमन इज़रा का यह कथन अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाता है कि "व्यावसायिक वित्त का मुख्य उद्देश्य धन का अधिकतमीकरण है, लेकिन इस उद्देश्य की पूर्ति करते समय उपभोक्ता वर्ग के हितों को भी ध्यान में रखना चाहिए।" व्यावसायिक वित्त के अन्तर्गत यदि संस्था का प्रबन्ध 'अनुकूलतम लाभ' को अर्जित करने की नीति का अनुपालन करता है तो इससे समाज के किसी वर्ग का कोई शोषण नहीं होता।व्यावसायिक वित्त के उद्देश्यों के सम्बन्ध में विभिन्न वित्तीयशास्त्रियों द्वारा निम्नलिखित तीन प्रकार के उद्देश्यों का स्पष्टीकरण किया गया हैः

(1) **अधिकतम लाभोपार्जन का उद्देश्य–** प्रत्येक संस्था/कम्पनी/व्यावसायिक उपक्रम का मुख्य उद्देश्य उसके स्वामियों के हितों की रक्षा करना होता है, जिसकी पूर्ति अधिकतम लाभोपार्जन द्वारा की जा सकती है। संस्था द्वारा अर्जित लाभ को संस्था की उत्पादन क्षमता, विक्रयक्षमता एवं प्रबन्धकीय एवं प्रशासकीय कार्यकुशलता का मापदण्ड समझा जाता है। अतः प्रत्येक संस्था व्यावसासिक वित्त की नवीनतम तकनीकी विधियों का प्रयोग करके स्वामी हितों को सुरक्षित रखने का प्रयास करती है। अतः लाभ के आधार पर किसी भी व्यावसायिक संस्था का कार्य–मूल्यांकन किया जा सकता है, क्योंकि लाभों को अधिकतम उत्पादन एवं विक्रय में वृद्धि करने एवं लागतों में कमी करके ही किया जा सकता है।

(2) **अधिकतम प्रतिफल का उद्देश्य–** व्यावसायिक वित्त के उद्देश्यों की द्वितीय कड़ी के रूप में अधिकतम प्रत्याय दर को सम्मिलित किया जाता है। किसी भी व्यावसायिक संस्था की पूंजी संरचना में समता अंश पूंजी के अतिरिक्त पूर्वाधिकार अंशधारियों एवं ऋणधारियों द्वारा भी पूंजी को विनियोजन किया जाता है। इनके आर्थिक हितों को सुरक्षा प्रदान करना भी व्यावसायिक वित्त प्रबन्धक का कर्तव्य होता है। ऋणपत्रधारियों को उनके द्वारा विनियोजित पूंजी पर ब्याज का नियमित भुगतान, पूर्वाधिकार अंशधारियों को पूर्वाधिकार लाभांश का नियमित भुगतान एवं

समता अंशधारियों की प्रति अंश में वृद्धि के साथ–साथ अंशों के बाजार मूल्य में वृद्धि को इनके हितों की सुरक्षा माना जाता है। अतः इन सभी पक्षकारों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि ऐसे प्रबन्धकीय कार्यों को सम्पादित किया जाये जिससे विनियोजित पूंजी पर अधिकतम प्रत्याय दर की प्राप्ति हो सके।

(3) **मूल्य अधिकतमीकरण का उद्देश्य**– सोलोमन इज़रा के अनुसार, "व्यावसायिक वित्त का मुख्य उद्देश्य धन की अधिकतमीकरण है।" यहाँ पर धन के मूल्य अधिकतम करने अथवा सम्पत्तियों के शुद्ध वर्तमान मूल्य अधिकतम करने से लगाया जाता है। प्रो० इरविन फ्रेण्ड भी इस मत के समर्थक थे उनके अनुसार, "व्यवसाय वित्त का उद्देश्य विशुद्ध सम्पत्तियों के मूल्यों में वृद्धि करना है। विशुद्ध सम्पत्तियों के मूल्यों में अभिवृद्धि से विनियोग मूल्यों में वृद्धि हो जायेगी तथा इसके परिणामस्वरूप अंशों के बाजार मूल्य में स्वतः ही वृद्धि हो जायेगी। यह उद्देश्य लाभ अधिकतमीकरण उद्देश्य की तुलना में अधिक उपयुक्त माना जाता है, क्योंकि इसके अन्तर्गत रोकड़ आगमों के आधार पर गणना कार्य किया जाता है। जिसके कारण लेखांकन लाभों की अस्पष्टता एवं संदिग्धता से निज़ात (छुटकारा) मिल जाता है। मुद्रा प्रसार के कारण क्रय–शक्ति में जो कमी आती है, उसका समायोजन शुद्ध वर्तमान मूल्य पद्धति के द्वारा हो जाता है। यह उद्देश्य व्यावसायिक वित्त प्रबन्धकों की योग्यता एवं कार्यकुशलता का मापक भी होता है।

1.2.9 व्यावसायिक वित्त का महत्व

'वित्त' आधुनिक औद्योगिक संरचना का जीवन रक्त है। यह समस्त व्यावसायिक क्रियाओं का मूलाधार बिन्दु है। जिस प्रकर एक स्वस्थ शरीर हेतु पर्याप्त 'रक्त' का होना आवश्यक समझा जाता है, ठीक उसी प्रकार एक स्वस्थ व्यावसायिक संस्था में 'पर्याप्त वित्त' की मात्रा का होना अत्यन्त आवश्यक है। विश्व का कोई भी देश 'पर्याप्त वित्त' के अभाव में समुचित विकास की कल्पना भी नहीं कर सकता है। प्रो० इरविन फ्रेण्ड के अनुसार, "एक फर्म की सफलता, यहाँ तक कि उसका अस्तित्व उसकी कार्यक्षमता एवं उत्पादन करने की इच्छा, स्थायी एवं कार्यशील पूंजी में विनियोग करने की क्षमता पर्याप्त सीमा तक उसकी विगत एवं वर्तमान नीतियों द्वारा ही निर्धारित होती है।" कुछ इसी प्रकार के विचार प्रो० सोलोमन इज़रा द्वारा भी व्यक्त किये गये हैं, उनके अनुसार, "वित्तीय प्रबन्ध आज केवल कोषों के संग्रहण करने की एक विशिष्ट क्रिया मात्र ही नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण प्रबन्धकीय विज्ञान का एक अभिन्न अंग बन गया है। यह कोषों के एकत्रीकरण के साथ–साथ विपणन एवं निर्णयन से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित रहता है।" व्यावसायिक वित्त को बढ़ते हुए महत्व को देखते हुए हसबैण्ड एवं डाकरी ने व्यावसायिक वित्त की परिभाषा में विश्लेषत किया है कि "विभिन्न आर्थिक एवं व्यावसायिक गतिविधियों को एक सूत्र में पिरोने के लिए किसी ऐसे साधन की आवश्यकता होती है जो उन्हें सुचारु रूप से निर्देशित कर सके और व्यावसायिक वित्त ही वह अभिकर्ता (शक्तिशाली साधन) है, जो इस कार्य को पूर्ण रूपेण उचित प्रकार से सम्पादित करता है।"

इसके आधार पर यह कहना कोई भी अतिशयोक्ति विचार नहीं है कि व्यावसायिक वित्त समस्त व्यापार, वाणिज्य एवं उद्योग की आत्मा है। 'वित्त' व्यावसायिक संचालन का आधारभूत तत्व होने के कारण व्यवसाय कोई भी अंग

व्यावसायिक वित्त के महत्व से अछूता नहीं रहता है। संक्षेप में, व्यावसायिक वित्त का महत्व निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:

(1) **व्यावसायिक प्रबन्धकों के लिए महत्व–** व्यावसायिक वित्त का सर्वाधिक महत्व व्यावसायिक प्रबन्धकों के लिए ही परिलक्षित होता है। व्यावसायिक वित्त प्रबन्धकों को विवेकपूर्ण कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करता है। संस्था में विनियोक्ताओं द्वारा विनियोजित पूंजी का कुशलतम उपयोग तभी सम्भव है, जबकि प्रबन्धक वर्ग वित्तीय प्रबन्ध की विभिन्न तकनीकी विधियों के विश्लेषण के उपरान्त संस्था के हित में कोई निर्णय लेने में समर्थ होते हैं। व्यावसायिक वित्त के गहन अध्ययन के पश्चात् ही वे अपने इस उत्तरदायित्व के साथ न्याय कर सकते हैं। अतः यह व्यावसायिक प्रबन्धकों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण तकनीकी विज्ञान है।

(2) **विनियोक्ताओं के लिए महत्व–** व्यावसायिक वित्त विनियोक्ताओं को अपनी विनियोजित पूंजी पर अधिकतम प्रत्याय अर्जित करने का अवसर प्रदान करता है। विनियोक्ता विनियोग से पूर्व विभिन्न विकल्पों पर लाभदायकता का निर्धारण करके उचित विकल्प को अपनाकर पूंजी विनियोजित करते हैं। संस्था की सर्वश्रेष्ठता तभी सिद्ध होगी जबकि संस्था के प्रबन्धक वित्तीय तकनीकों की मदद से लाभ अधिकतमीकरण की नीति को अपनाते हैं। लाभ के अधिक होने पर संस्था ऊँचा भुगतान अनुपात निश्चित करके विनियोक्ताओं के हितों को सुरक्षा प्रदान कर सकती है।

(3) **कर्मचारियों के लिए महत्व–** व्यावसायिक वित्त के द्वारा वित्तीय प्रबन्धन में कुशलता एवं विवेकपूर्ण रीतियों से वित्त का प्रयोग किया जाता है। इससे उत्पादन में वृद्धि, गुणवत्ता में सुधार एवं विक्रय में वृद्धि होती है। इसके फलस्वरूप संस्था का सम्पूर्ण लाभ अप्रत्याशित रूप से बढ़ जाता है। संस्था के लाभों में वृद्धि से कर्मचारियों के वेतन, भत्ते एवं बोनस में भी वृद्धि होती है। संस्था कर्मचारी हितों के मद्देनजर वित्तीय संसाधनो को श्रमिक कल्याण पर व्यय करके कर्मचारियों के मनोबल को बढ़ाने का प्रयास करती है।

(4) **बैंकों एवं विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं के लिए महत्व–** व्यावसायिक वित्त के द्वारा बैंक एवं अन्य विशिष्ट वित्तीय संस्थएं कोषों के संग्रहण एवं उनके विनियोजन हेतु ज्ञान की प्राप्ति करते हैं। इसके अभाव में ये बैंक एवं वित्तीय संस्थाएं अपने निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में विफल रहती हैं। अतः कुशलतापूर्वक वित्त के विनियोजन हेतु इन संस्थाओं के प्रबन्धकों को व्यावसायिक वित्त की पूर्ण जानकारी एवं ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है।

(5) **अंशधारियों के लिए महत्व–** यदि अंशधारियों को व्यावसायिक वित्त के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान है तो वे संस्था की वित्तीय स्थिति का स्वयं मूल्यांकन करके अपने हितों की सुरक्षा स्वयं कर सकते हैं। संस्था के संचालकों को अंशधारी उचित लाभांश नीति अपनाने हेतु विवश कर सकते हैं एवं उचित वित्तीय नीति के अनुपालन हेतु संचालकों को बाध्य भी कर सकते हैं।

(6) **सरकार के लिए महत्व–** व्यावसायिक वित्त के अन्तर्गत 'लोक वित्त' का भी अध्ययन किया जता है। इसके द्वारा सरकार को लोक व्यय, लोक आगम एवं लोक ऋणों के सम्बन्ध में ज्ञान की प्राप्ति होती है। सरकार अधिकतम कल्याणकारी व्ययों पर अधिक वित्त का विनियोजन करती है, जिससे सामाजिक कल्याण में अभिवृद्धि होती है।अतः व्यावसायिक वित्त प्रबन्ध के अभाव में कोई भी सरकार लोक

कल्याण के व्ययों को नहीं कर सकती है। अतः सरकार एवं उसके अधिकारियों को व्यावसायिक वित्त के विशद अध्ययन एवं ज्ञान की आवश्यकता प्रतीत होती है।

(7) **अन्य पक्षकारों के लिए महत्त्व–** व्यावसायिक वित्त प्रबन्ध का स्वरूप सार्वभौमिक एवं सर्वव्यापकता होता है। अतः इसका सम्बन्ध प्रत्येक क्रिया, पक्षकार एवं उसके परिणाम से होता है। अन्य पक्षकारों के अन्तर्गत वाणिज्य विषय से सम्बन्धित विद्यार्थी, अर्थशास्त्रवेत्ता, राजनीतिज्ञ आदि को सम्मिलित करते हैं, इन्हें भी व्यावसयिक वित्त के सिद्धान्तों का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है, क्योंकि इसके अभाव में वे देश की आर्थिक समस्याओं को समझने, विश्लेषण करने एवं सुलझाने में अपने को असमर्थ पायेंगे। अतः उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि व्यावसायिक वित्त प्रबन्ध का जहां व्यावसायिक क्रियाओं के संचालन में योगदान है, वहीं लोक कल्याण से सम्बन्धित क्रियाओं का सम्पादन भी इसके बिना नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार व्यावसायिक वित्त प्रबन्ध, एक ऐसी धुरी है जिसके चारों ओर सभी व्यावसायिक क्रियाएं, विनियोक्तागण, अंशधारी, कर्मचारी समूह, सरकार, बैंक एवं वित्तीय संस्थाएँ, अर्थशास्त्री, राजनीतिज्ञ एवं विद्यार्थी सभी चक्कर लगाते हैं।

1.2.10 व्यावसायिक वित्तीय प्रबन्धक एवं व्यवसाय

व्यावसायिक जगत में प्रत्येक व्यवसाय के सर्वोच्च स्तर पर प्रबन्धक होते हैं। इन प्रबन्धकों को वित्तीय सिद्धान्तों की पूर्ण तकनीकी ज्ञान एवं जानकारी नहीं होती है। अतः आर्थिक निर्णय करने में सहायता प्राप्त करने के लिए उच्च स्तरीय प्रबन्ध एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति करते हैं, इसी अध्किरी को वित्तीय प्रबन्धक की संज्ञा दी गयी है। आधुनिक काल में इस प्रकार के वित्तीय प्रबन्धकों का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है, क्योंकि व्यवसाय में जटिल वित्तीय समस्याएँ होती हैं। इन समस्याओं के होते हुए उचित प्रकार का निर्णय करना सामान्य प्रबन्धक नहीं कर सकता होती है। अतः अपने विवेक से व्यावसायिक वित्तीय प्रबन्धक संस्था के सम्बन्ध में कोषों की उपलब्धता, पूंजीकरण, पूंजी–ढांचा, नवीन वित्त पूर्ति के प्रभाव, पूंजी बजटन, लाभ नियोजन एवं नियन्त्रण, प्राप्यों का प्रबन्ध, स्कन्ध का प्रबन्ध, लाभांश नीति, अधिलाभांश नीति, आदि के सम्बन्ध में उचित निर्णय करते हैं। वर्तमान समय में बड़े–बड़े औद्योगिक संस्थानों, बीमा कम्पनियों, वित्तीय संस्थाओं में वित्तीय प्रबन्धकों की नियुक्तियों पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है।

वित्तीय प्रबन्ध उन सभी कार्यों को सम्पादित करता है, जो व्यावसायिक वित्त के कार्य हैं। अतः पूर्व में विश्लेषित व्यावसायिक वित्त के कार्यों को ही वित्तीय प्रबन्धक सम्पादित करता है।

वित्त प्रबन्धक के उत्तरदायित्व

व्यावसायिक वित्त का स्वरूप अब विवेचनात्मक के साथ–साथ विश्लेषणात्मक होने के कारण वित्तीय प्रबन्धक के उत्तरदायित्वों में भी अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। एक वित्तीय प्रबन्धक के प्रमुख उत्तरदायित्व निम्नलिखित हैंः

(1) **वित्तीय नियोजन–** वित्तीय प्रबन्धक का सबसे महत्वपूर्ण उतरदायित्व वित्तीय नियोजन ही होता है। वित्तीय प्रबन्धक वित्त से सम्बन्धित योजनाओं को तैयार करते हैं, विश्लेषण करने के पश्चात् इसे कसौटी पर परखा जाता है, यदि योजना ठीक प्रकार से नियोजित कर ली जाती है, तो वह अपने निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त

करने में सक्षम होती है। अतः वित्तीय प्रबन्धक को वित्तीय नियोजन करते समय विशेष सावधानी रखनी आवश्यक है।

(2) **कोषों का एकत्रीकरण**— वित्तीय प्रबन्धक योजना को नियोजित करने के पश्चात् उसके लिए आवश्यक कोषों का एकत्रीकरण विभिन्न साधनों के माध्यम से करता है। इस हेतु वित्तीय प्रबन्धक को इस बात को भी ध्यान में रखता है कि कितना वित्त अल्पकालीन स्रोतों से, कितना मध्यमकालीन स्रोतों से एवं कितना वित्त दीर्घकालीन स्रोतों से एकत्रित किया जाये। व्यवसाय को यदि वित्त की आवश्यकता अल्पकाल के लिए है, तो अल्पकालीन कोषों के द्वारा एवं संस्था को यदि दीर्घकाल के लिए कोषों की आवश्यकता है, तो दीर्घकालिक कोषों के साधन के माध्यम से वित्त का एकत्रीकरण किया जायेगा। इसके पश्चात् भी वित्तीय प्रबन्धक का यह उत्तरदायित्व होता है कि वित्त का कौन–सा साधन अधिक उपयुक्त रहेगा।

(3) **कोषों का विनियोजन**— वित्तीय प्रबन्धक द्वारा वित्त के एकत्रीकरण के पश्चात् नियोजन के अनुरूप लाभकारी वित्तीय विकल्पों में कोषों को विनियोजन किया जाता है। कोषों के विनियोजन के सम्बन्ध में वित्तीय प्रबन्धक का उत्तरदायित्व इसलिए और अधिक बढ़ जाता है, क्योंकि लाभप्रद विकल्पों में विनियोजन के अतिरिक्त उसे वित्त की सुरक्षा का भी ध्यान रखना होता है। दीर्घकालीन वित्त स्रोतों से प्राप्त कोषों का विनियोजन केवल दीर्घकालिक स्थायी सम्पत्तियों में ही करना चाहिए। अल्पकालिक साधनों से एकत्र राशि को कभी भी स्थायी सम्पत्तियों में विनियोजित नहीं किया जाना चाहिए।

(4) **ह्रास एवं कर की उचित व्यवस्था**— वित्तीय प्रबन्धक द्वारा कोषों के विनियोजन के उपरान्त संस्था के उपार्जित लाभ में से ह्रास एवं कर की उचित व्यवस्था करना भी उसका उत्तरदायित्व होता है। संस्था की सम्पत्तियों पर यदि उचित मूल्य ह्रास की व्यवस्था नहीं की जाती है, ते उसके पुस्तकीय–मूल्य उचित स्थिति को प्रदर्शित नहीं करते हैं। इसके आधार पर तैयार आर्थिक चिट्ठा व्यवसाय की सही आर्थिक स्थिति का प्रस्तुतीकरण नहीं करता है। इसी प्रकार व्यवसाय को विभिन्न प्रकार के करों (जैसे उत्पादन कर, विक्रय कर, आय कर, निगम कर) के भुगतान का उत्तरदायित्व भी होता है। इनको यथा समय भुगतान करने के लिए वित्तीय प्रबन्धक द्वारा विभिन्न कोषों का निर्माण लाभों की राशि में से किया जाता है।

(5) **आय एवं लाभांश का प्रबन्ध**— वित्तीय प्रबन्धक का उत्तरदायित्व अन्तिम रूप से संस्था के स्वामियों/अंशधारियों के प्रति होता है। इसलिए उसका यह दायित्व बनता है कि वह आय एवं लाभांश का उचित प्रबन्धन करे। आय के कितने भाग को प्रतिधारित लाभों में पुनर्विनियोजित किया जाये? कितना लाभ कोषों एवं संचयों में हस्तान्तरित किया जाये? लाभांश–भुगतान अनुपात क्या निर्धारित किया जाये? इन सब तथ्यों के सम्बन्ध में वित्तीय प्रबन्धक का उत्तरदायित्व और अधिक बढ़ जाता है।

(6) **वित्तीय नियन्त्रण**— वित्तीय प्रबन्धक का सबसे महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व होता है कि वह संस्था के 'वित्त' पर प्रभावी नियन्त्रण रखे। प्रभावी नियन्त्रण के अभाव में अच्छी–से–अच्छी वित्तीय योजना भी धराशायी हो जाती है एवं वित्त के दुरुपयोग एवं कुप्रबन्ध की समस्या दृष्टिगोचर होने लगती है। अतः वित्तीय प्रबन्धक को वित्त पर प्रभावी नियन्त्रण बनाये रखना चाहिए।

(7) **अन्य दायित्व–** वित्तीय प्रबन्धक संस्था के सभी विभागों के साथ मुख्य सम्पर्क सूत्र का कार्य करता है। अतः किसी भी विभाग को यदि किसी परेशानी का सामना करना पड़ता है तो उस विभाग को उस समस्या से छुटकारा दिलाने में वित्तीय प्रबन्धक मदद करता है। अतः स्पष्ट है कि व्यावसायिक वित्त प्रबन्धक का उत्तरदायित्व व्यवसाय के प्रति होता है। जिस व्यवसाय में वह कार्यरत होता है, उसकी पूर्ण सफलता/असफलता का उत्तरदायित्व भी उसी पर होता है। अतः वह ऐसे समस्त कार्य करने के प्रति भी जिम्मेदार होता है, जो व्यवसाय के विकास एवं विस्तार से सम्बन्धित होते हैं।

1.2.11 व्यावसायिक वित्त का अन्य विषयों के साथ सम्बन्ध

आधुनिक काल में व्यावसायिक वित्त ही एक ऐसा विषय है, जिसका सम्बन्ध कई अन्य विषयों से भी है। व्यावसायिक वित्त पूर्ण रूप से व्यवसाय से सम्बन्धित विषय है एवं अन्य कई विषयों का सम्बन्ध भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में व्यवसाय से सम्बन्धित होता है। अतः इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि व्यावसायिक वित्त का सम्बन्ध अन्य विषयों से भी है, उसकी व्याख्या निम्न प्रकार की गयी हैः–

(अ) **व्यावसायिक वित्त एवं उत्पादन प्रबन्ध में सम्बन्ध–** व्यावसायिक वित्त का सम्बन्ध उत्पादन प्रबन्ध के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। व्यवसयिक उत्पादन हेतु मशीनों एंव तकनीकों की आवश्यकता पड़ती है, इन सब आवश्यक तत्वों को उपलब्ध कराने में वित्त विभाग, उत्पादन विभाग की मदद करता है। वित्त विभाग इन सब गतिविधियों को सुचारु रूप से सम्पादित करने हेतु 'वित्त' उपलब्ध कराता है, जिसकी सहायता से इन गतिविधियों को मूर्त रूप प्रदान किया जाता है।

(ब) **व्यावसायिक वित्त एवं विपणन प्रबन्ध में सम्बन्ध–** व्यावसायिक वित्त एवं विपणन प्रबन्ध में भी सम्बन्ध परिलक्षित होता है। व्यावसायिक वित्त के अन्तर्गत साख एवं उधार वसूली नीतियों का अध्ययन किया जाता है। उदार साख नीति का अनुपालन करने से एक ओर तो विक्रय की मात्रा में वृद्धि होगी, लेकिन उसके फलस्वरूप अशोध्य ऋणों में हानि की मात्रा में भी वृद्धि हो जायेगी, अतः आनुपातिक रूप से विश्लेषण करने के पश्चात् ही इस सन्दर्भ में निर्णय लिया जाता है कि उदार साख नीति अथवा कठोर साख नीति अनुपालन पर जोर देना श्रेयकर रहेगा। कितनी धनराशि विज्ञापनों पर व्यय की जानी चाहिए, आदि का अध्ययन भी व्यावसायिक वित्त में किया जाता है। अतः यह विपणन प्रबन्ध से भी प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित है।

(स) **व्यावसायिक वित्त का सेविवर्गीय प्रबन्ध के साथ सम्बन्ध–** व्यवसायिकक वित्त का सम्बन्ध सेविवर्गीय प्रबन्ध के साथ भी होता है। सेविवर्गीय प्रबन्ध कर्मचारियों के प्रबन्ध, उनकी भर्ती, मजदूरी भुगतान क्रियाएं, बोनस, श्रमिक कल्याण योजनाओं आदि से सम्बन्धित विज्ञान है। इन सभी क्रियाओं हेतु प्रत्यक्ष रूप से 'वित्त' की आवश्यकता पड़ती है, अतः इनका अध्ययना भी व्यावसायिक वित्त में किया जाता है।

(द) **व्यावसायिक वित्त का लेखांकन विज्ञान के साथ सम्बन्ध–** वित्त एवं लेखांकन एक–दूसरे से सहसम्बन्धित हैं। लेखांकन विभाग का कार्य उच्च प्रबन्धक, वित्तीय प्रबन्धक, सेविवर्गीय प्रबन्धक, विपणन प्रबन्धक एवं उत्पादन प्रबन्धक को आवश्यक आंकड़े एवं सूचनाएं यथासमय उपलब्ध कराने का होता है। किसी भी

वित्तीय वर्ष में संस्था द्वारा जो लेन–देन किये गये हैं, उन सब का सही लेखांकन लेखा विभाग का कार्य होता है। वित्तीय प्रबन्धक इन विगत वर्षों के लेखों एवं आंकड़ों के आधार पर नियोजन की प्रक्रिया को अपनाते हैं, इस प्रकार लेखांकन विभाग भी व्यवसायिकक वित्त से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है।

(य) **व्यवसायिकक वित्त का लागत लेखांकन के साथ सम्बन्ध–** व्यावसायिक वित्त में लाभ नियोजन एवं नियन्त्रण के अन्तर्गत समविच्छेद बिन्दु का निर्धारण किया जाता है, जो लागत लेखांकन का एक हिस्सा है, उसी प्रकार विचारणांश विश्लेषण भी व्यावसायिक वित्त के क्षेत्र में सम्मिलित हैं, जो लागत लेखांकन का एक हिस्सा है। इस प्रकार स्पष्ट है कि लागत लेखांकन एवं व्यवसायिकक वित्त दोनों आपस में सह–सम्बन्धित हैं।

(र) **व्यावसायिक वित्त एवं राजस्व के साथ सम्बन्ध–** व्यवसायिकक इकाइयों पर सरकारी नीतियों का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। सरकार के द्वारा करों एवं ऋणों से वित्त प्राप्त किया जाता है तथा समाज कल्याण में वृद्धि हेतु सरकारी वित्त को व्यय किया जाता है। इन सभी क्रियाओं का प्रभाव व्यावसायिक इकाइयों पर भी अवश्य पड़ता है। वित्तीय प्रबन्धक राजस्व से सम्बन्धित निम्न तत्वों का अध्ययन व्यवसायिकक वित्त में भी करता है जैसे, सरकारी कर नीति, बैंकिंग नीति, मूल्य नियन्त्रण नीति, राजकोषीय नीति, आय कर, मूल्य वर्द्धित कर एवं उत्पादक शुल्क सम्बन्धी नीति।

(ल) **व्यावसायिक वित्त एवं औद्योगिक अर्थव्यवस्था–** उद्योगों के सम्बन्ध में विकास, विस्तार, नियोजन, स्थानीयकरण, पूंजी प्राप्ति के साधन, पूंजी की लागत, वित्तीय संस्थाओं आदि का अध्ययन औद्योगिक अर्थशास्त्र के साथ–साथ व्यावसयिक वित्त में भी किया जाता है। इन सभी तत्वों के आधार पर ही संस्था का विकास निर्भर करता है। अतः व्यावसयिक वित्त एवं औद्योगिक अर्थशास्त्र एक–दूसरे से सह–सम्बन्धित हैं।

(म) **व्यावसायिक वित्त एवं कार्यात्मक शोध में सम्बन्ध–** कार्यात्मक शोध का मुख्य अंग रेखीय कार्यक्रम होता है। इस सिद्धान्त के माध्यम से प्रबन्धक अनेक प्रकार की समस्याओं के समाधान हेतु चुनाव करता है एवं साधनों के मध्य में अनुकूलतम स्तर प्राप्ति हेतु न्यूनतम स्तर की लागतों के साधनों का निर्णय करता है। अतः स्पष्ट है कि कार्यात्मक शोध भी व्यावसायिक वित्त से सम्बन्धित विज्ञान है।

1.3 वित्तीय नियोजन

किसी भी योजना को मूर्तरूप प्रदान करने हेतु 'वित्त' की आवश्यकता होती है। 'वित्त' वह धुरी है, जिसके चारों ओर समस्त व्यावसायिक क्रियाएं चक्कर लगाती हैं। वित्त के अभाव में अच्छी–से–अच्छी योजना को भी कार्यरूप प्रदान नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार वित्त का होना ही अपने आप में पर्याप्त नहीं होता है, बल्कि 'वित्त' की आवश्यकता के समय उपलब्धि एवं पर्याप्तता का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। इसके निश्चयन हेतु ही वित्तीय नियोजन की आवश्यकता प्रतीत होती है। वित्तीय नियोजन के द्वारा वित्त प्रबन्धक इस बात का अनुमान लगााते हैं कि संस्था विशेष को अमुक समय में कितने धन की आवश्यकता प्रतीत होगी एवं उस वित्तीय आवश्यकता को कौन–कौन से वित्तीय साधनों द्वारा एकत्रित

किया जायेगा। अतः कोई भी संस्था वित्तीय नियोजन के द्वारा अनुकूलतम वित्तीय व्यवस्था करने में सक्षम हो सकती है। इसे वित्तीय आयोजन भी कहा जाता है।

1.3.1 वित्तीय नियोजन का अर्थ एवं परिभाषा

वित्तीय नियोजन के अन्तर्गत वित्तीय प्रबन्धक किसी संस्था विशेष हेतु पूंजी की आवश्यकता का निर्धारण, उस आवश्यकता पूर्ति हेतु सर्वोत्तम विकल्पों का चयन एवं वित्तीय प्रशासन जिसमें नीतियों का निर्धारण एवं पूंजी का प्रबन्ध किया जाता है, आदि कार्यों को सम्पादित करते हैं।

वित्तीय नियोजन की विभिन्न विद्वानों के अनुसार निम्नलिखित परिभषएं दी गयी हैं–

वाकर एवं बॉन के अनुसार, "वित्तीय नियोजन केवल वित्त–कार्य से सम्बन्धित हैं, जिसमें संस्था के वित्तीय लक्ष्यों का निर्धारण, वित्तीय नीतियों का निर्माण एवं अनुगमन तथा वित्तीय कार्य विधियों का विकास सम्मिलित है।"

वेस्टर एवं ब्रीघम के अनुसार, "वित्तीय नियोजन का आशय व्यवसाय के लक्ष्यों अथवा उद्देश्यों के निर्धारण तथा उपलब्ध विभिन्न विकल्पों में से सर्वोत्तम विकल्प का चयन करने तथा उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नीतियों एवं कार्यक्रमों के निर्धारण से है।"

जे० बेटी के अनुसार, "रोकड़ का पर्याप्त शेष और प्रवाह आवश्यक है। व्यवसाय को हमेशा ही अपने वायदों को पूरा करने के योग्य होना चाहिए। इसके अतिरिक्त, व्यवसाय को स्थिर नहीं रखा जा सकता। किसी भी प्रतिस्पर्द्धी क्षेत्र में नये उत्पादों के बाजार में लाने के लिए एवं विस्तार करने के लिए व्यवसाय में सुधार लाना आवश्यक होता है। अनुभव यह बताता है कि व्यवसाय स्थिर नहीं रह सकता, व्यवसाय की प्रवृति आगे की ओर बढ़ने की या पीछे की ओर हटने की होती है, स्थिर रहने की नहीं। यदि व्यवसाय का विस्तार किया जाना है, तो पर्याप्त वित्तीय साधनों की आवश्यकता होगी।"

जे०एच० बोनविले के अनुसार, "एक निगम के वित्तीय नियोजन के दो पहलू हैं, यह न केवल निगम के पूंजी ढांचे की ओर इशारा करता है, अपितु यह निगम द्वारा अपनायी गयी अथवा अपनायी जाने वाली वित्तीय नीतियों को भी स्पष्ट करता है।"

गैस्टन वर्ग के अनुसार, वित्तीय नियोजन का अर्थ किसी भी नये प्रवर्तित किये जा रहे व्यवसाय के प्रारम्भिक सम्पत्ति संगठन, वैधानिक संचालन व्ययों, स्थायी एवं कार्यशील पूंजी की व्यवस्था, वर्तमान समय में अवश्यक पूंजी का उचित अनुमान लगाकर उसकी व्यवस्था करने तथा उसको प्राप्त करने के यथासम्भव स्रोतों के सही विश्लेषण से हैं।"

आर्थर एस० डेविंगके अनुसार, वित्तीय नियोजन में निम्न तीन बातों को सम्मिलित करते हैं–

(1) पूंजी की आवश्यकता मात्रा का अनुमान लगाना अथवा पूंजीकरण,
(2) पूंजी के विभिन्न स्रोतों का निर्धारण एवं पूंजी संरचना निश्चित करना,
(3) पूंजी के प्रबन्ध एवं प्रशासन की उचित नीतियों का निर्धारण।

(1) **वित्तीय आवश्यकता का निर्धारण**– संस्था विशेष की स्थापना एवं संचालन के लिए वित्त की आवश्यकता का निर्धारण इसके अन्तर्गत किया जाता है। वित्त

की आवश्यकता संस्था को अल्पकाल हेतु कितनी होगी एवं दीर्घकाल हेतु कितनी होगी का निर्धारण इसके पश्चात् किया जाता है।

(2) **पूंजी ढांचे का निर्धारण–** वित्तीय आवश्यकताओं के पूर्वानुमान के पश्चात् संस्था के प्रबन्धक पूंजी संरचना का निर्धारण करेंगे। इसके अन्तर्गत अल्पकालीन वित्त की आवश्यकता की पूर्ति हेतु कौन– कौन–से साधनों का चुनाव किया जाये एवं दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता हेतु किन–किन साधनों का चयन किया जाये? ऋणपूंजी एवं स्वामित्व पूंजी का क्या अनुपात रहना चाहिए। संस्था समता पर व्यापार नीति को प्रोत्साहन देगी अथवा नहीं, पूंजी दन्तिकरण अनुपात क्या रहेगा, आदि का निर्धारण इसके अन्तर्गत किया जायेगा।

(3) **पूंजी का प्रबन्ध एवं प्रशासन–** वित्तीय नियोजन का अन्तिम कार्य उपलब्ध पूंजी के अनुकूलतम प्रयोग से है। पूंजी के अनुकूलतम प्रबन्ध करने हेतु पूंजी सम्बन्धी वित्तीय नीतियों का निर्माण एवं उनका अनुपालन किया जाता है। इसके अन्तर्गत नियन्त्रण की तकनीकों को प्रयोग में लाया जाता है जैसे, बजटरी नियन्त्रण, लागत नियन्त्रण, विचरणांश विश्लेषण, लागत–लाभ मात्रा विश्लेषण आदि।

1.3.2 वित्तीय नियोजन के प्रकर

वित्तीय नियोजन को समयानुसार निम्न तीन वर्गों में वर्गीकृत कर सकते हैं:

(अ) **अल्पकालीन वित्तीय नियोजन–** व्यवसाय के दिन–प्रतिदिन के कार्यों को सुचारु रूप से चलाने हेतु कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है। कार्यशील पूंजी चालू सम्पत्तियों में से चालू दायित्वों को घटाने के पश्चात् शेष बची हुई राशि को कहा जाता है। सामान्यतः वह 'वित्त' जो संस्था को एक वर्ष अथवा उससे कम अवधि हेतु चाहिए, उसेअल्पकालीन वित्त के अन्तर्गत सम्मिलित करते हैं। इनके आधार पर बनायी गयी वित्तीय योजना को अल्पकालीन वित्तीय नियोजन की संज्ञा प्रदान करते हैं।

(ब) **मध्यकालीन वित्तीय नियोजन–** इस वित्तीय नियोजन के अन्तर्गत उन वित्तीय योजनाओं को सम्मिलित किया जायेगा, जिनकी समयावधि एक वर्ष से अधिक लेकिन पांच वर्ष की अवधि से कम है। इस प्रकार की वित्तीय योजनाएँ पूंजी संरचना में लोच बनी रहे, को ध्यान में रखकर निर्मित की जाती है। इस प्रकार के वित्तीय नियोजन से उपलब्ध वित्त का प्रयोग सम्पत्तियों के प्रतिस्थापन, शोध कार्यक्रम को चलाने हेतु, आदि कार्यों के लिए उपयुक्त समझा जाता है।

(स) **दीर्घकालीन वित्तीय नियोजन–** इस वित्तीय नियोजन के अन्तर्गत उन वित्तीय योजनाओं को सम्मिलित किया जायेगा, जिसकी समयावधि पांच वर्ष से अधिक होती है। संस्था की दीर्घकालीन योजनाओं को मूर्तरूप प्रदान करने हेतु दीर्घकालीन वित्तीय नियोजन किया जाता है। संस्था की पूंजी संरचना में दीर्घकालीन वित्तीय नियोजन अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। सामान्यः संस्था के पार्षद सीमानियमों में उल्लिखित उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु दीर्घकालीन वित्तीय नियोजन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इनकी सहायता से संस्था के दीर्घकालीन उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

1.3.3 श्रेष्ठ वित्तीय नियोजन की विशेषतााएं

(1) **सरलता**– वित्तीय नियोजन में सरलता का गुण होना चाहिए। पूंजी संरचना में सम्मिलित प्रतिभूतियों का स्वरूप भी सरल एवं आकर्षक होना चाहिए, जिससे विनियोजक स्वयं ही पूंजी विनियोजन हेतु आकर्षित हो। प्रतिभूतियों के क्रय–विक्रय एवं नाम हस्तान्तरण की प्रक्रिया सरल एवं स्पष्ट होने से विनियोजक अपनी विनियोजित पूंजी को तरल समझता है एवं अधिक विनियोग हेतु तत्पर रहता है। अतः वित्तीय नियोजन का स्वरूप सरल होना चाहिए।

(2) **तरलता**– वित्तीय नियोजन के सामान्यतः तीनों प्रकार समयावधि को ध्यान में रखकर विश्लेषित किये गये हैं, अल्पकालीन, मध्यकालीन एवं दीर्घकालीन वित्तीय नियोजन। व्यवसाय को सफलतापूर्वक संचालित करने हेतु कार्यशील पूंजी का एक निश्चित भाग सदैव ही तरल रखना चाहिए, इसके साथ–साथ मध्यकालीन एवं दीर्घकालीन वित्तीय विनियोग करते समय भी ऐसी प्रतिभूतियों एवं सम्पत्तियों में विनियोजन किया जाना चाहिए, जिन्हें आवश्यकता प्रतीत होने पर सरलता से तरलता में परिवर्तित किया जा सके। तरलता के अभाव में अच्छी–से–अच्छी वित्तीय स्थिति वाली संस्था भी दिवालियेपन की ओर अग्रसर हो सकती है।

(3) **दूरदर्शिता**– वित्तीय नियोजन के मूल आधार भावी कार्यक्रम होते हैं। लेकिन वित्तीय नियोजन को तैयार करते समय वर्तमान वित्तीय आवश्यकताओं की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती है। वित्तीय नियोजन के अन्तर्गत दूरदर्शिता को सम्मिलिखत करने से संस्था विशेष की सफलता का सूचकांक बढ़ जाता है। दूरदर्शिता से किया गया वित्तीय नियोजन संस्था के समक्ष वित्तीय संकट उत्पन्न नहीं होने देता है।

(4) **लोचता**– व्यापार चक्रों के कारण व्यवसााय में कभी मन्दी तो कभी तेजी का दौर चलता रहता है। श्रेष्ठ वित्तीय नियोजन में इस तेजी एवं मन्दीकाल में पूंजी की मात्रा को आवश्यकतानुसार समायोजित करने का गुण पाया जाता है। पूंजी संरचना में लोच के कारण भी व्यवसाय विषम परिस्थितियों में भी अपने को आवश्यकतानुसार समायोजित करने की शक्ति रखता है।

(5) **उपयोगिता**– श्रेष्ठ वित्तीय नियोजन में पूंजीकरण का स्वरूप इस प्रकार निर्धारित होना चाहिए, कि वह संस्था एवं विनियोक्ताओं हेतु अपनी उपयोगिता सिद्ध कर सके। अल्पकालीन, मध्यमकालीन एवं दीर्घकालीन वित्तीय पूंजी घटकों के मध्य प्रभावशाली सामंजस्य होने से वित्तीय साधनों का अनुकूलतम उपयोग सम्भव होता है।

(6) **पर्याप्तता**– श्रेष्ठ वित्तीय नियोजन के अन्तर्गत पूंजी ढांचे में वित्तीय पर्याप्तता का होना आवश्यक है। पूंजीकरण के अपर्याप्त होने की दशा में संस्था या तो अति पूंजीकृत अथवा अल्प पूंजीकृत की अवस्था में रहती है। दोनों परिस्थितियां ही संस्था एवं विनियोजकों के हितों पर कुठाराघात करती हैं, अतः इन्हें अनुपयुक्त माना जाता है। अनुकूलतम पूंजीकरण के द्वारा पूंजी के साधनों का पूर्ण एवं विस्तृत प्रयोग किया जा सकता है एवं यह श्रेष्ठ वित्तीय नियोजन के द्वारा ही सम्भव है।

(7) **आकस्मिकताओं हेतु नियोजन**– प्रत्येक संस्था के जीवन काल में कुछ घटनाएं आकस्मिक तौर पर घटित होती है। इन घटनाओं का आकलन एवं पूर्वानुमान किसी भी स्तर पर सम्भव नहीं होता है। वित्तीय प्रबन्धक संस्था के हितों को दृष्टिगत रखते हुए इस हेतु पर्याप्त वित्तीय कोषों एवं संचयों का निर्माण करते

हैं, ताकि किसी भी तरह की आकस्मिकता के उत्पन्न होने की दशा में इसका सामना किया जा सके।

(8) **मितव्ययिता–** पूंजी संरचना में वित्तीयसाधनों का चयन करते समय पूंजी प्राप्त करने की लागत को भी श्रेष्ठ वित्तीय नियोजन में पूर्ण ध्यान रखा जाता है। अलग–अलग पूंजी साधनों को प्राप्त करने की पूंजी लागत भी अलग–अलग होती है, इसके अतिरिक्त पूंजी की लागत जो कर से पूर्व अथवा कर के पश्चात् निर्धारित होती है, वह भी अलग–अलग होती है। अतः यह लागत किसी भी परिस्थिति में संस्था अथवा समता अंशधारियों के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली नहीं होनी चाहिए तथा यह तभी सम्भव है जबकि इनके चुनाव में मितव्ययिताओं एवं श्रेष्ठ वित्तीय नियोजन का पूर्ण ध्यान रखा जाये।

(9) **पूर्णता–** श्रेष्ठ वित्तीय नियोजन के अन्तर्गत संस्था के प्रबन्धकों को वित्तीय नियोजन में कोई अपूर्णता नहीं छोडनी चाहिए। योजना के अपूर्ण होने की स्थिति में संस्था के समक्ष किसी भी समय वित्तीय संकट उत्पन्न हो सकता है।

1.3.4 वित्तीय नियोजन को निर्धारित अथवा प्रभावित करने वाले घटक

वित्तीय आयोजन का उद्देश्य पूंजी ढांचा का निर्धारण, पूंजी की आवश्यकता का निर्धाराण एवं पूंजी के प्रबन्ध तक सीमित होता है। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु विभिन्न योजनायें बनाई जाती हैं। इन योजनाओं को विभिन्न प्रकार के घटक अलग–अलग रूप से प्रभावित करते हैं। संक्षेप में, इन तत्वों का विश्लेषण निम्नानुसार है:

(1) **व्यवसाय की प्रकृति–** व्यवसाय की प्रकृति वित्तीय नियोजन को प्रभावी रूप से प्रभावित करती है। व्यवसाय की प्रकृति यदि निर्माणी है, तो ऐसे व्यवसायों में अधिक दीर्घकालिक पूंजी विनियोग की आवश्यकता होगी एवं उसी को ध्यान में रखकर पूंजी संरचना का नियोजन किया जायेगा। यदि व्यवासय की प्रकृति मौसमी है, तो उस निश्चित मौसम में ही अधिक वित्त की आवश्यकता होगी एवं सीजन के पश्चात् कम पूंजी की आवश्यकता होगी। अतः व्यवसाय की प्रकृति नियोजन को प्रभावित करने की क्षमता रखती है।

(2) **व्यवसाय की आय–** व्यवसाय की आय भी वित्तीय नियोजन को प्रभावित करती है। व्यवसाय की आय नियमित एवं निश्चित होने की दशा में कम वित्तीय संसाधनों से भी कुशलतापूर्वक कार्य सम्पादित किया जा सकता है। यदि व्यवसाय की आय अनियमित एवं अनिश्चित है, तो अधिक वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता परिलक्षित होती है।

(3) **जोखिम की मात्रा–** व्यवसाय में जोखिम की मात्रा की संस्था की पूंजी संरचना पर अपना प्रभाव डालती है। व्यवसाय में जोखिम तत्व अधिक होने पर ऋणदाता वर्ग उस संस्था विशेष में पूंजी विनियोग करने से डरते हैं, अतः इन व्यवसायों को समता अंशधारियों की पूंजी पर ही अधिक निर्भर रहता पड़ता है। जब ऋणदाता वर्ग निश्चित हो जाता है कि अमुक व्यवाय में विनियोजित पूंजी के डूबने का कोई भय नहीं है,वहां पर उस व्यवसाय की पूंजी संरचना में ऋण पत्रधारी वर्ग का भी सक्रिय योगदान रहता है।

(4) **विस्तार की योजनाएँ–** व्यवसाय के विस्तार एवं विकास हेतु नवीन वित्त पूर्ति की आवश्यकता परिलक्षित होती है। वित्तीय नियोजन में नवीन वित्त पूर्ति के

प्रभावों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने के उपरान्त ही वित्त पूर्ति के उपलब्ध साधनों में से किसी एक विकल्प का चुनाव किया जाता है।

(5) **व्यवसाय की स्थिति एवं आकार**– व्यवसाय के आकार एवं उसकी स्थिति (प्रतिष्ठा) पर पूंजी संरचना निर्भर करती है। सामान्यतः बड़े (वृहद्) आकार वाले व्यवसायों में अधिक पूंजी की आवश्यकता प्रतीत होती है तथा ऐसे व्यवसायों में 'दीर्घकालीन वित्त' की अधिक आवश्यकता होती है। व्यवसाय की अच्छी साख (स्थिति/प्रतिष्ठा) होने पर व्यवसाय के प्रबन्धकों को पूंजी एकत्र करने में कोई अधिक कठिनाई नहीं होती है। अतः व्यवसाय की स्थिति, उसकी प्रतिष्ठा एवं उसका आकार भी वित्तीय नियोजन को प्रभावित करता है।

(6) **सरकारी हस्तक्षेप**– वित्तीय नियोजन करते समय सरकारी हस्तक्षेप को भी ध्यान में रखना पड़ता है। पूंजी संरचना के स्वरूप का निर्धारण सरकार द्वारा निश्चित किये गये नियमों, उपनियमों, बनाये गये कानूनों एवं वैज्ञानिक औपचारिकाओं के अनुपालन के पश्चात् ही तय हो पाता है। उदाहरण के लिए, यदि संस्था का प्रबन्धक वर्ग अधिक ऋणपूंजी निर्गमित करना चाहता है, तो इस सम्बन्ध में स्वामित्व पूंजी एवं ऋणपूंजी के मध्य केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित अनुपात को अवश्य ही ध्यान में रखना होगा। किसी भी परिस्थिति में सरकार एवं कम्पनी अधिनियम, 2013 (अद्यतन) के अन्तर्गत निर्धारित मानकों का उल्लंघन नहीं किया जा सकता है।

(7) **प्रबन्धकों का दृष्टिकोण**– प्रबन्धकों का दृष्टिकोण/उनका मत भी पूंजी संरचना को प्रभावित करता है। प्रबन्धकों का दृष्टिकोण यदि व्यवसाय को अपने हाथों में केन्द्रित करके रखना है, तो समता पर व्यापार की नीति का अनुपालन किया जायेगा। इसमें ऋणपूंजी की तुलना में समता अंश पूंजी का निर्गमन कम किया जाता है। इसी प्रकार यदि प्रबन्धकों का मत आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण नहीं है, तो पूंजी संरचना में स्वामी पूंजी का अनुपात बढ़ जायेगा।

(8) **वैकल्पिक विकल्प**– वित्त पूर्ति हेतु प्रबन्धकों के समक्ष विभिन्न विकल्पों की एक श्रृंखला होती है। इन विकल्पों का लाभदायकता के आधार पर परीक्षण किया जायेगा तथा पूंजी के संग्रह हेतु केवल उन विकल्पों को प्राथमिकता प्रदान की जायेगी, जो संस्था की लाभदायकता में निरन्तर वृद्धि करेंगे।

(9) **करारोपण की नीति**– वित्तीय नियोजन को सरकार की करारोपण नीति भी प्रभावित करती है। करारोपण नीति के अन्तर्गत व्यक्तिगत कर एवं निगम कर दोनों को ही सम्मिलित किया जाता है। करारोपण नीति के कठोर होने की स्थिति में पूंजी विनियोग हतोत्साहित होती है। उदाहरण के लिए, यदि लाभांश आय पर अधिक करारोपण का प्रावधान कर दिया जाता है, तो समता अंश पूंजी में विनियोग के स्थान पर विनियोक्तागण ऋणपूंजी में अधिक विनियोग करना श्रेष्ठ समझेंगे, क्योंकि ऋणपूंजी पर विनियोग के फलस्वरूप उन्हें अधिक कर मुक्त आय प्राप्त होगी।

(10) **ब्याज दर**– वित्तीय नियोजन में पूंजी संरचना को ब्याज की दरें भी प्रभावित करने की क्षमता रखती है। जब ब्याज की दर सामान्यतः ऊंची होती है, तो प्रबन्धक ऋणपूंजी को अधिक वरीयता प्रदान नहीं करते हैं। ब्याज दर अधिक होने पर प्रबन्धक वर्ग का झुकाव समता पूंजी एवं पूर्वाधिकार पूंजी की ओर अधिक होता है जबकि विनियोक्ता वर्ग का झुकाव ऋण पूंजी की ओर होता है।

(11) **विनियोक्ताओं का दृष्टिकोण**– विनियोक्ताओं के दृष्टिकोण को दृष्टिगत रखकर ही प्रबन्धक पूंजी संरचना का कलेवर तैयार करते हैं, विनियोक्ताओं का दृष्टिकोण यदि ऋणपूंजी की ओर अधिक है, तो पूंजी संरचना में ऋणपूंजी का अनुपात अधिक कर दिया जायेगा। इसी प्रकार यदि इनका मत स्वामिगत पूंजी की ओर है, तो स्वामित्व पूंजी की मात्रा में वृद्धि कर दी जायेगी।

(12) **मुद्रा बाजार की दशाएं**– मुद्रा बाजार किसी भी देश की आर्थिक स्थिति का बैरोमीटर माना जाता है। मुद्रा बाजार की स्थिति का अवलोकन करने के पश्चात् ही विनियोक्तागण विनियोग सम्बन्धी निर्णय लेते हैं। मुद्रा बाजार की स्थिति अच्छी होने पर पूंजी विनियोग को बढ़ावा मिलता है। अतः मुद्रा बाजार की स्थिति भी वित्तीय नियोजन को प्रभावित करने की क्षमता रखती है।

(13) **बाजार की स्थिति**– व्यापार चक्रों के कारण बाजार में कभी मन्दी का तो कभी तेजी का दौर चलता रहता है। बाजार में तेजीकाल में पूंजी विनियोग करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है। इसके विपरीत मन्दीकाल में पूंजी विनियोग हतोत्साहित होता है एवं ऋणपूंजी अथवा निश्चित आय वाले पूंजी साधनों में उस समय अधिक पूंजी विनियोग किया जाता है।

1.3.5 वित्तीय नियोजन का महत्व

'वित्त' किसी भी व्यवसाय का जीवन रक्त है। पर्याप्त वित्त के अभाव में अच्छी–से–अच्छी योजनाएं भी मूर्तरूप धारण नहीं कर सकती है। पर्याप्त वित्त का होना ही काफी नहीं है, बल्कि उसका अनुकूलतम उपयोग होना ही व्यवसाय विशेष की सफलता अथवा असफलता का मार्ग प्रशस्त करता है। अतः वित्तीय नियोजन किसी भी व्यवसाय की सफलता का मूल बिन्दु होता है। संक्षेप में, इसका महत्व निम्न प्रकार वर्णित किया जा सकता है–

(1) **व्यवसाय की सफलता**– व्यवसाय की सफलता उचित वित्तीय नियोजन पर निर्भर करती है। सुदृढ़ वित्तीय नियोजन में व्यवसाय की वर्तमान एवं भविष्य में विस्तार की सम्भावनाओं को दृष्टिगत रखकर ही वित्तीय नियोजन किया जाता है। इस प्रकार व्यवसाय के सफल होने का प्रतिशत बढ़ जाता है।

(2) **व्यवसाय की सफलता**– व्यवसाय की सफलता उचित वित्तीय नियोजन पर निर्भर करती है। सुदृढ़ वित्तीय नियोजन में व्यवसाय की वर्तमान एवं भविष्य में विस्तार की सम्भावनाओं को दृष्टिगत रखकर ही वित्तीय नियोजन किया जाता है। इस प्रकार व्यवसाय के सफल होने का प्रतिशत बढ़ जाता है।

(3) **पूंजी के साधनों में पर्याप्त समन्वय**– वित्तीय नियोजन में पूंजी की आवश्यकता का पूर्वानुमान लगाने के पश्चात् पूंजी ढांचा निश्चित किया जाता है। पूंजी ढांचे के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के पूंजी साधनों का समावेश किया जाता है। इन पूंजी साधनों की लागत भी भिन्न–भिन्न होती है। इन साधनों के मध्य सामंजस्य स्थापित करके व्यवसाय को अनावश्यक जोखिम से सुरक्षित करके लाभ की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है।

(4) **पर्याप्त तरलता**– वित्तीय नियोजन वित्त की आपूर्ति निश्चित करता है। एक श्रेष्ठ वित्तीय नियोजक के द्वारा व्यवसाय में तरलता रखी जाती है, जिससे कि व्यवसाय अपनी देनदारियों अथवा आकस्मिक भुगतानों को यथा समय भुगतान करने में सफल होता है। इससे व्यवसाय की साख एवं शोधन क्षमता पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

(5) **भावी विकास**– व्यवसाय के भावी विकास हेतु वित्तीय नियोजन की आवश्यकता होती है। वित्तीय नियोजन करते समय केवल वर्तमान आवश्यकताओं को ही ध्यान में नहीं रखा जाता है, बल्कि इसमें भविष्य हेतु भी पर्याप्त गुंजाइश रखी जाती है, जिसके फलस्वरूप संस्था के भावी विस्तार एवं विकास योजनाओं को मूर्त रूप देने में आसानी रहती है।

(6) **विनियोजित पूंजी पर उचित प्रत्याय प्राप्ति हेतु**– वित्तीयनियोजन पूंजी के प्रशासन एवं पूंजी के प्रबन्ध के सम्बन्ध में समन्वय एवं अनुकूलतम उपयोग के द्वारा विनियोजित पूंजी पर उचित प्रत्याय दर प्राप्त की जा सकती है। सम्पतियों के विनियोजन हेतु पूंजी की मात्रा का निर्धारण भी विनियोजित पूंजी पर उचित प्रत्याय दर प्राप्त करने में सहायक होता है।

1.3.6 वित्तीय नियोजन की सीमाएं

वित्तीय नियोजन के महत्व को नज़र अंदाज नहीं किया जा सकता है, लेकिन वित्तीय नियोजन की भी अपनी कुछ सीमाएं हैं, जिनका वर्णन निम्नानुसार है–

(1) **भविष्य पर निर्भर**– वित्तीय नियोजन में संस्था हेतु पूंजी की आवश्यकताओं का अनुमान, पूंजी संरचना का निर्धारण एवं पूंजी के प्रबन्ध के सम्बन्ध में नीतियों का निर्धारण किया जाता है। यह पूर्वानुमान भविष्य के लिए लगाया जाता है। पूर्वानुमानों के गलत निर्धारण से अच्छी–से–अच्छी वित्तीय योजना को भी असफलता का सामना करना पड़ता है।

(2) **लोच का अभाव**– वित्तीय नियोजन के अन्तर्गत वित्तीय योजना का स्वरूप निश्चित करने के पश्चात् उसमें परिवर्तन की सम्भावना नाममात्र को ही रहती है। आकस्मिक एवं सामयिक परिवर्तनों के कारण भी वित्तीय योजना में परिवर्तन सम्भव नहीं होता है। अतः इसमें लोच का अभाव पाया जाता है।

(3) **समन्वय का अभाव**– वित्तीय नियोजन का कार्य वित्तीय प्रबन्ध के द्वारा किया जाता है। वित्तीय नियोजन करते समय संस्था के समस्त वित्तीय प्रबन्धकों के साथ–साथ गैर–वित्तीय अधिकारियों में परस्पर सहयोग, परामर्श एवं समन्वय होना चाहिए, लेकिन वित्तीय एवं गैर–वित्तीय अधिकारियों में समन्वय स्थापित नहीं हो पाता है। जिसके फलस्वरूप अच्छी–से–अच्छी योजना भी समन्वय नहीं होने के कारण अपने उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर पाती है।

1.4 सारांश

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि व्यवसायिक वित्त ही समस्त व्यवसायिक गतिविधियों के केन्द्र में स्थित होता है। व्यवसायिक वित्त विज्ञान तथा कला दोनों हैं व इसके अन्तर्गत सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ–साथ व्यावहारिक ज्ञान का मिश्रण है। व्यावसायिक वित्त का मुख्य उद्देश्य धन का अधिकतमीकरण है तथा नियोजन वित्तीय प्रबन्ध की सफलता की कुंजी है व वित्तीय प्रबन्ध के कार्य का अभिन्न अंग है।

1.5 शब्दावली

व्यावसायिक वित्त – व्यवसाय को सुचारू रूप से चलाने हेतु आवश्यक कोष।

अल्पकालीन – दिन प्रतिदिन के कार्यों को चलाने हेतु कोष।

वित्त

मध्यकालीन वित्त –	जिन कोषों की समय अवधि एक वर्ष से अधिक तथा पाँच वर्ष से कम हो।
दीर्घकालीन वित्त –	जिन कोषों की समय अवधि पांच वर्ष से अधिक हो।
ऋण पूंजी –	व्यक्तियों तथा वित्तीय संस्थाओं से उधार ली गई धनराशि का पूंजी के रूप में प्रयोग करना।
पूंजी ढांचा –	अल्पकालीन वित्त तथा दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता हेतु विभिन्न साधनों का चयन करना मुख्यतः ऋण पूंजी तथा स्वामित्व पूंजी।

1.6 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

(1) वित्तीय प्रबन्ध क्या है?
(अ) विज्ञान (ब) कला (स) कला व विज्ञान (द) कोई नहीं

(2) वित्त कार्य व्यवसाय द्वारा कोषो की प्राप्ति एवं उसके उपयोग से सम्बन्धित प्रक्रिया है। यह कथन किसका है–
(अ) पी जी हेस्टिंग (ब) हावर्ड एवं ऑप्टन (स) आर सी ओसबोर्न (द) सी पी श्रीवास्तव

(3) इनमें से व्यवसायिक वित्त का महत्वपूर्ण उद्देश्य कौन सा है–
(अ) अधिकतम लाभोपार्जन (ब) अधिकतम प्रतिफल
(स) मूल्य अधिकतमीकरण (द) उपरोक्त सभी

(4) वित्तीय नियोजन को प्रभावित करने वाले तत्व हैं–
(अ) व्यवसाय की प्रकृति (ब) जोखिम की मात्रा
(स) सरकारी नियन्त्रण (द) उपरोक्त सभी

(5) निम्नलिखित विचारकों में से कौन परम्परागत विचारधारा से सम्बन्धित नहीं है–
(अ) प्रो० सोलोमन इजरा (ब) गेस्टनवर्ग
(स) ए०एस० डेविंग (द) ई०एस० मीड

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1) ब	**(2) स**	**(3) द**	**(4) द**	**(5) अ**

1.8 स्वपरख प्रश्न

(1) वित्तीय नियोजन क्या है? एक श्रेष्ठ वित्तीय नियोजन की विशेषताएँ बताइए?

(2) एक व्यवसायिक संस्था के वित्तीय निर्णयों को प्रभावित करने वाले घटकों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

(3) व्यवसायिक वित्त की प्रकृति क्षेत्रा व महत्व को स्पष्ट कीजिए।

(4) व्यवसायिक वित्त के प्रकार की विवेचना कीजिए।

(5) वित्तीय नियोजन के अर्थ, परिभाषा व प्रकार को समझाइए।

1.9 सन्दर्भ पुस्तकें

"Financial Management"- M.Y. Khan & P.K. Jain, Tata Mc Graw Hill.

"वित्तीय बाजारों की कार्यप्रणाली"– प्रो0 वी0 पी0 अग्रवाल– साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

"निगमीय लेखांकन"– सी0 एम0 जैन एवं ए0 के0 अग्रवाल– g Master g Educorp, मेरठ।

"प्रबन्ध हेतु वित्तीय विश्लेषण"– डॉ0 ए0 के गर्ग– स्वाती प्रकाशन, बुलन्दशहर।

"निगमीय लेखाविधि"– डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 राजकुमार– नवनीत प्रकाशन, नजीबाबाद।

व्यावसायिक वित्त	:	डा0 आर0एस0 कुलश्रेष्ठ व डा0 विनय शंकर सिंह
उच्च वित्तीय प्रबन्ध	:	डा0 एस0पी0 गुप्ता व डा0 बी0 कुमार मित्तल
व्यावसायिक वित्त	:	डा0 एफ0सी0 शर्मा
वित्तीय प्रबन्ध	:	डा0 एम0डी0 अग्रवाल व डा0 एन0पी0 अग्रवाल
Financial Management	:	Dr. I.M. Pandey
वित्तीय प्रबन्ध	:	डा0 ओसवाल

इकाई 2 मुद्रा का समय मूल्य (TimeValue of Money)

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 मुद्रा के समय मूल्य की अवधारणा
    2.2.1 मुद्रा का वर्तमान प्राप्य मूल्य
    2.2.2 वर्तमान में मुद्रा की क्रय शक्ति की तुलना में भविष्य में मुद्रा की क्रय शक्ति कम होने के कारक
2.3 ब्याज
    2.3.1 ब्याज के प्रकार
    2.3.2 ब्याज की गणना
2.4 चक्रवृद्धि ब्याज का जादू–नियम 72
    2.4.1 साधारण ब्याज बनाम चक्रवृद्धि ब्याज
    2.4.2 ब्याज की नाममात्र एवं प्रभावी दर
2.5 वार्षिकी
    2.5.1 वार्षिकी के प्रकार
    2.5.2 वार्षिकी का मिश्रधन
    2.5.3 वार्षिकी का वर्तमान मूल्य
    2.5.4 अनन्त वार्षिकी का वर्तमान मूल्य ज्ञात करना
2.6 सिंकिंग फण्ड
    2.6.1 सिंकिंग फण्ड की गणना
2.7 सारांश
2.8 शब्दावली
2.9 बोध प्रश्न
2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.11 स्वपरख प्रश्न
2.12 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- मुद्रा के समय मूल्य की अवधारणा व मुद्रा के वर्तमान प्राप्य मूल्य की व्याख्या कर सकें।
- ब्याज के प्रकार व ब्याज की गणना से अवगत हो सकें।
- वार्षिकी के प्रकार व वार्षिकी के वर्तमान मूल्य का वर्णन कर सकें।
- सिंकिंग फण्ड की गणना कर सकें।

2.1 प्रस्तावना

मुद्रा के समय मूल्य की अवधारणा का प्रत्यक्ष सम्बन्ध ब्याज, समय, मुद्रा प्रसार, जोखिम एवं वर्तमान समय में उपभोग की प्रवृत्ति से है। मुद्रा के समय मूल्य की अवधारणा के मूल में ब्याज कारक की उपस्थिति प्रमुख है। वर्तमान समय में प्राप्त होने वाली मुद्रा का मूल्य भविष्य में प्राप्त होने वाली उतनी ही मुद्रा के मूल्य से अधिक होता है।

इस इकाई के अध्ययन से हमें मुद्रा के वर्तमान मूल्य (वर्तमान क्रयशक्ति) एवं मुद्रा के भविष्य में होने वाले भावी मूल्यों (भावी क्रयशक्ति) को समझ सकते हैं। इसके अध्ययन के द्वारा अवसर लागत उपयोगिता को समझा जा सकता है। विनियोगों का मूल्यांकन एवं भविष्य में प्राप्त होने वाली मूल्यों का पारस्परिक मिलान के द्वारा पूँजीगत निर्णयों को लिये जाने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पूँजी बजटन में शुद्ध वर्तमान मूल्य रीति एवं आन्तरिक पूँजी की प्रत्याय दर का निर्धारण भी मुद्रा के वर्तमान मूल्य की अवधारणा पर आधारित है।

2.2 मुद्रा के समय मूल्य की अवधारणा (Concept of Time-Value of Money)

मुद्रा के समय मूल्य की अवधारणा से आशय, यदि किसी व्यक्ति को वर्तमान में 50,000 रूपये लेने अथवा भविष्य में दो वर्ष पश्चात 50,000 रूपये स्वीकार करने का विकल्प प्रस्तुत किया जाता है, तो वह भविष्य की तुलना में वर्तमान में 50,000 रूपये स्वीकार करने को वरियता प्रदान करेगा। उसके इस निर्णय के परिपेक्ष्य में विभिन्न कारक यथा समय कारक, जोखिम तत्व, ब्याज की संकल्पना, उपभोग प्रवृत्ति एवं अवसर लागत आदि अहम् भूमिका निर्वाह करते हैं। व्यावसायिक चक्र मुद्रा प्रसार एवं मुद्रा संकुचन की भी इसमें सहभागिता रहती हैं। ब्याज की अवधारणा जोखिम एवं समय तत्व पर निर्भर करती हैं यदि ब्याज दर शून्य हो जाती हैं, तो मुद्रा का वर्तमान मूल्य, भविष्य में मुद्रा के वर्तमान मूल्य के बराबर ही होगा।

इस सम्बन्ध को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है–

2.2.1 मुद्रा का वर्तमान प्राप्य मूल्य

मुद्रा का वर्तमान प्राप्य मूल्य = [मुद्रा का भविष्य में प्राप्त मूल्य + मुद्रा का समय मूल्य]

इसको एक उदाहरण के द्वारा निम्नानुसार समझा जा सकता है। यदि किसी व्यक्ति के पास यह विकल्प हैं कि वह रूपये 25000 वर्तमान समय में प्राप्त कर सकता है अथवा यहीं धनराशि रूपये 25000 तीन वर्ष पश्चात प्राप्त करने का विकल्प उसे उपलब्ध है, तो वह वर्तमान समय वाले विकल्प को प्राथमिकता प्रदान करेगा। इसी प्रकार यदि उस व्यक्ति को भुगतान करने का विकल्प वर्तमान समय में रूपये 25000 का भुगतान अथवा आज से तीन वर्ष के पश्चात् रूपये 25000 के भुगतान का विकल्प उपलब्ध है तो वह व्यक्ति भुगतान के सन्दर्भ में भविष्य के भुगतान वाले विकल्प को वरीयता प्रदान करेगा।

इस उदाहरण के विश्लेषण से मुद्रा के समय मूल्य के महत्व को समझा जा सकता है। इसमें समय तत्व की उपस्थिति के साथ–साथ जोखिम तत्व एवं मुद्रा पर मिलने वाले ब्याज की उपस्थिति भी महत्वपूर्ण कारक है।

2.2.2 वर्तमान में मुद्रा की क्रय शक्ति की तुलना में भविष्य में मुद्रा की क्रय शक्ति कम होने के कारक

वर्तमान में मुद्रा की क्रयशक्ति की तुलना में भविष्य में मुद्रा की क्रय शक्ति कम होने के निम्नलिखित कारक हैं–

(क) **जोखिम तत्व**– भविष्य के प्रति अनिश्चितता एवं जोखिम मुद्रा के मूल्य में भविष्य में उसकी क्रय क्षमता को कम कर देता है। कोई भी व्यक्ति भविष्य के प्रति मिलने वाले भुगतान को प्राप्त करने के लिये वर्तमान को ही प्राथमिकता प्रदान करता है तथा वर्तमान में भुगतान प्राप्त करने के लिये दूसरे पक्ष को कुछ नकद

छूट देने के लिये भी तत्पर हो जाता है। इसके मूल में स्थित है भविष्य में राशि के डूब जाना का जोखिम तत्व अथवा भुगतानकर्ता व्यक्ति के जीवन की अनिश्चितता आदि का जोखिम तत्व का समावेश होना है। इन जोखिम कारकों के कारण भविष्य में भुगतान मिलने अथवा राशि के डूबने का खतरा बना रहता है, अतः व्यक्ति विशेष अपनी राशि को वर्तमान में अपने पास ही रखना सुरक्षित समझता है।

(ख) **मुद्रा प्रसार**– मुद्रा प्रसार वह स्थिति है जब वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि होती है तथा मुद्रा के मूल्य (क्रय शक्ति) में कमी होने लगती है। यह चलन में मुद्रा की मात्रा चलन वेग एवं समय अन्तराल के कारण घटित होता हैं। मुद्रा प्रसार के कारण भी वर्तमान मुद्रा का मूल्य भविष्य की मुद्रा के तुलना में अधिक होता है। मुद्रा प्रसार एक गतिशील प्रक्रिया है, जिसे भविष्य में दीर्घकाल में ही अनुभव किया जा सकता है।

(ग) **वर्तमान में उपभोग को प्राथमिकता**– प्रत्येक व्यक्ति वर्तमान उपभोग को प्राथमिकता प्रदान कर उपभोग्य वस्तुओं को क्रय करना चाहता है। इस हेतु उसे वर्तमान में मुद्रा की आवश्यकता होती है, तथा इसलिये उसे मुद्रा को संग्रह करना पड़ता है। यदि कोई व्यक्ति अपनी वर्तमान इच्छा को भविष्य के लिये त्याग करता है तथा अपनी मुद्रा को किसी अन्य व्यक्ति को उपभोग के लिए देता हैं, तो वह उससे क्षतिपूर्ति के रूप में मूलधन के साथ–साथ ब्याज की राशि भी भविष्य में प्राप्त करना चाहेगा।

उपरोक्त कारकों से मुद्रा की क्रयशक्ति भविष्य में कम हो जाती है।

अतः स्पष्ट है कि मुद्रा का समय मूल्य की अवधारणा मुख्य रूप से ब्याज की सम्भावना पर स्थित है। बैंक ब्याज की दर शून्य होने की स्थिति में मुद्रा के समय मूल्य भी शून्य होगा। लेकिन बैंक दर, किसी भी परिस्थिति में शून्य नहीं हो सकती हैं क्योंकि ब्याज दर का निर्धारक करने वाले तत्वों में जोखिम तत्व, वर्तमान समय में उपभोग की प्रवृत्ति एवं मुद्रा स्फीति की भी इसमें मुख्य भूमिका होती है।

2.3 ब्याज

ब्याज उस राशि को कहा जाता है, जो किसी व्यक्ति द्वारा लिये गये ऋण उपयोग के बदले में ऋणदाता को मूलधन के अतिरिक्त चुकाया जाता है। व्यक्ति अथवा संस्था को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये यदि किसी ऋणदाता, महाजन, बैंक आदि से उधार लेता है, तथा निर्धारित अवधि के समाप्त होने पर वह उस व्यक्ति को उधार ली गई धनराशि से अधिक का भुगतान करता हैं। यह अधिक भुगतान की गई राशि को ही ब्याज कहा जाता है। ब्याज की राशि की गणना हेतु निश्चित दर एवं समय अवधि को भी ध्यान में रखा जाता है। वह राशि जिस पर ब्याज की गणना की जाती है उसे मूलधन कहा जाता है।

2.3.1 ब्याज के प्रकार

ब्याज दो प्रकार का होता है–

(अ) **साधारण ब्याज (Simple Interest)**– इसके अन्तर्गत ब्याज की गणना सदैव मूलधन पर एक निश्चित दर के आधर पर आगणित की जाती है।

(ब) **चक्रवृद्धि ब्याज (Compound Interest)**– इसके अन्तर्गत ब्याज की गणना मूलधन में पूर्व में अर्जित आगणित ब्याज की राशि जोड़कर अर्थात् मिश्रधन पर ज्ञात की जाती हैं। इस विधि के अन्तर्गत मूलधन के साथ–साथ अदत ब्याज की

राशि को जोड़कर ब्याज की गणना की जाती है, इस प्रकार इस विधि के अन्तर्गत ब्याज पर भी ब्याज देय हो जाता है।

2.3.2 **ब्याज की गणना (Calculation of Interest)-**

साधारण ब्याज की गणना करने से पूर्व निम्न शब्दावली/संकेत/प्रतीक चिन्हों को समझना आवश्यक है–

	संकेत चिन्ह
साधारण ब्याज (Simple Interest)	S.I.
मूलधन (Principal or Capital)	P
समय (Time)	T
ब्याज की दर (Rate of Interest)	R
मिश्रधन (Amount)	A

साधारण ब्याज की गणना का सूत्र–

$$S.I. = \frac{P \times R \times T}{100}$$

$$\text{साधारण ब्याज} = \frac{\text{मूलधन} \times \text{समय} \times \text{दर}}{100}$$

इस सूत्र के माध्यम से हम मूलधन, मिश्रधन, समय अथवा ब्याज दर की गणना का सूत्र भी निम्न प्रकार प्रयोग कर सकते हैं–

$$\text{मूलधन (P)} = \frac{\text{ब्याज की राशि} \times 100}{\text{ब्याज की दर} \times \text{समय}}$$

$$P = \frac{S.I. \times 100}{R \times T}$$

मिश्रधन (A) = (मूलधन + अर्जित ब्याज की राशि), $A = P + S.I.$

अथवा

$$\text{मिश्रधन} = \text{मूल धन} + \frac{\text{मूलधन} \times \text{समय} \times \text{दर}}{100}$$

$$A = \left[P + \frac{PxTxR}{100} \right]$$

$$\text{समय (T)} = \frac{\text{ब्याज की राशि} \times 100}{\text{मूलधन} \times \text{दर}}$$

$$T = \frac{S.I. \times 100}{P \times R}$$

$$\text{ब्याज की दर (R)} = \frac{\text{ब्याज की राशि} \times 100}{\text{मूलधन} \times \text{समय}}$$

$$R = \frac{S.I. \times 100}{P \times T}$$

उदाहरण (Illustration) 1

यदि कोई व्यक्ति किसी बैंक से रूपये 25,000 की राशि 5 वर्षों हेतु 6 प्रतिशत वार्षिक दर से उधार लेता है तो साधारण ब्याज की राशि एवं मिश्रधन की गणना कीजिए।

$$\text{साधारण ब्याज (S.I.)} = \frac{PxTxR}{100}$$

$$= \frac{25000 \times 5 \times 6}{100}$$

= रूपये 7,500

$$\text{मिश्रधन (A)} = P + \frac{PxTxR}{100}$$

$$= 25{,}000 + \frac{25{,}000 \times 5 \times 6}{100}$$

= रूपये 32,500

चक्रवृद्धि ब्याज (Compound Interest)

इसकी गणना हेतु निम्न शब्दावली को समझना आवश्यक है–

चक्रवृद्धि ब्याज (C.I.) = अन्तिम मिश्रधन – मूलधन

= ;Last Amount - Principal Amount)

$$\text{अन्तिम मिश्रधन (A)} = \text{मूलधन } (1 + \frac{r}{100})^n, \quad A = \left[P(1 + \frac{r}{100})^n\right]$$

यहाँ पर r (Rate of Interest) एवं n (Time) को व्यक्त कर रहा है।

इसको एक उदाहरण द्वारा निम्नानुसार समझा जा सकता है– यदि रूपये 10,000 यूको बैंक से 10 प्रतिशत वार्षिक चक्रवृद्धि दर पर ऋण के रूप में लिये गये हैं, तो तीन वर्ष पश्चात देय चक्रवृद्धि ब्याज की राशि होगी–

$$\text{मिश्रधन (A)} = \text{मूलधन } (1 + \frac{r}{100})^n, \quad A = P(1 + \frac{r}{100})^n$$

$$\text{मिश्रधन (A)} = 10{,}000(1 + \frac{10}{100})^3$$

= 10,000 (1.331)

= रूपये 13,310

चक्रवृद्धि ब्याज (C.I.) = [अन्तिम मिश्रधन – मूल मूलधन]

Compound Interest = (Last Amount - Principal Amount)

= 13,310 – 10,000

= Rs. 3,310

इसको निम्न तालिका द्वारा भी समझा जा सकता है–

वर्ष	मूलधन (P)	ब्याज की गणना (Calculation of Interest)	मिश्रधन (P+Interest)
प्रथम	10,000	$\frac{10,000 \times 10 \times 1}{100} = 1000$	(10,000+1,000) = 11,000
द्वितीय	11,000	$\frac{11,000 \times 10 \times 1}{100} = 1100$	(11,000+1,100) = 12,100
तृतीय	12,100	$\frac{12,100 \times 10 \times 1}{100} = 1210$	(12,100+1,210) = 13,310
		Compound Interest = 3,310	

नोट– इस उपरोक्त उदाहरण में ब्याज की दर की गणना वार्षिक समयावधि को आधार मान कर की गई है।

चक्रवृद्धि ब्याज की गणना हेतु समयावधि दैनिक, मासिक, द्विमासिक, त्रैमासिक, छःमाही अथवा वार्षिक आधार पर नियत की जा सकती है।

उदाहरण (Illustration) **2**

रूपये 1,200 का 8 प्रतिशत वार्षिक चक्रवृद्धि ब्याज की दर से 2 वर्ष हेतु बयाज की गणना कीजिए–

(i) यदि ब्याज का आगणन अर्द्धवार्षिक आधार पर किया जाता है।

(ii) यदि ब्याज का आगणन मासिक आधार पर किया जाता है, एवं

(iii) यदि ब्याज का आगणन त्रैमासिक आधार पर किया जाता हो।

(i) **ब्याज की गणना अर्द्ध–वार्षिक आधार पर की जाती हैं–**

$$A = P(1 + \frac{R/2}{100})^{2n}$$

$$A = 1,200(1 + \frac{8/2}{100})^{2x2}$$

$$A = 1,200(1 + \frac{4}{100})^{4}$$

$$A = 1,200(1 + 0.04)^{4}$$

A= Rs.1,404

चक्रवृद्धि ब्याज (C.I.) = [A-P] = रू० [1,404 – 1,200] = रू० 204

नोट– यदि ब्याज का आगणन अर्द्धवार्षिक आधार पर किया जाता है तो वार्षिक ब्याज दर को आधा तथा समय अवधि को दूना कर दिया जाता है।

(ii) **यदि ब्याज का आगणन मासिक आधार पर किया जाता है–**

$$A= P(1 + \frac{R/12}{100})^{12n}$$

$$A= 1,200(1 + \frac{8/12}{100})^{12x2}$$

$$A= 1,200(1 + \frac{8}{12x100})^{24}$$

$$A= 1,200(\frac{302}{300})^{24}$$

A= Rs.1,409

चक्रवृद्धि ब्याज (C.I.) = [A - P]

= [1,409–1,200] = रू०209

नोट– ब्याज का आगणन यदि मासिक को आधार मान कर किया जाता है तो वार्षिक ब्याज की दर को 12 से विभाज्य तथा समय अवधि को 12 से गुणा किया जाता है।

(iii) **यदि ब्याज का आगणन का आधार त्रैमासिक होता है–**

$$A= P(1 + \frac{R/4}{100})^{4n}$$

$$A= 1,200(1 + \frac{8/4}{100})^{4x2}$$

$$A= 1,200(1 + \frac{2}{100})^{8}$$

$$A= 1,200(1.02)^{8}$$

A= Rs.1,406

चक्रवृद्धि ब्याज (C.I.) = [A - P]

= 1,406–1,200

= रू०206

नोट– ब्याज का आगणन यदि त्रैमासिक को आधार मान कर किया जाता है तो वार्षिक ब्याज की दर को 4 से विभाज्य तथा समय अवधि को 4 से गुणा किया जायेगा।

2.4 चक्रवृद्धि ब्याज का जादू – नियम 72 (The Magic of Compound Interest - Rule of 72)

चक्रवृद्धि ब्याज को विश्व के आठवें अजूबे के रूप में जाना जाता हैं, इसकी चमत्कारी शक्ति को चक्रवृद्धि ब्याज के नियम 72 से अग्र प्रकार समझा जा सकता है–

यहाँ एक मुश्त रूपये 10,000 को कोई व्यक्ति 20 वर्ष की आयु में जमा करता है, तो विभिन्न ब्याज दरों पर चक्रवृद्धि का प्रभाव निम्नवत परीलक्षित होगा–

सर्वप्रथम ब्याज दर से 72 को भाग देने पर जो संख्या प्राप्त होगी, उतनी वर्षों (समय अन्तराल) में उस व्यक्ति की धनराशि दो गुनी हो जायेगी, तथा यह क्रम इसी प्रकार चलता रहेगा।

व्यक्ति की आयु	ब्याज की दर 6%	व्यक्ति की आयु	ब्याज की दर 8%	व्यक्ति की आयु	ब्याज की दर 9%	व्यक्ति की आयु	ब्याज की दर 12%
20	10,000	20	10,000	20	10,000	20	10,000
32	20,000	29	20,000	28	20,000	26	20,000
44	40,000	38	40,000	36	40,000	32	40,000
56	80,000	47	80,000	44	80,000	38	80,000
68	1,60,000	56	1,60,000	52	1,60,000	44	1,60,000
		65	3,20,000	60	3,20,000	50	3,20,000
				68	6,40,000	56	6,40,000
						62	12,80,000
						68	25,60,000

नोट– 6 प्रतिशत ब्याज में व्यक्ति का विनियोग 72/6 = प्रत्येक 12 वर्ष, 8 प्रतिशत ब्याज में व्यक्ति का विनियोग 72/8 = प्रत्येक 9 वर्ष, 9 प्रतिशत ब्याज में व्यक्ति का विनियोग 72/9 = प्रत्येक 8 वर्ष तथा 12 प्रतिशत ब्याज की दर से व्यक्ति का विनियोग 72/12 = प्रत्येक 6 वर्ष में दुगना हो जायेगा।

2.4.1 साधारण ब्याज बनाम चक्रवृद्धि ब्याज (Simple Interest v/s Compound Interest)

क्रम संख्या	अन्तर का आधार	साधारण ब्याज	चक्रवृद्धि ब्याज
1	मूलधन (P)	साधारण ब्याज के अन्तर्गत मूलधन (P) अपरिवर्तित रहता है।	मूलधन (P) परिवर्तित होता रहता है। अवधि के आधार पर मूलधन (P) में ब्याज जोड़कर अगली गणना के लिए वह मूलधन बन जाता है।
2	ब्याज की गणना	इसके अन्तर्गत ब्याज की गणना हमेशा ही मूलधन पर की जाती है।	इसके अन्तर्गत ब्याज की गणना प्रत्येक अवधि के आधार पर बयाज को जोड़ने के बाद आये मूलधन पर की जाती है।
3	ब्याज की राशि	प्रत्येक समय अवधि में ब्याज की राशि समान रहती है।	प्रत्येक समय अवधि में ब्याज की राशि लगातार बढ़ती रहती है एवं अलग–अलग आती है।
4	ब्याज की अवधि	सम्पूर्ण अवधि का ब्याज सूत्र द्वारा एक बार में ज्ञात किया जाता है।	इसके अन्तर्गत बयाज की दर एवं अवधि का आधार (दैनिक, मासिक, छःमाही, वार्षिक) के आधार सूत्र की सहायता से ज्ञात किया जाता है।
5	मिश्रधन की गणना (A)	मूलधन (P) + ब्याज की राशि (S.I.)	मूलधन (1 + दर/100) समय

		A = P+S.I.	$A= P(1 + \frac{R}{100})^T$

नोट–

- **प्रथम अवधि का साधारण ब्याज एवं उसी अवधि का चक्रवृद्धि बयाज दोनों एक समान होते हैं, उनमें कोई अन्तर नहीं होता है।**
- **गणना की सुविधा हेतु चक्रवृद्धि ब्याज की गणना हेतु लघुगणक सारिणयों की सहायता भी ली जा सकती है।**

2.4.2 **ब्याज की नाममात्र एवं प्रभावी दर (Nominal Rate and Effective Rate of Interest)**

ब्याज की नाममात्र की दर (Nominal Rate)– चक्रवृद्धि ब्याज की गणना हेतु जब एक निश्चित अवधि के आधार के तहत ब्याज की जो दर निश्चित होती है, उसे नाममात्र की ब्याज दर कहा जाता है।

ब्याज की प्रभावी दर (Effective Rate of Interest)– जब किसी मूलधन पर चक्रवृद्धि बयाज एक अवधि में कई बार ज्ञात किया जाता है, जिसके फलस्वरूप ब्याज की राशि मूलधन में जुड़कर वह अगली अवधि के लिए मूलधन बन जाती हैं जिससे अगली ब्याज की राशि अधिक आयेगी। इस प्रकार सम्पूर्ण अवधि के ब्याज की राशि मूलधन में जुड़ कर वह अगली अवधि के लिए मूलधन बन जाती हैं जिससे अगली ब्याज की राशि अधिक आयेगी। इस प्रकार सम्पूर्ण अवधि के ब्याज की राशि का आकलन करके उसके आधार पर ब्याज की प्रतिशत ज्ञात करेंगे, तो वह ब्याज की दर पूर्व में निर्धारित ब्याज की नाममात्र की दर से अधिक होगी इसी दर को प्रभावी ब्याज की दर से जाना जाता है।

उदाहरण के लिये, जब चक्रवृद्धि बयाज की गणना त्रैमासिक आधार पर 10 प्रतिशत वार्षिक दर पर ज्ञात की जानी हो तो उसकी प्रभावी दर होगी –

मूलधन = रूपये 100

$$A= P(1 + \frac{R}{100})^T$$

$$A= 100(1 + \frac{10/4}{100})^4$$

$$A= 100(\frac{41}{40})^4$$

A= Rs.110.40

Interest = 110.40 - 100
= 10.40
% rate = 10.40%

चूँकि त्रैमासिक = वार्षिक / 3 माह
= 12 / 3

= 4 त्रैमासिक

यहाँ प्रभावी ब्याज की दर 10.40 प्रतिशत आयी है, जबकि नाममात्र के ब्याज की दर 10 प्रतिशत है।

2.5 वार्षिकी (Annuity)

सामान्यतः "वार्षिकी" शब्द का अभिप्राय वार्षिक आधार पर किये जाने वाले भुगतानों/प्राप्तियों से माना जाता हैं, लेकिन व्यावहारिक तौर पर इसके अन्तर्गत किसी भी समयावधि यथा मासिक, त्रैमासिक, छमाही अथवा वार्षिक समय अवधियों के अन्तर्गत किये जाने वाले भुगतानों/प्राप्तियों को भी वार्षिकी के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है।

इस प्रकार वार्षिकी से आशय एक निश्चित अवधि तक किये जाने वाले आवधिक भुगतान/ प्राप्तियों की क्रमबद्ध श्रंखला को वार्षिकी कहा जाता है।

इसकी सहायता से बीमा किस्त की राशि, मकान ऋण की किस्तों का आकलन, किराया क्रय पद्धति/किस्त भुगतान पद्धति के अन्तर्गत क्रय किये गये सामान के मूल्यों का भुगतान, ऋण शोधन निधि हेतु कोष का निर्माण या छात्रवृत्ति के भुगतान हेतु वार्षिकी आदि का आकलन किया जाता है।

2.5.1 वार्षिकी के प्रकार (Types of Annuity)

वार्षिकी के अध्ययन के दृष्टिकोण से मुख्यतः दो प्रकारों में विभाजित किया गया है–

1. **निश्चित वार्षिकी (Annuity Certain)**– इस वार्षिकी के अन्तर्गत भुगतान एक निश्चित समयावधि तक बिना किसी शर्त के होता रहता है। इस हेतु इसे निश्चित वार्षिकी के नाम से जाना जाता है।

किराया क्रय पद्धति एवं किस्त भुगतान पद्धति के अन्तर्गत इस वार्षिकी को प्रयोग में लाया जाता है।

उदाहरण– राम एक ट्रक किराया क्रय पद्धति पर रूपये 50,000 में क्रय करता है। सपुर्दुगी पर रूपये 10,000 का भुगतान कर देता है तथा शेष राशि चार समान किस्तों रूपये 10,000 प्रत्येक वर्ष के अन्त में देना निश्चित करता हैं, तो यह निश्चित वार्षिकी कहलायेगी। निश्चित वार्षिकी को पुनः चार भागों में विभाजित किया जा सकता है जो निम्नानुसार है–

तत्काल वार्षिकी (Immediate Annuity)– इस वार्षिकी के अन्तर्गत देय किस्त का भुगतान प्रत्येक समयावधि के समाप्ति पर किया जाता है। जब तक प्रश्न में कोई असंगत सूचना हीं दी गई हो तो उसका अभिप्राय तत्काल वार्षिकी से ही माना जाता है।

देय वार्षिकी (Due Annuity)– इस वार्षिकी के अर्न्तगत भुगतान प्रत्येक समयावधि के प्रारम्भ अर्थात् देय होने पर किया जाता है।

आजीवन वार्षिकी (Life Annuity)– इस वार्षिकी के नाम से ही स्पष्ट है कि इसका भुगतान लाभकर्ता के द्वारा उसके जीवन पर्यन्त तक किया जाता है। इसी कारण से इसे आजीवन वार्षिकी कहा जाता है।

आस्थगित वार्षिकी (Deferred Annuity)– इस वार्षिकी के अन्तर्गत इसके नाम के ही अनुरूप वार्षिकी का प्रथम भुगतान कुछ निश्चित समायावधि के व्यतीत होने के उपरान्त से किया जाता है। उदाहरण के लिये राम द्वारा एक ट्रक क्रय किया गया। प्रथम किस्त का भुगतान 5 वर्ष की अवधि के उपरान्त किया जायेगा।

तत्पश्चात प्रत्येक वर्ष के अन्त में किस्तों की समाप्ति तक किया गया भुगतान आस्थगित वार्षिकी के अन्तर्गत सम्मिलित किया जायेगा।

(2) **अनन्त वार्षिकी (Perpetual Annuity)**– इसे निरन्तर चलने वाली वार्षिकी/चिरस्थायी वार्षिकी भी कहा जाता है। इस वार्षिकी के अन्तर्गत किस्तों का भुगतान अनन्त काल तक निरन्तर किया जाता रहता है। उदाहरण के लिए किसी भी भू–सम्पत्ति पर लगाया जाने वाला वार्षिक प्रभाव/लगान आदि को अनन्त वार्षिकी के अन्तर्गत सम्मिलित करेंगे।

2.5.2 वार्षिकी का मिश्रधन (Amount of an Annuity)

इसके अन्तर्गत विभिन्न समयावधि में भुगतान की गयी सभी किस्तों की धनराशि का मूलयोग तथा उन किस्तों पर चक्रवृद्धि ब्याज की दर से अर्जित ब्याज की राशि को सामूहिक रूप से जोड़ने पर प्राप्त राशि को वार्षिकी का मिश्रधन कहा जायेगा।

अतः संक्षिप्त रूप में वार्षिकी का मिश्रधन = (विभिन्न किस्तों में देय धनराशि + उस अवधि में अर्जित चक्रवृद्धि ब्याज।

2.5.3 वार्षिकी का वर्तमान मूल्य (Present Value of Annuity)

वार्षिकी का वर्तमान मूल्य वह कहलाता है सिके अन्तर्गत विभिन्न किस्तों के तहत भुगतान की गई राशि का सामूहिक योग को सम्मिलित करते हैं। इसे वार्षिकी के तत्काल धन अथवा वस्तु के नकद मूल्य से भी जाना जाता है। इसके अन्तर्गत अर्जित ब्याज को सम्मिलित नहीं करते हैं–

सूत्र रूप में

वार्षिकी का वर्तमान/तत्काल/नकद मूल्य = (वार्षिकी का मिश्रधन (Less) निर्धारित समयावधि में अर्जित चक्रवृद्धि ब्याज)

वार्षिकी के मिश्रधन, तथा वार्षिकी के वर्तमान मूल्य की गणना हेतु प्रयुकत सूत्र–

(1) तत्काल निश्चित वार्षिकी के मिश्रधन को ज्ञात करने हेतु–

$$A = \frac{a}{i}\left[(1+i)^{time\ (n)} - 1\right]$$

अथवा

$$A = P(1+i)^{time\ (n)}$$

(2) तत्काल निश्चित वार्षिकी के मूलधन की गणना हेतु

$$P = \frac{a}{i}\left[1 - (1+i)^{time\ (n)}\right]$$

अथवा

$$\frac{A}{(1+i)^{time\ (n)}}$$

(3) निश्चित वार्षिकी देय के मिश्रधन की गणना हेतु–

$$A = \frac{a(1+i)}{i}\left[(1+i)^{time\ (n)} - 1\right]$$

(4) निश्चित वार्षिकी देय के मूलधन की गणना हेतु–

$$P = \frac{a(1+i)}{i}\left[1 - (1+i)^{time\ (n)}\right]$$

(5) अनंत काल वार्षिकी का तत्काल (मूलधन) की गणना हेतु–

$$P = \frac{a}{i}$$

उदाहरण (Illustration) 3

20 वर्षों तक निरन्तर चलने वाली रूपये 2,000 की वार्षिकी का मिश्रधन ज्ञात कीजिए। चक्रवृद्धि, ब्याज की दर 8 प्रतिशत वार्षिक निश्चित है।

हल (Solution)

दिया है– a = वार्षिकी = Rs.2,000
n = time = 20 years
i = rate = 8% वार्षिक

$$A = \frac{a}{i}\left[(1+i)^{time\ (n)} - 1\right]$$

$$A = \frac{2000 \times 100}{8}\left[(1+\frac{8}{100})^{20} - 1\right]$$

$$A = 25{,}000\left[(\frac{27}{25})^{20} - 1\right]$$

Using the log and Antilog Table-
लघुगणक सारणी का प्रयोग करने पर

$\left(\frac{27}{25}\right)^{20}$ को हल करने पर

Antilogs of [20 Logs 27 - 20 Logs 25]
Antilogs of [20(1.4314 - 1.3979)]
Antilogs of [20x0.0335]
Antilogs of [0.67] or 4.677

Putting the value of $\left(\frac{27}{25}\right)^{20}$ in formula-

25,000[4.677 - 1]
25,000 x 3.677 = Rs.91,925

अतः रूपये 2,000 की वार्षिकी का मिश्रधन 20 वर्षों के पश्चात रूपये 91,925 होगा।

उदाहरण (Illustration) 4

रामनरेश अपने बचत खाते में रूपये 3,000 प्रत्येक की 10 समान वार्षिक किस्तों को जमा करते हैं, जिस पर वार्षिक चक्रवृद्धि ब्याज की दर 5 प्रतिशत वार्षिक है। 10 वर्ष पश्चात वार्षिकी का भावी मूल्य ज्ञात कीजिए। तथा वर्तमान मूल्य भी ज्ञात कीजिए।

हल (Solution)–

वार्षिकी का भावी मूल्य (FVA)
(Future Value of Annuity)

$$= \frac{3000 \text{ x } 100}{5}\left[(1+\frac{5}{100})^{10} - 1\right]$$

$$= 60,000\left[(\frac{21}{20})^{10} - 1\right]$$

लघुगणक सारणीयन का प्रयोग करने पर

Using the log and Antilog table

$\left(\frac{21}{20}\right)^{10}$ को हल करने पर

Antilogs of [10 Logs 21 - 10 Logs 20]

Antilogs of [10(1.3222 - 1.3010)]

Antilogs of [10(0.0212)]

Antilogs of 0.2120 or 1.629

Putting the value of $\left(\frac{21}{20}\right)^{10}$ in formula above

60,000[1.629 - 1]

60,000 x 0.629 =

FVA = Rs.37,740

वर्तमान मूल्य (Present Value) की गणना

$$P = \frac{A}{(1+i)^{\text{time (n)}}}$$

A = FVA Rs.37,740 ज्ञात किया है, Rate = 5%, time = 10 years

$$P = \frac{37,740}{(1+\frac{5}{100})^{10}}$$

$$P = \frac{37,740}{(\frac{21}{20})^{10}}$$

लघुगणक सारणीयन से हल करने पर ज्ञात मूल्य 1.629 प्राप्त हुआ (उपरोक्त पूर्व में हल किया गया है)।

$$P = \frac{37,740}{1.629} = \text{Rs.}23,168$$

अतः वार्षिकी का वर्तमान मूल्य (P Value) रूपये 23,168 है।

उदाहरण (Illustration) **5**

एक विनियोक्ता प्रत्येक माह के अन्त में रूपये 1,000 विनियोजित करता है। चक्रवृद्धि ब्याज की दर 12 प्रतिशत वार्षिक, मासिक आधार पर चक्रवृद्धि ब्याज की गणना की जाती है। 10 वर्ष के विनियोजन के पश्चात इस वार्षिकी का मूल्य क्या होगा?

हल (Solution)-

वार्षिकी का भावी मूल्य (FVA) =

$$A = \frac{a(1+i)}{i}\left[(1+i)^{time\ (n)} - 1\right]$$

Putting the values मान रखने पर

$$A = \frac{1000(1+1/100)}{1/100}\left[(1+\frac{1}{100})^{120} - 1\right]$$

$$A = \frac{1000(1.01)}{.01}\left[(\frac{101}{100})^{120} - 1\right]$$

लघुगणक सारणीयन का प्रयोग करने पर

Using the log and Antilogs table

$\left(\frac{101}{100}\right)^{120}$ को हल करने पर

Antilogs of [120 logs 101 - 120 logs 100]

Antilogs of [120 (2.0043 - 2.0000]

Antilogs of [120 x 0.0043]

Antilogs of 0.516 or 3.281

उपरोक्त मान को सूत्र में पुनः रखने पर–

$$A = \frac{1000(1.01)}{.01}[3.281 - 1]$$

A = 1,01,000 x 2.281 = Rs.2,30,381

यदि इस वार्षिकी का वर्तमान मूल्य ज्ञात की जाए तो निम्नानुसार ज्ञात किया जायेगा।

वार्षिकी का वर्तमान मूल्य $(P.V.) = \frac{a(1+i)}{i}\left[1 - \frac{1}{(1+i)^n}\right]$

अथवा

$$P.V. = \frac{A}{(1+i)^{time\ (n)}}$$

A = Rs.2,30,381 (ज्ञात किया है), Rate 12% वार्षिक, मासिक 1% होगी।

Time 10 years or 120 months

$$P\ Value = \frac{2,30,381}{(1+\frac{1}{100})^{120}} = \frac{2,30,381}{\left(\frac{101}{100}\right)^{120}}$$

$$P\ Value = \frac{2,30,381}{3.281} = 70,217$$

नोट– 3.281 मूल्य लघुगणक सारणी से ज्ञात करने पर प्राप्त हुआ।

उदाहरण (Illustration) **6**

मोहन रूपये 15,000 की लागत से वाशिंग मशीन क्रय करता है। वह सुर्पदगी पर रूपये 3,000 का भुगतान करता है तथा शेष राशि 4 वर्षों में समान वार्षिक किस्तों में करने की सहमति प्रदान करता है। देय किस्त की राशि की

गणना कीजिये यदि अवशेष राशि पर 10 प्रतिशत वार्षिक चक्रवृद्धि बयाज लगाया जाता है।

हल (Solution)-

उपरोक्त में वाशिंग मशीन का नकद मूल्य रूपये 15,000 है तथा मोहन के द्वारा सर्पुदगी पर रूपये 3,000 का भुगतान कर दिया गया है। अवशेष राशि (रूपये 15ए000 – रूपये 3ए000) = रूपये 12000 है। अतः आवृत्ति भुगतान किस्त की राशि की गणना निम्न प्रकार होगी–

$$P = \frac{a}{i}\left[1 - \frac{1}{(1+i)^{\text{time (n)}}}\right]$$

$$P = 12000 = \frac{a}{.10}\left[1 - \frac{1}{(1+.10)^{4}}\right]$$

$$12000 = 10a\left[1 - \frac{1}{1.4641},\right]$$

$$12000 = 10a \text{ x } \frac{.4641}{1.4641}$$

$$a = \frac{12,000 \text{ x } 1.4641}{10 \text{ x } .4641},$$

= Rs.3,786 each instalment.

2.5.4 **अनन्त वार्षिकी का वर्तमान मूल्य ज्ञात करना** (Present Value of Perpetual Annuity)-

अनन्त वार्षिकी के अन्तर्गत आवधिक प्राप्तियाँ अथवा भुगतान एक निश्चित तिथि पर प्रारम्भ होकर अनत काल तक जारी रहती हैं। इसकी प्रमुख विशेषता समायावधि का निश्चित नहीं होना है। इसका सबसे उपयुक्त उदाहरण पेंशन/भविष्य हेतु विनियोजन आदि।

$$P_{\infty} = \frac{a}{i}\left[1 - \frac{1}{(1+i)^{\infty}}\right]$$

$$P_{\infty} = \frac{a}{i}(1-0)$$

$$P_{\infty} = \frac{a}{i}$$

उपरोक्त के आधार पर हम अनंत तत्काल निश्चित वार्षिकी का वर्तमान मूल्य ज्ञात कर सकते हैं। यदि हमें अनंत देय वार्षिकी का वर्तमान मूल्य ज्ञात करना हों, तो निम्न सूत्र की सहायता से ज्ञात करेंगे।

$$P_{\infty} = \frac{a(1+i)}{i}\left[1 - \frac{1}{(1+i)^{\infty}}\right]$$

$$P_\infty = \frac{a(1+i)}{i}\left[1 - \frac{1}{0}\right]$$

$$P_\infty = \frac{a(1+i)}{i}$$

उदाहरण (Illustration) **7**

उज्जवल सेवा निवृत्ति के पश्चात् प्रतिमाह रूपये 50,000 पेंशन के रूप में प्राप्त करना चाहता है तथा मृत्योपरान्त भी इस लाभ को अगली पीढी के लिये भी सुरक्षित करना चाहता है। वह 10 प्रतिशत वार्षिक चक्रवृद्धि ब्याज के आधार पर अनन्त वार्षिकी का उद्देश्य प्राप्त करने के लिए कितनी धनराशि के विनियोजन की आवश्यकता होगी?

हल (Solution)-

प्रतिमाह पेंशन की राशि (a) रूपये 50,000

$$P_\infty = \frac{a}{i}$$

$$P_\infty = \frac{50,000}{.008333}$$

$$P_\infty = Rs.60,00,240$$

चूँकि मासिक दर = $\frac{.10}{12}$ = .008333

यदि उज्ज्वल पेंशन राशि को तत्काल इसी माह से प्राप्त करना चाहता है तो निम्नानुसार विनियोजन राशि का आकलन किया जायेगा।

$$P_\infty = \frac{a(1+i)}{i}$$

$$P_\infty = \frac{50,000(1+.008333)}{.008333}$$

$$P_\infty = Rs.60,50,240$$

where a = 50,000, i (monthly) = $\frac{.10}{12}$ = .008333

नोट– इसको ज्ञात करने के लिए पूर्व में प्राप्त विनियोजित राशि रूपये 60,00240 के अन्तर्गत वर्तमान माह की पेंशन को यदि सम्मिलित कर लिया जायेगा, तब भी तत्काल विनियोजन की राशि (रूपये 60,00,240 + रूपये 50,000) = रूपये 60,50,240 के समकक्ष ही आयेगी।

2.6 सिंकिंग फण्ड (Sinking Fund)

सिंकिंग फण्ड के द्वारा एक कोष का सृजन किया जाता हैं। इस कोष का प्रयोग पूर्व निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है। इसके सृजन हेतु

एक निश्चित धनराशि निश्चित सामायिक अन्तराल पर निश्चित अवधि के लिए विनियोजित की जाती रहती है। समय अवधि पूर्ण होने पर इस फण्ड की राशि उस निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपलब्ध हो जाती है। इस प्रकार सृजित कोष को सिंकिंग फण्ड कहा जाता है।

2.6.1 सिंकिंग फण्ड की गणना (Calculation of Sinking Fund)

सिंकिंग फण्ड की गणना के लिए सर्वप्रथम उस राशि का अनुमान लगाया जाता है, जिससे उस निश्चित उद्देश्य की पूर्ति की जायेगी। उदाहरण के लिए भविष्य में 10 वर्ष पश्चात 20 लाख रूपये से एक मशीनरी का क्रय किया जाना हैं। तो सिंकिंग फण्ड के लिए 20 लाख रूपये एकत्रित किये जाने हैं जो 10 वर्ष की समयावधि में किये जायेंगे। इस पर एक निश्चित दर से ब्याज भी संकलित होगा।

उदाहरण (Illustration) 8

20 लाख रूपये की सिंकिंग फण्ड बनाने हेतु प्रतिवर्ष कितनी धनराशि विनियोजित करने की आवश्यकता है, जबकि विनियोजित राशि पर 10 प्रतिशत चक्रवृद्धि ब्याज एवं फण्ड की आवश्यकता 10 वर्षों के पश्चात है।

हल (Solution)-

Given - Sinking Fund Amount required Rs.20,00,000

No. of Years (n) 10 years

Interest rate (i) = 10%

SFA = I[FVIFA (i.n)]

$$20,00,000 = I[FVIFA \left(\frac{10}{100} x10\right)]$$

20,00,000 = I[6.1146(1)]

20,00,000 = I[15.9374248]

Investment required per annuam $= \frac{20,00,000}{15.9374248} = 1,25,491$ Approx.

Note - FVIFA(i.n) को वित्तीय तालिकाओं की मदद से आसानी से ज्ञात किया जा सकता है।

2.7 सारांश

उपरोक्त के अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट है कि मुद्रा का एक समय मूल्य होता है। जिससे निर्णयों को लेने में काफी मद्द प्राप्त होती है। वर्तमान मुद्रा का मूल्य भविष्य में प्राप्त होने वाली उतनी मुख मुद्रा की तुलना में अधिक मूल्य रखता हैं। मुद्रा के समय मूल्य की अवधारणा के कारण ब्याज का प्रार्दुभाव होता है। पूँजीगत बजटन एवं भविष्य हेतु कोषों के सृजन में मुद्रा के समय मूल्य की अपनी प्रमुख भूमिका है। इसके द्वारा विनियोग निर्णयों को प्रतिपादित करने में मदद प्राप्त होती है।

2.8 शब्दावली

अवसर लागत– प्राप्त अवसर को छोड़ने पर मिलने वाला प्रतिफल अवसर लागत कहलाता है।

मुद्रा का वर्तमान प्राप्य मूल्य– इसके अन्तर्गत मुद्रा के समय मूल्य में मुद्रा का भविष्य में प्राप्त मूल्य को सम्मिलित किया जाता है।

मुद्रा प्रसार– मुद्रा प्रसार में वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि होती है तथा मुद्रा की क्रय शक्ति कम हो जाती है।

मुद्रा संकुचन– मुद्रा संकुचन के अन्तर्गत वस्तुओं के मूल्यों में कमी हो जाती हैं तथा मुद्रा की क्रय करने की शक्ति बढ़ जाती हैं।

चक्रवृद्धि ब्याज– इसके अन्तर्गत मूलधन में अर्जित ब्याज जोड़कर ब्याज की गणना पूर्ण समय अन्तराल हेतु की जाती है। यह साधारण ब्याज की तुलना में अधिक होती है।

ब्याज की प्रभावी दर– इसके अन्तर्गत जब चक्रवृद्धि दर से वर्ष में एक से अधिक बार ब्याज अदत्त होता है, तो इस आधार पर आगणित ब्याज की दर प्रभावशाली दर होती है।

वार्षिकी– इसके अन्तर्गत सामान्य तौर पर वार्षिक आधार पर भुगतानों अथवा प्राप्तियों का आगणन किया जाता है।

सिंकिंग फण्ड– इसके द्वारा भविष्य हेतु कोषों का सृजन आवृत्तिक किस्तों के माध्यम से किया जाता है। समयावधि पूर्ण होने पर एकत्रित कोष से उस निश्चित उद्देश्य की पूर्ति कर ली जाती है।

2.9 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. ब्याज दर शून्य होने की दशा में मुद्रा का समय मूल्य होगा–
   (अ) बराबर (ब) अधिक (स) कम (द) इनमें से कोई नहीं
2. समय कारक के कारण उत्पत्ति होती हैं–
   (अ) विनियोग की (ब) ब्याज की (स) उपभोग की (द) इनमें से कोई नहीं
3. मुद्रा प्रसार के अन्तर्गत–
   (अ) वस्तुओं के मूल्यों में कमी आती है।
   (ब) वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हो जाती है।
   (स) वस्तुओं के मूल्यों में स्थिरता बनी रहती है।
   (द) इनमें से कोई नहीं।
4. चक्रवृद्धि ब्याज के जादू 72 के अन्तर्गत मूलधन को दुगुना करने हेतु–
   (अ) 72 को समय अन्तराल से गुणा करना पड़ता है।
   (ब) 72 को समय अन्तराल से भाग देना पड़ता है।
   (स) 72 को ब्याज की दर से गुना करना पड़ता है।
   (द) 72 को ब्याज की दर से भाग देना पड़ता है।
5. साधारण ब्याज के अन्तर्गत मूलधन–
   (अ) परिवर्तित होता रहता है।
   (ब) अपरिवर्तित रहता है।
   (स) कभी परिवर्तित तो कभी अपरिवर्तित हो जाता है।
   (द) उपरोक्त में से कोई नहीं।
6. वार्षिकी का मिश्रधन में सम्मिलित होता है–
   (अ) समस्त किस्तों का योग

(ब) समस्त किस्तों का योग एवं उन पर अदत्त ब्याज
(स) अदत्त की राशियों का योग
(द) उपरोक्त में से कोई नहीं।

2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. अ, 2. ब, 3. ब, 4, द, 5. ब, 6, ब

2.11 स्वपरख प्रश्न

1. मुद्रा का समय मूल्य से आप क्या समझते हैं? वर्तमान की तुलना में भविष्य में मुद्रा की क्रय शक्ति कम होने के कारकों की व्याख्या कीजिए।
2. ब्याज से आप क्या समझते हैं? ब्याज के प्रकार बताइये। चक्रवृद्धि ब्याज एवं साधारण ब्याज में अन्तर कीजिए।
3. चक्रवृद्धि ब्याज का जादू–नियम 72 को विस्तार से समझाइये।
4. ब्याज की नाममात्र की दर एवं ब्याज की प्रभावी दर में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
5. वार्षिकी से आप क्या समझते हैं? वार्षिकी के विभिन्न प्रकारों को समझाइये।
6. वर्तमान मूल्य क्या है? सिंकिंग फण्ड का निर्माण क्यों किया जाता है?

2.12 सन्दर्भ पुस्तकें

"Financial Management"- M.Y. Khan & P.K. Jain, Tata Mc Graw Hill.

"वित्तीय बाजारों की कार्यप्रणाली"– प्रो0 वी0 पी0 अग्रवाल– साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

"निगमीय लेखांकन"– सी0 एम0 जैन एवं ए0 के0 अग्रवाल– g Master g Educorp, मेरठ।

"प्रबन्ध हेतु वित्तीय विश्लेषण"– डॉ0 ए0 के गर्ग– स्वाती प्रकाशन, बुलन्दशहर।

"निगमीय लेखाविधि"– डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 राजकुमार– नवनीत प्रकाशन, नजीबाबाद।

व्यावसायिक वित्त	:	डा0 आर0एस0 कुलश्रेष्ठ व डा0 विनय शंकर सिंह
उच्च वित्तीय प्रबन्ध	:	डा0 एस0पी0 गुप्ता व डा0 बी0 कुमार मित्तल
व्यावसायिक वित्त	:	डा0 एफ0सी0 शर्मा
वित्तीय प्रबन्ध	:	डा0 एम0डी0 अग्रवाल व डा0 एन0पी0 अग्रवाल
Financial Management	:	Dr. I.M. Pandey
वित्तीय प्रबन्ध	:	डा0 ओसवाल

इकाई– 3 भारतीय वित्तीय प्रणाली एवं वित्तीय तथा आर्थिक वातावरण का वित्तीय प्रबन्ध पर प्रभाव (Indian Financial System and Impact of Financial and Economical Environment on Financial Management)

इकाई की रूपरेखा

3.0 प्रस्तावना
3.1 वित्तीय प्रणाली का अर्थ
 3.1.1 वित्तीय प्रणाली की संरचना
 3.1.2 वित्तीय संस्थाएँ
 3.1.3 वित्तीय बाजार
3.2 वित्तीय प्रणाली के उद्देश्य
 3.2.1 वित्तीय प्रणालियों का महत्व
3.3 वित्त पूर्ति के स्रोत
 3.3.1 वित्तीय आवश्यकता के प्रकार
 3.3.2 भारत में संस्थागत वित्त प्रबन्धन
 3.3.3 भारत में संस्थागत वित्तीय संस्थाओं की आवश्यकता
 3.3.4 संस्थागत वित्त प्रबन्धन के दोष
3.4 वित्तीय प्रणाली एवं आर्थिक विकास
 3.4.1 वित्तीय प्रणाली एवं पूँजी निर्माण की प्रक्रिया
 3.4.2 निवेश एवं पूंजी निर्माण
 3.4.3 वित्तीय प्रणाली एवं मौद्रिक नीति
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 बोध प्रश्न
3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.9 स्वपरख प्रश्न
3.10 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- वित्तीय प्रणाली का अर्थ व वित्तीय प्रणाली की संरचना के बारे में विस्तृत रुप से जान सकें।
- वित्तीय प्रणाली के उद्देश्यों व वित्तपूर्ति के स्रोतों से अवगत हो सकें।
- भारतीय वित्तीय प्रणाली एवं आर्थिक विकास का वर्णन कर सकें।

3.0 प्रस्तावना

वित्त को आधुनिक अर्थव्यवस्था में जीवन एक की संज्ञा प्रदान की गयी है। अर्थव्यवस्था की समस्त आर्थिक क्रियाएँ वित्त के चारों ओर घूमती हैं। अर्थव्यवस्था के विभिन्न संघटको यथा–उद्योग, वाणिज्य, कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, बुनियादी ढाँचा, उत्पादन, उपभोग, राजस्व आदि सभी क्रियाएँ वित्तीय तंत्र पर

निर्भर करती हैं। वित्तीय क्रियाएँ किसी भी देश की स्थिरता एवं उसकी प्रगति के मापक का सोपान होती हैं। इन क्रियाओं को अमली–जामा पहनाने हेतु एक '**नियमन तंत्र**' की आवश्यकता होती है, जिससे इन क्रियाओं का यथासमय नियमन एवं नियंत्रण किया जा सके। इसी '**नियमन तंत्र**' को वित्तीय प्रणाली के रूप में भी जाना जाता है।

3.1 वित्तीय प्रणाली का अर्थ (Meaning of Financial System)

वित्तीय प्रणाली सामान्यतया आर्थिक क्रियाओं का एक नियमन तंत्र होता है। इसके अन्तर्गत वित्तीय संस्थाओं, उपकरणों, सेवाओं, साधनों, कार्यविधियों, व्यवहारों एवं बाजारों के समूह के रूप में इसको विश्लेषित किया जाता है। ये सभी समूह एक दूसरे से अर्न्तसम्बन्धित होते हैं।

इस प्रकार वित्तीय प्रणाली के अन्तर्गत आर्थिक क्रियाओं में बचतों, विनियोगों, विनियोगों का अनुकूलतम आबंटन एवं लाभों का पुर्ननियोजन आदि को सम्मिलित किया जाता है। वित्तीय उपकरणों, वित्तीय सेवाओं, वित्तीय बाजारों की आवश्यकता आर्थिक क्रियाओं के साथ आपसी तालमेल हेतु अत्यन्त आवश्यक होती है। इसी '**नियामक तंत्र**' को वित्तीय प्रणाली के रूप में परिभाषित किया जाता है।

''इस प्रकार वित्तीय प्रणाली वित्तीय साधनों, वित्तीय बाजारों, नियामक उपकरणों, वित्तीय सेवाओं, कार्यविधि एवं व्यवहारों का एक मिश्रित संजाल समूह है, जो एक–दूसरे से परस्पर आन्तरिक तौर पर जुड़े हुए हैं।''

3.1.1 वित्तीय प्रणाली की संरचना (Structure of Financial System) :–

वित्तीय प्रणाली की परिभाषा से विदित है कि वित्तीय प्रणाली की संरचना के अन्तर्गत वित्तीय संस्थाओं, वित्तीय बाजारों, नियामक तंत्रों, उपकरणों, वित्तीय सेवाओं आदि को सम्मिलित किया जाता है। इसलिए वित्तीय प्रणाली को वित्तीय क्षेत्र की संज्ञा भी प्रदान की गयी है। वित्तीय प्रणाली की संरचना के अध्ययन हेतु निम्नलिखित का अध्ययन आवश्यक है–

1. वित्तीय संस्थायें (Financial Institutions)
2. वित्तीय बाजार (Financial Markets)
3. वित्तीय उपकरण (Financial Instruments or Tool)
4. वित्तीय सेवाएँ (Financial Services)

3.1.2 वित्तीय संस्थाएँ (Structure Institutions) :–

वित्तीय संस्थाओं के अन्तर्गत उन समस्त संस्थाओं को सम्मिलित किया जाता है जो जमाओं (Deposits), बचतों (Saving) को स्वीकार कर उन्हें एकत्रित करके निवेशकों को निवेश हेतु उपलब्ध कराते हैं। इस प्रकार ये संस्थाएँ बैंकिंग के प्राथमिक कार्यों (1) जमाओं को स्वीकार करना तथा (2) ऋण प्रदान करना को कुशलता से निवर्हन करती है। इसके अतिरिक्त ये वित्तीय संस्थाएँ एजेन्सी सम्बन्धित सेवाओं, सामान्य उपयोगिता के कार्यों का निवर्हन करके वित्तीय सेवायें उपलब्ध कराते हैं। वित्तीय संस्थाओं की तुलना में गैर–वित्तीय व्यावसायिक संस्थायें केवल मशीनरी, यांत्रिकी उपकरणों, तकनीकि ज्ञान, बुनियादी ढाँचा, कच्चा माल आदि के सम्बन्ध में लेनदेन करते हैं। वित्तीय संस्थाओं को निम्न चार्ट से समझ सकते हैं।

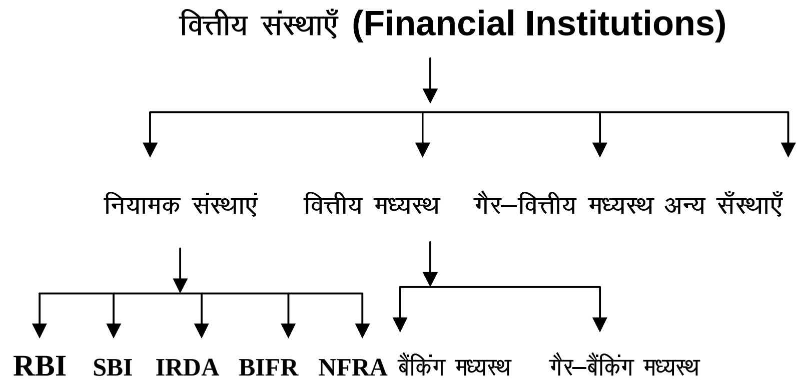

(i) नियामक संस्थाएँ (Regulating Institutions) :–

नियामक संस्थाओं को वित्तीय प्रणाली में सर्वोच्च स्थान प्राप्त होता है। यह वित्तीय प्रणाली के तंत्र को नियमित करने के लिए सर्वोच्च स्थान प्राप्त संस्थाएँ होती है। वित्तीय प्रणाली को नियंत्रित करने पर सम्पूर्ण उत्तरदायित्व इन्हीं संस्थाओं पर होता है। नियंत्रण के उद्देश्य के दृष्टिगत ये सर्वोच्च संस्थायें वित्तीय लेनदेनों से सम्बन्धित नियम, उपनियम, अधिनियम, आचार संहिता, दिशा–निर्देश आदि समय–समय पर तैयार करके उनका अनुपालन सुनिश्चित कराती है। नियामक संस्थाओं में निम्न को सम्मिलि किया जा सकता है–

(अ) भारतीय रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया (केन्द्रीय बैंक)

(ब) प्रतिभूति एवं विनिमयन बोर्ड ऑफ इंडिया (SEBI) सेबी

(स) बीमा नियामक विकास प्राधिकरण (IRDA)

(द) औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निमाण बोर्ड (BIFR)

(य) नेशनल फाईनेंशियल रिपोर्टिंग अथॉरिटी–राष्ट्रीय वित्तीय सूचना प्राधिकरण (NFRA)

(ii) वित्तीय मध्यस्थ (Financial Intermediaries) :–

वित्तीय मध्यस्थों के अन्तर्गत वित्तीय संस्थाओं को निहित किया जाता है। इनका मुख्य कार्य अन्तिम बचतकर्ताओं एवं अन्तिम साख सृजन करने वालों के मध्य मध्यस्थता करना होता है। इन संस्थाओं में मुख्य रूप से वाणिज्यिक बैंकों, सहकारी बैंकों, ऋण समितियों, डाकघर बचत बैंक, चिट फण्ड आदि को सम्मिलित करते हैं।

(अ) बैंकिंग मध्यस्थ (Banking Intermediaries) :– ये संस्थायें केवल बैंकिंग कार्यों का समायोजन करती हैं, इनमें समस्त वाणिज्यिक बैंकों के साथ–साथ बैंकिंग गतिविधियों में संलिप्त संस्थाओं जैसे सहकारी बैंक, डाकघर जमाओं आदि को सम्मिलित करते है।

(ब) गैर–बैंकिंग मध्यस्थ (Non-Banking Intermediaries) :– इन संस्थाओं में केवल उन्हीं संस्थाओं को सम्मिलित किया जाता है, जो बैंकिंग कार्यों में संलग्न नहीं होती हैं, लेकिन मध्यस्थता का कार्य सम्पादित करती हैं। इनमें मुख्य रूप से जीवन बीमा कम्पनियों, परस्पर निधि (म्युचल फण्ड), चिट फण्ड, सामान्य ट्रस्ट कोष आदि को सम्मिलित करते हैं।

(स) गैर–वित्तीय मध्यस्थ (Non-Financial Intermediaries) :–गैर–वित्तीय मध्यस्थों के अन्तर्गत ऐसी संस्थाओं को सम्मिलित करते हैं, जोकि

मध्यस्थ के रूप में कार्य करके अपनी सेवायें प्रदान करते हैं, इनमें किराया क्रय कम्पनियों, जोखिम पूँजी कम्पनियों आदि को शामिल किया जाता है।

(द) **अन्य संस्थाएँ (Other Institutions)** :– इन संस्थाओं में उन संस्थाओं को सम्मिलित किया जाता है, जोकि उपरोक्त संस्थाओं की सहायक के रूप में कार्य करती हैं, इनमें स्टॉक ब्रोकर, निर्यात साख जमा कम्पनियाँ, बीमा एवं प्रतिभू निगम आदि को शामिल किया जाता है।

3.1.3 वित्तीय बाजार (Financial Markets) :–

वित्तीय बाजार के अन्तर्गत वित्तीय परि–सम्पत्तियों जिसके अन्तर्गत अंशों, ऋणपत्रों, स्टॉक, बॉण्ड, सरकारी प्रतिभूतियों, बैंक चैक, बिल्स आदि का क्रय–विक्रय किया जाता है। वित्तीय बाजार का सम्बन्ध उस समस्त क्षेत्र से लिया जाता है जहाँ उपरोक्त परि–सम्पत्तियों का लेनदेन किया जाता है। वित्तीय बाजार को निम्नलिखित चार्ट के माध्यम से समझा जा सकता है–

वित्तीय बाजार (Financial Markets)

- संगठित वित्तीय बाजार
  - मुद्रा बाजार
    - (i) रिज़र्व बैंक
    - (ii) स्टेट बैंक ऑफ़ इंडिया
    - (iii) व्यापारिक बैंक
    - (iv) निजी बैंक
    - (v) सहकारी बैंक
    - (vi) गैर बैंकिंग सँस्थाएँ
  - पूँजी बाजार
    - (i) दीर्घकालिक प्रतिभूति बाजार
    - (ii) अल्पकालिक प्रतिभूति बाजार
- असंगठित वित्तीय बाजार
  - (i) देशी बैंकर्स व महाजन
  - (ii) महाजन

3.2 वित्तीय प्रणाली के उद्देश्य (Objects of Financial System)

वित्तीय प्रणाली के माध्यम से न्यूनतम वित्तीय साधनों द्वारा अधिकतम लाभों को अर्जित करना होता है, वित्तीय प्रणाली का यह उद्देश्य अत्यधिक महत्वपूर्ण है, लेकिन वित्तीय शास्त्रियों के इसके **'अधिकतम लाभ'** शब्द पर अपनी आपत्ति दर्ज करते हुए कहा है कि यह अधिकतम लाभ के स्थान पर **'अनुकूलतम लाभ'** होना अत्याधिक उचित रहेगा। इस सम्बन्ध में सोलोमन इजरा का यह कथन अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाता है कि ,**"वित्तीय प्रणाली का मुख्य उद्देश्य धन का अधिकतमीकरण है, लेकिन इस उद्देश्य की पूर्ति करते समय उपभोक्ता वर्ग के हितों को भी ध्यान में रखना चाहिए।"** वित्तीय प्रणाली के अन्तर्गत यदि संस्था का प्रबन्ध 'अनुकूलतम लाभ' को अर्जित करने की नीति का अनुपालन करता है तो इससे समाज के किसी भी वर्ग का कोई शोषण नहीं होता। वित्तीय प्रणाली के

उद्देश्यों के सम्बन्ध में विभिन्न वित्तीयशास्त्रियों द्वारा निम्नलिखित तीन प्रकार के उद्देश्यों का स्पष्टीकरण किया गया है–

(1) अधिकतम लाभोपार्जन का उद्देश्य (Objects of Profits Maximisation):–

प्रत्येक संस्था/कम्पनी/व्यावसायिक उपक्रम का मुख्य उद्देश्य उसके स्वामियों के हितों की रक्षा करना होता है, जिनकी पूर्ति अधिकतम लाभोपार्जन द्वारा की जा सकती है। संस्था द्वारा अर्जित लाभ को संस्था की उत्पादन क्षमता, विक्रय क्षमता एवं प्रबन्धकीय एवं प्रशासकीय कार्यकुशलता का मापदण्ड समझा जाता है। अतः प्रत्येक संस्था वित्तीय प्रणाली के माध्यम से नवीनतम तकनीकि विधियों का प्रयोग करके स्वामी हितों को सुरक्षित रखने का प्रयास करती है। अतः लाभ के आधार पर किसी भी व्यावसायिक संस्था का कार्य–मूल्याकंन किया जा सकता है, क्योंकि लाभों को अधिकतम उत्पादन एवं विक्रय में वृद्धि करके एवं लागतों में कमी करके ही किया जा सकता है।

(2) अधिकतम प्रतिफल का उद्देश्य (Objects of maximum returns) :–

वित्तीय प्रणाली के उद्देश्यों की द्वितीय कड़ी के रूप में अधिकतम प्रत्याय दर को सम्मिलित किया जाता है। किसी भी व्यावसायिक संस्था की पूँजी संरचना में समता अंश पूँजी के अतिरिक्त पूर्वाधिकार अंशधारियों एवं ऋणपत्रधारकों द्वारा भी पूँजी को विनियोजन किया जाता है। इनके आर्थिक हितों को सुरक्षा प्रदान करना भी व्यावसायिक वित्त प्रबन्धक का कर्तव्य होता है। ऋणपत्रधारियों को उनके द्वारा विनियोजित पूँजी पर ब्याज का नियमित भुगतान, पूर्वाधिकार अंशधारियों को पूर्वाधिकार लाभांश का नियमित भुगतान एवं समता अंशधारियों की प्रति अंश (**EPS**) में वृद्धि के साथ–साथ अंशों के बाजार मूल्य में वृद्धि को इनके हितों की सुरक्षा माना जाता है। अतः इन सभी पक्षकारों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि ऐसी वित्तीय प्रणाली द्वारा उचित प्रबन्धकीय कार्यों को सम्पादित किया जाये जिससे विनियोजित पूँजी पर अधिकतम प्रत्याय दर की प्राप्ति हो सके।

(3) मूल्य अधिकतमीकरण का उद्देश्य (Objects of Worth Maximisation) :–

सोलोमन इज़रा के अनुसार, "**वित्तीय प्रणाली का मुख्य उद्देश्य धन का अधिकतमीकरण है।**" यहाँ पर धन के मूल्य अधिकतम (**Value maximisation**) करने अथवा सम्पत्तियों के शुद्ध वर्तमान मूल्य अधिकतम करने (**Net Present value maximisation**) से लगाया जाता है। **प्रो. इरविन फ्रेण्ड** भी इस मत के समर्थक थे उनके अनुसार, "वित्तीय प्रणालियों का उद्देश्य विशुद्ध सम्पत्तियों के मूल्यो में वृद्धि करना है। विशुद्ध सम्पत्तियों के मूल्यों में अभिवृद्धि से विनियोग मूल्यों में वृद्धि हो जायेगी तथा इसके परिणामस्वरूप अंशों के बाजार मूल्य में स्वतः ही वृद्धि हो जायेगी। यह उद्देश्य लाभ अधिकतमीकरण उद्देश्य की तुलना में अधिक उपयुक्त माना जाता है, क्योंकि इसके अन्तर्गत रोकड़ आगमों (**Cash inflows**) के आधार पर गणना कार्य किया जाता है, जिसके कारण लेखांकन लाभों की अस्पष्टता एवं संदिग्धता से छुटकारा मिल जाता है। मुद्रा प्रसार के कारण मुद्रा की क्रय–शक्ति में जो कमी आती है, उसका

समायोजन शुद्ध वर्तमान मूल्य पद्धति द्वारा हो जाता है। यह उद्देश्य प्रबन्धकों की योग्यता एवं कार्यकुशलता का मापक भी होता है।

3.2.1 वित्तीय प्रणालियों का महत्व (Importance of Financial System) :–

'वित्त' आधुनिक औद्योगिक संरचना का जीवन रक्त है। यह समस्त व्यावसायिक क्रियाओं का मूलाधार बिन्दु है। जिस प्रकार एक स्वस्थ शरीर हेतु पर्याप्त रक्त का होना आवश्यक समझा जाता है, ठीक उसी प्रकार एक स्वस्थ व्यावसायिक संस्था में पर्याप्त वित्त की मात्रा का होना अत्यन्त आवश्यक है। विश्व का कोई भी देश पर्याप्त वित्त के अभाव में समुचित विकास की कल्पना भी नहीं कर सकता है। **प्रो. इरविन फ्रेण्ड के अनुसार, ''एक फर्म की सफलता, यहाँ तक कि उसका अस्तित्व उसकी कार्यक्षमता एवं उत्पादन करने की इच्छा, स्थायी एवं कार्यशील पूँजी में विनियोग करने की क्षमता पर्याप्त सीमा तक उसकी विगत एवं वर्तमान नीतियों द्वारा ही निर्धारित होती है।''** कुछ इसी प्रकार के विचार **प्रो. सोलोमन इज़रा** द्वारा भी व्यक्त किये गये हैं, उनके अनुसार, ''**वित्तीय प्रणालियों के माध्यम से आज केवल कोषों के संग्रहण करने की एक विशिष्ट क्रिया मात्र ही नहीं है, अपितु सम्पूर्ण प्रबन्धकीय विज्ञान का एक अभिन्न अंग बन गया है। यह कोषों के एकत्रीकरण के साथ–साथ उत्पादन विपणन एवं निर्णयन से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित रहता है।''** वित्तीय प्रणालियों के बढ़ते हुए महत्व को देखते हुए **हसबैण्ड एवं डाकरी** ने अपनी परिभाषा में विश्लेषण किया है, ''विभिन्न आर्थिक एवं व्यावासयिक गतिविधियों को एक सूत्र में पिरोने के लिए किसी प्रणाली की आवश्यकता होती है जो उन्हें सुचारू रूप से निर्देशित कर सके और व्यावसायिक प्रणालियाँ एकमात्र शक्तिशाली साधन है, जो इस कार्य को बखूबी से पूर्ण करता है।''

इसके आधार पर यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि **व्यावसायिक प्रणालियाँ समस्त व्यापार, वाणिज्य एवं उद्योग की आत्मा है। इन प्रणालियों के माध्यम से उपलबध 'वित्त' व्यावसायिक संचालन का आधारभूत तत्व होने के कारण व्यवसाय का कोई भी अंग व्यावसायिक प्रणालियों के महत्व से अछूता नहीं रहता हैं।** संक्षेप में, व्यावसायिक प्रणालियों का महत्व निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है–

(1) व्यावसायिक प्रबन्धकों के लिए महत्व (Importance for business managers) :–

वित्तीय प्रणाली का सर्वाधिक महत्व व्यावसायिक प्रबन्धकों के लिए ही परिलक्षित होता है। व्यावसायिक प्रणालियाँ प्रबन्धकों को विवेकपूर्ण कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करता है। संस्था में विनियोक्ताओं द्वारा विनियोजित पूँजी का कुशलतम उपयोग तभी सम्भव है, जबकि प्रबन्धक वर्ग वित्तीय प्रबन्ध की विभिन्न तकनीकि विधियों के विश्लेषण के उपरान्त संस्था के हित में कोई निर्णय लेने में समर्थ होते हैं। व्यावसायिक प्रणालियाँ के गहन अध्ययन के पश्चात् ही वे अपने इस उत्तरदायित्व के साथ न्याय कर सकते हैं। अतः यह व्यावसायिक प्रबन्धकों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण तकनीकि प्रणाली है।

(2) विनियोक्ताओं के लिए महत्व (Importance for investors) :–

वित्तीय प्रणालियों द्वारा उपलब्ध वित्तीय संसाधन विनियोक्ताओं को अपनी विनियोजित पूँजी पर अधिकतम प्रत्याय अर्जित करने का अवसर प्रदान करता है। विनियोक्ता–विनियोग से पूर्व विभिन्न विकल्पों पर लाभदायकता का निर्धारण करके उचित विकल्प को अपनाकर पूँजी विनियोजित करते हैं। संस्था का सर्वश्रेष्ठता तभी सिद्व होगी जबकि संस्था के प्रबन्धक वित्तीय तकनीकि की मद्द से लाभ अधिकतमीकरण की नीति को अपनाते हैं। लाभ के अधिक होने पर संस्था ऊँचा भुगतान अनुपात निश्चित करके विनियोक्ताओं के हितों को सुरक्षा प्रदान कर सकती है।

(3) कर्मचारियों के लिए महत्व (Importance for employees) :–

वित्तीय प्रबन्धन में कुशलता एवं विवेकपूर्ण रीतियों से वित्त का प्रयोग किया जाता है। इससे उत्पादन में वृद्धि, गुणवत्ता में सुधार एवं विक्रय में वृद्धि होती है। इसके फलस्वरूप संस्था का सम्पूर्ण लाभ अप्रत्याशित रूप से बढ़ जाता है। संस्था के लाभों में वृद्धि से कर्मचारियों के वेतन, भत्ते एवं बोनस में भी वृद्धि होती है। संस्था कर्मचारी हितों को ध्यान में रखकर अधिक धन श्रमिक कल्याण पर व्यय करके कर्मचारियों के मनोबल को बढ़ाने का प्रयास करती है।

(4) बैंकों एवं विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं के लिए महत्व (Importance for banks and other financial institutions) :–

बैंक एवं अन्य विशिष्ट वित्तीय संस्थायें कोषों के संग्रहण एवं उनके विनियोजन हेतु वित्तीय प्रणाली के ज्ञान की प्राप्ति करते हैं। इसके अभाव में ये बैंक एवं वित्तीय संस्थायें अपने निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में विफल रहती है। अतः कुशलतापूर्वक वित्त के विनियोजन हेतु इन संस्थाओं के प्रबन्धकों को वित्तीय प्रणालियों की पूर्ण जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है।

(5) अंशधारियों के लिए महत्व (Importance for shareholders) :–

अंशधारियों को व्यावसायिक वित्त के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान है तो वे संस्था की वित्तीय स्थिति का स्वयं मूल्याकंन करके अपने हितों की सुरक्षा स्वयं कर सकते हैं। संस्था के संचालकों को अंशधारी उचित लाभांश नीति अपनाने हेतु विवश कर सकते हैं एवं उचित वित्तीय प्रणाली के अनुपालन हेतु संचालकों को बाध्य भी कर सकते हैं।

(6) सरकार के लिए महत्व (Importance of Government) :–

वित्तीय प्रणालियों में 'लोक वित्त' का भी अध्ययन किया जाता है। इसके द्वारा सरकार को लोक व्यय, लोक आगम एवं लोक ऋणों के सम्बन्ध में ज्ञान की प्राप्ति होती है। सरकार अधिकतम कल्याणकारी व्ययों पर अधिक वित्त का विनियोजन करती है, जिससे सामाजिक कल्याण में अभिवृद्धि होती है। अतः व्यावसायिक वित्त प्रबन्ध एवं वित्तीय प्रणालियों के अभाव में कोई भी सरकार लोक कल्याण के व्ययों को नहीं कर सकती है। अतः सरकार एवं उसके अंशधारियों को वित्तीय प्रणालियों के विशद अध्ययन एवं ज्ञान की आवश्यकता प्रतीत होती है।

(7) अन्य पक्षकारों के लिए महत्व (Importance for other parties) :–

व्यावसायिक प्रणालियों स्वरूप सार्वभौमिक एवं सर्वव्यापकता का पुट लिये हुए होते हैं। अतः इसका सम्बन्ध प्रत्येक क्रिया, पक्षकार एवं उसके परिणाम से होता है। अन्य पक्षकारों के अन्तर्गत वाणिज्य विषय से सम्बन्धित विद्यार्थी,

अर्थशास्त्रवेत्ता, राजनीतिज्ञ, आदि को सम्मिलित करते हैं, इन्हें भी वित्तीय प्रणालियों के सिद्धान्तों का पूर्ण होना आवश्यक है, क्योंकि इसके अभाव में वे देश की आर्थिक समस्याओं को समझने, विश्लेषण करने एवं सुलझाने में अपने को असमर्थ होंगे। अतः उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि व्यावसायिक क्रियाओं के संचालन में वित्तीय प्रणलियों का योगदान है, वहीं लोक कल्याण से सम्बन्धित क्रियाओं का सम्पादन भी इसके बिना नहीं किया जा सकता है। **इस प्रकार वित्तीय प्रणाली, एक ऐसी धुरी है जिसके चारो ओर सभी व्यावसायिक क्रियायें, विनियोक्तागण, अंशधारी, कर्मचारी समूह, सरकार, बैंक एवं वित्तीय संस्थायें, अर्थशास्त्री, राजनीतिज्ञ एवं विद्यार्थी सभी गोलाकार घूमते नजर आते हैं।**

3.3 वित्त पूर्ति के स्त्रोत (Sources of Finance Supply)

किसी भी योजना को मूर्तरूप प्रदान करने हेतु 'वित्त' की आवश्यकता परिलक्षित होती है। 'वित्त' वह धुरी है, जिसके चारों ओर समस्त व्यावहारिक क्रियायें चक्कर काटती हैं। वित्त के अभाव में अच्छी से अच्छी योजना को भी दम तोड़ते हुए देखा जा सकता है। इस प्रकार वित्त आधुनिक व्यवसाय का मूलाधार बिन्दु है। वित्त की अपर्याप्तता किसी भी उपक्रम की योजनाओं की असफलता का मुख्य कारण होती है। अतः वित्त की उपलब्धता ही अपने में पर्याप्त नहीं होती है, बल्कि वित्त की आवश्यकता के साथ उपलब्धता एवं पर्याप्तता का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। इसके नियोजन हेतु वित्तीय नियोजन का सहारा लिया जाता है, जिसमें वित्तीय प्रबन्धक वित्त आवश्यकता एवं वित्त के साधनों का पूर्वानुमान लगाते हैं। वित्त की आवश्यकता की पूर्ति हेतु प्रबन्धक विभिन्न वित्तीय साधनों का चुनाव कर सकते हैं, लेकिन वित्त के साधनों के चुनाव से पूर्व वित्तीय साधन की प्रकृति की जाँच की जायेगी। संस्था की अल्पकालीन आवश्यकता को दीर्घकालीन प्रकृति वाले वित्तीय साधन से पूर्ण नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकता को किसी भी दशा में अल्पकालीन साधनों से पूरा करना संस्था के लिए एक आत्मघाती कदम होगा।

यहाँ पर विभिन्न वित्त पूर्ति के साधनों का विश्लेषण किया जा रहा है।

3.3.1. वित्तीय आवश्यकता के प्रकार (Types of Financial Requirements) :–

जैसा कि इससे पूर्व अध्याय में भी बताया गया है कि संस्था की वित्तीय आवश्यकता को समयानुसार तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है। इसके विभाजन हेतु कोई आधारभूत नियम एवं सिद्धान्त नहीं हैं। पश्चिम बंगाल में राज्य औद्योगिक वित्त निगम द्वारा 1951 में स्थापित समिति ने इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये थे। उन्हीं के विचारों को आधारभूत सिद्धान्त मानकर वर्तमान में वित्तीय प्रबन्धक वित्तीय आवश्यकता को निम्नानुसार तीन श्रेणियों में वर्गीकृत करते हैं–

(1) अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकता (Short-term Financial Requirement):–

समिति के अनुसार, ''एक वर्ष अवधि तक की वित्तीय आवश्यकता को अल्पकालीन वित्त कहा जाता है।'' इसके अन्तर्गत संस्था के उन व्ययों को सामान्यतया सम्मिलित किया जाता है, जो संस्था के दिन–प्रतिदिन के कार्यों को

संचालित करने हेतु अति आवश्यक होते हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति संस्था कार्यशील पूँजी (**Working Capital**) की मद्द से करती है। कार्यशील पूँजी का निर्धारण चालू सम्पत्तियों (**Current Assets**) में से चालू दायित्वों (**Current Liabilites**) को घटाकर किया जाता है। अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति में सामान्यतः बैंक ऋणों, बैंक अधिविकर्षों, देनदारों एवं प्राप्यों से वसूल की गयी राशि, याचना पर ऋण (**Calls on credit**) एवं प्रतिधारित लाभों की राशि (**Retained Earnings**) को सम्मिलित किया जाता है।

(2) **मध्यमकालीन वित्तीय आवश्यकता (Medium-term Financial Requirement)** :–

इसके अन्तर्गत, ''एक वर्ष से लेकर दस वर्ष अवधि तक की वित्तीय आवश्यकता को मध्यमकालीन वित्त की श्रेणी में रखा जाता है''। ''**Medium term credits as those advanced for a periods ranging from one year to ten years".** कुछ विद्वानों को इस वर्गीकरण की उच्चतम सीमा पर आपत्ति है, उनके अनुसार मध्यमकालीन वित्तीय आवश्यकता के अन्तर्गत एक वर्ष से लेकर तीन अथवा पाँच वर्ष तक की अवधि को ही सम्मिलित किया जाना चाहिए। मध्यमकालीन वित्तीय आवश्यकता के अन्तर्गत संस्था के उन व्ययों को सम्मिलित करते हैं, जिन्हें न तो पूर्ण रूप से परिवर्तनशील और न ही स्थायी व्ययों की परिधि में रखा जाता है। इसके अन्तर्गत सम्पत्तियों के प्रतिस्थापन, रख–रखाव, शोध एवं विकास कार्यों हेतु वित्त की आवश्यकता कार्यशील पूँजी की बढ़ी हुई आवश्यकता, स्थायी सम्पत्तियों को क्रय करने हेतु वित्त की आवश्यकता, आदि वित्तीय आवश्यकताआं को सम्मिलित करते हैं। मध्यमकालीन वित्त पूर्ति के साधनों में वाणिज्यिक बैंकों से ऋण, जन–निक्षेप (**Public Deposits**), अंश पूँजी, शोध्य ऋण–पत्रों का निर्गमन, विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं से ऋण आदि को सम्मिलित करते हैं।

(3) **दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकता (Long-term Financial Requirement)** :–

इसके अन्तर्गत, ''दस वर्ष या उससे अधिक अवधि वाली वित्तीय आवश्यकता को दीर्घकालीन वित्त की श्रेणी में सम्मिलित करते हैं।'' **Long term credits as those advanced made for periods ten or over ten years".** दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकता दस वर्ष से तीस वर्ष या उससे भी अधिक अवधि हेतु हो सकती है। इसकी अधिकतम समय सीमा पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता उस संस्था को सर्वाधिक होती है, जिसकी वर्तमान में स्थापना, समामेलन, एवं प्रवर्तन हो रहा है। संस्था प्रारम्भिक व्ययों की पूर्ति हेतु, स्थायी सम्पत्तियों के क्रय हेतु एवं संस्था के विस्तार हेतु दीर्घकालीन साधनों से वित्त जुटाती है। दीर्घकालीन वित्त पूर्ति के साधनों में अंशी पूँजी का निर्गमन (समता एवं पूर्वाधिकार), दीर्घकालिक ऋणों का सृजन एवं लाभों का पुर्नविनियोग (**Ploughing back of profits**), आदि को सम्मिलित करते हैं।

3.3.2 भारत में संस्थागत वित्त प्रबन्धन (Institutional Financing in India) :–

मध्यमकालीन एवं दीर्घकालीन वित्त के प्रबन्धन हेतु संस्था को अपने आन्तरिक स्रोतों के अतिरिक्त वित्तीय संस्थाओं पर भी निर्भर रहना पड़ता है। भारत जैसे अल्पविकसित देश में औद्योगिक विकास हेतु विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं की आवश्यकता परिलक्षित होती है। औद्योगिक वित्त निगम जाँच समिति, 1953 ने अपनी व्याख्या में स्पष्ट रूप से लिखा है कि, **उद्योगों को दीर्घकालीन वित्त की पूर्ति हेतु विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं की महत्ती आवश्यकता है, क्योंकि यहाँ एक ओर तो विकसित पूँजी बाजार की कमी है, वहीं दूसरी ओर निक्षेप पद्धति पर आधारित वाणिज्यिक बैंक औद्योगिक वित्त पूर्ति करने में असमर्थ है"।**

देश के स्वतंत्र होने के पश्चात् औद्योगिक नीति के अनुरूप तीव्र आर्थिक विकास की परिकल्पना को साकार रूप देने के लिए संस्थागत वित्त प्रबन्धन की आवश्यकता परिलक्षित हुई। उस समय देश में परम्परागत पद्धति पर आधारित उद्योग धन्धे तो बहुतायत में थे, लेकिन आधारभूत पूंजीगत उद्योगों का अभाव था। उन्नत तकनीकों के क्रय हेतु, नवीनतम मशीनों एवं कल–पुर्जों की स्थापना हेतु बहुत बड़ी मात्रा में पूंजी की आवश्यकता थी। भारतीय पूंजी का स्वभाव प्रारम्भ से ही बेलोचदार था, अतः इस वित्तीय आवश्यकता को आन्तरिक स्रोतों से पूर्ण किया जाना लगभग असम्भव ही था। अतः इस मध्यमकालीन एवं दीर्घकालीन वित्त की पूर्ति हेतु वित्तीय संस्थाओं की स्थापना भारत सरकार द्वारा समय–समय पर की गयी।

संस्थागत वित्त प्रबन्धन का अर्थ (Meaning of Institutional Financing) :–

जब कोई व्यावसायिक संस्था सरकार द्वारा स्थापित वित्तीय संस्थाओं से मध्यमकालीन एवं दीर्घकालीन ऋण करती है तो उसे संस्थागत वित्त प्रबन्धन कहा जाता है।

3.3.3 भारत में संस्थागत वित्तीय संस्थाओं का महत्व अथवा आवश्यकता (Importance or Needs of Institutional Financing in India)

भारत में संस्थागत वित्तीय संस्थाओं का महत्व अथवा आवश्यकता निम्न कारणों से परिलक्षित होती है–

(1) पूंजी निर्माण की निम्न दर (Low rate of Capital formation) :–

भारत में पूर्वकाल में पूंजी निर्माण की निम्न दर के कारण संस्थाओं को वित्त की आपूर्ति अपने आन्तरिक स्रोतों से पूर्ण करना लगभग असम्भव था। अतः दीर्घकालीन वित्त की पूर्ति हेतु व्यावसायिक प्रतिष्ठानों को ऐसी संस्थाओं की आवश्यकता महसूस हुई जो उनकी इस आवश्यकता को पूर्ण कर सके। संस्थागत वित्तीय संस्थानों द्वारा अब यह सम्भव हो पाया है।

(2) संगठित पूंजी बाजार की कमी पूर्ण करना (To fulfill the lack of organized capital market) :–

संस्थागत वित्तीय प्रबन्धन का महत्व इसलिए भी भारत में बहुत अधिक बढ़ गया है, क्योंकि भारत में संगठित पूंजी बाजार का प्रारम्भ से ही अभाव रहा

है। औद्योगिक वित्त निगम जांच समिति, 1953 ने भी अपनी आख्या में यह स्पष्ट रूप से लिखा था कि यहाँ विकसित पूंजी बाजार का सर्वथा अभाव है एवं कार्यरत वाणिज्यिक बैंक भी इन संस्थाओं की वित्त की मांग को पूर्ण करने में असमर्थ हैं। इन कारणों के कारण संस्थागत वित्त प्रबन्धन का महत्व भारत में और अधिक बढ़ गया है।

(3) भारतीय पूंजी का शर्मिला (बेलोचदार) होना (Shyness of Indian Capital) :–

भारतीय पूंजी को स्वतंत्रता के पश्चात् भी बेलोचदार माना गया है। इसके पीछे भारतीय विनियोजकों का भारतीय उद्योगों में रूचि नहीं लेना, इसका मुख्य कारण था। भारतीय विनियोजक कम जोखिम एवं परम्परागत उद्योगों में ही विनियोग करना अधिक उपयुक्त समझते थे। इस परिस्थिति में नवीन प्राविधियों वाले उद्योगों हेतु पूंजी का अभाव सदैव परिलक्षित होता था। अतः पूंजी की आपूर्ति हेतु ऐसी वित्तीय संस्थाओं की आवश्यकता प्रतीत होने लगी।

(4) नियोजित अर्थव्यवस्था में महत्व (Importance in Planned Economy) :–

देश के आजाद होने के पश्चात 1948 में प्रथम औद्योगिक नीति बनायी गयी। इसमें तीव्र आर्थिक विकास के साथ–साथ नियोजित रूप से विकास की परिकल्पना पर भी बल दिया गया। पूंजी की मांग एवं पूर्ति में सामंजस्य स्थापित करने हेतु संस्थागत वित्त प्रबन्धन की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। इस आवश्यकता को पूर्ण करने हेतु वित्तीय संस्थाओं की स्थापना की गयी।

(5) उद्योगों के आधुनिकीकरण हेतु (For the modernisation of insdustries) :–

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश में आर्थिक विकास की गति को तेज करने हेतु परम्परागत उद्योगों के स्थान पर नवीन प्राविधियों वाले उद्योगों की स्थापना पर अधिक बल दिया जाने लगा। इस हेतु बहुत बड़ी मात्रा में पूंजी की आवश्यकता थी। जिसे संस्थायें अपने आन्तरिक एवं घरेलू स्रोतों से पूर्ण कर पाने में असमर्थ थी। अतः इन्हें ऐसी संस्थाओं की आवश्यकता प्रतीत होने लगी, जो इनकी दीर्घकालीन वित्तीय नियोजन ऋण उपलब्ध करा सके। अतः संस्थागत वित्तीय प्रबन्धन द्वारा इन संस्थाओं को ऋण उपलब्ध कराया गया।

(6) समता पर व्यापार के लाभ प्राप्त करने हेतु (To get gains of Trading on Equity) :–

संस्था के प्रबन्धकों का यह उद्देश्य रहा है कि समता पर व्यापार के लाभों को उठाया जाये। इस हेतु संस्था के प्रबन्धक कम स्वामी पूंजी एवं अधिकाधिक बाह्य अर्थात् ऋण पूंजी का प्रयोग करना चाहते हैं। बाह्य पूंजी की आवश्यकता की पूर्ति ऋणपत्रों, ऋणों एवं वित्तीय संस्थाओं से ऋण लेकर पूर्ण की जाती है, अतः संस्थागत वित्तीय प्रबन्धन की आवश्यकता प्रतीत होने लगी।

(7) प्राथमिक उद्योगों की स्थापना हेतु (To establishment of primary industries) :–

स्वतंत्रता के समय देश में आधारभूत प्राथमिक उद्योगों का सर्वथा अभाव था। प्राथमिक उद्योगों की स्थापना हेतु वृहद स्तर पर पूंजी की आवश्यकता होती है जिसे संस्थागत वित्तीय संस्थाओं द्वारा ही पूर्ण किया जा सकता है।

3.3.4 संस्थागत वित्त प्रबन्धन के दोष अथवा कमियाँ (Demerits or Shortcomings of Institutional Financing)

संस्थागत वित्त प्रबन्धन के जहाँ कई लाभ हैं, वहीं उसके कई दोष भी दिखायी देते हैं। यह दोष वास्तव में संस्थागत वित्तीय संस्थाओं के न होकर उनके दोषपूर्ण वित्तीय प्रबन्धन के कारण उत्पन्न हुए हैं। इन दोषों का संक्षिप्त विश्लेषण अग्र प्रकार है–

(1) क्षेत्रीय असन्तुलन को बढ़ावा (To Increase in regional imbalance) :–

वित्तीय संस्थाओं द्वारा जो वित्तीयन किया गया है वह प्रबन्ध की दोषपूर्ण नीति के कारण क्षेत्रीय असन्तुलन को बढ़ाने वाला रहा है। इसके वित्तीयन का लगभग 65 प्रतिशत ऐसे क्षेत्रों में किया गया जो पहले से ही विकसित थे, शेष 35 प्रतिशित का वित्तीयन पिछड़े क्षेत्रों की विपन्नता दूर करने हेतु किया गया।

(2) बड़े औद्योगिक समूह की सहायता (Assistance to big industrial Groups) :–

वित्तीय संस्थाओं द्वारा मध्यम एवं लघु आकार की इकाईयों की पूर्ण उपेक्षा की गयी। इनके वित्तीय का 95 प्रतिशत अथवा उससे अधिक हिस्सा बड़े–बड़े औद्योगिक घरानों की स्वीकृत किया गया। मध्यम एवं लघु आकार की इकाईयों को ऋृण स्वीकृत नहीं करने के पीछे इन वित्तीय संस्थाओं का यह तर्क रहता है कि उन्हें वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना राज्य वित्त निगमों के क्षेत्र में आता है जबकि बड़े औद्योगिक घरानों को आर्थिक सहायता उपलब्ध कराने से स्वस्थ प्रतिस्पर्धा उत्पन्न होने के बजाय एकाधिकार को ही बढ़ावा मिलता है।

(3) ब्याज दरों में भिन्नता (Variation in interest rates) :–

इन वित्तीय संस्थाओं द्वारा उपलब्ध करायी जाने वाली आर्थिक सहायता की ब्याज दरों में भिन्नता पायी जाती है। ब्याज दरों का निर्धारण दोषपूर्ण है। वित्तीय संस्थाओं द्वारा ब्याज निर्धारण में अपनी लागत को तो ध्यान में रखा जाता है लेकिन ऋृण लेने वाली औद्योगिक इकाई की ब्याज देय क्षमता को बिल्कुल ध्यान में नही रखा जाता है।

(4) अनुचित प्रभाव (Undue Pressure) :–

औद्योगिक इकाइयां आर्थिक सहायता प्राप्त करने के पश्चात इन वित्तीय संस्थाओं के अनुचित प्रभाव में रहती हैं। इस प्रकार ये संस्थायें औद्योगिक इकाईयों की स्वतंत्रता का हनन करती हैं, उनके निर्णयों में अनावश्यक हस्तक्षेप करके स्वतंत्र निर्णयन बाधा उत्पन्न करती है।

(5) केवल सुरक्षित उद्योगों को ही वित्तीय सहायता (Financial Assistance to safe industires only) :–

वित्तीय संस्थायें आर्थिक सहायता उपलब्ध कराने से पूर्व उद्योगों की आर्थिक स्थिति, उसकी शोधन क्षमता एवं समपार्श्विक प्रतिभूतियों का मूल्याकंन करती है। सभी बिन्दुओं पर आश्वस्त होने के उपरान्त ही ये वित्तीय संस्थायें आर्थिक सहायता स्वीकृत करती हैं। उन औद्योगिक इकाईयों को ऋृण स्वीकृत नहीं किया जाता है जिनकी आर्थिक स्थिति सही नहीं है, अतः वे औद्योगिक

इकाईयों जिन्हें आर्थिक सहायता की आवश्यकता है, आर्थिक सहायता के अभाव में ही दम तोड़ देती हैं।

(6) कार्य की जटिल प्रक्रिया (Complex process of work) :–

वित्तीय संस्थाओं की कार्य प्रणाली अधिक दुरूह होने के कारण सभी औद्योगिक संस्थायें इनका लाभ नहीं उठा पाती हैं। आर्थिक सहायता हेतु आवेदन–पत्रों के निर्णय लेने की प्रक्रिया में इतना विलम्ब हो जाता है कि इसके आधार पर तैयार की गयी योजना का स्वरूप भी सहायता स्वीकृत होने तक परिवर्तित हो जाता है।

(6) पूंजी का अभाव (Lack of capital) :–

इन वित्तीय संस्थाओं के समक्ष प्रारम्भ से ही पूंजी का अभाव रहा है। पूंजी की कमी को दूर करने हेतु इन्हें सदैव सरकारी सहायता पर निर्भर रहना पड़ता है। इन वित्तीय संस्थाओं ने कभी भी खुले बाजार से पूंजी एकत्र करने का प्रयास ही नहीं किया। अभी हाल में ही कुछ वर्षों में कुछ वित्तीय संस्थाओं कम्पनियों द्वारा खुले बाजार से पूंजी एकत्र करने के सार्थक प्रयास किये गये हैं।

3.4 वित्तीय प्रणाली एवं आर्थिक विकास (Financial System and Economic Development)

आर्थिक विकास में वित्तीय प्रणाली का महत्व लगातार बढ़ता जा रहा है। आर्थिक विकास की संकल्पना का आधार वित्तीय साधनों की उपयोगिता पर निर्भर करता है, किन्तु वित्तीय साधनों के लिए पर्याप्त कोष उपलब्ध होना चाहिए। कोषों में वृद्धि एवं निरन्तर वित्तीय आपूर्ति सुदृढ़ वित्तीय प्रणाली के द्वारा ही सम्भव है। वित्तीय प्रणाली कोषों में वृद्धि के लिए वित्तीय संस्थाओं की स्थापना, इनके कार्यक्षेत्र में विस्तार तथा निवेश के साधनों को बढ़ाने पर बल देती है। वित्तीय प्रणाली मौद्रिक नीति के माध्यम से सस्ती ब्याज दर पर वित्त प्रदान करती है एवं निवेश के अनेक अवसर उपलब्ध कराती है। आर्थिक विकास के लिए विदेशी विनिमय प्राप्त होना आवश्यक है। साथ ही विनिमय दर में स्थिरता लोने तथा भुगतान सन्तुलन को पक्ष में लाने के उपाय करना भी आवश्यक है। वित्तीय प्रणाली पूंजी निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। आर्थिक विकास की गति वृद्धि करने में पूंजी निर्माण अत्यन्त सहायक होता है। पूंजी निर्माण से उत्पादन में वृद्धि होती है। उत्पादन में वृद्धि के कारण आय में वृद्धि होती है। आय से बचत में वृद्धि होती है तथा बचतों का निवेश वित्तीय संस्थाओं में किया जाता है। वित्तीय संस्थायें ऋण देकर पुनः निवेश की प्रक्रिया को अपनाती है और इस प्रकार प्रकार आर्थिक विकास का यह चक्र निरन्तर गतिमान रहता है।

आर्थिक विकास का चक्र

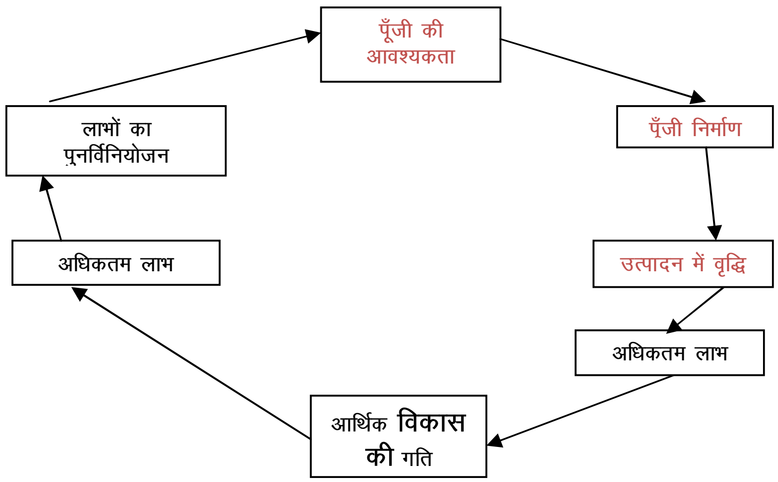

3.4.1 वित्तीय प्रणाली एवं पूंजी निर्माण की प्रक्रिया (Financial System and Capital Formation Procedure)

आर्थिक विकास के लिए पूंजी निर्माण का होना अत्यन्त आवश्यक होता है। जहाँ पूंजी निर्माण की दर अधिक होती है वहाँ आर्थिक विकास तीव्र गति से होता है। पूंजी निर्माण, सकल स्थायी पूंजी निर्माण तथा स्टॉक में वृद्धि के रूप में होती है।

पूंजी के निर्माण के लिए निम्न प्रक्रिया है–

(1) **बचत (Saving)** :– सम्पूर्ण आय को उपभोग वस्तुओं पर व्यय न करके जो बचत की जाती है उसे **'बचत'** कहते हैं। **कीन्स** के अनुसार, **'आय का उपभोग की तुलना में आधिक्य ही बचत कहलाता है।'**

आय एवं बचत का प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। यदि आय में वृद्धि होती है तो बचत में भी वृद्धि होगी। आय में कमी होने से बचत में भी कमी परिलक्षित होगी। इसे बचत की प्रवृत्ति कहते हैं। पूंजी निर्माण की प्रक्रिया में बचत प्रवृत्ति का विशेष महत्व है। घरेलू बचत किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है।

3.4.2 निवेश एवं पूंजी निर्माण (Investment and Capital Formation)

निवेश को **'वास्तविक पूंजी'** माना जाता है इसके अन्तर्गत मशीनरी, भवन, सड़क, रेल, पुल बांध आदि के निर्माण पर व्यय की गयी राशि को शामिल किया जाता है। इसे पूंजी निर्माण भी कहा जाता है। निवेश की आय, रोजगार एवं उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान रखता है। अधिक पूंजी निवेश उत्पादकता में वृद्धि करता है एवं मांग तथा पूर्ति में वृद्धि करके सामंजस्य स्थापित करता है, जिससे आर्थिक विकास के दीर्घकालीन उद्देश्यों को पूरा किया जा सकता है।

3.4.3 वित्तीय प्रणाली एवं मौद्रिक नीति (Financial System and Monetary Policy)

किसी भी देश के आर्थिक विकास में उस देश की मौद्रिक नीति की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। मौद्रिक नीति में ब्याज दर को नियंत्रित करके पूंजी निवेश को बढ़ाया जाता है जिससे आर्थिक विकास को प्रोत्साहन मिलता है, ऐसी मौद्रिक नीति अपनाने की आवश्यकता पड़ती है जो निवेश को प्रोत्साहित करने के

साथ–साथ मुद्रा स्फीति को नियंत्रित कर देश के आर्थिक विकास की दिशा में कार्य करे। आर्थिक विकास बढ़ाने के लिए मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य कीमतों को स्थिर रखना, विनिमय दर में स्थिरता स्थापित करना, भुगतान शेष में सन्तुलन स्थापित करना आदि को सम्मिलित करते हैं।

(1) **कीमतों को स्थिर करना (Stability of Price)** :– आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है कि वस्तुओं की कीमतों में स्थिरता बनाये रखी जाये। यह कार्य मौद्रिक नीति द्वारा सम्पादित किया जाता है। मुद्रा की मांग एवं पूर्ति में सन्तुलन करके वस्तुओं की कीमत में स्थिरता स्थापित की जा सकती है। आर्थिक विकास के कारण पूंजी की मांग कृषि एवं उद्योग क्षेत्र के लिए अधिक होती है। इसी प्रकार व्यावसायिक गतिविधियों के लिए भी पूंजी की मांग में वृद्धि वृद्धि हो रही है, कीमतों में स्थिरता के लिए पूंजी की पूर्ति को बढ़ाना पड़ता है।

(2) **भुगतान–सन्तुलन को ठीक करना (To correct the Balance of Payment)** :– मौद्रिक नीति भुगतान–सन्तुलन को ठीक करने में भी सहायक होती है। भुगतान–सन्तुलन उस समय अनुकूल माना जाता है जबकि आयात की तुलना में निर्यात अधिक हो। आर्थिक विकास के लिए पूंजी संरचना पर भी ध्यान केन्द्रित किया जाता है। सिंचाई, विद्युत, परिवहन, उर्वरक, लोहा, इस्पात, रसायन उद्योग आदि के लिए उपकरण, मशीनरी, कच्चामाल, आयात करना पड़ता है जिससे आयात अधिक एवं निर्यात कम होता है और भुगतान प्रतिकूल विपक्ष हो जाता है। मौद्रिक नीति के द्वारा ऊँची ब्याज दर निर्धारित करके इसे ठीक किया जाता है।

(3) **ब्याज दरें (Interest Rate)** :– आर्थिक विकास के लिए बचत आवश्यक है और बचत के लिए ऊँची ब्याज दर का होना अत्यन्त आवश्यक है। इस तरह ब्याज की दरें भी पूंजी के निर्माण की गति को प्रभावित करती है। ऊँची बचत ब्याज दर अनुकूल पूंजी निवेश को प्रोत्साहित करती है।

(4) **स्फीति को नियंत्रित करना (To control inflation)** :– मुद्रा स्फीति नियंत्रण के लिए साख नियंत्रण के उपायों को अपनाना पड़ता है। खुले बाजार की क्रियायें विकसित देशों के लिए उपयुक्त मानी जाती है। विकासशील देशों में कई समस्याओं के कारण इसका प्रयोग कम किया जाता है। बैंक दर नीति भी अविकसित देशों में प्रभावशील नहीं होती। अनुत्पादक कार्यों के लिए साख नियंत्रण के लिए चयनात्मक साख नियंत्रण अधिक उपयुक्त होते हैं। परिवर्तनशील रिजर्व अनुपात मौद्रिक नीति के उपकरण के रूप में कार्य करता है। इसमें बैंकों के पास नकदी की राशि घटती है या बढ़ती है और बैंकों की तरलता भी घटती /बढ़ती रहती है। साख आबंटन को प्रभावित करने तथा निवेश की प्रवृत्ति को प्रभावित करने में मात्रात्मक साख नियंत्रण की अपेक्षा गुणात्मक नियंत्रण अधिक प्रभावशाली होते हैं।

मौद्रिक नीति विकास की गति को बढ़ाने के लिए बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं को स्थापित करेन पर भी बल देती है। सार्वजनिक रूप से ऋण व्यवस्था करने से भी प्रतिभूति बाजार सुदृढ़ होता है। सार्वजनिक ऋणों की मात्रा में वृद्धि एवं ऋण मुद्रा की पूर्ति को नियंत्रित करने के उपायों पर ध्यान देना पड़ता है। सरकारी प्रतिभूतियां सार्वजनिक ऋण व्यवस्था को आकर्षक बनाती हे।

आर्थिक विकास के लिए अर्थव्यवस्था में सुदृढ़ता होना चाहिए तथा मुद्रास्फीति पर नियंत्रण के लिए मौद्रिक नीति ही पर्याप्त नहीं होती वरन् सरकारी की राजकोषीय नीति भी आवश्यक है। अर्थात् दोनों नीतियों के सहयोग से मुद्रास्फीति पर प्रभावशाली नियंत्रण लगाया जा सकता है।

वित्तीय विकास एवं आर्थिक विकास में सम्बन्ध (Relationship of Financial Development and Economic Development)

वित्तीय विकास एवं आर्थिक विकास में आपसी सम्बन्ध होता है। इसके निम्नलिखित कारण हैं–

आर्थिक प्रगति वित्तीय प्रणाली के विस्तार के साथ होती है। यदि देश में प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है तो निवेशक विभिन्न वित्तीय सम्पत्ति या प्रतिभूतियों की मांग करते हैं। आय के निम्न स्तर पर प्रतिभूतियों में निवेश कम होता है। निवेशक वित्तीय सेवाओं की मांग कम करते हैं। वास्तविक आर्थिक वृद्धि के कारण वित्तीय सेवाओं की मांग में तेजी से वृद्धि होती है। यह वित्तीय विकास कहलाता है।

वित्तीय विकास आर्थिक विकास से पूर्व होता है। ऐसी स्थिति में विकास सम्बन्धी नीतियों के क्रियान्वयन का दायित्व अधिकारियों का होता हे। नई–नई वित्तीय संस्थायें प्रारम्भ की जाती हैं। पहले की तुलना में इनकी संख्या भी अधिक होती है। समस्त वित्तीय सेवाओं का संचालन अधिकारियों द्वारा किया जाता है। निवेशक की मांग के अनुसार नये वित्तीय उपकरण प्रारम्भ किये जाते हैं। इनकी सहायता से वास्तविक वृद्धि होती है जिसे कि वित्तीय विकास कहा जाता है।

आर्थिक विकास एवं वित्तीय विकास के बीच प्रत्येक स्तर पर विकास एक जैसा नहीं रहता। विकास की प्रक्रिया के चलते वित्तीय प्रणाली में नये–नये प्रयोग किये जाते हैं। वित्तीय प्रणाली का संचालन अधिकारियों द्वारा किया जाता है। इस प्रकार विकास की प्रक्रिया के दौरान वित्त की मांग बढ़ती है तथा वित्तीय विकास के दौरान वित्त की पूर्ति की जाती है। एक सुसंगठित मुद्रा बाजार समय पर फण्ड उपलब्ध कराता है। फण्ड की मांग–पूर्ति के बीच सन्तुलन स्थापित करता है। इसी प्रकार पूंजी बाजार की विभिन्न गतिविधियों से वित्तीय विकास होता है।

3.5 सारांश

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि वित्तीय प्रणालियाँ किसी भी देश की स्थिरता एवं उसकी प्रगति के मापक का सोपान होती हैं। इन क्रियाओं को अमली–जामा पहनाने हेतु एक 'नियमन तंत्र' की आवश्यकता होती है, जिससे इन क्रियाओं का यथासमय नियमन एवं नियंत्रण किया जा सके। इसी 'नियमन तंत्र' को वित्तीय प्रणाली के रूप में भी जाना जाता है। वित्तीय प्रणाली सामान्यतया आर्थिक क्रियाओं का एक नियमन तंत्र होता है। ये सभी समूह एक दूसरे से अर्न्तसम्बन्धित होते हैं। इस प्रकार वित्तीय प्रणाली वित्तीय साधनों, वित्तीय बाजारों, नियामक उपकरणों, वित्तीय सेवाओं, कार्यविधि एवं व्यवहारों का एक मिश्रित संजाल समूह है, जो एक–दूसरे से परस्पर आन्तरिक तौर पर जुड़े हुए हैं।

3.6 शब्दावली

वित्तीय प्रणाली :– वित्तीय प्रणाली सामान्यतया आर्थिक क्रियाओं का एक नियमन तंत्र होता है। इसके अन्तर्गत वित्तीय संस्थाओं, उपकरणों, सेवाओं, साधनों,

कार्यविधियों, व्यवहारों एवं बाजारों के समूह के रूप में इसको विश्लेषित किया जाता है।

वित्तीय बाजार :– वित्तीय बाजार का सम्बन्ध उस समस्त क्षेत्र से लिया जाता है जहाँ अंशों, ऋणपत्रों, स्टॉक, बॉण्ड, सरकारी प्रतिभूतियों, बैंक चैक, बिल्स आदि का क्रय–विक्रय/लेनदेन किया जाता है।

वित्तीय संस्थाएँ :– वित्तीय संस्थाओं के अन्तर्गत उन समस्त संस्थाओं को सम्मिलित किया जाता है जो जमाओं, बचतों को स्वीकार कर उन्हें एकत्रित करके निवेशकों को निवेश हेतु उपलब्ध कराते हैं।

वित्त पूर्ति :– किसी भी योजना को मूर्तरूप प्रदान करने हेतु 'वित्त' की आवश्यकता परिलक्षित होती है। 'वित्त' वह धुरी है, जिसके चारों ओर समस्त व्यावहारिक क्रियायें चक्कर काटती हैं।

वित्तीय प्रणाली एवं पूंजी निर्माण की प्रक्रिया :–आर्थिक विकास के लिए पूंजी निर्माण का होना अत्यन्त आवश्यक होता है। जहाँ पूंजी निर्माण की दर अधिक होती है वहाँ आर्थिक विकास तीव्र गति से होता है। पूंजी निर्माण, सकल स्थायी पूंजी निर्माण तथा स्टॉक में वृद्धि के रूप में होती है।

वित्तीय प्रणाली एवं मौद्रिक नीति :– किसी भी देश के आर्थिक विकास में उस देश की मौद्रिक नीति की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। मौद्रिक नीति में ब्याज दर को नियंत्रित करके पूंजी निवेश को बढ़ाया जाता है।

नियामक संस्था :– यह वित्तीय प्रणाली के तंत्र को नियमित करने के लिए सर्वोच्च स्थान प्राप्त संस्थाएँ होती है।

कार्यशील पूंजी :–कार्यशील पूँजी का निर्धारण चालू सम्पत्तियों में से चालू दायित्वों को घटाकर किया जाता है।

कार्यशील पूंजी :–आय का उपभोग की तुलना में आधिक्य ही बचत कहलाता है।

निवेश :–निवेश को '**वास्तविक पूंजी**' माना जाता है इसके अन्तर्गत मशीनरी, भवन, सड़क, रेल, पुल बांध आदि के निर्माण पर व्यय की गयी राशि को शामिल किया जाता है।

पूंजी निर्माण :–इसे पूंजी निर्माण भी कहा जाता है।

प्रतिधारित लाभ :–संस्था द्वारा अर्जित लाभ का वह अंश जिसे पुर्नविनियोजित किया गया है।

संस्थागत वित्त :–वित्तीय संस्थाओं द्वारा वित्त आपूर्ति।

भुगतान सन्तुलन :–आयात–निर्यात के मध्य सामंजस्य स्थापित करना।

3.7 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. नियमन तंत्र का अर्थ –
   (क) वित्तीय प्रणाली (ख) आर्थिक विकास (ग) आर्थिक क्रियायें (घ) आर्थिक वातावरण
2. देश का केन्द्रीय बैंक –
   (क) स्टेट बैंक ऑफ इंडिया (ख) रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया
   (ग) सैन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया (घ) इनमें से कोई नहीं
3. पूंजी बाजार में सम्मिलित होते हैं–
   (क) प्रतिभूति बाजार (ख) दीर्घकालिक प्रतिभूति बाजार

(ग) अल्पकालिक प्रतिभूति बाजार (घ) उपरोक्त सभी

4. कार्यशील पूंजी का अर्थ है–

(क) चालू सम्पत्तियाँ (ख)चालू दायित्व

(ग) चालू सम्पत्तियाँ–चालू दायित्व (घ)चालू सम्पत्तियाँ+चालू दायित्व

5. समता पर व्यापार से आशय होता है–

(क) ऋणपत्रों से (ख) समता पूंजी से

(ग) पूर्वाधिकार अंश पूंजी (घ) कम स्वामी पूंजी के प्रयोग एवं अधिकाधिक वाह्य पूंजी के प्रयोग

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. घ, 2. ख, 3. ख, 4, ग, 5. घ,

3.9 स्वपरख प्रश्न

1. वित्तीय प्रणाली से आप क्या समझते हैं? विभिन्न वित्तीय संस्थाओं का वर्णन कीजिए।
2. वित्तीय बाजार क्या है? संगठित एवं असंगठित वित्तीय बाजार को समझाइये।
3. वित्तीय प्रणाली के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
4. वित्तीय प्रणालियों का महत्व बताते हुए वित्त पूर्तिक स्त्रोतों को समझाइये।
5. वित्तीय आवश्यकता के प्रकारों का वर्णन कीजिए।
6. भारत में संस्थागत वित्त प्रबन्धन से आप क्या समझते हैं? इसके महत्व को समझाइये।
7. संस्थागत वित्त प्रबन्धन की कमियों का उल्लेख कीजिए।
8. वित्तीय प्रणाली एवं पूंजी निर्माण की प्रक्रिया को संक्षेप में समझाइये।
9. वित्तीय विकास एवं आर्थिक विकास के मध्य सम्बन्धों को परिभाषित कीजिए।

3.10 सन्दर्भ पुस्तकें

"Financial Management"- M.Y. Khan & P.K. Jain, Tata Mc Graw Hill.

"वित्तीय बाजारों की कार्यप्रणाली"– प्रो0 वी0 पी0 अग्रवाल– साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

"निगमीय लेखांकन"– सी0 एम0 जैन एवं ए0 के0 अग्रवाल– g Master g Educorp, मेरठ।

"प्रबन्ध हेतु वित्तीय विश्लेषण"– डॉ0 ए0 के गर्ग– स्वाती प्रकाशन, बुलन्दशहर।

"निगमीय लेखाविधि"– डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 राजकुमार– नवनीत प्रकाशन, नजीबाबाद।

व्यावसायिक वित्त : डा0 आर0एस0 कुलश्रेष्ठ व डा0 विनय शंकर सिंह

उच्च वित्तीय प्रबन्ध : डा0 एस0पी0 गुप्ता व डा0 बी0 कुमार मित्तल

व्यावसायिक वित्त : डा0 एफ0सी0 शर्मा

वित्तीय प्रबन्ध : डा0 एम0डी0 अग्रवाल व डा0 एन0पी0 अग्रवाल

Financial Management : Dr. I.M. Pandey

वित्तीय प्रबन्ध : डा0 ओसवाल

इकाई–4 पूँजी सरंचना एवं इसका सिंहावलोकन

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 पूँजी संरचनाः अर्थ एवं परिभाषाएँ
4.3 पूँजी संरचना को प्रभावित करने वाले तत्व
4.3.1 आन्तरित तत्व
4.3.2 बाह्य तत्व
4.4 पूँजी संरचना का महत्व
4.5 आदर्श या अनुकूलतम पूँजी संरचना
4.5.1 आदर्श या अनुकूलतम पूँजी संरचना की विशेषताएँ
4.6 अनुकूलतम पूँजी संरचना के चयन के आधार
4.6.1 पूँजी की न्यूनतम औसत लागत
4.6.2 अधिकतम प्रति अंश आय
4.7 श्रेष्ठ पूँजी संरचना निर्णय के आधारभूत तत्व
4.7.1 समता पर व्यापार
4.7.2 पूँजी दन्तिकरण
4.7.3 पूँजी की लागत
4.8 पूँजी संरचना दृष्टिकोण
4.8.1 विभिन्न वित्तीय योजनाओं के EPS की तुलना करना
4.8.2 EBIT & EPS विश्लेषण
4.8.3 ऋण समता का तटस्थता बिन्दु
4.9 सारांश
4.10 शब्दावली
4.11 बोध प्रश्न
4.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.13 स्वपरख प्रश्न
4.14 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- पूँजी संरचना के अर्थ को समझ सकें ।
- पूँजी संरचना को प्रभावित करने वाले आन्तरिक एवं बाह्य तत्वों की व्याख्या कर सकें ।
- अनुकूलतम पूँजी संरचना की विशेषताओं की व्याख्या कर सकें ।
- अनुकूलतम पूँजी संरचना चयन के आधार के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकें।
- श्रेष्ठ पूँजी संरचना निर्णय के आधारभूत तत्वों का वर्णन कर सकें ।
- EBIT&EPS विश्लेषण तथा ऋण समता का तटस्थता बिन्दु की व्याख्या कर सकें।

4.1 प्रस्तावना

पूंजी ढांचे के बारे में निर्णय अंशधारियों की पूंजी को बढ़ाने के उद्देश्य से किया गया मूल वित्तीय निर्णय है। पूंजी ढांचा फर्म को पूंजीगत (लम्बी अवधि के लिए पूंजी) को कहते हैं । पूंजी ढांचा ऋण और अंश प्रतिभूतियों के मिलान के बारे में निर्णय से सम्बन्धित होता है। पूँजी संरचना को पूँजी संगठन, पूँजी का ढाँचा अथवा पूँजी का स्वरूप या पूँजी विन्यास भी कहा जा सकता है। एक व्यावसायिक संस्था के लिये पूँजीकरण की राशि निर्धारित कर लेने के बाद वित्तीय प्रबन्धक को पूँजी संरचना के सम्बन्ध में निर्णय लेना पड़ता है। पूँजी संरचना फर्म के पूँजीकरण के मिश्रण को बतलाता है। कई बार पूँजीकरण और पूँजी संरचना को एक ही समझ लिया जाता है, किन्तु इन दोनों में मौलिक भिन्नता है।

वित्तीय प्रबन्धन को यह निश्चित करना होता है कि कम्पनी में अंशधारियों के फण्ड कितनी अंश पूंजी का प्रतिनिधित्व् करेंगें। श्रेष्ठ अंश पूंजी कितनी होगी? कार्यकारी संस्थाओं में कुछ पूंजी स्रोतों का जोड़ अच्छा् रहता है और कुछ का नहीं। इसलिए फर्म के पूंजी ढांचे के बनाने के लिए बहुत ध्याान की आवश्यकता है। इस इकाई में आप पूँजी संरचना का अर्थ, पूँजी संरचना को प्रभावित करने वाले आन्तरिक एवं बाह्य तत्व, अनुकूलतम पूँजी संरचना की विशेषताएं व EBIT&EPS विश्लेषण तथा ऋण समता का तटस्थता बिन्दु का अध्ययन करेंगे।

4.2 पूँजी संरचना : अर्थ एवं परिभाषाएँ

एक व्यावसायिक संस्था द्वारा दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकताओं की पूर्ति स्वामित्व स्त्रोतों यथा समता अंशों, पूर्वाधिकार अंशों और प्रतिधारित अर्जनों द्वारा की जा सकती है या ऋण स्त्रोतों यथा ऋण पत्रों, बंध–पत्रों और संस्थागत ऋणों से। यह वह अनुपात है जो विभिन्नं लम्बी अवधि के पूंजी स्रोतों जैसे अंश पूंजी, श्रेष्ठ अंश पूंजी और ऋणों के बीच होता है। पूँजी संरचना में यह निर्धारित किया जाता है कि आवश्यक पूँजी का कितना भाग ऋण पूँजी के रूप में प्राप्त किया जाये और कितना भाग स्वामित्व पूँजी के रूप में । एक व्यावसायिक संस्था को इन दोनों में इस प्रकार संतुलन बनाये रखना होता है ताकि लागत और जोखिम न्यूनतम हो और स्वामियों का धन अधिकतम हो।

जस्टिनबर्ग के अनुसार, ″कम्पनी के पूंजी ढांचे का अर्थ है उसकी पूंजी का ढांचा और इसमें सभी लम्बी अवधि के पूंजी स्रोत शामिल होते हैं जैसे ऋण, कोष, अंश और बांड।''

आर. एच. बैंसल के अनुसार – ''पूँजी संरचना का उपयोग प्रायः किसी व्यावसायिक संस्था में विनियोजित कोषों के दीर्घकालीन स्त्रोतों को दर्शाने के लिये किया जाता है।''

वैस्टर्न एवं ब्रिग्नम के अनुसार – ''पूँजी संरचना किसी फर्म का स्थायी वित्त प्रबन्धन होता है, जो दीर्घकालीन ऋणों, पूर्वाधिकार अंशों तथा शुद्ध मूल्य से प्रदर्शित होता है।''

इस प्रकार पूँजी संरचना एक व्यावसायिक संस्था की वित्तीय योजना है, जिसके अन्तर्गत पूँजी के विभिन्न स्थायी स्त्रोतों के बीच समन्वय स्थापित किया जाता है।

4.3 पूँजी संरचना को प्रभावित करने वाले तत्व

एक व्यावसायिक संस्था के लिये सुनियोजित पूँजी संरचना का बड़ा महत्व है, क्योंकि इससे संस्था की पूँजी की कुल लागत तथा लाभदायकता पर प्रभाव पड़ता है। वित्तीय प्रबन्धकों का यह उत्तरदायित्व है कि वे संस्था के लक्ष्यों के अनुरूप अनुकूलतम पूँजी संरचना का निर्धारण करे। प्रायः जब भी संस्था को वित्त की आवश्यकता होती है, तब वित्तीय प्रबन्धकों का वित्त के विभिन्न स्त्रोतों का गहनता से विश्लेषण करके पूँजी की संरचना करते हैं। अतः पूँजी संरचना को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने वाले समस्त तत्वों पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। इन तत्वों को प्रमुख रूप से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैः–

जैसे कि पहले भी कहा गया है कि फर्म का पूंजी ढांचा बहुत सी चीजों पर निर्भर करता है। यह तथ्य एक इण्डयस्ट्री से दूसरी या एक ही इण्डस्ट्री में एक फर्म से दूसरी फर्म में प्रभाव में भिन्न होते हैं। इसलिए पूँजी ढांचा निर्णय अपने आप में अकेला होता है इसलिए पूंजी ढांचा बनाते हुए वित्तीय प्रबन्धक को इस निर्णय को प्रभावित करने वाले जरूरी तथ्यों पर ध्यान देना चाहिए। पूंजी ढांचे को प्रभावित करने वाले तथ्य निम्नपलिखित हैं–

1. **पूंजी की लागत** (Cost of capital) :– पूंजी ढांचे के निर्माण में पूंजी के विभिन्न स्रोतों की लागत अहम रूप से ध्यान योग्य् बात है। पूंजी विभिन्न स्रोतों का मिश्रण इस प्रकार होना चाहिए कि पूंजी की सम्पूर्ण लागत न्यूानतम हो। ऋण अंश पूंजी और श्रेष्ठ अंश पूंजी की तुलना में सस्ती है क्योाकि (i) ऋण पर ब्याज दर अंशों और श्रेष्ठ अंशों के लाभांश दर से कम होता है (ii) ऋण पर ब्याज में कर कटौती है जब कि लाभांश कर के बाद लाभों में से देय है। अंश पूंजी की लागत उच्चतम होती है क्योंकि फर्म को अंशधारियों की उच्च उम्मीदों को शांत करने के लिए उनके विनियोग पर उच्च प्रत्याय देना पड़ता है। श्रेष्ठ अंश पूंजी की लागत अंश पूंजी और ऋण की लागत के बीच पड़ती है इसलिए पूंजी की लागत की दृष्टि से ऋण अंश से श्रेष्ठ है।
2. **खतरा (Risk**) :– फर्म के पूंजी ढांचे में कम से कम खतरा होना चाहिए। खतरे की दृष्टि से अंश पूंजी सबसे कम खतरे वाला स्रोत है क्योंकि कम्पनी को लाभांश देना कोई जरूरी नहीं होता और कोई निश्चित समय पर पैसे वापिस नहीं करने होते। पैस`केवल कम्पनी के बंद होने पर या सभी लेनदारों के पैसों को चुकाने के बाद देने होते हैं। दूसरी तरफ ऋण जैसे पूंजी स्रोत सबसे अधिक खतरे वाले हैं क्योंकि (i) कम्पंनी की चाहे कार्यकारी आय हो या न हो ऋण पर निश्चित ब्या्ज देना ही पड़ता है (ii) अगर ब्याज देने में या लेनदार को कर्ज वापिस चुकाने में गलती हो जाए तो लेनदार कम्पनी को बंद करवाने की मांग कर सकते हैं। श्रेष्ठ अंश पूंजी में मध्यम दर का खतरा है। वह अंश पूंजी से अधिक खतरनाक है और ऋण से कम। इसलिए पूंजी स्रोतों में बसे खतरों पर सही ढंग से विचार करना चाहिए ताकि कम्पनी कुल वित्तीय खतरे सहने की सीमा में रहे।

3. **बिक्री में बढ़ोत्तरी व निश्चितता** (Growth & Stability of Sales) :– बिक्री का स्वभाव व तरीके का फर्म के पूंजी ढांचे पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। अगर कम्पनी की बिक्री निश्चित है और भविष्य में भी ऐसे ही रहने की आशा है तो कम्पभनी अपने पूंजी ढांचे में अधिक ऋण का प्रयोग कर सकती है। बिक्री में निश्चितता कार्यकारी आय में निश्चितता को पक्का करती है। इस तरह फर्म निश्चित ब्याज अदायगियों और ऋण के भुगतान को बिना किसी मुश्किल के वापिस कर सकती है। ज्यादातर जितनी बिक्रीदर उँची होती है, फर्म ज्यादा से ज्यादा ऋण के प्रयोग के लिए सक्षम हो जाती है। दूसरी तरफ अगर फर्म की बिक्री में अधिक बदलाव आते हैं तो यह सुझाव दिया जाता है कि पूंजी ढांचे में ऋण से अधिक अंश पूंजी का प्रयोग किया जाए।
4. **ऋण को पूरा करने की क्षमता (Ability to Serve Debt)** :– ऋण को पूरा करने की क्षमता इस बात को निश्चित करती है कि फर्म कितना ऋण उठा सकती है। वह फर्म जिसके रोकड अन्तर्वाह अधिक है वह कम रोकड़ अन्तर्वाहों वाले फर्म की तुलना में अधिक ऋण का प्रयोग कर सकती है। इसलिए फर्म को अतिरिक्त ऋण उठाने से पहले भविष्य में होने वाले रोकड़ अन्तर्वाहों का अनुमान लगा लेना चाहिए। ज्यादातर दो अनुपातों (i) Interest Coverage Ratio (ii) Cash to Debt Service Ratio की गणना फर्म के ऋण को पूरा करने की क्षमता के लिए की जाती है।
5. **फर्म की उम्र और आकार (Age & Size of Firm)** :– फर्म की उम्र और आकार का फर्म के पूंजी ढांचे पर बहुत अधिक प्रभाव होता है। वह फर्म जिनको शुरू हुए अभी कुछ ही वर्ष हुए हैं उनके लिए फण्डो के मुख्य स्रोत अंश पूंजी व ऋण होते हैं जैसे जैसे फर्म का आकार बढ़ता है वैसे वैसे उसका आंतरिक विस्तार दर गिरता है और बकाया कोष बाहरी ऋण का स्थान ले लेते हैं। छोटी कम्पनियों को अपनी पूंजी पर निर्भर करना पड़ता है क्योंकि पूंजी बाजार तक उनकी पहुंच नहीं होती। दूसरी तरफ बड़ी कम्पनियां लम्बी अवधि के ऋण, ऋण पत्र और अंश पूंजी जनता को बड़ी आसानी से जारी कर सकती हैं।
6. **लचीलापन (Flexibility)** :– जैसे कि पहले भी बताया गया है कि उचित पूंजी ढांचे के लिए लचीलापन आवश्यक है। पूंजी ढांचा ऐसा होना चाहिए कि बदलती परिस्थितियों के साथ उसमें बदलाव लाया जा सके। फर्म में एक तरह की वित्तीयता को दूसरे में बदलने की क्षमता होनी चाहिए। लचीलेपन के लिहाज से ऋण सबसे उचित पूंजी ढांचे का स्रोत है क्योंाकि जरूरत के समय इसे वापिस भी किया जा सकता है। और फिर दोबारा जारी भी किया जा सकता है। पर अंश पूंजी में ऐसा कोई लचीलापन नहीं होता। एक बार जारी की गई अंश पूंजी कम्पनी की जिंदगी में वापिस नहीं बुलाई जा सकती है। ऋण की तरह वापिस हो जाने वाले श्रेष्ठ अंश पूंजी भी लचीलेपन की दृष्टि से अंश पूंजी से बेहतर हैं।

7. **कार्यकारी विशेषताएं (Operational Characteristics)** :– व्यंवसाय में कार्यकारी विशेषताओं और फण्ड की जरूरतों के बारे में भिन्नता होती है। कार्यशील फर्मों को स्थाई सम्पत्तियों में भारी विनियोग की आवश्यकता होती है। इसलिए कुल लागत में स्थााई लागत का अनुपात बहुत अधिक होता है। इसलिए ऐसी फर्मों को खतरा बहुत अधिक होता है। इसलिए ऐसी फर्मों को खतरे को प्रबन्ध की सीमाओं के अन्दर रखने के लिए ऋण की तुलना में अंश को वरीयता देनी चाहिए। दूसरी तरफ व्यवसायिक फर्मों को स्थाई सम्पत्तियों में अधिक पैसा नहीं लगाना पड़ा। यह फर्में अधिकतर चालू सम्पित्तियों द्वारा ही कार्य करती है। इन फर्मों की स्थाई लागत खुद चीजें बनाने वाली फर्मों की तुलना में बहुत कम होती हैं। थोड़ी स्थाई लागत के कारण इस फर्म को कम खतरा उठाना पड़ता है। इसलिए ऐसी फर्में ज्यादा ऋण पूंजी का प्रयोग कर सकती हैं।
8. **वित्त का विषय (Purpose of Financing)** :– वित्त के विषय का भी पूंजी ढांचे पर काफी प्रभाव होता है। अगर फण्ड किसी उत्पादन विषय के लिए चाहिए जैसे व्यवसाय के विस्तार के लिए तो ऋण पत्र जारी किए जा सकते हैं क्योंकि विनियोग द्वारा उगाहे फण्डों में से ब्याज अदा किया जा सकता ह। दूसरी तरफ अगर फण्डों की आवश्यकता किसी अनउत्पा्दक कार्य के लिए जैसे किसी सामाजिक जिम्मेवारी को पूरे करने के लिए तो फर्म अंश पूंजी जारी कर सकती है।
9. **वित्त की अवधि (Period of Finance)** :– कितनी अवधि के लिए फण्ड चाहिए? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसे फर्म के पूंजी ढांचे को निर्मित करते समय ध्यान में रखना चाहिए। अगर फण्ड अधिक समय के लिए चाहिए तो अंश पूंजी, श्रेष्ठ अंश पूंजी और अतिदाय श्रेष्ठ् अंश पूंजी बेहतर रहेंगे। दूसरी तरफ अगर फण्ड, मध्यम अवधि के लिए चाहिए तो प्रतिदाय श्रेष्ठ अंश पूंजी या प्रतिदाय ऋण पत्रों को वरीयता दी जायेगी।
10. **पूंजी बाजार स्थितियां (Capital Market Conditions)** :– पूंजी बाजार की स्थितियों का भी कम्पनी के पूंजी ढांचे पर प्रभाव होता है। अगर स्थितियां अनुकूल हैं तो वो कम्पनी आवश्यक पूंजी इकट्ठी करने हेतु विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियां जारी कर सकती हैं जैसे अंश पूंजी, श्रेष्ठ अंश पूंजी और ऋण पत्र। दूसरी तरफ अगर स्थितियॉ प्रतिकूल हैं तो कम्पंनी प्रतिभूतियों को बाजार में जारी करने के विषय में सोच भी नहीं सकती। ऐसी स्थिति अपनी वित्तीय जरूरतों को पूरा करने के लिए उसे किसी संस्थान से बात करनी होगी।
11. **जारी करने की लागत (Cost of Floatations)** :– फण्ड इकट्ठे करते समय विभिन्न प्रतिभूतियों को जारी करने की लागत के विषय के बारे में भी सोचना चाहिए। जारी करने की लागत में कमीशन, दलाल को दी जाने वाली दलाली, बैंकर और अन्य मध्यस्थ संस्थाएं, बढ़ाने के लिए माल को छपवाने व प्रोस्पैक्टेस को तैयार करना आदि जैसे खर्चे शामिल हैं। सामान्य तौर पर ऋण को जारी करने की लागत अंश को जारी करने से कम होती है। इस दृष्टि से ऋण अंश से श्रेष्ठ कर है।

12. **विनियोक्ताओं की आवश्यकताएं (Requirements of Investors)** :– पूंजी ढांचे का निर्माण करते हुए विनियोक्ताओं की आवश्यकताओं का भी ध्यान रखा जाता है। पूंजी ढांचे को संस्थान और अन्य विनियोक्ताओं की जरूरतों का ध्यान रखना चाहिए। संस्थानिक विनियोक्ताओं को अपने विनियोग पर स्थाई प्रत्याय चाहिए होता है। उनके लिए ऐसी प्रतिभूतियों को जारी करना चाहिए जिनके ऊपर स्थाई प्रत्याय हो। खतरे के नजरिये से विनियोक्तांओं को दो श्रेणियों में विभाजित कि जा सकता है। (i) तेज और (ii) कम खतरा उठाने वाले (Conservative) Aggressive विनियोक्ता उच्चर प्रत्याय के लिए उच्च खतरा उठाने को तैयार होते हैं। उनके लिए अंश पूंजी को जारी करना श्रेष्ठ कर है। दूसरी तरफ विनियोक्ता उच्च खतरा उठाने के लिए तैयार नहीं होते। उन्हें अपने विनियोग पर स्थाई प्रत्याय चाहिए होता है। उनके लिए ऋण ऋत्र या श्रेष्ठ अंश पूंजी बेहतर है।
13. **प्रबन्ध् का नजरिया (Attitude of management)** :– खतरे और प्रत्याय की ओर प्रबन्ध के नजरिये का कम्पनी के पूंजी ढांचे पर काफी प्रभाव होता है। Aggressive प्रबन्ध उच्च प्रत्याय के लिए उच्च खतरा उठाने के लिए तैयार होते हैं। इसलिए वह ऋण से अधिक अंश पूंजी पर निर्भर करेंगे। दूसरी तरफ Conservative प्रबन्ध थोड़े प्रत्याय से ही शांत हो जाते हैं पर अधिक खतरा उठाने में दिलचस्पी नहीं रखते। वह पूंजी ढांचे में अंश से ज्यादा ऋण को श्रेष्ठ समझेंगे।
14. **सहकारी कर दर (Corporate Tax Rate)** :– सहकारी कर दर का होना ऋण को अंश और श्रेष्ठ अंश पूंजी के मुकाबले फण्ड इकट्ठे करने का ज्यादा आकर्षित स्रोत बना देता है। यह इसलिए है क्योंकि ऋण के ऊपर ब्याज अदायगियों में से कर कटौती होती है। जितना अधिक कर दर होगा उतना ही अधिक ऋण पूंजी का प्रयोग अंश और श्रेष्ठ अंश पूंजी की तुलना में फायदेमंद होगा।
15. **विधिक और अन्यं आवश्याकताएं (Legal and other Requirements)** :– अंत में कम्पनी के पूंजी ढांचे को सरकार द्वारा बनाए विभिन्न कानूनी प्रावधानों को भी ध्यान में रखना चाहिए। उसे वित्तीय संस्थाओं, SEBI (Securities and Exchange Board of India) और Stock Exchanges द्वारा बनाए नियमों को भी ध्यान में रखना चाहिए।

4.4 पूँजी संरचना का महत्व

पूंजी ढांचे का महत्व इस बात पर निर्भर करता है कि पूंजी के विभिन्न् स्रोतों के विभिन्न खतरे और प्रत्याय विशेषताएं हैं। कुछ स्रोत ज्यादा महंगे पर कम खतरे वाले होते हैं पर कुछ स्रोत सस्ते व अधिक खतरे वाले होते हैं। उदाहरण के तौर पर अंश पूंजी में सबसे कम खतरा है क्योंकि यह कम्पनी के जिंदगी के समय में अंशधारियों को लौटाई नहीं जाती और इसमें लाभांश को देने का कोई निश्चित वायदा नहीं भी किया जाता । पर यह पूंजी का सबसे महंगा स्रोत है। अंशधारियों द्वारा आशित प्रत्याय बाकी विनियोक्ताओं द्वारा आशित प्रत्याय से अधिक होता है। दूसरी तरफ ऋण सबसे खतरनाक पूंजी का स्रोत है (क्योंकि इसमें निश्चित ब्याज

अदायगी का वायदा होता है और लेनदार कोर्ट में जाकर मूल और उस पर ब्याज ले सकता है) पर यह सबसे सस्ता है। (क्योंकि ब्याज दर अधिकतर लाभांश दर से कम होती है और इसे कर के पहले लाभों में से अदा किया जाता है।) श्रेष्ठ अंश पूंजी प्रत्याय और खतरे की सीमा के बीच में पड़ती है। यह सामान्य तौर पर खतरनाक मंहगी है। इसे अंश प्रतिभूति (Hyprid security) भी कहा जाता है क्यो्कि यह पूंजी और ऋण दोनों की विशेषताएं लिए हुए है।

पूंजी के विभिन्नि स्रोतों में प्रत्याय, खतरे की विशेषताओं मे अन्तर के कारण पूंजी ढांचे के बार में निर्णय एक महत्वपूर्ण वित्तीय निर्णय बन जाता है। पूंजी ढांचे के बारे में निर्णय निम्नलिखित कारणों में महत्वपूर्ण है:–

1. पूंजी ढांचा फर्म द्वारा अनुमानित वित्तीय खतरे को प्रभावित करता है।
2. पूंजी ढांचा फर्म की पूंजी की लागत को प्रभावित करता है।
3. पूंजी ढांचा फर्म के मूल्य को प्रभावित करता है या तो उसकी आंशिक आय या पूंजी का लागत या दोंनों को प्रभावित करता है।
4. फर्म के पूंजी ढांचे के बारे में निर्णय प्रबन्ध के खतरे और प्रत्याय के बार में विचार को दर्शाता है।

4.5 आदर्श या अनुकूलतम पूँजी संरचना

प्रत्येक संस्था को अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये तथा अपनी वित्तीय सुदृढ़ता एवं स्थिरता बनाये रखने के लिये एक आदर्श या संतुलित पूँजी संरचना का निर्माण करना आवश्यक है। जैसा कि हम पहले अध्ययन कर चुके हैं कि पूँजी संरचना विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों का मिश्रण है। अब प्रश्न यह उठता है कि इन विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों का अनुपात क्या हो कि आदर्श पूँजी संरचना का निर्माण किया जा सके। एक अनुकूलतम पूँजी संरचना उसे कहा जा सकता है, जहाँ कम्पनी के समता अंश का बाजार मूल्य अधिकतम हो और पूँजी की औसत लागत न्यूनतम हो। सिद्धान्तः जब तक ऋण पर ब्याज की लागत की तुलना में संस्था की विनियोगों पर आय (Return on Investment – ROI) अधिक है, ऋण की मात्रा बढ़ने पर प्रति अंश आय (Earnings Per Share – EPS) भी बढती रहती है और इससे समता अंश का बाजार मूल्य भी बढ़ता रहता है, परन्तु ऋण की प्रत्येक वृद्धि से कम्पनी की जोखिम भी बढ़ती है, क्योंकि कम्पनी पर ब्याज का स्थायी भार बढ़ता जाता है, और व्यवहार में कम्पनी के अंश का बाजार मूल्य बढ़ने की बजाय गिर भी सकता है।

4.5.1 आदर्श या अनुकूलतम पूँजी संरचना की विशेषताएँ

उपयुक्त पूंजी ढांचा वही है जो कम्पनी के लिए अत्यं‌त लाभदायक हो। इसका निर्माण उन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए होना चाहिए जिनका कम्पनी के पूंजी ढांचे पर प्रभाव हो। सामान्य तौर पर पूंजी ढांचे का निर्माण अंशधारियों के स्वार्थ और फर्म की वित्तीय जरूरतों को ध्यान में रख कर किया जाता है। अंशधारियों के नजरिये से वह पूंजी ढांचा जो अंशों के बाजारी मूल्य को अधिकतम करे वह श्रेष्ठ होगा। कम्पनी के विचार में वह पूंजी ढांचा जो कम से कम कीमत और खतरे में उपयुक्त फण्ड दिला दे वह श्रेष्ठ होगा। पूंजी ढांचे के निर्माण के समय अन्य वर्ग जैसे ग्राहक, कर्मचारी, लेनदार, समाज और सरकार के स्वोर्थों पर भी ध्यान देना चाहिए। विभिन्नं महत्वपूर्ण तथ्यों पर निर्भर उपयुक्त पूंजी ढांचा हर

कम्पनी में भिन्न होता है। तब भी उपयुक्तव या पूंजी ढांचे की कुछ सामान्य विशेषताएं इस प्रकार हैंः–

1. **लाभवन्यता (Profitability)**ः– पूंजी ढांचे को अधिकतम लाभवन्यता देनी चाहिए। सीमा के अन्दर रह कर निम्न लागत पर ऋण का अधिकतम प्रयोग करना चाहिए।
2. **तरलता (Solvency)**ः– पूंजी ढांचे को यह पक्का करना चाहिए कि फर्म तरल रहे। ऋण का अत्यधिक प्रयोग खतरा बढ़ाता है और फर्म की तरलता के लिए भी धमकी बन जाता है। ऋण उसी हद तक प्रयोग करना चाहिए जहां तक वह ज्यादा खतरनाक न हो। इसके बाद ऋण के प्रयोग को नजरअंदाज करना चाहिए।
3. **लचीलापन (Flexibility)**ः– पूंजी ढांचा ऐसा होना चाहिए कि जरूरत के समय उस में उपयुक्त बदलाव ला सकें। अगर स्थिति में बदलाव आ जाए तो कम्पनी के लिए यह सम्भव हो कि वह पूंजी ढांचे को कम लागत और बिना देरी के बदल सके। ऋण का प्रयोग कम्पनी के लिए अधिक लचीला है क्योंकि ऋण को जरूरत के समय दिया या लिया जा सकता है पर अंश कम्पनी की जिंदगी में निस्तारित नहीं किए जा सकते।
4. **ऋण को सहने की क्षमता (Debt bearing capacity)**ः– पूंजी ढांचे को कम्पनी की ऋण सहने की क्षमता के बारे में ध्यांन रखना चाहिए और इस क्षमता से बढ़ना नहीं चाहिए। ऋण क्षमता भविष्य में होने वाली कार्यकारी आय और रोकड़ अन्तर्वाहों पर निर्भर करता है।
5. **नियंत्रण (Control)**ः– पूंजी ढांचे में नियंत्रण की कम से कम हानि होनी चाहिए। वर्तमान निर्देशक बोर्ड के हाथ में नियंत्रण रहने के लिए, कम्पनी की आगे की वित्तीय आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए अंशों की जगह ऋण को जारी करना चाहिए।

6- **अनचाहे प्रतिबन्धों को नजरअंदाज करना (Avoidance of unnecessary restrictions)**ः– पूंजी ढांचे में कम्पनी पर कम से कम प्रतिबन्ध होने चाहिए। इस नजरिये से संस्थाओं से सामायिक ऋण नजरअंदाज करने चाहिए क्योंकि संस्थाएं पैसा देते हुए काफी प्रतिबन्ध लगाती हैं।

4.6 अनुकूलतम पूँजी संरचना के चयन के आधार

किसी संस्था की पूँजी संरचना में समता अंश पूंजी, पूर्वाधिकार अंश पूँजी तथा ऋणपत्रों का समावेश हो सकता है। प्रत्येक पूँजी संरचना में समता अंश पूँजी तो होगी ही, उसके अतिरिक्त पूर्वाधिकार अंश पूँजी और/या ऋणपत्र हो सकते हैं। इस प्रकार पूँजी संरचना के निम्न चार विकल्प या स्वरूप हो सकते हैं –

I. केवल समता अंश पूँजी
II. समता अंश पूँजी और पूर्वाधिकार अंश य पूँजी
III. समता अंश पूँजी और ऋण पत्र, तथा
IV. समता अंश पूँजी, पूर्वाधिकार अंश पूँजी और ऋणपत्र।

हमारे सामने यह प्रश्न उठता है कि उपरोक्त चारों विकल्पों/स्वरूपों में से किस विकल्प का चुनाव किया जाये। यह चुनाव पूर्व वर्णित आन्तरिक एवं बाह्य

तत्वों पर निर्भर करता है। पूँजी संरचना के स्वरूप के चयन के आधार निम्नलिखित हो सकते हैंः–

4.6.1 पूँजी की न्यूनतम औसत लागत

4.6.2 अधिकतम प्रति अंश आय

4.6.1 पूँजी की न्यूनतम औसत लागत–

विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों का मिश्रण इस प्रकार किया जाना चाहिये, ताकि पूँजी की औसत या समग्र लागत न्यूनतम हो सके और संस्था के प्रमुख उद्देश्य अधिकतम लाभ की प्राप्ति में सहायक हो सके। संतुलित पूँजी संरचना में संस्था के समता अंश का बाजार मूल्य अधिकतम होता है जो प्रति अंश (EPS) आय पर निर्भर करता है। अतः जब तक संस्था की विनियोग पर प्रत्याय की दर (ROI) ऋण पूँजी की लागत से अधिक होती है तब तक ऋण पूँजी की मात्रा बढ़ाते हुए समता अंशों का मूल्य बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार संतुलित पूँजी संरचना पर औसत पूँजी लागत न्यूनतम होती है।

4.6.2 अधिकतम प्रति अंश आय –

पूँजी संरचना में ऋण की राशि बढ़ाकर प्रति अंश आय बढ़ाई जा सकती है, क्योंकि ऋण प्राप्ति समता अंशों की तुलना में मित्तव्ययी साधन है। इसका कारण यह है कि ऋण पर देय ब्याज, कर योग्य आय की गणना हेतु स्वीकृत व्यय माना जाता है। जबकि अंशों पर देय लाभांश को लाभों का नियोजन माना जाता है और इसे कर योग्य आय की गणना हेतु स्वीकृत व्यय नहीं माना जाता है। इस प्रकार पूँजी संरचना में ऋण पूँजी को शामिल करने से समता अंशधारियों की प्रति अंश आय (Earnings per Share – EPS) अधिक हो जाती है। इसे EBIT – EPS विश्लेषण भी कहा जाता है।

4.7 श्रेष्ठ पूँजी संरचना निर्णय के आधारभूत तत्व

आदर्श पूँजी संरचना सम्बन्धी निर्णय, वित्तीय प्रबन्धकों के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्यक्षेत्र होता है। पूँजी के विभिन्न स्त्रोतों का सही अनुपात निर्धारित करना प्रबन्धकों के समक्ष चुनौती प्रस्तुत करता है, क्योंकि उन्हें समता अंशधारियों के साथ–साथ ऋणपत्रधारियों को भी संतुष्ट करना होता है। आदर्श पूँजी संरचना सम्बन्धी निर्णय लेते समय निम्नलिखित तीन आधारभूत तत्वों पर विचार किया जाना चाहिये –

4.7.1 समता पर व्यापार

4.7.2 पूँजी दन्तिकरण

4.7.3 पूँजी की लागत

4.7.1 समता पर व्यापार (Trading on Equity) –

जब कोई कम्पनी समता अंश पूँजी की बजाय ऋण पूँजी के आधार पर अपने व्यवसाय का संचालन करती है तो इसे समता पर व्यापार करते हैं। कुल पूंजीकरण में ऋण पूँजी का अनुपात अधिक रखकर समता अंशों पर आय बढ़ाई जा सकती है।

गेस्टर्नबर्ग के अनुसार–''जब कोई व्यक्ति या निगम स्वामित्व पूँजी के साथ ऋण पूँजी लेकर अपने नियमित व्यापार का संचालन करता है, तो इसे समता पर व्यापार कहते हैं।''

गुथमैन तथा डूंगल के अनुसार–''किसी फर्म के वित्तीय प्रबन्ध के लिये स्थायी लागत पर ऋण कोषों का प्रयोग करना समता पर व्यापार कहलाता है।''

समता पर व्यापार को अनुकूल वित्तीय उत्तोलक (Favourable Financial Leverage) भी कहा जाता है। यहाँ पर ऋण पूँजी में ऋणपत्रों, दीर्घकालीन ऋणों, बॉण्डों तथा अधिमान अंश पूँजी को भी शामिल किया जाता है, जिन्हें स्थाई लागत वाली पूँजी भी कहा जाता है। समता पर व्यापार की नीति तभी लाभदायक सिद्ध होती है, जबकि प्रबन्धकों को यह विश्वास हो कि वे ऋण पूँजी पर चुकाये जाने वाले ब्याज की अपेक्षा अधिक आय अर्जित कर सकेंगे।

समता पर व्यापार के प्रकार

समता पर व्यापार दो प्रकार से हो सकता है –

1. **अल्प समता पर व्यापार (Trading on Thin Equity)** – जब कम्पनी की अंश पूँजी, ऋण पूँजी की अपेक्षा कम होती है तो इस स्थिति को अल्प समता पर व्यापार कहते हैं।
2. **उच्च समता पर व्यापार (Trading on Thick Equity)** – जब कम्पनी की अंश पूँजी, ऋण पूँजी की अपेक्षा अधिक होती है, तो इस स्थिति को उच्च समता पर व्यापार कहते हैं।

4.7.2 पूँजी दन्तिकरण (Capital Gearing) –

वित्तीय प्रबन्धक पूँजी संरचना सम्बन्धी निर्णय लेते समय पूँजी दन्तिकरण या गियरिंग पर भी अच्छी तरह से सोच विचार कर लेते है। पूँजी दन्तिकरण से तात्पर्य स्थिर ब्याज एवं स्थिर लाभांश वहन करने वाले कोषों तथा परिवर्तनशील लाभांश वहन करने वाले कोषों के अनुपात से है। ऋणपत्रों पर स्थिर ब्याज तथा पूर्वाधिकार अंशों पर स्थिर लाभांश दिया जाता है, वहीं समता अंशों पर लाभांश की दर परिवर्तनशील होती है।

ब्राउन एवं हावर्ड के अनुसार–''पूँजी दन्तिकरण शब्द का प्रयोग किसी कम्पनी की साधारण अंश पूँजी एवं स्थिर ब्याज वाली पूँजी के बीच अनुपात को प्रदर्शित करने के लिये किया जाता है।''

जे–बेट्टी के अनुसार–''सामान्य अंशों (समता अंशों) के पूर्वाधिकार अंश पूँजी एवं ऋण पूँजी के बीच सम्बन्ध को पूँजी दन्तिकरण कहा जाता है।''

इस प्रकार पूँजी दन्तिकरण सामान्यतः स्थिर लागत वाली पूँजी (अधिमान अंशों एवं ऋणपत्रों) तथा समता अंश पूँजी के बीच सम्बन्ध को दर्शाने वाला अनुपात है, कुछ विद्वान इसे 'पूँजी लीवरेज'(Capital Leverage) भी कहते हैं।

पूँजी दन्तिकरण के प्रकार

पूँजी दन्तिकरण दो प्रकार का हो सकता है–

1. **उच्च दन्तिकरण (High Gearing)** – जब समता अंश पूँजी, स्थिर लागत वाली पूँजी की तुलना में कम होती है, तो उसे उच्च दन्तिकरण कहते हैं। दन्तिकरण जितना ऊँचा होगा, दन्ति अनुपात (Gear Ratio) उतना ही निम्न होगा। उदाहरण के लिए, किसी कम्पनी की कुल पूँजी 5,00,000 रू. है, जिसमें 1,25,000 रू. समता अंश पूँजी तथा 3,75,000 रू. पूर्वाधिकार अंश पूँजी और ऋणपत्र हो तो यहाँ उच्च दन्तिकरण होगा तथा दन्ति अनुपात निम्न अर्थात् 1,25,000 : 3,75,000 या 1:3 होगा।

2. **निम्न दन्तिकरण (Low Gearing)** – जब समता अंश पूँजी, स्थिर लागत वाली पूँजी की तुलना में अधिक होती है, तो इसे निम्न दन्तिकरण कहते हैं। दन्तिकरण जितना निम्न होगा, दन्ति अनुपात उतना ही उच्च होगा। पूर्व उदाहरण में यदि समता अंश 4,00,000 पूँजी रू. तथा शेष 1,00,000 रू. के ऋणपत्र हो तो यहां निम्न दन्तिकरण होगा तथा दन्ति अनुपात उच्च अर्थात् 4,00,000: 1,00,000 अर्थात् 4:1 होगा।

पूँजी दन्तिकरण की तुलना किसी भी वाहन के गियर से की जा सकती है। जिस प्रकार वाहन को प्रारम्भ में निम्न गियर पर चालू किया जाता है और जैसे जैसे वाहन की गति बढ़ती है, उच्च गियर का प्रयोग करते जाते हैं, उसी प्रकार व्यवसाय के प्रारम्भिक वर्षों में, जबकि आय अनिश्चित होती है, पूँजी की व्यवस्था समता अंश पूँजी से की जानी चाहिए, ताकि व्यवसाय पर स्थाई लागत का अनावश्यक भार न पड़े। फिर जैसे जैसे व्यवसाय में विस्तार एवं प्रगति हो, पूँजी सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति स्थाई लागत वाली पूँजी से की जा सकती है।

पूँजी दन्तिकरण का महत्व

पूँजी संरचना में पूँजी दन्तिकरण का बड़ा महत्व है। इससे पूँजी के विभिन्न स्त्रोतों के मध्य उचित अनुपात निर्धारित किया जाता है। विभिन्न व्यापार चक्रों का पूँजी दन्तिकरण पर प्रभाव पड़ता है। मुद्रा स्फीति या तेजी के समय स्थिर लागत वाली पूँजी का प्रयोग लाभदायकतापूर्वक किया जा सकता है, जबकि मुद्रा संकुचन या मंदी के समय समता अंशो के निर्गमन से पूँजी की व्यवस्था की जा सकती है। इस प्रकार व्यवसाय चक्रों की गति के अनुसार तेजी काल या मंदीकाल में व्यवसायी को पूँजी का गियरिंग बदलती रहनी चाहिए, ताकि व्यवसाय को सफलतापूर्वक चलाया जा सके और व्यवसाय को झटका न लगे। संस्था की सुरक्षा तथा सफलता व्यावसायिक परिस्थितियों के अनुसार अनुकूल पूँजी दन्तिकरण पर निर्भर करती है।

4.7.3 पूँजी की लागत (Cost of Capital) :–

पूँजी संरचना का निर्णय लेते समय पूँजी की लागत को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। व्यावसायिक संस्था द्वारा विभिन्न स्त्रोतों से पूँजी एकत्रित की जाती है, लेकिन यह देखना अति आवश्यक है कि ऐसी पूँजी की लागत व जोखिम कितनी है? प्रायः अतिरिक्त पूँजी की आवश्यकता के समय यह समस्या विशेष रूप से उपस्थित होती है। यह आवश्यक नहीं कि पूँजी के जिस स्त्रोत की लागत कम हो, उस स्त्रोत की जोखिम भी उतनी ही कम हो। परन्तु पूँजी की लागत का प्रत्यक्ष प्रभाव संस्था की उपार्जन क्षमता पर पड़ता है, इसलिए पूँजी की लागत का विशेष रूप से ध्यान रखना आवश्यक है।

पूँजी का उपयोग करने के बदले उपभोक्ता संस्था द्वारा विनियोक्ता को चुकाया गया मूल्य ही पूँजी की लागत कहलाता है। तकनीकी भाषा में पूँजी लागत का आशय उस न्यूनतम प्रत्याय दर से है जो कि एक कम्पनी को विनियोजकों को संतुष्ट करने तथा अपना मूल्य बनाये रखने के लिए विनियोग पर अर्जित करनी चाहिए।

सोलोमन इजरा ने ''पूँजी की लागत को वांछित अर्जनों की न्यूनतम दर या पूँजीगत व्ययों की कट ऑफ रेट कहा है।''

हम्पटन जॉन जे. के अनुसार ''पूँजी की लागत एक प्रत्याय दर है, जो एक संस्था बाजार में अपने मूल्य में वृद्धि करने के लिए विनियोग पर चाहती है।''

पूँजी लागत की गणना संस्था द्वारा पूँजी की वास्तविक प्राप्त शुद्ध राशि पर की जानी चाहिए।

4.8 पूंजी ढांचा पहुंचे/दृष्टिकोण (The Capital Structure Approaches)

जैसे कि पूर्व इकाई में पहले भी बताया जा चुका है कि पूंजी ढांचे के बारे में निर्णय एक महत्वपूर्ण निर्णय है। यह निर्णय एक ही बार में भी नहीं लिया जा सकता क्योंकि कम्पनी को अपनी गतिविधियों के लिए निरन्तंर पैसों की आवश्यकता पड़ती रहती है। कम्पनी के वित्तीय प्रबन्धक को विभिन्न वित्तीय योजनाओं का मूल्यांाकन करना पड़ता है ताकि फर्म के हित में सबसे फायदेमंद योजना का चयन किया जा सके। विभिन्न वित्तीय योजनाओं के मूल्यांकन के लिए कई पहुंचे उपलब्ध हैं। दो ज्यादातर प्रयोग होने वाली पहुंचे हैं (i) विकल्प वित्तीय योजनाओं के EPS की तुलना करना (ii) EBIT/ EPS विश्लेहाण यह पहुंचें विस्तार में नीचे बताई गई हैं।

4.8.1 विभिन्न वित्तीय योजनाओं के EPS की तुलना करना (Comparison of EPS of Alternative Financing Plan)

सबसे फायदेमंद वित्तीय योजना के चयन के लिए विभिन्न योजनाओं के EPS (प्रति अंश आय) की गणना की जाती है और जिस वित्तीय योजना EPS उच्चतम होता है, उसका चयन कर लिया जाता है।

विभिन्न वित्तीय योजनाओं का EPS कई चीजों पर निर्भर करता है (i) वित्तीय मिक्स यानि ऋण, श्रेष्ठ अंश पूंजी और अंश पूंजी का अनुपात (ii) ऋण के ऊपर ब्याज दर और श्रेष्ठ अंश पूंजी पर लाभांश दर (iii) सहकारी कर दर। श्रेष्ठ अंश पूंजी और ऋण में से ऋण के उत्तोलन का प्रभाव श्रेष्ठ़ अंश पूंजी से अधिक होता है क्योंकि (i) ऋण पर ब्याज दर श्रेष्ठ् अंश पूंजी पर लाभांश से कम होती है और (ii) ऋण पर दिए जाने वाले ब्याज में से कर कटौती की जा सकती है। अगर कुल सम्पत्ति पर प्रत्याय (ROI) ऋण के ब्याज दर से अधिक है तो उत्तोलन का प्रभाव अनुकूल होगा, यानिकि EPS बढ़ेगी। दूसरी तरु अगर कुल सम्पत्तियों पर प्रत्याय ऋण पर ब्याज दर से कम है तो EPS गिर जाएगी।

उदाहरण 1

अनुमा ऐन्टरप्राइस्ज लिमिटेड के पूंजी ढांचे में केवल 10 रू. प्रति अंश के 1,00,000 अंश हैं। कम्पनी अपने विनियोग को वित्त करने के लिए 5,00,000 रू. इकट्ठा करना चाहती है और इसके लिए वह तीन वित्तीय विकल्पों के बारे में विचार कर रही है। (i) 10 रू. प्रति एक के हिसाब से 50,000 सामान्य अंश जारी करना (ii) 10 % ब्याज दर पर 50,000 रू. उधार लेना (iii) 100 रू. के हिसाब से 5000 श्रेष्ठ अंश जारी करना। कम्पनी की EBIT (शुद्ध कार्यकारी आय) 3,00,000 रू. होने की आशा है। कर दर 50% है। हर योजना के EPS को ज्ञात कीजिए और सबसे अच्छे विकल्प को खोजिए।

तालिका – 4.1

विकल्प वित्तीय योजनाओं के तहत EPS

	योजना I रू.	योजना II रू.	योजना III रू.
EBIT	3,00,000	3,00,000	3,00,000
– ब्याज	0	50,000	-
कर से पूर्व लाभ	3,00,000	2,50,000	3,00,000
– कर @ 50:	1,50,000	1,25,000	1,50,000
कर के बाद लाभ	1,50,000	1,25,000	1,50,000
– श्रेष्ठ अंश पूंजी लाभांश	0	0	50,000
अंशधारियों को उपलब्ध आय	1,50,000	1,25,000	1,00,000
कुल अंश पूंजी	1,50,000	1,00,000	1,00,000
EPS	1.00	1.25	1.00

तालिका 4.1 दर्शाता है कि योजना II के तहत EPS (1.25) योजना I व योजना III के EPS से ज्यादा है। इसलिए तीनों योजनाओं में से योजना II का चयन करना चाहिए।

4.8.2 EBIT – EPS विश्लेषण (EBIT – EPS Analysis)

वित्तीय योजनाओं के चयन के लिए एक और काफी प्रयुक्त की जाने पहुंच है EBIT – EPS सम्बन्ध का विश्लेषण करना । निश्चित तौर पर इस विधि में EBIT की विभिन्न मान्यताएं लेकर वित्ती के वैकल्पिक तरीकों की तुलना की जाती है। EBIT के एक तल पर एक योजना अधिक फायदेमंद हो सकती है और दूसरे तल पर दूसरी योजना अधिक आकर्षित कर सकती है। इसलिए भविष्य में EBIT के तल को देखकर योजना का चयन किया जाता है।

दोनों योजनाओं में से कौन सी अधिक फायदेमंद है जानने के लिए EBIT का अनिश्चित तल (Indifference point/level) निश्चित किया जाता है। EBIT का Indifference level वह होता है जहॉं दो वैकल्पिक वित्तीय योजनाओं का EPS समान हो। इसे उस तल की तरह परिभाषित किया जा सकता है जहॉं बढ़ते EPS के मानदंड पर वित्तीय उत्तोपलन के लाभ मिलने शुरू हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में अगर आशित EBIT EBIT के Indifference level से अधिक है तो EPS की दृष्टि से स्थागई प्रभारित फण्ड (ऋण और श्रेष्ठ अंश पूंजी) अधिक फायदेमंद रहेंगे। दूसरी तरु अगर आशित EBIT, EBIT के Indifference level से कम है तो अंश पूंजी श्रेष्ठकर रहेगी।

EBIT के Indifference level को निश्चिंत करने के लिए दो तरीके हैं:–

(i) Algebric

(ii) Graphical

1. Algebric विधि – इस विधि के अनुसार EBIT के Indifference level की गणना विभिन्न हिसाब की इकाईयों को सुलझा कर की जाती है जिसमें निम्नलिखित संकेतों का प्रयोग होता है–

X = EBIT का Indifference level

N1 = अगर केवल अंश पूंजी जारी की गई है तो कुल देय अंश पूंजी।

N2 = अगर अंश पूंजी के साथ श्रेष्ठ अंश पूंजी भी जारी की गई है तो कुल देय अंश पूंजी।

N3 = अगर अंश पूंजी के साथ श्रेष्ठ अंश पूंजी भी जारी की गई है तो कुल देय अंश पूंजी।

N4 = कुल देय अंश पूंजी अगर अंश पूंजी श्रेष्ठं अंश पूंजी और ऋण पत्रों के साथ जारी की गई है।

I = ऋण पत्रों पर ब्यूाज

P = श्रेष्ठो अंश पूंजी पर लाभांश

t = सहकारी आय कर दर

EBIT का Indifference level की गणना करने वाली हिसाब की इकाई इस बात पर निर्भर करेगी कि जारी करने वाली कम्पनी नई बनी है या पहले से कार्य कर रही है।

(a) नई बनी कम्पनी (Newly formed company) :– नई बनी कम्पनी के Indifference level की गणना करने के लिए निम्नं इकाईयों का प्रयोग किया जाता है –

1. अंश पूँजी बनाम ऋण पूँजी $\frac{X(1-t)}{N1} = \frac{(X-I)(1-t)}{N2}$

2. अंश पूँजी बनाम श्रेष्ठ अंश पूँजी $\frac{X(1-t)}{N1} = \frac{X(1-t)-P}{N3}$

3. अंश पूँजी बनाम श्रेष्ठ अंश पूँजी और ऋण पत्र $\frac{X(1-t)}{N1} = \frac{(X-I)(1-t)-P}{N4}$

(b) पहले से बनी कम्पनी (Existing Company) :– उन पहले से चली कम्पपनियों के लिए जिनके ऋण और श्रेष्ठ अंश पूंजी देय है, संकेत I की प्रतिस्थापन I (चलायमान ऋण पर देय ब्याज) और I_2 (नये ऋण पर देय ब्याज) और संकेत P की प्रतिस्थायपन P_1 चलायमान श्रेष्ठ अंश पूंजी पर लाभांश) और P_2 (नया श्रेष्ठ अंश पूंजी पर लाभांश) द्वारा की जाती है और फिर उचित इकाईयों को निश्चित किया जाता है।

उदाहरण 4.2

अनुपम टैकस्टांइल ने विनियोग कार्यों के लिए 15,00,000 रू. इकट्ठे करने के लिए निम्न वित्तीय योजनाएं बनाई हैं:– (i) या 15,00,000 रू. की अंश पूंजी या 7,50,000 रू. के 10% ऋण पत्र और 7,50,000 रू. की अंश पूंजी (ii) या 15,00,000 रू. की अंश पूंजी या 10% 5,00,000 रू. की श्रेष्ठ अंश पूंजी और 10,00,000 रू. की अंश पूंजी (iii) या 15,00,000 रू. की अंश पूंजी या 10% 5,00,000 रू. की श्रेष्ठ अंश पूंजी, 5,00,000 रू. के 10% ऋण पत्र और 5,00,000 रू. की अंश पूंजी।

अगर सहकारी आय कर दर को 50% माना जाए। एक अंश के मूल्य 100 रू. तो दर वित्तीय योजना के Indifference point को निश्चित कीजिए।

उत्तर (Solution)

2. Graphic विधि :– EBIT के Indifference level को Graphically भी निश्चित किया जा सकता है। चित्र 4.1 उदाहरण 4.1 की वित्तीय योजना का ग्राफिक चित्रांकन कर रही हैं। Horizontal X axis EBIT दर्शा रहा है और y axis EPS दर्शा रहा है।

वित्तींय योजना के ग्राफ के लिए EBIT&EPS Coordinates के दो सैट चाहिए। चित्र 8-1 के मामले में 1,00,000 रू. और 2,00,000 रू. EBIT मूल्यों से सम्बन्धित प्रत्येक योजना के लिए EPS की गणना कर ग्राफ पर दर्शाया गया है। यह देखा जाना चाहिए कि 100% पूंजी योजना origin (0) से शुरू हो जाती है। क्योंकि अगर EBIT 0 है तो EPS भी शून्य होगा। ऋण + अंश योजना के विकल्प में EBIT के लिए EPS को शून्य करने के लिए अपना मूल्य 75000 रू. यानि 10% 7,50,000 ऋण पत्रों पर देय ब्याज था। X axis से विच्छेद point पर perpendicular बनाया गया। जिस जगह से perpendicular बनाया गया। वह EBIT का Indifference level जो कि वर्तमान मामले में 1,50,000 रू. है।

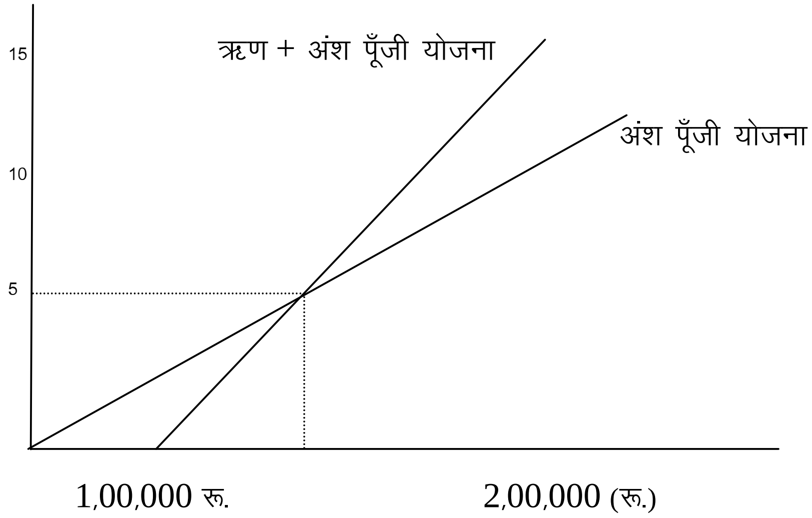

चित्र 4.1

चित्र 4.1 दर्शाता है कि अगर आशित EBIT (EBIT के Indifference level से कम है तो अंश योजना का EPS अधिक होगा। दूसरी तरफ 1 ऋण योजना विकल्पक का EPS तब उच्च होगा जब आशित EBIT, EBIT के Indifference level से अधिक होगा।

EBIT/ EPS विश्लेषण को कुछ शब्दों में कहा जाए तो, जितना ज्यादा आशित EBIT, EBIT Indifference level से अधिक होगा उतनी ही EPS को बढ़ाने के लिए उत्तोलन योजना अच्छी होगी। दूसरी तरफ अगर आशित EPS Indifference point से कम है तो EPS की दृष्टि से अनोत्तलित वित्तीय योजना अधिक फायदेमंद साबित होगी।

4.8.3 ऋण समता का तटस्थता बिन्दु

प्रत्येक व्यावसायिक संस्था को पूँजी संरचना का ऐसा प्रतिरूप चुनना होता है, जिस पर वह अपने अंशधारियों के लिए सर्वाधिक प्रति अंश आय अर्जित कर

सके। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ब्याज एवं कर से पूर्व आय (Earnings Before Interest and Tax-EBIT) का वह तटस्थता बिन्दु ज्ञात किया जाता है, जिस पर संस्था की आय, देय ब्याज के बराबर होती है, अर्थात् विनियोजित पूँजी पर प्रत्याय दर, ऋण पर ब्याज दर के समान होती है। यदि कम्पनी की संभावित आय इस तटस्थ बिन्दु से अधिक है तो कम्पनी को ऋणपत्रों से पूँजी जुटानी चाहिए। इसके विपरीत यदि कम्पनी की संभावित आय तटस्थ बिन्दु से कम है तो समता अंश पूँजी का प्रयोग अधिक लाभप्रद होगा। इस प्रकार तटस्थता बिन्दु की सहायता से सर्वोत्तम पूँजी संरचना का स्वरूप निर्धारित किया जा सकता है। इस बिन्दु की गणना निम्न बीजगणितीय सूत्र से की जा सकती है .

$$\frac{(X-I_1)(1-T)-PD}{S1} = \frac{(X-I_2)(1-T)-PD}{S2}$$

यहाँ पर X= EBIT का तटस्थ बिन्दु/समविच्छेद बिन्दु

I1 = प्रथम विकल्प के अन्तर्गत देय ब्याज राशि

I2 = द्वितीय विकल्प के अन्तर्गत देय ब्याज राशि

T = कम्पनी पर कर (निगम कर) की दर

PD = पूर्वाधिकार अंशों पर लाभांश की राशि

S1 = प्रथम विकल्प के अर्न्तगत समता अंशों की संख्या या समता अंश पूँजी

S2 = द्वितीय विकल्प के अंतर्गत समता अंशों की संख्या या समता अंश पूँजी

4.9 सारांश

दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पूँजी के विभिन्न स्त्रोतों का अनुपात निर्धारित करना पूँजी संरचना कहलाता है। प्रायः पूँजी संरचना में प्रयुक्त पूँजी दो प्रकार की होती हैः–अ. स्थाई लागत वाली पूँजी–ऋणपत्र एवं पूर्वाधिकार अंश, ब. परिवर्तनशील लागत वाली पूँजी–समता अंश एवं प्रतिधारित आयें । वास्तव में अनुकूलतम पूँजी संरचना एक मिथक या कल्पना है, क्योंकि उपरोक्त विशेषताओं को एक साथ पूरा करना असम्भव है। इसलिए कम्पनी को एक श्रेष्ठ पूँजी संरचना प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये। अनुकूलतम पूँजी संरचना चयन के मुख्य आधार हैः–

पूँजी की न्यूनतम औसत लागत, व अधिकतम प्रति अंश आय ।

श्रेष्ठ पूँजी संरचना के निर्धारण के लिए ऋण समता का तटस्थता बिन्दु ज्ञात किया जाता है, जहां विनियोजित पूँजी पर प्रत्याय दर, ऋण पर ब्याज दर के समान होती है, अर्थात् यह कर एवं ब्याज से पूर्व आय का वह बिन्दु है जहाँ कोई भी पूँजी संरचना का स्वरूप अपनाने पर प्रति अंश आय समान रहेगी।

4.10 शब्दावली

पूँजी संरचना दीर्घकालीनः वित्त प्रबन्धन के लिए पूँजी के विभिन्न स्त्रोतों का अनुपात निर्धारित करना पूँजी संरचना कहलाता है, जिससे पूँजी मिश्रण की सही जानकारी मिलती है।

पूँजीकरणः इसमें दीर्घकालीन स्त्रोतों से पूँजी की कुल मात्रा का निर्धारण किया जाता है।

वित्तीय संरचनाः इसमें पूँजी संरचना के साथ चालू दायित्वों को भी शामिल किया जाता है।

सम्पत्ति संरचनाः इसमें व्यवसाय की समस्त सम्पत्तियों को शामिल किया जाता है।

अनुकूलतम पूँजी संरचनाः ऐसी संतुलित संरचना है, जिससे संस्था की पूँजी की औसत लागत न्यूनतम तथा प्रति अंश आय अधिकतम होती है।

समता पर व्यापारः कम समता अंश पूँजी तथा स्थिर लागत वाली पूँजी के अधिक प्रयोग की नीति को समता पर व्यापार कहते हैं ताकि प्रति अंश आय बढ़ सके।

पूँजी दन्तिकरणः समता अंश पूँजी तथा स्थिर लागत वाली पूँजी के अनुपात को पूँजी दन्तिकरण कहते हैं। समता अंश पूँजी कम होने पर उच्च दन्तिकरण कहलाता है।

पूँजी की लागतः पूँजी के प्रयोग के लिए दिया जाने वाला प्रत्याय पूँजी की लागत कहलाता है, जो कम्पनी द्वारा अपने विनियोगों पर न्यूनतम रूप से अर्जित करना ही चाहिए।

ऋण समता का तटस्थता बिन्दुः वह बिन्दु जिस पर कम्पनी में विनियोजित पूँजी पर प्रत्याय दर, ऋण पर देय ब्याज दर के समान होती है। ऋण समता के किसी भी विकल्प को अपनाने पर प्रति अंश आय समान होती है।

4.11 बोध प्रश्न

1. .... वह अनुपात है जो विभिन्नं लम्बी अवधि के पूंजी स्रोतों जैसे अंश पूंजी, श्रेष्ठ अंश पूंजी और ऋणों के बीच होता है।
2. खतरे की दृष्टि से ....सबसे कम खतरे वाला स्रोत है क्योंकि कम्पनी को लाभांश देना कोई जरूरी नहीं होता
3. एक .... पूँजी संरचना उसे कहा जा सकता है, जहाँ कम्पनी के समता अंश का बाजार मूल्य अधिकतम हो और पूँजी की औसत लागत न्यूनतम हो।
4. जब कोई कम्पनी समता अंश पूँजी की बजाय ऋण पूँजी के आधार पर अपने व्यवसाय का संचालन करती है तो इसे .... करते हैं।
5. .... से तात्पर्य स्थिर ब्याज एवं स्थिर लाभांश वहन करने वाले कोषों तथा परिवर्तनशील लाभांश वहन करने वाले कोषों के अनुपात से है।

4.12 बोध प्रश्न के उत्तर

1. पूँजी संरचना, 2. अंश पूंजी, 3. अनुकूलतम, 4. समता पर व्यापार, 5. पूँजी दन्तिकरण

4.13 स्वपरख प्रश्न

1. पूंजी ढांचे की परिभाषा दीजिए। उचित पूंजी ढांचे से आपका क्या तात्पर्य है? उचित पूंजी ढांचे की क्या विशेषताएं होनी चाहिए ?

   (Define capital structure. What is meant by an appropriate capital structure? What should be the features of an appropriate capital structure?)

2. पूंजी ढांचे योजना की क्या महत्ता है। वास्तविक कार्य में वह कौन से मुख्य तथ्य हैं जो पूंजी ढांचे योजना को प्रभावित करते हैं।

   (Explain the importance of capital structure planning. Briefly discuss the major factors which influence the planning of capital structure in practice)
3. उचित पूंजी ढांचे को निर्मित करते हुए लाभवन्येता के प्रभाव का विश्लेषण कैसे होगा? अपने उत्तर EBIT / EPS विश्लेषण की मदद से समझाईए।

   (How the effect of profitability on designing an appropriate capital structure be analysed? Illustrate your answer with the help of EBIT/ EPS analysis)
4. पूंजी ढांचे की परिभाषा दीजिए । उचित पूंजी ढांचा क्या है? लचीला पूंजी ढांचा क्या है ?

   (Define capital structure. what is an appropriate capital structure ? What is flexible capital strucuture?)
5. फर्म के पूंजी ढांचे को कौन निश्चित करता है। विस्तार में चर्चा कीजिए।

   (What are determinants of a capital structure of a firm? Explain in detail.)
6. कम्पनी की पूँजी संरचना से आप क्या समझते हैं? वित्तीय और सम्पत्ति संरचना से इसके अंतर को स्पष्ट कीजिए।
7. एक कम्पनी की पूँजी संरचना को प्रभावित करने वाले आन्तरिक तत्वों की विवेचना कीजिए।
8. एक कम्पनी की पूँजी संरचना का निर्धारण करते समय किन बाह्य घटकों पर विचार किया जाना चाहिए?
9. आदर्श या अनुकूलतम पूँजी ढ़ाँचे से क्या आशय है? एक अनुकूलतम पूँजीगत ढ़ाँचे की मूलभूत विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
10. अनुकूलतम पूँजी संरचना के चयन के आधारों को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
11. श्रेष्ठ पूँजी संरचना निर्णय के आधारभूत तत्वों को समझाइये।
12. समता पर व्यापार के क्या आशय है? इसके प्रकार और उद्देश्य बताइये। समता पर व्यापार नीति किस प्रकार प्रति अंश आय को प्रभावित करती है? उदाहरण सहित समझाइये।
13. पूँजी दन्तिकरण से आप क्या समझते हैं? इसके प्रकार तथा महत्व बताइये।
14. पूँजी की लागत से क्या आशय है? इसे कैसे ज्ञात किया जाता है? पूँजी संरचना संबंधी निर्णय को यह कैसे प्रभावित करती है?
15. ''ऋण समता के तटस्थता बिन्दु से सर्वोत्तम पूँजी संरचना का स्वरूप निर्धारित किया जा सकता है।'' उदाहरण सहित समझाइये।

4.14 सन्दर्भ पुस्तकें

1. ए के वशिष्ट, एन के साहनी, तमन्ना सहगल, वित्तीय प्रबन्ध, कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना ।

2. “Financial Management”- M.Y. Khan & P.K. Jain, Tata Mc Graw Hill.
3. ”वित्तीय बाजारों की कार्यप्रणाली”— प्रो0 वी0 पी0 अग्रवाल— साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
4. ”निगमीय लेखांकन”— सी0 एम0 जैन एवं ए0 के0 अग्रवाल— g Master g Educorp, मेरठ।
5. ”प्रबन्ध हेतु वित्तीय विश्लेषण”— डॉ0 ए0 के गर्ग— स्वाती प्रकाशन, बुलन्दशहर।
6. ”निगमीय लेखाविधि”— डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 राजकुमार— नवनीत प्रकाशन, नजीबाबाद।
7. उच्च वित्तीय प्रबन्ध : डा0 एस0पी0 गुप्ता व डा0 बी0 कुमार मितत्तल ।

इकाई–5 पूँजी सरंचना के सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 पूँजी सरंचना तकनीकें
    5.2.1 आधारभूत मान्यताएँ
5.3 शुद्ध आय सिद्धान्त
    5.3.1 सिद्धान्त की आलोचनाएँ
5.4 शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त
    5.4.1 सिद्धान्त की आलोचनाएँ
5.5 मोदीग्लियानी मिलर सिद्धान्त
    5.5.1 मान्यताएँ
    5.5.2 सिद्धान्त की आलोचनाएँ
5.6 परम्परागत सिद्धान्त
    5.6.1 सिद्धान्त की आलोचनाएँ
5.7 सारांश
5.8 शब्दावली
5.9 बोध प्रश्न
5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.11 स्वपरख प्रश्न
5.12 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:–

- पूँजी संरचना के सिद्धान्तों की मान्यताओं की व्याख्या कर सकें।
- शुद्ध आय सिद्धान्त की व्याख्या कर सकें।
- शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त के बारे में जान सकें।
- मोदीग्लियानी–मिलर सिद्धान्त का वर्णन कर सकें।
- परम्परागत सिद्धान्त के बारे में जान सकें।
- भारत में पूँजी संरचना की स्थिति की व्याख्या कर सकें ।

5.1 प्रस्तावना

आदर्श या अनुकूलतम पूँजी संरचना के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये वित्तीय प्रबन्धक को पूँजी संरचना के सिद्धान्तों के बारें में जानकारी होना आवश्यक है। इसलिये हम इस इकाई में पूँजी संरचना के प्रमुख सिद्धान्तों की विवेचना करेंगे। किसी संस्था के कुल पूँजीकरण में ऋण एवं समता पूँजी का मिश्रण (अर्थात पूँजी संरचना) संस्था की पूँजी की समग्र लागत तथा संस्था के कुल मूल्य को प्रभावित करता है। किसी भी संस्था के प्रबन्ध को पूँजी संरचना के उस प्रारूप का चुनाव करना चाहिये, जिससे संस्था की समग्र पूँजी की लागत न्यूनतम हो तथा संस्था का कुल मूल्य अधिकतम हो।

अनुकूलतम पूंजी संरचना के बारे में भिन्न–भिन्न मत हैं। कुछ विद्वान ऋण समता मिश्रण का प्रभाव फर्म के कुल मूल्य पर मानते है, जबकि अन्य विद्वानों के

अनुसार ऋण समता के मिश्रण के किसी भी प्रारूप से फर्म का कुल मूल्य अप्रभावित रहता है।

पूँजी की लागत, पूँजी संरचना तथा फर्म के मूल्य के मध्य सम्बन्धों को स्पष्ट करने वाले प्रमुख सिद्धान्त/विचार धाराएँ या उपागम निम्नलिखित हैं:–

अ. शुद्ध आय सिद्धान्त

ब. शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त

स. मोदीग्लियानी–मिलर सिद्धान्त

द. परम्परागत सिद्धान्त

5.2 पूँजी संरचना तकनीकें

पूंजी ढांचे निर्णय का मूल उद्देश्य फर्म के मूल्य को अधिकतम करना होता है। हालांकि इस विचार में भी भिन्नताएं हैं कि पूंजी ढांचा निर्णय फर्म के मूल्य को प्रभावित करता है या नहीं। एक विचार है जो उत्तोलन और फर्म के मूल्य के सम्बन्ध को पक्के् तौर पर सहारा देता है। एक और बराबर का मजबूत विचार यह बात दर्शाता है कि वित्तींय उत्तोयलन और ऋण अंश के जोड़ का फर्म के मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं होता और पूंजी ढांचा निर्णय उपयुक्त है। यह विचार विभिन्न लेखकों द्वारा दी गई विभिन्न पूंजी ढांचे तकनीकों में दर्शाए गए हैं। पूंजी ढांचे की तकनीकों में अधिक योगदान डरान्डई (Durand), ऐजरा सोलोमन (Ezra Solaan), मोदीग्लियानी (Modigilini) और मिलर (Miller) का है। मुख्य पूंजी ढांचा तकनीकें इस प्रकार हैं :–

i. शुद्ध आय पहुंच (Net Income approach)

ii. शुद्ध कार्यकारी आय पहुंच (Net operating income approach)

iii. परम्परागत पहुंच (Traditional approach)

iv. मोदीग्लियानी और मिलर पहुंच (Modigilani & miller (MM) pproach)

इन पूंजी ढांचे की सभी पहुंचों पाठ के निम्नतलिखित पृष्ठों पर विस्तांर से वर्णन किया गया है।

5.2.1 आधारभूत मान्यताएँ

उपरोक्त चारों सिद्धान्तों को सुगमतापूर्वक एवं वास्तविक अर्थों में समझने के लिय निम्न मान्यताओं की जानकारी होना आवश्यक है:–

मान्यतताएं (Assumptions):

पूंजी ढांचे की तकनीकें निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित हैं:–

1. फर्म द्वारा निरन्तर प्रयोग होने वाले पूंजी के दो बिना खतरे के स्रोत ऋण व अंश पूंजी है।
2. कोई सहकारी कर नहीं है। यह मान्यता बाद में रद्द कर दी गई है।
3. ऋण को अंश पूंजी और पूंजी को ऋण में बदलने के लिए कोई कर नहीं होता।
4. फर्म की कुल सम्पंत्तियॉं देय होती हैं और उनमें कोई बदलाव नहीं आता।
5. फर्म की कार्यकारी आय (EBIT) से यह आशा नहीं की जाती कि वह बढ़ेगी।
6. फर्म का व्यवसायिक खतरा देय होता है और यह पूंजी ढांचे और वित्तीय खतरे से आजाद होता है।

7. फर्म की नीति यह है कि वह 100 प्रतिशत आय लाभांश के तौर पर दे देगी और अपने पास कोई आय नहीं रखेगी।
8. सभी विनियोक्ताओं को फर्म की भविष्य में होने वाली कार्यकारी आय (EBIT) के विभाजन का कुछ न कुछ अंदेशा होता है।

5.3 शुद्ध आय सिद्धान्त / विचारधारा / उपागम

शुद्ध आय पहुंच (Net Income (NI) Approach)

शुद्ध आय पहुंच डुराण्ड (Durand) द्वारा दी गई पूंजी ढांचे की दो पहुंचों में से एक है। इस पहुंच के अनुसार पूंजी ढांचे के बारे में निर्णय उचित निर्णय है क्योंकि फर्म के मूल्य और वित्तींय उत्तोलन की सीमा जिसे ऋण अंश अनुपात द्वारा गणित किया गया है कि बीच में सीधा सम्बन्ध है।

शुद्ध आय पहुंच तीन मान्यताओं पर आधारित है पहली कोई सहकारी कर नहीं, दूसरे ऋण की लागत अंश की लागत से कम है, तीसरे अतिरिक्त ऋण का प्रयोग विनियोक्त्ाओं के खतरे की समझ को नहीं बदलता और ऋण की लागत में कोई बदलाव नहीं आता।

NI पहुंच की मुख्य बातें इस प्रकार हैं:–

1. अगर फर्म ऋण का प्रयोग नहीं करती तो इसकी पूंजी की सम्पूर्ण लागत अंश की लागत के बराबर होती है।
2. वित्तीय उत्तोलन में बढ़ोत्तीरी या कमी ऋण की लागत (kd) और अंश की लागत (ke) को प्रभावित नहीं करती।
3. वित्तीय उत्तोलन में बढ़ोत्तरी (अंश की जगह ऋण की प्रतिस्थापना) पूंजी की सम्पूर्ण लागत (ko) को कम कर देती है क्योंकि मंहगी अंश पूंजी के स्थान पर सस्ती ऋण पूंजी की प्रतिस्थापना हो जाती है। दूसरी तरफ वित्तीय उत्तोलन में कमी पूंजी की सम्पूर्ण लागत (ko) को बढ़ा देती है।
4. वित्तीय उत्तोलन में बढ़ोत्तरी अंशधारियों की आय और सामान्य अंशों के बाजारी मूल्य को बढ़ा कर दर्शाती है जिससे फर्म का मूल्य बढ़ता है।
5. फर्म एक उचित पूंजी ढांचा चुन सकती है जिसमें फर्म का मूल्य अत्यधिक और पूंजी की सम्पूर्ण लागत (ko) न्यूनतम होगी। NI पहुंच के अनुसार उत्तम पूंजी ढांचा वहीं है जिसमें अंश पूंजी का अनुपात न के बराबर है।
6. उदाहरण 5.1 में NI पहुंच को समझाया गया है।

उदाहरण 5.1 (Illustration – 5.1)

कम्पनी की आशित कार्यकारी आय (EBIT) 1,00,000 रु. है। कम्पनी के पास 4,00,000 रु. के 10 % ऋण पत्र और 24000 अंश पूंजी है। इसका अंश पूंजीगत दर (ke) 12.5%

उत्तर (Solutions)

कम्पनी किसी कर के, फर्म का मूल्य उसके अंश का मूल्य, और सम्पूर्ण पूंजी की लागत NI पहुंच के अनुसार Table 7.1 में दर्शाई गई है।

तालिका 5.1

फर्म का मूल्य (Value of firm (Net Income Approach)

शुद्ध कार्यकारी आय (EBIT)	1,00,000 रु.

कम 10% ऋण पत्रों पर ब्याज	40,000
अंशधारियों को उपलब्ध आय	60,000
अंश पूंजीगत दर (ke)	0.125
ऋण का बाजारी मूल्य् (S) = NI / ke	4,80,000
ऋण का बाजारी मूल्य् B	4,00,000
फर्म का कुल मूल्यय (B + S + = V)	8,80,000
कुल अंश = N	

प्रति अंश मूल्य S / N = 4,80,000 / 24000 = 20 रु.

पूंजी की सम्पूयर्ण लागत ko = EBIT / V

= 1,00,000 / 8,80,000 = 0.1136 या 11.36%

इस प्रकार मितव्ययी स्त्रोत से पूँजी की व्यवस्था करने से समता अंश पूँजी पर प्रत्याय में वृद्धि होती है तथा इससे समता अंशों के मूल्य में वृद्धि तथा परिणामस्वरूप संस्था के कुल मूल्य में भी वृद्धि होती है। संस्था की अनुकूलतम पूँजी संरचना (अर्थात ऋण–समता मिश्रण) वह होगी, जहां संस्था की पूँजी की समग्र लागत न्यूनतम हो तथा संस्था का कुल मूल्य अधिकतम हो।

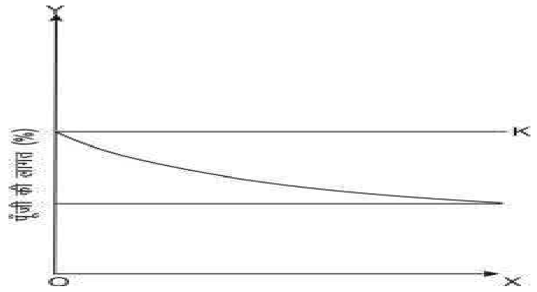

रेखाचित्रः 5.1

शुद्ध आय सिद्धान्त को रेखाचित्र के माध्यम से निम्न प्रकार समझा जा सकता हैः–

रेखाचित्र 5.1:– शुद्ध आय सिद्धान्त के अनुसार उत्तोलक एवं पूँजी की लागत के संबंध रेखाचित्र में Ox अक्ष पर उत्तोलक की मात्रा तथा Oy अक्ष पर समता पूँजी की लागत (Ke), ऋण पूँजी की लागत (Kd) तथा पूँजी की कुल लागत (Ko) को प्रदर्षित किया गया है। रेखाचित्र से स्पष्ट है कि उत्तोलक की मात्रा बढने पर जहां समता पूँजी तथा ऋण पूँजी की लागतें अपरिवर्तित रहती है, वहीं पूँजी की कुल (K लागत) कम होती व जाती है, इस प्रकार यह विचारधारा उत्तोलक की मात्रा को बढाने पर जोर देती है।

मान्यताएँः–

शुद्ध आय उपागम निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है –

i. ऋण पूँजी की लागत समता पूँजी की लागत से कम होती है।

ii. ऋण पूँजी की लागत तथा समता पूँजी की लागत सदैव स्थिर रहती है अर्थात

ऋण पूँजी में वृद्धि से भी विनियोजकों और ऋणदाताओं की दृष्टि से फर्म अधिक जोखिमपूर्ण नहीं होती है।

iii. आयकर या निगम कर पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है।

मूल्यांकन–

शुद्ध आय सिद्धान्त पूँजी संरचना में पूँजी की समग्र (K लागत) पर ऋणों के प्रभाव को स्पष्ट करता है तथा अनुकूलतम/आदर्श या संतुलित वित्तीय उत्तोलक (Financial Leverage) पर जोर देता है। यदि वित्तीय उत्तोलक अनुकूल है, तो संस्था अतिरिक्त ऋण लेकर समता अंशधारियों के लिये उपलब्ध आय में वृद्धि कर सकती है और अन्ततः फर्म के मूल्य में वृद्धि कर सकती है। परन्तु इस सिद्धान्त का प्रमुख दोष यह है कि यह सिद्धान्त इस तथ्य को मान्यता नहीं देता है कि पूँजी संरचना में ऋण की मात्रा बढाने से जोखिम बढ जाती है और जोखिम बढने से समता अंशधारी अपने अंश बेचना पसन्द करेंगे, फलस्वरूप समता अंशों का बाजार मूल्य भी गिर जायेगा। इस तथ्य की अनदेखी करने से यह सिद्धान्त पूँजी सरंचना प्रबन्ध के लिये पर्याप्त नहीं माना जा सकता है।

5.3.1 NI पहुंच/सिद्धान्त की आलोचनाएं (Criticisms of NI Approach)

NI पहुंच की आलोचना इसकी बेबुनियाद मान्यताओं के आधार पर की जा सकती है। अत्यधिक ऋण का प्रयोग निश्चित तौर पर ऋण की लागत को बढ़ाएगा क्योंकि लेनदार ब्याज के उसकी दर पर अतिरिक्त ऋण नहीं देंगे। उसी तरह अंश पूंजी में भी बढ़ोत्तरी होगी क्योंाकि फर्म अंश की जगह ऋण की प्रतिस्थायपना कर अतिरिक्तत खतरे का सामना करेगी।

5.4 शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त/विचारधारा/उपागम

NOI डुराण्ड (Durand) द्वारा सुझावित एक अन्यत पूंजी ढांचा की तकनीक है । यह पहुंच इस बात का समर्थन करती है कि फर्म के पूंजी ढांचे निर्णय का कोई औचित्य नहीं है और उत्तोलन में कोई बदलाव (बढ़ोत्तेरी या कमी) न तो फर्म के मूल्य और न ही पूंजी की लागत में बदलाव ला सकता है। इस लिए यह पहुंच NI पहुंच से बिल्कुल भिन्न है। यह सिद्धान्त गणना की दृष्टि से शुद्ध आय सिद्धान्त से पूर्णतः विपरीत है। इस सिद्धान्त के अनुसार फर्म की पूँजी सरंचना में परिवर्तन से फर्म के कुल (V) मूल्य तथा पूँजी की समग्र (Ko) (Irrelevant Theroy) (Ko) लागत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इस प्रकार कोई भी पूँजी संरचना संस्था के लिये अनुकूलतम नहीं होती है और विनियोजक पूँजी संरचना में परिवर्तन के प्रति उदासीन रहते है। दूसरे शब्दों में इसे पूँजी असम्बन्ध संरचना अवधारणा भी कहा जा सकता है।

चूँकि इस सिद्धान्त के अनुसार ऋण समता का कोई भी मिश्रण फर्म के कुल मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं लाता है, इसलिये सभी प्रकार के मिश्रण फर्म के लिये अनुकूलतम माने जायेंगे। परन्तु जैसा कि कम्पनी को कुछ मात्रा में समता पूँजी निर्गमित करना अनिवार्य है, इसलिय यदि निगम कर का अस्तित्व माना जाये तो कम्पनी अधिकतम संभव मात्रा में ऋण लेकर अपने मूल्य में वृद्धि कर सकती है।

शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त को रेखाचित्र के माध्यम से निम्न प्रकार समझा जा सकता है :–

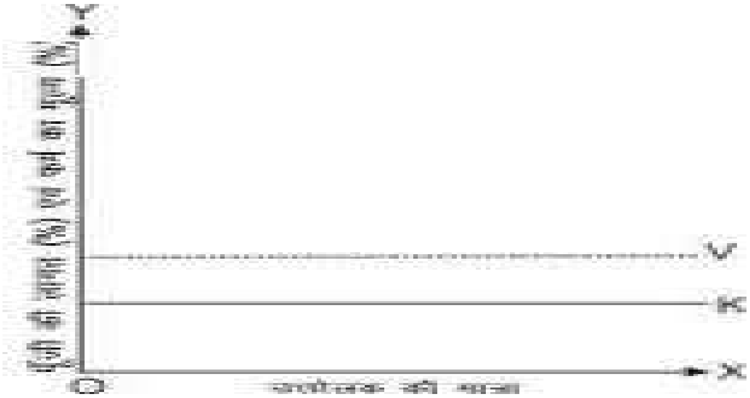

रेखाचित्र 5.2:– शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त के अनुसार उत्तोलक एवं पूँजी लागत व फर्म के मूल्य में संबंध

रेखाचित्र में Ox अक्ष पर उत्तोलक की मात्रा तथा Oy अक्ष पर पूँजी की समग्र लागत तथा फर्म के कुल मूल्य (V) को प्रदर्षित किया गया है। रेखाचित्र से स्पष्ट है कि उत्तोलक की मात्रा में वृद्धि का फर्म के (V) मूल्य तथा पूँजी की समग्र (Ko) पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। परन्तु समता पूँजी की लागत (K) उत्तोलक की मात्रा बढने के म साथ–साथ बढती रहती है। समता पूँजी की लागत (Ke) में वृद्धि, सस्ती ऋण पूँजी के प्रयोग करने से होने वाले लाभ के प्रभाव को समाप्त कर देती है और पूँजी की कुल लागत स्थिर रहती है। फर्म का कुल मूल्य (V) भी प्रत्येक अवस्था में समान रहता है। यदि फर्म केवल समता पूँजी का ही प्रयोग करती है तो पूँजी की समग्र (K लागत) व तथा समता पूँजी की लागत (Ke) समान रहती है:–

मान्यताएँ–

NOI पहुंच निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है:–

i. कोई सहकारी कर नहीं

ii. ऋण की लागत (kd) अंश की लागत से कम है।

iii. ऋण का प्रयोग अंशधारियों के खतरे की समझ को बदलता है और वित्तीय उत्तोलक के बढ़ते प्रयोग के कारण अंश की लागत ke बढ़ती है।

iv. ऋण के देनदारों का खतरे का अनुमान उत्तोदलन में बदलाव के कारण नहीं बदलता और ऋण की लागत ाक अप्रभावित रहती है।

NOI पहुंच की मुख्य बातें इस प्रकार हैं –

1. सभी अंश फर्म के मामले में पूंजी की लागत ko अंश की लागत के बराबर होती है।
2. उत्तोंलन की सभी सीमाओं पर पूंजी की सम्पूर्ण लागत ko में कोई बदलाव नहीं आता।
3. उत्तोंलन की सभी सीमाओं पर फर्म के मूल्य V में कोई बदलाव नहीं आता।

$$V = EBIT / ko$$

दूसरे शब्दों में फर्म के मूल्यं की गणना पूर्ण तौर पर बाजार द्वारा की जाती है। ऋण की लागत B और अंश की लागत S के कारण फर्म के कुल मूल्य् में तोड़ यहॉ कोई औचित्य नहीं रखता।

4. अंश का मूल्यख शेष मूल्य है जो कि फर्म के मूल्य् V में से ऋण के मूल्य B को घटाकर पाया जाता है। इसलिए

   S = V – B

5. वित्तीय उत्तोलन में बढ़ोत्तरी के साथ अंश की लागत भी बढ़ती है। यह इसलिए होता है कि ऋण के अत्यधिक प्रयोग के कारण अंशधारी ज्यादा खतरा उठाते हैं। अंशधारियों को अधिक खतरा उठाने के लिए उनके विनियोग पर प्रत्याय दर को भी अधिक करना होगा। अंश की लागत में बढ़ोत्तरी ऋण अंश अुनपात के एक निश्चित तल पर अंश की लागत यह होगी –

   Ke = ko + (ko – kd) (B / S)

6. ऋण की लागत दो भागों में विभाजित होती है (अ) बाहरी लागत (Explicit Costs) जो कि ब्याज दर द्वारा प्रतिनिधित्व होती है। वित्तीय उत्तोलन पर ब्या्ज दर बढ़ा कर फर्म को सजा नहीं देते (ब) अंदरूनी लागत या छूपी हुई लागत (Implicit cost or hidden cost) जैसे कि ऊपर अंश की लागत की गणना में बाताया गया है कि ऋण के अधिक प्रयोग के कारण अंश की लागत में आई बढ़ोत्तरी ही अंदरूनी लागत है। सस्ती ऋण पूंजी के प्रयोग का लाभ बढ़ी हुई अंश की लागत से बिल्कुल साफ हो जाता है। नतीजतन ऋण और अंश की वास्तविक लागत एक जैसी होती है और NOI पहुंच में ko भी बराबर होता है।

7. NOI पहुंच के अनुसार उत्तम पूंजी ढांचे जैसी कोई बात नहीं है । फर्म का मूल्य पूंजी ढांचे से अप्रभावित रहता है। वित्तीय उत्तोलन के हर तल पर फर्म का मूल्य एक जैसा ही रहेगा।

उदाहरण 5.2 की मदद से NOI पहुंच को समझाया गया है।

उदाहरण 5.2 (Illustration 5.2)

कम्पनी की आशित वार्षिक शुद्ध कार्यकारी आय (EBIT) 1,00,000 रु है। कम्पनी के पास 4,00,000 रु. के 10% ऋण पत्र हैं और 24000 अंश पूंजी है। पूंजी की सम्पूर्ण लागत (ko) 12.5% है।

उत्तर (Solution)

NOI पहुंच के अनुसार बिना किसी कर के, फर्म का मूल्य V, अंश का मूल्य S, फर्म के अंश की लागत ke **तालिका – 5.2** में दर्शाए गए हैं।

तालिका – 5.2

फर्म का मूल्य (Value of firm (Net Operating Income Approach**)**

शुद्ध कार्यकारी आय (EBIT)	1,00,000 रु.
पूँजी की सम्पूर्ण लागत Ko	.125
फर्म का कुल बाजारी मूल्य V $= \frac{EBIT}{Ko}$	8,00,000
ऋण का बाजारी मूल्य (B)	4,00,000 रु.
अंश का कुल बाजारी मूल्य (S)= (V–B)	4,00,000 रु.
अंश की लागत Ke $= \frac{EBIT-I}{S}$	

$$\frac{1,00,000}{4,00,000} = 15 \text{ or } 15\%$$

कुल अंश N = 24,000

प्रति अंश मूल्य = $\frac{S}{N}$ = $\frac{4,00,000}{24,000}$ = 16.67 रु.

NOI पहुँच की शुद्धता को ज्ञात करने के लिए पूँजी की weighted औसत लागत Ko

Ko = Kd(B/V) + Ke (S/V)

$$=10\% \; \frac{4,00,000}{8,00,000} + 15\% \; \frac{4,00,000}{8,00,000}$$

5% + 7% =12%

मूल्यांकनः

यह सिद्धान्त फर्म के कुल मूल्य निर्धारण में शुद्ध परिचालन आय की भूमिका पर ध्यान देती है और इस सिद्धान्त के अनुसार विनियोग प्रस्तावों की स्वीकृति फर्म के कुल मूल्य तथा शुद्ध परिचालन आय के सम्बन्ध पर आधारित होनी चाहिए।

परन्तु यह विचारधारा आदर्श या अनुकूलतम पूँजी सरंचना की अवधारणा को स्वीकार नहीं करती है। इस प्रकार ऋण–समता मिश्रण के निर्धारण का कोई महत्व नहीं रह जाता है।

5.4.1 NOI पहुँच/सिद्धान्त की आलोचना; (Criticism of NOI Approach)

NI पहुंच की तरह NOI पहुंच की आलोचना भी इसी आधार पर की जा सकती है कि यह बेबुनियाद धाराणाओं पर आधारित है। उत्तोलन के हर तल पर ऋण की लागत kd एक समान नहीं रह सकती। यह अवश्य ही बढ़ेगी अगर फर्म उच्च सीमा के वित्तीए खतरे को अपनाकर बहुत खतरनाक बनेगी। नतीजन पूंजी की सम्पूर्ण लागत ko भी अवश्य ही बढ़ेगी । इसलिए उत्तोलन के हर तल के लिए फर्म का मूल्य एक समान नहीं रह सकता।

5.5 मोदीग्लियानी – मिलर सिद्धान्त/विचारधारा/उपागम (एम.एम. सिद्धान्त)

मोदीग्लियानी–मिलर विचारधारा में भी पहले तो अन्य विचारधाराओं की तरह निगम करों को ध्यान में नहीं रखा गया परन्तु बाद में उन्होनें निगम करों की उपस्थिति को स्वीकार किया, इसलिये उनकी विचारधारा दो तरह की मानी जा सकती है –

अ जब निगम करों का अस्तित्व न माना जावे–ऐसी स्थिति में यह विचारधारा शुद्ध परिचालन आय विचारधारा की तरह होती है।

ब जब निगम करों का अस्तित्व माना जाये ऐसी–स्थिति में यह विचारधारा शुद्ध आय विचारधारा की तरह होती है।

MM पहुंच NOI पहुंच से मिलती जुलती है। जैसे कि ऊपर समझाया गया है छव् पहुंच में व्यवहारिक नहीं है क्योंकि वह पूंजी ढांचे की अनावश्कयता और फर्म के मूल्य और पूंजी की सम्पूर्ण लागत पर इसके कोई प्रभाव न होने की

कोई कार्यकारी दलील नहीं दे सकी। यह दलील मोदीग्लियानी और मिलर ने पूंजी ढांचे के अपने 1958 प्रस्ताव में दी है।

मोदीग्लियानी और मिलर कहते हैं कि करों की अनुपस्थिति में, वित्तीय उत्तोलन की हर सीमा पर फर्म का मूल्य और पूंजी की सम्पूर्ण लागत एक समान होगी जैसे कि रेखाचित्र 5.3 में दर्शाया गया है।

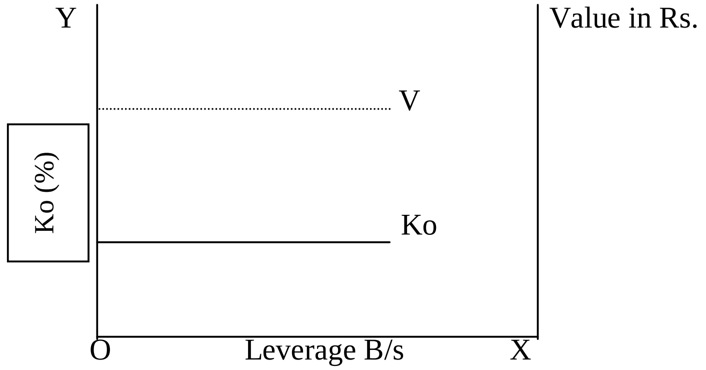

रेखाचित्र 5.3

वह केवल कथन से ही सहमत नहीं और इसकी कार्यकारी दलील भी देते हैं।

MM तकनीक के आधार कथन (Basic Propositions of MM Hypothesis)

1. फर्म का सम्पूर्ण पूंजी लागत ko और फर्म का मूल्य (V) पूंजी ढांचे से आजाद होती हैं। ko और V उत्तोलन की हर सीमा के लिए समान हैं।
2. फर्म के अंशों की लागत अंश के शुद्ध पूंजीगत दर + वित्तीय खतरे के प्रीमियम के बराबर होती है। वित्तीय खतरे का प्रीमियम शुद्ध अंश के पूंजीगत दर और ऋण की लागत के Differentiate के बराबर होता है। सांकेतिक तौर पर अंश की लागत उतनी ही बढ़ती है ताकि वह फण्ड के कम मंहगे स्रोत ऋण के प्रभाव का समान रूप से प्रभावित कर सके।
3. विनियोग के लिए बहल दर फण्ड को उगाने के तरीके से बिल्कुल आजाद होता है।

5.5.1 धारणाएं/मान्यताएँ (AssumptionS)

MM पहुंच कुछ मान्यताओं पर आधारित हैं। यह मान्यताएं विनियोक्ताओं के व्यवहार, फर्मों की कार्यवाही, पूंजी बाजार और कर वातावरण से सम्बान्ध रखती हैं।

1. **पूंजी बाजार बहुत उचित है (Capital Markets are perfect):** अंश और ऋण पत्रों का व्याापार उचित पूंजी बाजारों में किया जाता है। उचित पूंजी बाजार का अर्थ है (i) प्रतिभूतिया अनगिनत रूप से विभाज्य है (ii) विनियोक्ता प्रतिभूतियों बेचने और खरीदने के लिए आजाद हैं (iii) लेनदेन (TransactionS) की लागत कम आती है (iv) विनियोक्ता बिना किसी रोक टोक के फर्म के उसूलों पर उधार ले सकते हैं। (v) हर विनियोक्ता को बिना किसी लागत के सूचना उपलब्ध है। और (vi) विनियोक्ता समझदारी से व्यवहार करते हैं।

2. **समान खतरा ऋणियों (Homogenous Risk Classes)**: फर्मों को एक समान खतरा श्रेणियों या बराबर खतरा श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। समान खतरा श्रेणियों से अर्थ है कि इस श्रेणी की फर्मों की आशित आयों को एक समान खतरा है। MM पहुंच यह बात मानती है कि एक इण्डस्ट्री की सभी फर्में समान खतरा श्रेणी आती हैं।
3. **शुद्ध कार्यकारी आय के बारे में आशा (Expectations about Net operating Income)**: फर्म के मूल्यांाकन के लिए हर विनियोक्ता की फर्म के शुद्ध कार्यकारी आय (EBIT) के बार में एक समान आशाएं होती हैं।
4. **सम्पूर्ण भुगतान (Full Payout)**: लाभांश भुगतान अनुपात 100% है। इसका अर्थ यह है कि सम्पूकर्ण आय अंशधारियों के बीच विभाजित कर दी जाती है।
5. कोई कर नहीं (No taxes) फर्म को कोई कर नहीं देने पड़ते। यह मान्यता MM द्वारा बाद में हटा ली गई।

व्यावहारिक न्यायोचिता – एक Arbitrage कार्य (Behavioural Justifications – The Arbitrage Process)

MM पहुंच का आधारिक कथन यह है कि आधारिक मान्यता के साथ उत्तोलन की हर सीमा (ऋण – अंश अनुपात) के साथ फर्म का मूल्य और पूंजी की सम्पूर्ण लागत एक समान रहती है। इस कथन की व्यवहारिक न्याायोचित एक कार्य है। कार्य में उन प्रतिभूतियों (सम्पत्तियों को खरीदा जाता है जिनका मूल्य कम हो (कम मूल्य प्रतिभूतियां) और उन प्रतिभूतियों को बेचा जाता है जिनका मूल्य ऊंचा (खरीद से ऊंचा) होता है। यह उस बाजार में बेची जाती है जो क्षणिक तौर पर सामान्य नहीं है। कम दाम प्रतिभूतियों की मॉग में बढ़त के कारण उनका मूल्य बढ़ जाता है और उँचे मूल्य की प्रतिभूतियों की अत्यधिक बिक्री के कारण उनका मूल्य गिर जाता है। इसलिए यह आरबिटरेज (Arbitrage) कार्य सम्बन्धित बाजारों में फिर से समन्वय देता है। Arbitrage कार्य इस बात से सहमत होता है कि लम्बे समय तक प्रतिभूतियों विभिन्न् मूल्य पर नहीं बेची जा सकती।

इस कार्य को समझने के लिए चलिए हम दो फर्में अ और ब लेते हैं जोकि उत्तोलन को छोड़ हर बात में मिलती हैं क्योकि अ के पूंजी ढांचे में केवल ऋण है और ब सम्पूर्ण तौर पर अंश पूंजी फर्म है। आगे हम यह मानते हैं कि फर्में अ का मूल्य फर्म ब के मूल्य से अधिक है । MM पहुंच के अनुसार यह दो फर्में जो कि केवल उत्तोलन के समय में भिन्न हैं, इनका मूल्य Arbitrage के कारण अधिक देर तक भिन्न नहीं रह सकता। फर्म अ के विनियोक्ता अपने अंश बेचेंगे क्योंकि उनका मूल्य अधिक है और फर्म ब के अंश खरीदेंगें जिनका मूल्य कम है। यह उनको समान कम पैसों, समान या कम खतरे के साथ समान प्रत्याय देने में मदद करेंगा । इसलिए वह बेहतर हो जाएंगें। विनियोक्ताओं का यह व्यवहार इनको प्रभावित करेगा (i) फर्म ब के अंशों के मूल्य को बढ़ाएगा जिनका मूल्य कम है (ii) फर्म अ के अंशों के मूल्य को गिराएगा जिनका मूल्य अधिक है। यह बिक्री खरीद तब तक चलती रहेगी जब तक दोंनों फर्मों का बाजारी मूल्य एक समान न हो जाए ।

ऊपर समझाया गया Arbitrage कार्य विनियोक्ता को उस फर्म में विनियोग की तुलना में जिसका मूल्य अधिक बिना कोई खतरा बढ़ाए कम पैसों में अधिक

प्रत्याय अर्जित करवाएगा। यह इसलिए होता है कि विनियोक्ता फर्म के उत्तोंलन के अनुपात में ही उधार लेते हैं। विनियोक्ता द्वारा उत्तोलन को प्रयोग निजी उत्तोलन (Personal leverage) या घर बनाया उत्तोलन (Home made leverage) कहते हैं। MM द्वारा समझाए गए Arbitrage कार्य का निचोड़ यह है कि विनियोक्ता सहकारी उत्तोलन की जगह निजी उत्तोलन को रख लेते हैं। इसलिए सम्पूर्ण अंश फर्म के मामलें में भी विनियोक्ताओं द्वारा निजी उत्तोलन प्रयोग से फर्म का उत्तोलन प्रयोग में आता है।

उदाहरण 5.3 (Illustration – 5.3)

दो फर्म L और U एक समान हैं, अन्तर सिर्फ यह है कि फर्म L के पास 12% 5,00,000 रु के ऋण पत्र हैं। दोंनों फर्मों की शुद्ध कार्यकारी आय (EBIT) 1,00,000 रु है। फर्म L की अंश लागत 20% और U की 16% है।

उत्त,र (Solutions)

उदाहरण 5.2 में दिए गए तथ्यों के आधार पर फर्म L और U के बाजारी मूल्य की गणना **तालिका – 5.3** में की गयी है।

तालिका – 5.3

फर्म L और U का कुल मूल्य

(Total value of firms L & U)

	फर्म	
शुद्ध कार्यकारी आय (EBIT)	1,00,000 रु.	1,00,000 रु.
क्म (Less) ब्याज	60,000 रु.	-
अंशधारियों को उपलब्ध आय	40,000 रु.	1,00,000 रु.
अंश की लागत Ke	.20	.16
अंश का बाजारी मूल्य (S)	2,00,000 रु.	6,25,000 रु.
ऋण का बाजारी मूल्य (B)	5,00,000 रु.	-
कुल बाजारी मूल्य (V)	7,00,000 रु.	6,25,000 रु.
पूँजी की सम्पूर्ण लागत Ko		
$Ko = \frac{EBIT}{V}$	14.29%	16%
ऋण अंश अनुपात	2.5	

तालिका 5.3 यह दर्शाता है कि (उत्तोलित फर्म) 2 का बाजारी मूल्य (उत्तोलित फर्म) U के बाजारी मूल्य से अधिक है। MM के अनुसार यह स्थिति ज्याादा देर तक नहीं रह सकती, जैसे ही Arbitrage कार्य शुरू होगा जैसे ही L और U के मूल्यों में समानता आ जाएगी।

मूल्यांकन –

एम.एम.सिद्धान्त में करों की उपस्थिति में यह माना गया है कि ऋण मात्रा बढाने से उत्तोलक वाली फर्म का मूल्य बढ जाता है और पूँजी की औसत लागत

कम हो जाती है। परन्तु जिन मान्यताओं पर यह सिद्धान्त आधारित है वे वास्तविकता पर आधारित नहीं है, जैसे – पूर्ण पूँजी बाजार की विद्यमानता, व्यवहार लागते नहीं होना, 100% लाभांश का भुगतान करना, व्यक्तिगत उत्तोलक एवं निगम उत्तोलक का एक होना आदि। गलत मान्यताओं के कारण इस सिद्धान्त की आलोचना की जाती है।

5.5.2 MM पहुंच / सिद्धान्त की आलोचना

MM पहुंच कार्य की व्यवहारिक आधार पर आधारित है। Arbitrage कार्य केवल पूर्ण सही बाजार में कार्य कर सकता है। पूंजी बाजार MM पहुंच की मान्यता के अनुसार पूर्ण सही नहीं होते। पूंजी बाजारों में खराबियां Arbitrage कार्य को प्रभावी ढंग से कार्य नहीं करने देती जिस कारण उत्तोलित व अनोत्तलित फर्म के बाजारी मूल्यो में खराबी जा आती है। Arbitrage कार्य निम्नलिखित कारणों से भी उत्तोलित व अनोत्तलित फर्मों के बाजारी मूल्य में समन्वय लाने के लिए असफल रहता है।

1. **फर्म व व्यक्ति के देने और उधार दरों में खराबीः** MM पहुंच यह मानती है कि फर्म व व्यक्ति एक ही दर पर पैसे ले व दे सकते हैं। वास्तविकता में फर्मों की स्थाई सम्पत्तियों पर मलकियत के कारण बेहतर स्थिति होती है। नतीजतन फर्म व्यक्ति की तुलना में कम दर पर पैसे ले सकती है। अगर व्यक्ति को पैसे की लागत फर्म से अधिक पड़ेगी तो समन्वय कार्य सम्पन्न नहीं हो सकेगा।
2. **निजी और सहकारी उत्तोलन में अन्तरः** MM यह बात भी मानते हैं कि निजी व सहकारी दोंनों उत्तोलनों में समान खतरा है। लेकिन निजी उत्तोलन सहकारी उत्तोलन से अधिक खतरनाक है क्योंकि व्यंक्ति का दायित्व असीमित है व फर्म।
3. **व्यापारिक लागतेंः** MM पहुंच के अनुसार कोई व्यापारिक लागत नहीं होती । इसका अर्थ यह हुआ कि प्रतिभूतियां बिना किसी लागत के बेची व खरीदी जा सकती हैं। वास्तविक जिंदगी में प्रतिभूतियों की बेच खरीद पर व्यापारिक लागतें पैसे दलाली, बदलाव कमीशन आदि होती है।
4. **सांस्थानिक प्रतिबन्धः** सांस्थानिक प्रतिबन्ध Arbitrage कार्य के बीच में खड़े हो जाते हैं। कुछ सांस्थानिक विनियोक्ता जैसे भारतीय बीमा कार्पोरेशन, यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया और कर्मशियल बैंक सहकारी उत्तोालन के स्थाभ्न पर निजी उत्तोलन की स्थापना नहीं कर सकते क्योंकि उन्हें ऐसा करने की अनुमति नहीं है। यह कार्य को रोकता है।
5. **सहकारी करों का होनाः** अंत में सहकारी करों का होना MM के नतीजों को प्रभावित करेगा । ऋण पर ब्याज की कर कटौती है जब कि अंश पूंजी पर लाभांश पूर्व कर लाभों में से दिया जाता है। इसलिए सहकारी करों की उपस्थिति के कारण ऋण की लागत अंश की लागत से कम होगी। नतीजतन उत्तोलित फर्म की सम्पूर्ण पूंजी लागत अनोत्तलित फर्म की पूंजी लागत से कम होगी। MM ने यह तथ्य खुद ही जान लिया और मान लिया कि उत्तोलित फर्म का मूल्य अनोत्तलित फर्म के मूल्य से अधिक होगा।

5.6 परम्परागत सिद्धान्त / विचारधारा / उपागम

शुद्ध आय विचारधारा एवं शुद्ध परिचालन आय विचारधारा दो चरम (Extreme) विचारधाराएँ है। जहाँ शुद्ध आय विचारधारा के अनुसार पूँजी सरंचना में ऋण की उपस्थिति फर्म के कुल मूल्य तथा कुल पूँजी की लागत, दोनों को प्रभावित करती है, वहीं शुद्ध परिचालन आय विचारधारा के अनुसार पूँजी सरंचना में ऋण की उपस्थिति का फर्म के मूल्य या कुल पूँजी की लागत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। एम.एम.सिद्धान्त करों की अनुपस्थिति में शुद्ध परिचालन आय विचारधारा का समर्थन करती है तथा निगम करों की उपस्थिति में शुद्ध आय विचारधारा का समर्थन करती है।

परम्परागत विचारधारा शुद्ध आय सिद्धान्त तथा शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त की मध्यमार्गी है, इसलिये इसे मध्यवर्ती विचारधारा (Intermediate Approach) भी कहा जाता है। इस विचारधारा के अनुसार ऋण पूँजी एवं समता पूँजी के विवेकपूर्ण मिश्रण द्वारा एक संस्था अपनी पूँजी की समग्र लागत को कम कर सकती है तथा अपने कुल मूल्य को बढा सकती है। ऋण पूँजी की लागत समता पूँजी से कम होती है इसलिये कोई भी फर्म अपनी पूँजी संरचना में एक सीमा तक ऋण पूँजी में वृद्धि करके अपनी समग्र पूँजी लागत में कमी तथा कुल मूल्य मे वृद्धि कर सकती है, परन्तु एक सीमा के बाद ऋण की मात्रा बढाने पर समग्र पूँजी की लागत में वृद्धि तथा फर्म के मूल्य में कमी आ सकती हैं। इस प्रकार यह विचारधारा अनुकूलतम पूँजी सरंचना के अस्तित्व को स्वीकार करती है।

परम्परागत पहुंच जिसे पूंजी ढांचे की बीच की पहुंच भी कहा जाता है NI पहुंच और NOI पहुंच के बीच सभी अंतरों का समावेश है। जहॉ NI पहुंच यह कहती है कि पूंजी ढांचे में ऋण का प्रयोग फर्म के मूल्य को बढ़ाएगा और पूंजी की सम्पूर्ण लागत को कम करेगा, NOI पहुंच कहती है कि ऋण का प्रयोग फर्म के मूल्य ओर पूंजी की सम्पूर्ण्ण लागत को प्रभावित नहीं करता और पूंजी ढांचे निर्णय का कोई औचित्य नहीं है। परम्परागत पहुंच इन दोंनों तकनीकों की कुछ विशेषताएं अपनाएं हुए है। यह NI पहुंच की इस बात को मानती है कि फर्म का मूल्य और पूंजी की सम्पूर्ण लागत पूंजी ढांचे से आजाद नहीं है। पर यह पहुंच इस विचार से सहमत नहीं है कि ऋण का पूंजी ढांचे में किसी हद तक प्रयोग फर्म के मूल्य को बढ़ाएगा। यह NOI पहुंच से इसलिए मिलती जुलती है क्योंकि यह भी यह बात मानती है कि उत्तोलन की एक सीमा के बाद अंश की लागत बढ़ती है। पर यह NOI पहुंच से इस बात के लिए भिन्नत है कि उत्तोलन की हर सीमा के साथ पूंजी की सम्पूर्ण लागत और फर्म का मूल्य एक समान रहता है।

परम्परागत पहुंच का निचोड़ यह है कि फर्म के मूल्य् में बढ़त और पूंजी की सम्पूर्ण लागत में कम ऋण और अंश के न्यायोचित मिश्रण से लाई जा सकती है। यह पहुंच सीधे तौर पर यह मानती है कि ऋण की उचित सीमा के अन्दर फर्म का मूल्य बढ़ता है और पूंजी की सम्पूर्ण लागत में गिरावट आती है। लेकिन अगर पूंजी ढांचे में ऋण निश्चित अनुपात से अधिक हो तो पूंजी की सम्पूर्ण लागत बढ़ती है और फर्म का मूल्य गिरता है। इसलिए पूंजी ढांचा वहॉ बनता है जहॉ फर्म का मूल्य अधिकतम और पूंजी की सम्पूर्ण लागत न्यूनतम होती है।

स्टेज –I बढ़ता मूल्य (Stage – 1 Increasing value)

पहली स्टेज में पूंजी ढांचे में अत्याधिक ऋण का प्रयोग फर्म के मूल्य में बढ़त और पूंजी की सम्पूर्ण लागत में कमी लाता है। इस विचार के पीछे समझ यह है कि ऋण सामान्य अंशों की तुलना में पैसे इकट्ठे करने का एक सस्ता स्रोत है। उत्तोलन में बढ़त के कारण ऋण तुलनात्मक तौर पर एक सस्ता स्रोत अंशों के स्थान पर प्रतिस्थापित हो जाता है जो कि फण्ड इकट्ठे करने का महंगा स्रोत है। इस स्टेज अंश की लागत ke एक समान रहती है या ऋण के साथ धीरे धीरे बढ़ती है। पर अंश की लागत इतनी तेजी से भी नहीं बढ़ती कि वह ऋण की कम लागत के लाभ की लागत kd भी एक समान रहती है या थोड़ा से बढ़ती है क्योंकि बाजार का भी यह विचार होता है कि ऋण का प्रयोग एक उचित नीति है। नतीजतन पहली स्टे़ज में बढ़ते उत्तोालन के साथ पूंजी का सम्पूर्ण लागत घटती है और फर्म का मूल्य बढ़ता है।

दूसरी स्टेज – उचित मूल्य (Second Stage – Optimum value)

इस स्टेज में बढ़ते उत्तोलन का फर्म के मूल्य और पूंजी की सम्पूर्ण लागत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह इसलिए होता है कि बढ़े हुए वित्तीय खतरे के कारण अंश की लागत ke में बढ़ौत्तरी सस्ती ऋण पूंजी के प्रयोग के लाभ का सफाया कर देती है। इस रेंज में या उत्तोलन एक निश्चित तल पर फर्म का मूल्य अत्यधिक होगा और वह रेंज या केन्द्र उचित पूंजी ढांचे का प्रतिनिधित्व करेगा।

तीसरी स्टेज – गिरता मूल्य (Third Stage – Declining value)

इस स्टेज में पूंजी ढांचे में और अधिक ऋण का प्रयोग पूंजी की सम्पूर्ण लागत को बढ़ा देगा और फर्म के मूल्य को गिरा देगा। यह इसलिए होता है क्योंकि (1) वित्तीय खतरे के बढ़ने के कारण, ke भी काफी बढ़ता है (2) लेनदार भी ब्याज दर बढ़ा देंगे क्योकि वह भी चाहेंगें कि बढ़े हुए खतरे के लिए उन्हें भी मदद मिलनी चाहिए। नतीजन पूंजी की सम्पूर्ण लागत जो कि पूंजी और ऋण की weighted औसत लागत होती है बढ़ना शुरू कर देती है।

ऊपर दी गई तीनों स्टेजें यह दर्शाती हैं कि पूंजी की सम्पूर्ण लागत वित्तीय उत्तोलन का कार्य (Function) है। यह उत्तोलन में बढ़त के साथ कम होता है और न्यूनतम केन्द्र में पहुंचने के बाद बढ़ना शुरू कर देता है। ग्राफ पर ko, kd और ke का व्यवहार चित्र 5.4 में दर्शाया गया है।

अंश की लागत पहले धीरे धीरे फिर तेजी से बढ़ती है। ऋण की लागत एक निश्चित केन्द्र तक एक सार रहती है फिर वह भी बढ़ना शुरू कर देती है। पूंजी की सम्पूर्ण लागत सोसर (Soucer) की तरह है और उसकी रेंज LL Horizantal है। रेंज LL उचित पूंजी ढांचा दर्शाती है क्योंकि इसके ऊपर पूंजी की सम्पूर्स्ण लागत ko न्यूनतम है।

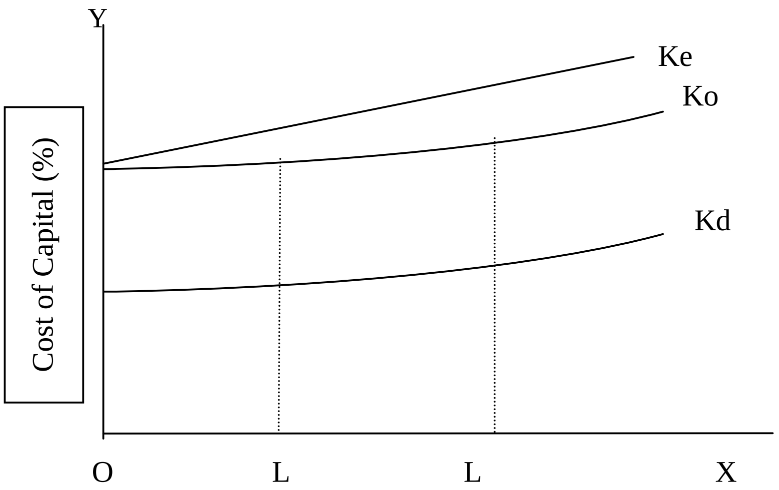

रेखाचित्र 5.4

उदाहरण 5.4 (Illuestration 5.4)

कम्पनी के 20,00,000 रु. के कुल विनियोग पर वर्तमान कार्यकारी आय (EBIT) 3,00,000 रु. है। वह ऋण का प्रयोग नहीं कर रहे। वह अपने पूंजी ढांचे को बदलने के प्रस्ताव पर (i) 6% के 6,00,000 रु. के ऋण पत्र अंश पूंजी की जगह प्रतिस्थातपित कर दिए जाएं। इससे अंश की लागत में 10.35% की बढ़त होगी। (ii) अंश पूंजी की जगह 7% 12,00,000 ऋण पत्र ले आएं। इससे अंश की लागत में 12.5% बढ़त होने की आशा है।

परम्परागत पहुंच के अनुसार विभिन्न परिस्थितियों में फर्म के बाजारी मूल्य और पूंजी की सम्पूर्ण लागत की गणना कीजिए।

उत्तर (Solution)

तालिका 5.4 का उत्तर तालिका 5.4 में दिया गया है।

तालिका 5.4

	कोई ऋण नहीं रु. (No Debt)	6% 6,00,000 रु. ऋण	7% 12,00,000 ऋण
EBIT	3,00,000	3,00,000	3,00,000
ऋण की कुल लागत (I)	0	36,000	84,000
शुद्ध आय (EBIT-I)	3,00,000	2,64,000	2,16,000
अंश की लागत (Ke)	10%	10.35%	12.5%
अंश का बाजारी मूल्य $\frac{EBIT-I}{Ke}$	30,00,000	20,50,725	17,28,000
फर्म का कुल मूल्य V = ऋण + अंश	30,00,000	31,50,725	29,28,000
पूँजी की सम्पूर्ण लागत $ko = \frac{EBIT-I}{V}$	.10 or 10%	.0952 या 9.52	.103 या 10.3%

मूल्यांकन –

परम्परागत सिद्धान्त से समग्र पूँजी लागत तथा फर्म के कुल मूल्य पर पूँजी सरंचना में परिवर्तनों का प्रभाव ज्ञात किया जा सकता है। परन्तु यह सिद्धान्त पूँजी सरंचना की विभिन्न परिस्थितियों में शुद्ध परिचालन आय तथा जोखिम समान होने पर भी समान मूल्य प्रदान नहीं करता है, इसलिये इस सिद्धान्त की आलोचना की जाती है।

5.6.1 परम्परागत पहुंच/सिद्धान्त की आलोचनाएं (Criticisms of Traditional Approach)

परम्परागत पहुंच की आलोचना मोदीग्लियानी और मिलर द्वारा इस पहुंच की इस धारणा पर की गयी है कि उचित सीमा तक अंश पूंजी की लागत उत्तोलन से अप्रभावित रहती है। वह यह कहते हैं कि इस धारणा की कोई उपयुक्त न्यायोचिता नहीं है। परम्परागत पहुंच की आलोचना इस आधार पर भी की गई है कि फर्म का मूल्य उसकी शुद्ध कार्यकारी आय और उससे जुड़े खतरे पर निर्भर करता है, और वित्त के प्रकार न तो शुद्ध की कार्यकारी आय में बदलाव ला सकते हैं और न ही उससे जुड़े खतरे में। वह सिर्फ उस ढंग में बदलाव ला सकते हैं जिस ढंग से कार्यकारी आय और खतरा अंशधारियों और ऋणधारियों के बीच विभाजित होता है। आलोचनाओं के होते हुए भी परम्परागत पहुंच को दो चीजों के लिए माना जा सकता है। (i) बाजारी खराबियों (ii) ब्याज प्रभारों की कर कटौती।

समाविष्टर उदाहरण

उदाहरण 5.5

फर्म और फर्म एक ही खतरा श्रेणी में है सिर्फ एक ही अन्तर है कि फर्म उत्तोलित है और फर्म अनोत्तलित फर्म के 12% 4,00,000 रु के ऋण पत्र देय हैं। दोनों फर्मों की शुद्ध कार्यकारी आय 1,44,000 रु. है। सहकारी कर दर 50% है और शुद्ध पूंजीकरण दर 15% है। MM पहुंच के अनुसार फर्मों के मूल्य बताइए।

(i) अनोत्तलित फर्म U का मूल्य

EBIT	1,44,000 रु.
कम (LeSS) ब्याज	शून्य
कर से पूर्व आय	1,44,000
कम कर 50% की दर से	72,000
कर के बाद लाभ	72,000
Ke	15%

फर्म का मूल्य

$$= \frac{72,000}{15\%} = 4,80,000$$

(ii) उत्तोलन फर्म L का मूल्य

MM के अनुसार

Vl = vel + Bt

वहां फर्म L का मूल्य

= 4,80,000 + 4,00,000 × 50%

= 6,80,000 रु.

उदाहरण 5.6

अनुभा प्लांटेशन्स लिमिटेड 2 लाख रूपये के वार्षिक का अनुमान लगा रही है। कम्पनी के पास 10% के 8 लाख रूपये के ऋण पत्र हैं अंश पूंजी की लागत 12.5% है। आपको शुद्ध आय पहुंच के अनुसार फर्म के कुल मूल्य और पूंजी की लागत की गणना करनी है।

उत्तर

फर्म के मूल्य और पूंजी की सम्पूर्ण लागत को दर्शाती स्टेटमेंट

	रु.
EBIT	2,00,000
कम ब्याज @ 10% 8 Lakh	80,000
अंशधारियों को उपलब्ध आय(NI)	1,20,000
अंश पूंजीकरण दर (Ke)	12.5%

अंश का बाजारी मूल्य (S)

$$\frac{n_1}{Ke} = \frac{1,20,000}{12.5\%}$$

9,60,000

ऋण का बाजारी मूल्य

8,00,000

फर्म का कुल मूल्य (B+S)=V 17,60,000

पूँजी की सम्पूर्ण लागत

$$Ko = \frac{EBIT}{V} = \frac{2,00,000}{17,60,000} \times 100 = 11.36\%$$

उदाहरण 5.7

अनुभा प्लाांटेशन्स् लिमिटेड 3 लाख रूपये का अनुमान लगाया है। कम्पनी के पास 10% के 8 लाख रूपये के ऋण पत्र हैं। कम्पख्नी की अंशों की लागत का अनुमान 12.5 है। कम्पनी 2 लाख रूपये 10 के ऋण पत्रों को जारी कर उनसे अंश पूंजी को निर्वाचित करना चाहती है। ऋण पत्रों को जारी करने से पहले और बाद में पूंजी की सम्पूर्ण लागत क्या होगी।

उत्तर

फर्म के मूल्य और पूंजी की सम्पूंर्ण लागत को दर्शाती स्टेटमेंट

	ऋण पत्र जारी करने से पहले रु.	ऋण पत्र जारी करने के बाद रु.
ब्याज और कर से पहले आय (EBIT)	3,00,000	3,00,000
कम ब्याज (LeSS) @10%	80,000	1,00,000
अंशधारियों के लिए उपलब्ध आय (NI)	2,20,000	2,00,000
अंश पूंजीकरण दर (Ke)	12.5%	12.5%
अंश का बाजारी मूल्य (S) $\frac{NI}{Ke}$	2,20,000	2,00,000

	12.5%	12.5%
	17,60,000	16,00,000
ऋण का बाजारी मूल्य (B)	8,00,000	10,00,000
फर्म का कुल मूल्य S+B=V	25,60,000	26,00,000
पूँजी की सम्पूर्ण लागत		
	3,00,000	3,00,000
	25,60,000	26,00,000
$Ko = \frac{EBIT}{V}$	11.71%	11.53%

ऊपर दिया गया टेबल यह दर्शाता है कि ऋण की अतिरिक्त जारी करने से पूंजी की सम्पूर्ण लागत 11.71 से कम हो कर 11.53 हो गई है। और फर्म के मूल्य 25,60,000 से बढ़ कर 26,00,000 रु हो गया है।

5.7 सारांश

वित्तीय प्रबन्धक पूँजी सरंचना के ऐसे प्रारूप का चयन करता है, जिसमें फर्म का कुल मूल्य (V) अधिकतम होता है तथा पूँजी की समग्र लागत (ko) कम होती है, इसे आदर्श या अनुकूलतम पूँजी सरंचना भी कहते है। पूँजी की लागत एवं फर्म के मूल्य पर प्रभाव बताने वाले प्रमुख चार सिद्धान्त निम्नलिखित है – 1. शुद्ध आय सिद्धान्त (Net Income Theory) 2. शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त (Net Operating Income Theory) 3. मोदीग्लियानी–मिलर सिद्धान्त (Modigliani- Miller Theory) 4.परम्परागत सिद्धान्त (Traditional Theory)

भारत में विभिन्न कम्पनियां कम लागत के कारण ऋण पूँजी को समता पूँजी की बजाय अधिक प्राथमिकता देती रही है, परन्तु प्रतिस्पर्धा के युग में आय की अनिश्चितता के कारण कम्पनियाँ समता पूँजी को बराबर प्राथमिकता देने लगी है। उत्तोलक का प्रभाव अंशों के मूल्य पर भी पड़ता है।

5.8 शब्दावली

शुद्ध आय सिद्धान्त – इस सिद्धान्त के अनुसार एक संस्था अपनी पूँजी सरंचना में ऋण की मात्रा बढाकर अपने मूल्य में वृद्वि तथा पूँजी की समग्र लागत में कमी कर सकती है।

शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त – इस सिद्धान्त के अनुसार संस्था की पूँजी सरंचना में परिवर्तन का कोई प्रभाव उसके मूल्य तथा पूँजी की समग्र लागत पर नहीं पड़ता हैं।

मोदीग्लियानी–मिलर सिद्धान्त –इस सिद्धान्त के दो रूप बताये गये है – अ- निगम करों की अनुपस्थिति में –इस सिद्धान्त के अनुसार संस्था की पूँजी सरंचना में परिवर्तन से संस्था का मूल्य तथा पूँजी की समग्र लागत अप्रभावित रहती है, क्योंकि अन्तरपणन प्रक्रिया का प्रभाव पड़ता है। ब. निगम करों की उपस्थिति में ऋण का उपयोग करने वाली अर्थात उत्तोलक वाली संस्था का कुल मूल्य, ऋण का उपयोग न करने वाली अर्थात् बिना उत्तोलक वाली संस्था से अधिक होता है तथा पूँजी की कुल लागत भी कम होती है।

परम्परागत सिद्धान्त – इस सिद्धान्त के अनुसार ऋण एवं समता के विवेकपूर्ण मिश्रण से पूँजी की कुल लागत में कमी तथा फर्म के कुल मूल्य में वृद्धि की जा सकती है।

अन्तरपणन प्रक्रिया – इस प्रक्रिया से आशय मूल्य विभेद का लाभ लेने के लिये एक ही प्रतिभूति को एक साथ कम मूल्य वाले बाजार से खरीदने तथा अधिक मूल्य वाले बाजार में बेचने से है।

5.9 बोध प्रश्न

1. ....निर्णय का मूल उद्देश्य फर्म के मूल्य को अधिकतम करना होता है।
2. शुद्ध आय पहुंच .... द्वारा दी गई पूंजी ढांचे की दो पहुंचों में से एक है।
3. .... पहुंच इस बात का समर्थन करती है कि फर्म के पूंजी ढांचे निर्णय का कोई औचित्य नहीं है और उत्तोलन में कोई बदलाव (बढ़ोत्तेरी या कमी) न तो फर्म के मूल्य और न ही पूंजी की लागत में बदलाव ला सकता है।
4. मोदीग्लियानी और मिलर कहते हैं कि .... की अनुपस्थिति में, वित्तीय उत्तोलन की हर सीमा पर फर्म का मूल्य और पूंजी की सम्पूर्ण लागत एक समान होगी
5. .... विचारधारा शुद्ध आय सिद्धान्त तथा शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त की मध्यमार्गी है।

5.10 बोध प्रश्न के उत्तर

1. पूंजी ढांचे, 2. डुराण्ड, 3. NOI, 4. करों, 5. परम्परागत

5.11 स्वपरख प्रश्न

1. क्यां आप इस कथन के साथ सहमत हैं कि फर्म का पूंजी ढांचा पूंजी की लागत को प्रभावित नहीं करता ? इस स्थिति में परम्परागत पहुंच और MM पहुंच को समझाइए।

   (Do you agree with the stagement that a firm's capital structure doesn't effect the cost of capital? Explain the traditional approach as well as M.M. approach in this respect)
2. पूंजी ढांचे और फर्म के मूल्य के सम्बघ में परम्पारागत लेखकों के विचार विस्तार से लिखो।

   Explain briefly the view of traditional writers on the relationship between capital structure and value of firm)
3. पूँजी सरंचना सिद्धान्तों की आधारभूत मान्यताएँ बताइये।
4. पूँजी सरंचना के शुद्ध आय सिद्धान्त की मान्यताएँ क्या है?
5. पूँजी सरंचना की शुद्ध परिचालन आय विचारधारा का मूल्यांकन कीजिये।
6. पूँजी सरंचना से क्या आशय है? पूँजी सरंचना के सिद्धान्तों को संक्षेप में समझाइये।
7. पूँजी सरंचना की शुद्ध आय विचारधारा को उपयुक्त उदाहरण की सहायता से समझाइये।

8. पूँजी सरंचना की शुद्ध परिचालन आय विचारधारा का वर्णन कीजिये तथा उपयुक्त उदाहरण देकर इसे समझाइये।
9. पूँजी सरंचना की मोदीग्लियानी–मिलर विचारधारा, निगम करों की अनुपस्थिति में तथा निगम करों की उपस्थिति में किस प्रकार अपना दृ ष्टिकोण रखती है? विवेचन कीजिये।
10. पूँजी सरंचना की परम्परागत विचारधारा को समझाइये। इस दृष्टिकोण की शुद्ध आय विचारधारा एवं शुद्ध परिचालन आय विचारधारा के साथ तुलना कीजिये।
11. कम्पंनी के लिए सबसे वांछनीय पूंजी ढांचे के बारे में सोचते हुए ऋण अंश मिक्स के विभिन्नर स्तरों पर ऋण की लागत और अंश पूंजी (कर के बाद) निम्न अनुमान लगाए गए हैं।

कुल पूंजी के प्रतिशत के तौर पर ऋण	ऋण की लागत (%)	अंश की लागत (%)
0	5.0	12.0
10	5.0	12.0
20	5.0	12.5
30	5.5	13.0
40	6	14.0
50	6.5	16.0
60	7.0	20.0

कम्पनी के सम्पूर्ण पूंजी लागत की गणना द्वारा उचित ऋण अंश मिक्स को निश्चित करो।

(In considering the most desirable capital structure for a company, the following estimates of cost of debt and equity capital (after tax) has been made at various levels of debt-equity mix.)

Debt as % of total Capital employed	**Cost of debt**	**Cost of Equity**
0	5.0	12.0
10	5.0	12.0
20	5.0	12.5
30	5.5	13.0
40	6	14.0
50	6.5	16.0

60	7.0	20.0

You are required is determine the optimal debt equity mix for the company by calculating composite cost of capital

(Optimal debt equity mix is 30% debt and 70% equity when the composite cost of capital 10.75 is loines)

12. मोदीग्लियानी मिलर पहुंच के अनुसार निम्न आंकड़ों से प्रत्येक फर्म के मूल्य ज्ञात कीजिए।

	फर्म क	फर्म ख	फर्म ग
EBIT	13,00,000 रु.	1,30,000 रु.	13,00,000 रु.
अंशो का नम्बर	3,00,000	2,50,000	2,00,000
12% ऋण पत्र		9,00,000	10,00,000

हर एक फर्म को विनियोग पर 12% प्रत्याय की आशा है।

(From the following data find out he value of each firm as per the Modigilani Miller Approach) :-

	Firm A	Firm B	Firm C
EBIT	Rs. 13,00,000	1,30,000	13,00,000
No. of Shares	3,00,000	2,50,000	2,00,000
12% Debtentures		9,00,000	10,00,000

Every firm expects 12% return as investment. (Value of each firm Rs. 108, 33, 333)

13. NOI पहुंच के अनुसार एक ही खतरे श्रेणी से सम्बोन्धित दो फर्मों के Equilibrium मूल्य है –

	क	ख
आशित शुद्ध कार्यकारी आय (EBIT)	75000 रु.	75000 रु.
कम ऋण की लागत (1) + kdB	15000	-
अंश की लिए शुद्ध आय (EBIT–1)	60,000	75000
पूंजी की Equilibrium लागत (Ko)	10%	10%
कम्पनी का कुल मूल्य (V) यानि EBIT / ko	7,50,000	7,50,000
ऋण का बाजारी मूल्य (B)	3,00,000	-
अंश का बाजारी मूल्यक (V–B)	4,50,000	4,50,000
अंश की लागत	13.33%	10.0%

परम्पमरागत विधि के अनुसार कम्पनी क का ाम 14% और ख का 12% मान कर दोनों फर्मों का मूल्य ज्ञात कीजिए।

(The following are the equilibrium values of two firms belonging to the home generous risk class according to NOI approach:

	X	Y
Expected net operating income (EBIT)	Rs. 75000	Rs. 75000
Basic cost of debt (1) + kdB	15000	-
Net income for equity (EBIT-1)	60,000	75000
Equilibrium of Capital (Ko)	10%	10%
Total value of company (V) i.e. EBIT / ko	7,50,000	7,50,000
Market value of debt (B)	3,00,000	-
Market of equity (V-B)	4,50,000	4,50,000
Cost of equity	13.33%	10.0%

Determine the value of the firm under the traditional approach assuming the Kc for company Y as 12% and for X 14%.

5.12 सन्दर्भ पुस्तकें

1. ए के वशिष्ट, एन के साहनी, तमन्ना सहगल, वित्तीय प्रबन्ध, कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना ।
2. "Financial Management"- M.Y. Khan & P.K. Jain, Tata Mc Graw Hill.
3. "वित्तीय बाजारों की कार्यप्रणाली"– प्रो0 वी0 पी0 अग्रवाल– साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
4. "निगमीय लेखांकन"– सी0 एम0 जैन एवं ए0 के0 अग्रवाल– g Master g Educorp, मेरठ।
5. "प्रबन्ध हेतु वित्तीय विश्लेषण"– डॉ0 ए0 के गर्ग– स्वाती प्रकाशन, बुलन्दशहर।
6. "निगमीय लेखाविधि"– डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 राजकुमार– नवनीत प्रकाशन, नजीबाबाद।
7. उच्च वित्तीय प्रबन्ध : डा0 एस0पी0 गुप्ता व डा0 बी0 कुमार मिततल ।

इकाई–6 पूँजी की लागत और उत्तोलक

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 पूँजी की लागत : अर्थ व अवधारणा
6.2.1 पूँजी की लागत की विशेषताएँ एवं महत्व
6.3 पूँजी की लागत का वर्गीकरण
6.4 पूँजी की लागत की गणना
6.4.1 लम्बी अवधि के ऋणों की लागत
6.4.2 पूर्वाधिकार अंशो की लागत
6.4.3 समता अंश पूँजी की लागत
6.4.4 व्यवसाय में लगाई आय की लागत
6.4.5 पूँजी की भारित औसत लागत
6.5 उत्तोलक का अर्थ व प्रकार
6.6 कार्यकारी उत्तोलक
6.6.1 कार्यकारी उत्तोलक की सीमा व माप
6.7 वित्तीय उत्तोलक
6.7.1 वित्तीय उत्तोलक की सीमा व माप
6.8 सयुंक्त उत्तोलक
6.9 उत्तोलकों की उपयोगिता
6.10 सारांश
6.11 शब्दावली
6.12 बोध प्रश्न
6.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
6.14 स्वपरख प्रश्न
6.15 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- पूँजी की लागत के अर्थ व अवधारणा की व्याख्या कर सकें ।
- पूँजी की लागत का का वर्णन कर सकें ।
- ऋण पूँजी की लागत, अधिमान अंश पूँजी/समता अंश पूँजी/प्रतिधारित अर्जनों की लागत की व्याख्या कर सकें ।
- पूँजी की भारित औसत लागत का वर्णन कर सकें ।
- उत्तोलक का अर्थ व प्रकार की व्याख्या कर सकें ।
- कार्यकारी उत्तोलक, वित्तीय उत्तोलक की सीमा व माप व सयुंक्त उत्तोलक का माप कर सकें ।
- उत्तोलकों की उपयोगिता का वर्णन कर सकें ।

6.1 प्रस्तावना

पूंजी की लागत एक महत्वपूर्ण वित्तीय विचार है। यह बाजार में निश्चित अंशधारियों के धन और कम्पनी के लम्बी अवधि के वित्तीय निर्णयों को आपस में

जोड़ता है। पूंजी की लागत का विचार पूंजी इकट्ठे करने के उचित निर्णय लेने में सहायक होता है। उपक्रम जिन साधनों से पूँजी प्राप्त करता है उसे हम विनियोजन कह सकते हैं। ये साधन समता या अधिमान अंश, ऋण पत्र प्रतिधारित अर्जन हो सकते हैं। विनियोजक पूँजी का विनियोग करते समय यह आश्वासन प्राप्त करना चाहते हैं कि न केवल उनका धन उपक्रम के हाथों में सुरक्षित रहेगा, बल्कि उन्हें उनकी पूँजी का उचित मूल्य भी निर्धारित रूप में मिलता रहेगा। कुछ विनियोजक धन की सुरक्षा पर अधिक बल देते है, तो कुछ पूँजी के बदले मिलने वाले मूल्य पर परिणामतः विभिन्न विनियोजकों के मध्य पूँजी का मूल्य एक समान नहीं होता है। अर्थात् पूँजी के कुछ साधन मंहगे तो कुछ साधन सस्ते होते हैं।

वित्तीय प्रबंधक का प्रमुख कार्य पूँजी को विभिन्न परियोजनाओं में विनियोजित कर आय अर्जित करना होता है। उपक्रम भी पूँजी के बदले उतना ही मूल्य चुकाने को तैयार होता है जो उसके द्वारा पूँजी पर अर्जित प्रत्याय दर से अधिक न हो। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि पूँजी के उन्हीं साधनों का प्रयोग करना चाहिए जो सस्ते हों किन्तु वित्तीय दृष्टिकोण से आय, जोखिम, नियंत्रण आदि कारकों का भी ध्यान रखना जरूरी है। व्यवहार में कुछ मंहगे स्त्रोत व कुछ सस्ते स्त्रोत एकत्रित करके उनमें ऐसा संतुलन स्थापित किया जाता है कि उनकी औसत संयुक्त लागत पूँजी पर अर्जित प्रत्याय दर से कम हो। यह संतुलन स्थापित करने के लिए पूँजी की लागत का विस्तृत अध्ययन आवश्यक है।

6.2 पूँजी की लागत : अर्थ व अवधारणा

पूंजी की लागत को हम इस तरह से परिभाषित कर सकते हैं कि वह धन वापसी का कम से कम अंश जो हमें अंश का मूल्य वही रखने के लिए बाजार में अर्जित करना होगा। इस तरह पूंजी, की लागत का सिद्धांत मूल्यांकन सिद्धांत से समीपता से जुड़ा है। किसी भी एक संतोषजनक सिद्धात का अभाव ही पूंजी की लागत की इस असंतोषजनक स्थिति के लिए उत्तरदायी है। धन अधिकतर उद्देश्य इस बात की मांग करता है कि अंश पूंजी द्वारा वित्त कार्यों पर धन वापसी या शुद्ध आय को दोबारा से व्यवसाय में निवेशित करने पर धन वापसी से ज्यादा अर्जित करेगी तो अंशों का बाज़ारी मूल्य बढ़ेगा और इसका विपरीत भी सही है। उन कार्यों के मामले में जिनके ऊपर पैसा पूर्वाधिकार अंशों का ऋणों से पैसा इकट्ठा कर लगाया गया है उनकी धन वापसी कम से कम पैसे इकट्ठा करने की लागत के बराबर होनी चाहिए। अगर फर्म उतना वापसी का अंग अर्जित नहीं कर पाती जो ऋण या पूर्वाधिकार अंशों को इकट्ठा करने पर लागत आई थी तो अंश का बाज़ारी मूल्य कम हो जाएगा और अंशधारियों का धन भी कम हो जाएगा। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि पूंजी की लागत की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है कि धन अधिकतर उद्देश्य को सामने रख कर उतनी धन वापसी का अंश जो फर्म में पूंजी के प्रयोग को न्यायोचित साबित करे। पूंजी की लागत कट आफ रेट (Cut off Rate), मुश्किल रेट (Hurdle Rate), कम से कम आशित अंश (Minimum Required Rate) और छूट अंश (Discount Rate) के नामों से भी जाना जाता है।

एक व्यावसायिक संस्था द्वारा पूँजी विभिन्न स्त्रोतों तथा समता या अधिमान अंशों, ऋणपत्रों, प्रतिधारित अर्जनों से प्राप्त की जा सकती है। प्रत्येक स्त्रोत के स्वामी अपने विनियोजन पर एक निश्चित प्रतिफल पाने की अपेक्षा रखते हैं।

वित्तीय प्रबंधक का प्रमुख कार्य पूंजी को विभिन्न परियोजनाओं में विनियोजित कर आय अर्जित करना होता है। ताकि पूँजी के स्त्रोतों को न्यूनतम प्रत्याय चुकाई जा सके। इस न्यूनतम प्रत्याय दर के निर्धारण एवं अनुकूलतम पूँजी ढांचा निश्चित करने में पूंजी की लागत अवधारणा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। किसी भी विनियोग प्रस्ताव को उसी समय स्वीकार करना चाहिये, जबकि उस प्रस्ताव की संभावित प्रत्याय दर (Expected Rate of Return) पूँजी की अनुमानित लागत से अधिक हो, अतः पूँजी की लागत का अर्थ व गणना विधि समझना आवश्यक है।

अ. विनियोक्ता की दृष्टि से पूँजी की लागत उस त्याग का पुरस्कार है जिसको वह वर्तमान में उपयोग को स्थगित कर विनियोग के बदले भविष्य में प्राप्त करने की इच्छा करता है।

ब. पूँजी का उपयोग करने वाली फर्म की दृष्टि से पूँजी का उपयोग करने के बदले चुकाया गया मूल्य ही पूँजी कहलाता है।

सोलोमन इजरा के अनुसारः "पूँजी की लागत अपेक्षित अर्जनों की न्यूनतम दर या पूँजी व्ययों की विच्छेद दर है।"

एम.जे. गोर्डन के अनुसारः– "पूँजी की लागत अपेक्षित अर्जनों की न्यूनतम दर या पूँजी व्ययों की विच्छेद दर है।"

6.2.1 पूँजी की लागत की विशेषताएँ एवं महत्व

पूँजी की लागत अवधारणा के विश्लेषण से निम्न विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं:–

1. **पूँजी की न्यूनतम प्रत्याय दर** (Minimum Rate of return of Capital): पूँजी की लागत एक ऐसी न्यूनतम प्रत्याय दर है जो संस्था को अपने विनियोगों से अर्जित करनी चाहिये ताकि प्राप्त कोषों की लागत का भुगतान किया जा सके।
2. **बाधक दर के रूप में:** (In Form of Hurdle Rate) पूँजी की लागत व्यवसाय में बाधक दर के रूप में प्रकट होती है। यद्यपि इसकी गणना पूँजी के विविध तत्वों की वास्तविक लागत के आधार पर ज्ञात की जाती है।
3. **व्यवसायिक एवं वित्तीय जोखिम का पुरस्कार (Reward of Business and Finance Risk):** व्यावसायिक जोखिम बिक्री की मात्रा व वित्तीय जोखिम पूँजी संरचना (ऋण व पूंजी) पर निर्भर करती है। पूँजी की लागत मुख्यतः इन जोखिमों के बदले में मिलने वाला पुरस्कार है।
4. **वास्तव में कोई लागत नही (No real cost):** लागत नहीं है बल्कि एक प्रत्याय दर है जो अवश्य प्राप्त होनी चाहिए ।

वित्तीय प्रबंध के क्षेत्र में पूंजी की लागत अवधारणा के महत्त्व को निम्न तथ्यों से समझा जा सकता है:–

1. **पूंजी बजटन में निर्णय लेने के तरीके के तौर पर (As a Decision Criterion in Capital Budgeting):** पूंजी बजटन में पूंजी की लागत निर्णय लेने समय प्रयोग की जाती है। शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि में एक युक्ति को तभी अपनाया जाता है जब उसका शुद्ध वर्तमान मूल्य अधिक हो और जब सभी रोकड़ बहाव पूंजी की लागत के दर से ही डिस्टाऊंटिड हों। इस तरह से देखा जाए तो पूंजी की (Discounted) लागत विभिन्न युक्तियों में विनियोग के निश्चितता और वांछनीयता साबित करने के लिए

छूट दर के रूप में प्रयोग होता है। प्रत्याय की आंतरिक दर विधि (Internal Rate of Return) विधि मे एक युक्ति को तभी अपनाया जाता सकता है यदि उसका प्रत्याय का आंतरिक दर पूंजी की लागत के बराबर हो। इस तरह से पूंजी की लागत वह कम से कम प्रत्याय दर है जो युक्ति को अपनाने के लिए चाहिए। यह कट आफ निशाना (Cut of Target) या रूकावट दर (Hurdle Rate) है। पूंजी बजटन के निर्णयों में शुद्ध वर्तमान मूल्य या प्रत्याय का आंतरिक दर अंशों के मूल्य को बढ़ाएगा। पूंजी की लागत, इसलिए वह कम से कम प्रत्याय दर है जो अगर अर्जित किया जाए तो अंश का मूंल्य चल स्तर पर बनाए रखेगा। अगर फर्म पूंजी की लागत से अधिक अर्जित करेगी तो इसका नतीजा यह होगा कि हर अंश का मूल्य बढ़ेगा। इसलिए पूंजी की लागत फर्म के विनियोग फण्डों को सबसे उचित ढंग में आबंटित करने के लिए मूल निर्णय समझा जाता है।

2. **पूंजी ढांचा निश्चित करने के लिए (As a Determinant of Capital structure):** पूंजी की लागत फर्म के पूंजी ढांचे को बनाने के लिए एक महत्वपूर्ण ध्यान रखने योग्य बात है। पूंजी की लागत पूंजी के ढांचे को बदलाव से प्रभावित होती है। पूंजी ढांचे का नक्शा बनाते हुए फर्म का उद्देश्य होना चाहिए कि वित्तीय संकट को प्रबन्ध की सीमाओं में रखते हुए पूंजी की लागत कम से कम होनी चाहिए और बाज़ारी मूल्य अधिक से अधिक।
3. **वित्तीय कार्य के मूल्यांकान के लिए मूलाधार की तरह (As a Basis for Evaluation of Financial Performance):** पूंजी की लागत उच्च स्तरीय प्रबन्ध के वित्तीय कार्य का मूल्यांकन करने के लिए भी प्रयोग में लाई जा सकती है। ऐसा मूल्यांकन उन कार्यों की लाभवन्यता की तुलना कर के किया जा सकता है जो पूंजी की लागत के आधार पर किए गए थे।
4. **अन्तर्मंडलीय कार्य मूल्यांकन (Inter Divisional Performance Evaluation):** पूंजी की लागत का ढांचा संगठन के मंडलीय कार्य के मूल्यांकन के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है। इस मूल्यांकन में फर्म के विभिन्न मंडलों में उनकी सम्पत्तियों में निवेशित धन व्यय के रूप में लिया जाता है ताकि शुद्ध लाभ खोजे जा सकें। यह कार्य कमज़ोर मंडलों की पहचान करवाता है और कार्यवाई करता है।
5. **अन्य वित्तीय निर्णयों के मूलाधार के रूप में (As a basis other financial decisions):**पूंजी की लागत की गणना कई और वित्तीय निर्णयों जैसे लाभांश नीति, माल प्रबन्ध, रोकड़ नियंत्रण आदि के लिए महत्वपूर्ण है।
6. **श्रेष्ठ विकल्पों का चयन** (Selection of Best Alternatives) पूँजी की लागत की गणना द्वारा व्यवसाय की स्थिति के अनुसार श्रेष्ठ विकल्प का चयन किया जासकता है ताकि व्यवसाय की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो एवं लाभप्रदत्ता में वृद्धि की जा सके।

7. **संभावित आय एवं अन्तर्निहित जोखिम की जानकारी** (Knowledlge of Expected Income and Inherent Risk) पूँजी लागत द्वारा विनियोक्ताओं कोफर्म की संभावित आय तथा उसमें अन्तर्निहित जोखिम के बारे में जानकारी मिलती है। यदि पूँजी की भारित औसत लागत अधिक है तो संभावित आय कम होने से जोखिम अधिक व पूँजी संरचना असंतुलित होगी, इसके विपरीत भारित लागत कम होने पर संभावित आय अधिक जोखिम कम एवं पूँजी संरचना संतुलित होगी।
8. **कार्यशील पूँजी एवं लाभांश नीति निर्णय** (Financing and Dividend Decisions) पूँजी लागत अवधारणा के आधार पर कार्यशील पूँजी की मात्रा तथा उसके स्त्रोतों का चुनाव आदि के बारे में निर्णय लिया जाता है। यह अवधारणा लाभांश नीति के निर्धारण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यदि अंश पूंजी/ऋण पूँजी की लागत अधिक है तो कम्पनी अपनी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति बाह्य स्त्रोतों से न करके अधिकाधिक लाभों के प्रतिधारणा द्वारा करती है। इसके विपरीत यदि पूँजी की लागत काफी कम है तो कम्पनी बाह्य स्त्रोतों से पूँजी प्राप्त कर सकती है एवं उदार लाभांश नीति का अनुसरण कर अंशधारियों को संतुष्ट कर सकती है।
9. **उच्च प्रबन्धकों की वित्तीय कुशलता के मूल्यांकन में सहायक** (Evaluation of Financial fEFiciency of Higher Management) प्रबन्ध द्वारा विभिन्न विनियोग परियोजनाओं के लिए बनाये गये बजट में परियोजना की संभावित लाभदायकता तथा लागतों का अनुमान लगाया जाता है। परियोजना को लागू करने के बाद पूँजी की अनुमानित लागत तथा वास्तविक लागत की तुलना करके ज्ञात किया जा सकता है कि उच्च प्रबन्ध लागतों को बजट अनुमानों के अनुसार रखने में कहां तक सफल हुआ है।

6.3 पूँजी की लागत का वर्गीकरण

1. **ऐतिहासिक लागत एवं भावी लागत** (Historical Cost and Future Cost) ऐतिहासिक लागत से आशय किसी संस्था द्वारा किसी परियोजना में विनियोजित कोषों के लिए भूतकाल में चुकाई गई लागत से है, जबकि भावी लागत भविष्य में किसी परियोजना में विनियोजित किये जाने वाले कोषों की प्रत्याशित लागत है। भावी लागतों का अनुमान ऐतिहासिक लागतों के आधार पर लगाया जाता है।
2. **औसत लागत एवं सीमान्त लागत** (Average Cost and Marginal Cost) किसी समय विशेष पर संस्था की पूँजी संरचना में सम्मिलित विभिन्न वित्तीय स्त्रोतों की विशिष्ट लागतों का साधारण या भारित औसत पूँजी की औसत लागत कहलाती है। सीमांत पूँजी लागत का आशय नयी पूँजी के अतिरिक्त एक रूपये की लागत से है। पूँजी बजटन एवं वित्त पूर्ति संबंधी निर्णयों में सामान्यतः सीमान्त पूँजी लागत का ही प्रयोग किया जाता है।
3. **स्पष्ट लागत एवं अस्पष्ट लागत** (Explicit Cost and Implicit Cost) किसी भी वित्त स्त्रोत की वह कटौती दर जो किसी परियोजना के

अनुमानित रोकड़ अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य को रोकड़ बहिर्वाहों के वर्तमान मूल्य के बराबर कर देती है, स्पष्ट लागत कहलाती है, यह विनियोग अवसरों की आंतरिक प्रत्याय दर होती है। अस्पष्ट लागत पूँजी स्त्रोतों की वह अवसर लागत होती है जो उस परियोजना को स्वीकार कर लेने पर अंशधारियों को भावी उपार्जनों के रूप में देनी होती है। अस्पष्ट पूँजी लागत तभी उत्पन्न होती है जबकि कोष कहीं उपयोग किये जाते हैं अन्यथा नहीं।

4. **विशिष्ट लागत तथा संयुक्त लागत** (Specific Cost and Combined Cost) पूँजी संरचना के किसी विशिष्ट स्त्रोत, जैसे – ऋण, अधिमान अंश, समता अंश, प्रतिधारित अर्जनें इत्यादि की लागत को विशिष्ट लागत कहा जाता है। जब भी उपक्रम को अतिरिक्त पूँजी की आवश्यकता होती है। हर साधन से उपलब्ध वित्त की विशिष्ट पूँजी की लागत पर विचार करके निर्णय लिया जाता है। इसके विपरीत पूँजी संरचना के सभी स्त्रोतों की मिली जुली लागत को पूँजी को संयुक्त लागत अथवा भारित लागत अथवा समग्र लागत कहते हैं। पूँजी बजटन संबंधी निर्णयों में प्रत्याय दर का प्रयोग करने के लिये भारांकित लागत का उपयोग किया जाता है।

5. **स्थानीय लागत तथा सामान्य लागत** (Spot Cost and Normal Cost) एक निश्चित समयावधि पर स्थानीय पूँजी बाजार की दर को स्थानीय लागत कहा जाता है, यह अल्पकालीन लागत होती है। इसके विपरीत किसी क्षेत्र या सम्पूर्ण राष्ट्र में प्रचलित ब्याज दर को सामान्य पूँजी लागत कहा जाता है। स्थानीय पूँजी लागत व्यक्त लागत है जो उपक्रम को पूँजी के उपयोग पर वास्तव में चुकानी होती है जबकि सामान्य पूँजी लागत उसकी निहित पूँजी लागत है जो उसकी सम्पत्तियों पर अपेक्षित कम से कम प्रत्याय दर को दर्शार्ती है।

6.4 पूँजी की लागत की गणना

किसी संस्था की पूँजी की लागत की गणना में उसकी पूँजी के विभिन्न स्त्रोतों की विशिष्ट लागत की गणना एवं तत्पश्चात् औसत पूँजी लागत की गणना करना शामिल है। विभिन्न वित्त स्त्रोतों की पूँजी की लागत भिन्न–भिन्न होती है, जिसकी गणना विधि निम्नानुसार है –

6.4.1 लम्बी अवधि के ऋणों की लागत

लम्बी अवधि के ऋणों की लागत (Cost of Long- term Debt)

फर्म एक तरह से अधिक ऋणों का प्रयोग करती है। जितना पैसा उन्हें ऋण के तौर पर चाहिए होता है वह वित्तीय संस्थाओं से उधार लेते है। अभी हाल ही में कई कम्पनियों ने प्रतिज्ञापत्रों द्वारा पूंजी इकट्ठी करने का ढंग अपनाया है। प्रतिज्ञापत्र भी कई तरह के होते हैं जैसे कि कुछ परिवर्तित, कुछ अपरिवर्तित होने वाले जो कि फर्म जारी कर सकती है। ऋण चाहे तो लागत या अधि मूल्य या छूट पर जारी किया जा सकता है। विभिन्न परिस्थितियों में ऋण की लागत जिस तरह से की जाती है उसका वर्णन नीचे दिया गया है।

कीमत पर जारी किया जाने वाला ऋण (Debt issued at par)

जब ऋण पूरे मूल्य पर जारी किए जाते है और कुछ अवधि के बाद वह पैसे वापिस करने होते हैं। **(Reedeem)** करने से पहले ऋण की लागत मात्र छोटा सा ब्याज दर होता है। उदाहरण के तौर पर अगर कम्पनी 9% प्रतिज्ञापत्र 4,00,000 रूपये इकट्ठा करने के लिए पूरे मूल्य पर 10 वर्ष के लिए जारी करती है, कर से पहले इस की कीमत 9% होगी।

कर से पहले ऋण का मूल्य

$$Kd = \frac{Interest}{Principal} \qquad 6.1$$

$$\frac{Rs.3600}{4,00,000} = .90 \text{ or } 1 \text{ percent}$$

इकाई 6.1 का प्रयोग भी प्रतिज्ञापत्रों की लागत की गणना करने के लिए किया जा सकता है। अब लिए गए 4,00,000 रूपये के बदले में हर वर्ष बाहर जाने वाला रोकड़ 36,000 रूपये दस सालों के लिए और दसवें साल के अन्त में एक अन्य 4,00,000 की राशि देनी पड़ेगी। इस सूचना से हमें यह प्राप्त होता है –

$$Rs.\ 4,00,000 = \frac{Rs.36,000}{1+Kd} + \frac{Rs.36,000}{(1+Kd)2} \ldots\ldots\ldots + \frac{Rs.36,000+Rs.4,00,000}{(1+Kd)} \qquad 6.2$$

अगर ऊपर दी गई इकाई k_d के लिए हल की जाए तो उत्तर 9% होगा। इसलिए उपरोक्त दोनों स्थितियों में उत्तर एक ही होगा अगर ऋण मूल्य पर जारी किया गया है और अवधि पूरी होने पर उसे मूल्य पर ही वापिस किया जाएगा।

इसलिए शुरू, करने के लिए यह कहा जा सकता है कि ऋण की लागत (कर से पहले) ऋण के ऊपर ब्याज दर के बराबर होती है। ऋण पूंजी लेते हुए फर्म को यह पक्का कर लेना चाहिए कि समता अंशधारियों की आय प्रभावित न हों। अंशधारियों की आय में कोई बदलाव न आए इस लिए फर्म की कम से कम इतनी आय होनी चाहिए जितना उसने उधार लिए पैसे पर ब्याज दर देना होता है। अगर प्रत्याय दर जो कि वास्तविकता में अर्जित किया गया है वह ब्याज दर से कम है तो अंशधारियों के लिए उपलब्ध आय कम हो जाएगी जिसका नतीजा यह होगा कि बाजार मे अंश का मूल्य बढ़ जाएगा। इसके विपरीत अगर वास्तविकता में अर्जित प्रत्याय दर ब्याज दर से अधिक है तो अंशधारियों की उपलब्ध आय बढ़ेगी और बाज़ार में अंश के मूल्य में भी वृद्धि होगी। इसलिए ऋण पूंजी की लागत(वर्तमान मामले में 9%) कम से कम अप्रत्याय दर जो इस तरह से चलाये गए कार्य पर होना चाहिए ताकि प्रति अंश आय में कोई बदलाव न आए।

ऋण पूँजी की लागत (Cost of Debt Capital): सामान्यतः ऋण पूँजी, ऋण पत्रों या बॉण्डों के निर्गमन द्वारा प्राप्त की जाती हैं। इस दीर्घकालीन ऋण की लागत प्रत्याय की वह न्यूनतम दर होती है जो ऋण पूँजी द्वारा वित्त विनियोजन पर समता अंशधारियों की आय को अपरिवर्तित रखने के लिए अवश्य अर्जित की जानी चाहिये। इन ऋण पत्रों पर देय ब्याज दर ही ऋण पूँजी की लागत होती है, किन्तु इसकी सही गणना हेतु इस ब्याज की राशि का संबंध ऋण पूँजी के निर्गमन से प्राप्त शुद्ध राशि (Net Proceed) से स्थापित करना चाहिए। प्राप्त शुद्ध राशि की गणना में दो तत्वों का ध्यान रखा जाता हैः–

i. **ऋणपत्रों का निर्गमन मूल्यः** ऋणपत्रों को (i) सम मूल्य (at par) (ii) बट्टा (discount) अथवा प्रीमियम (Premium) पर निर्गमित किया जा सकता है।

ii. **निर्गमन की लागतें**–निर्गमन लागतों से आशय ऋण प्राप्त करने की लागतों से है इनमें अभिगोपन कमीशन, दलाली, प्रविवरण की छपाई, डाक व्यय, मुद्रांक शुल्क, विज्ञापन आदि के व्यय सम्मिलित होते हैं।

शोधनीय ऋण पूँजी की लागत (Cost of Redeemable Debt Capital) सामान्यतया ऋण–पत्रों के निर्गमन पर प्राप्त शुद्ध राशि एवं उनकी परिपक्वता पर चुकाई जाने वाली राशि में अंतर पाया जाता है। अंतर की इस राशि में ऋण–पत्रों की अवधि का भाग देकर ऋण–पत्रों पर प्रतिवर्ष देय ब्याज की राशि में जोड़ा जाता है ताकि औसत पूँजी पर ऋण–पूँजी की लागत ज्ञात की जा सके। औसत पूँजी की गणना शुद्ध राशि व परिपक्वता पर देय राशि में दो का भाग देकर की जाती है।

6.4.2 पूर्वाधिकार अंशो की लागत

पूर्वाधिकार अंशों की लागत (Cost of Preference Shares)

जारी करते वक्त दिया गया लाभांश पूर्वाधिकार अंशों को पक्के दर पर देना पड़ता हैं। हालांकि यह लाभांश देना निर्देशक बोर्ड की इच्छा पर निर्भर होता है परन्तु कम्पनियों में लाभांश निरंतर देना चाहती हैं और पूर्वाधिकार अंशधारी पर लाभांश नियमित रूप से मिलने की आशा रखते हैं।

पूर्वाधिकार अंश की लागत की परिभाषा ऋण की परिभाषा के अनुरूप ही है। इसलिए यह उस प्रत्याय दर का प्रतिनिधित्व करता है जो उन विनियोगों पर अर्जित करना चाहिए जिन्हे पूर्वाधिकार स्टॉक से पैसे दिए गए हैं ताकि अंशधारियों के लिए उपलब्ध आय में कोई बदलाव न आए। यह दर प्रति पूर्वाधिकार अंश पर देय आय को प्रति पूर्वाधिकार अंश के चालू बाज़ारी मूल्य से तकसीम करके पाया जा सकता है। निम्नलिखित इकाई में निरंतर पूर्वाधिकार पूंजी की लागत k_p के बराबर होगी।

$$P = \sum_{t=0}^{n} \frac{P}{(1+kp)t}$$

जहां

P= प्रति अंश पूर्वाधिकार पूंजी उगाही गई शुद्ध राशि

(Net amount realised per share of preference capital)

D=प्रति अंश वार्षिक पूर्वाधिकार देय लाभांश

(Perference dividend per share payable annually)

अगर उपरोक्त इकाई को हल किया जाए तो k_p=D/P

उदाहरण के तौर पर मान लीजिए, कि कम्पनी ने यह निर्णय लिया कि 12 प्रतिशत पूर्वाधिकार स्टॉक 100 रूपये मूल्य पर जारी किया जाए। कम्पनी की आशा है कि प्रति अंश बाज़ार में जारी करने से उसे 90 रूपये मिलेंगे। तो पूर्वाधिकार अंश की लागत होगी–

k_p=12/90 x 100 = 13.33%

उस पूर्वाधिकार पूंजी की लागत जो एक अवधि के बाद वापिस करनी है तो निम्नलिखित इकाई में k_p होगी–

$$P = \sum_{t=0}^{n} \frac{P}{(1+kp)t} + F/(1+kp)n \quad \ldots\ldots\ldots\ldots$$

जहां–

P=पूर्वाधिकार पूंजी के प्रति अंश उगाहे गए शुद्ध मूल्य

(Net amount realised per share of preference capital)

D= वार्षिक प्रति अंश देय लाभांश

(Dividend per preference share payable annually)

F=वापिस करने की कीमत

(Redemption Price)

n=कुल अवधि (Maturity Period)

अगर F और P में अन्तर पूर्वाधिकार स्टॉक की पूरी जिंदगी पर बाँट दिया जाए तो निम्नलिखित इकाई में पूर्वाधिकार पूंजी की लागत k_p होगी।

k_p=D+(f-p)/n/(f+p)/2

उदाहरण के तौर पर इंडियन रेयोन ने 100 रूपये मूल्य के पूर्वाधिकार अंश जारी किए जिसके ऊपर 12 प्रतिशत लाभांश देय या और दस साल बाद मूल्य पर ही देय थे। प्रति अंश 96 रूपये प्राप्त हुए। पूर्वाधिकार पूंजी की लागत k_p लगभग इसके बराबर होगी।

k_p= Rs.12 +(Rs. 100-Rs.96)10/(Rs. 100+Rs.96)2= .1266 or 12.66%

यह ध्यान रखने योग्य बात है कि पूर्वाधिकार पूंजी हमेशा कर के बाद होती है क्योंकि पूर्वाधिकार पूंजी के लाभांश में से कर की कटौती नहीं होती। इस मामलें में कुछ भी कर समायोजन नहीं होता।

पूर्वाधिकार अंश स्थायी तथा स्थिर आय वाली प्रतिभूतियाँ हैं जिन पर दिये जाने वाले लाभांश की दर पूर्व निश्चित होती है तथा जिन्हें कम्पनी के समापन पर समता अंशधारियों से पूर्व पूँजी के पुर्नभुगतान का अधिकार रहता है। यद्यपि इन अंशों पर लाभांश भुगतान करना प्रबंधकीय दायित्व नहीं है। जैसाकि ऋणपत्रों की दशा में होता है फिर भी इनका बेचान तब तक नहीं किया जाता है जब तक कि लाभांश भुगतान की पूरी संभावना न हो जाये। इन अंशधारियों द्वारा अपेक्षित लाभांश ही इनकी लागत होती है। पूर्वाधिकार अंश दो प्रकार के होते हैं –

अ. अशोधनीय पूर्वाधिकार अंश (Irredeemable preference shares)

ब. शोधनीय पूर्वाधिकार अंश (Redemable preference shares)

पूर्वाधिकार अंशों पर चुकाया जाने वाले लाभांश आयकर अधिनियम के अन्तर्गत स्वीकृत व्यय नहीं माना गया है। अतः इनकी लागत प्रायः कर के पश्चात् ही ज्ञात की जाती है।

शोधनीय पूर्वाधिकार अंशों की लागत (Cost of Redeemable Preference Shares)

कम्पनी अधिनियम के प्रावधान के अनुसार वर्तमान में अशोधनीय अधिमान अंशों का निर्गमन नहीं किया जा सकता है। व्यवहार में भी शोधनीय अधिमान अंशों का ही निर्गमन किया जाता है। इस प्रकार के अंशों का शोधन परिपक्वता तिथि पर किया

जाता है। ऐसी अधिमान अंश पूँजी की लागत शोध ऋणपत्रों की लागत की भाँति ही ज्ञात की जाती है। केवल ब्याज (R) के स्थान पर लाभांश (D) का प्रयोग किया जाता है।

6.4.3 समता अंश पूँजी की लागत

समता अंश पूंजी की लागत (Cost of Equity Share Capital)

समता पूंजी की लागत को इस तरह परिभाषित किया जा सकता है कि वह कम से कम प्रत्याय दर उस विनियोग पर जो कोई समता पूंजी द्वारा चलाती है ताकि स्टॉक का बाज़ारी मूल्य न बदले (वैन होरने) (Vanhorne) । फर्म की आय प्रति अंश लाभांश को प्रभावित करती है और प्रति अंश लाभांश अंशो के बाज़ारी मूल्य को। इसलिए समता अंशों की लागत को इस तरह से भी सोचा जा सकता है कि वह छूट दर जो सभी भविष्य लाभांश के वर्तमान मूल्य के बराबर हो जिसके लिए विनियोक्ताओं द्वारा चल बाज़ारी मूल्य प्रति अंश की सीमा रेखा पर विचार किया जाता है।

समता अंशो की लागत की गणना सबसे कठिन है। यह सौ प्रतिशत ठीक भी नहीं होती क्योंकि इसका आधार भविष्यवाणी है जो बहुत कम सच साबित होती है। पूर्वाधिकार अंशो की तरह इसका लाभांश दर पक्का नहीं होता। अंशधारियों के साथ करार यह प्रावधान करता है कि निश्चित पूंजी के बदले मे वह एक अनुपात में कम्पनी के भविष्य में साथी होंगे। आगे समता पूंजी की लागत अंशधारियों द्वारा आशित भविष्य लाभांशों की लहर पर भी आधारित होता है । अंशधरियों की उम्मीदों का अनुमान लगाना बहुत कठिन कार्य है।

समता पूंजी की लागत को निश्चित करने के लिए कोई एक पहुंच नहीं है। कुछ महत्वपूर्ण पहुँचों की आगे चर्चा की गई है–

I. E/P अनुपात विधि (E/P Ratio Method)

इस विधि के अनुसार समता पूंजी की लागत आय कीमत अनुपात में बताई जाती है।

$K_e=E_0/P_0$

जहां

K_e= समता पूंजी की लागत (Cost of Equity Share Capital)

E_0= प्रति अंश चल आय (Current Earnings per share)

P_0= चल बाज़ारी मूल्य प्रति अंश (Current market price per share)

समता पूंजी की लागत निश्चित करने की E/P विधि निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है–

भविष्य आय औसत के रूप में प्रकट की जा सकती है या भविष्य आय में कोई उन्नति नहीं होती। अंश का बाज़ारी मूल्य तभी बदलता है जब आय में तबदीली आती है और फर्म नये कार्य पर आय को चल दर पर अर्जित करने की क्षमता रखती है।

(2) **E/P अनुपात + उन्नति दर विधि (E/P ratio + grouita rate method)** – इस विधि के अनुसार समता पूंजी की लागत की गणना आय की उन्नति को ध्यान में रखते हुए की जाती है। अधिक समय के लिए आय की उन्नति का अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता क्योंकि भविष्य

निश्चित नहीं होता। कुछ लेखकों द्वारा तीन वर्षों की अवधि का आय में उन्नति का अनुमान लगाने का सुझाव दिया है–

$K_c=E_0(1+G)^3/P_0$

E_0=जहां प्रति अंश चल आय

(Current earnings per share)

P_0=प्रति अंश चल बाज़ारी मूल्य

(Current market price per share)

$(1+G)^3$=उन्नति तथ्य जहाँ तीन वर्षों के लिए अनुमानित उन्नति दर की प्रतिशता है।

(Growth factor where G is the % growth rate estimated for 3 year)

यह ध्यान रखने योग्य महत्वपूर्ण बात है कि आय की उन्नति दर की अवधि का अनुमान प्रबन्धकों के मूल्य फैसले के ऊपर ही आधारित है। तीन वर्षों की अवधि में प्रबन्धकों द्वारा बदलाव भी लाया जा सकता है अगर वह समता पूंजी के पैसों से चलने वाले नये कार्य के स्वभाव को पहचाने और उससे आने वाली आय के बारे में ध्यान दें।

उदाहरण

कम्पनी की चल आय प्रति अंश 4 रूपये है। वह अगले तीन वर्षों में 10 प्रतिशत वार्षिक उन्नति की आशा करती है। अंश का चल बाज़ारी मूल्य 40 रूपये है। समता पूंजी की लागत यह होगी–

$K_c=E_0(1+G)^3/P_0$

$=4(1+0.1)^3/.40 = 0.1331$ or 13.31%

3. **D/P अनुपात विधि (D/P Ratio Method) :-** अंश का चल बाज़ारी मूल्य इससे सम्बन्धित लाभांश कीलहर के उस वर्तमान मूल्य के बराबर होता है जो उस प्रत्याय दर पर छूट होता है जो अंशधारियों की मांग होती है। निरन्तर प्रति अंश पर एक लाभांश मूल्य मान कर अंश का मूल्य निम्नलिखित इकाई से दिया जा सकता है–

$P_0=D/(1+K_e)+D/(1+K_e)^2$ +

उपरोक्त इकाई को आसान करते हुए समता, पूंजी की लागत K वह प्रत्याय दर है जो दोनों तरफों के बराबर हो–

$K_e=D/P_0$

D= लाभांश प्रति अंश है।

(Dividend per share)

P_0 = अंश का चल बाज़ारी मूल्य

(Current market price of share)

समता पूंजी की लागत की गणना की यह विधि इस मान्यता पर आधारित है कि विनियोक्ता प्राथमिक महत्ता लाभांश को देते हैं और संकट में कोई बदलाव नहीं आता।

इस विधि की मुख्य खराबियाँ यह हैं (i) यह लाभांश में उन्नति की बात का ध्यान नहीं रखती (ii) वह व्यवसाय में लगाए गई लाभों के ऊपर आय को भी ध्यान में

नहीं रखती और (iii) यह अंशधारियों की उस आशा का भी ध्यान नहीं रखती कि अंश कीमतें बढ़ेंगी।

समता अंश पूँजी की लागत (Cost of Equity Capital) ऋण पूँजी तथा पूर्वाधिकार अंश पूँजी की लागत की तुलना में समता अंश पूँजी की लागत की गणना करना अधिक कठिन होता है। यह कठिनाई इसलिए होती है कि इन पर देय लाभांश की दर पूर्व निश्चित नहीं होती है न इन पर लाभांश देना अनिवार्य होता है। इसका यह तात्पर्य नहीं होता है कि यह पूँजी कम्पनी के लिए लागत रहित होती है। प्रत्येक समता अंशधारी अपनी कम्पनी से कुछ न कुछ प्रत्याय की आशा करता है। यह आशान्वित प्रत्याय ही समता अंश पूँजी की लागत कहलाती है। उपर्युक्त अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि उपक्रम की लाभप्रदता कम से कम इतनी तो हो कि वह समता अंशधारियों को न्यूनतम अपेक्षित लाभांश दे सके।

नये समता अंशों का निर्गमन होने पर नये अंशधारियों को विद्यमान अंशधारियों के साथ लाभांश एवं अवितरित लाभों में आनुपातिक हिस्सा प्राप्त होता है। इससे विद्यमान अंशधारियों की प्रति अंश प्राप्तियाँ कम हो जाती है फलतः अंशों का बाजार मूल्य भी कम हो जाता है। अतः नये समता अंशों का निर्गमन करते समय यह देखना आवशययक है कि अंशों के विनियोजन से कम्पनी को कम से कम इतनी आय अवश्य प्राप्त हो कि अंशों के मूल्यों को अपरिवर्तित रखा जा सके। यह अपेक्षित न्ययूनतम दर ही समता अंश पूँजी की लागत होती है। सामान्यतः समता अंशधारी कम्पनी से निम्न अपेक्षाएं रखते हैं:–

i. एक निश्चित प्रतिशत लाभांश प्रतिवर्ष नकद रूप में प्राप्त हो सके।
ii. प्रति अंश आय में निरन्तर रूप से वृद्धि होती रहे ताकि भविष्य में अधिक लाभांश मिल सके।
iii. प्रतिधारित लाभों में से भले ही तत्काल रोकड़ रूप में प्राप्ति न हो, किन्तु उसके पूँजी विनियोग में वृद्धि होती रहे, ताकि पूँजी लाभ में वृद्धि हो सके।

6.4.4 व्यवसाय में लगाई आय की लागत

कुछ लेखक कहते है कि व्यवसाय में लगाई आय की लागत की अलग से गणना करने की कोई आवश्यकता नहीं है। वह यह कहते है कि इसकी लागत समता पूंजी में ही समावेशित होती है। (हैम्पटन) (Hampton) समता पूंजी की लागत जानने के लिए, अंश का बाज़ारी मूल्य (P_0) हर उस संभव लाभ से मिलाया जाता है जो अंशों में विनियोग के नतीजे स्वरूप मिलता है और अंशधारियों का दावा अंश मूल्य और व्यवसाय में लगी आयदोनों के लिए होता है। व्यवसाय में लगी आया की लागत से गणना करने का कोई तात्पर्य नहीं है।

बहुत से लेखक यह बहस करतें है कि व्यवसाय में लगी आय में सुअवसर लागत (Oppurtunity cost) भी शामिल होती है। व्यवसाय में लगी आय की सुअवसर लागत अंशधारियों द्वारा छोड़ा गया लाभांश है । लाभांश की बिल्कुल प्राप्ति न होना या कम होना अंशधारियों को विभिन्न रूप से प्रभावित करेगी। अगर अंशधारियों को लाभांश मिलता है तो वह उसे निवेशित कर आय अर्जित कर सकते हैं । पर अगर अंशधारियों को लाभांश नही मिलता तो वह इन लाभों को विनियोगिता कर धन कमाने के सुअवसर को खो देते है।

व्यवसाय में लगी आय की लागत kr को उस प्रत्याय की तरह परिभषित किया जा सकता है जो सामान्य अंशधारी अपने विनियोग पर आशा रखते हैं । निजी कराधान और दलाली लागतों के अनुपस्थित होने से समता पूंजी ke की लागत व्यवसाय में लगी आयकी लागत kr के बराबर होगी। यह इस बात को लागू करता है कि अगर अंशधारियों को लाभांश दिए जाए तो वह उन्हें उसी संकट और प्रत्याय प्रतिभूतियों में निवेशित कर सकते हैं। इसलिए ke व्यवसाय में लगी आय की सुअवसर लागत हुई अगर यह मान लिया जाए कि (अ) कि अंशधारियों को अपनी लाभांश आय पर कर नहीं देना पड़ेगा और (ब) लाभांश के विनियोग पर उन्हें कोई दलाली लागत नहीं देनी पड़ी। वास्तविकता में यह कल्पनाएं सच नही है। अंशधारी को लाभांश आय पर कर देना पड़ता है और लाभांशों को विनियोगित करते हुए दलाली भी देनी पड़ती है। व्यवसाय में लगी आयकी लागत जानने के लिए निम्नलिखित नियम का प्रयोग किया जा सकता है–

$Kr=Ke(1-t)(1-b)$

जहां

Kr = व्यवसाय में लगी आय की लागत (Cost of retained earnings)

Ke = समता पूंजी की लागत (Cost of Equity Capital)

t= अंशधारी का निजी कर दर

(the shareholder’s personal income tax rate)

b= दलाली लागत की प्रतिशतता

(percentage brokerage cost)

व्यवसाय में लगी आय की लागत की गणना बहुत आसानी से नहीं की जा सकती क्योंकि अंशधारियों का निजी कर दर को निश्चितता से निश्चित नहीं किया जा सकता। विभिन्न अंशधारी अपनी अपनी आय के स्तर के अनुसार विभिन्न विभिन्न कर दर देते होंगे। कम्पनी के अंशधारीयों के लिए औसत कर दर का ही सुझाव दिया जा सकता है। पर यह भी कठिन कार्य है।

व्यवसाय में लगी आय की लागत की गणना करने की एक अन्य विधि है जो बाहरी आय विधि के रूपा में जानी जाती है और जिसका सुझाव ऐज़रा सोलोमान (Ezra Soloman) ने दिया था।

यह विधि यह सुझाव देती है कि वह रखी हुई आय को विनियोगित करने के लिए बाहर उपलब्ध विनियोग अवसरों का मूल्यांकन करे। बाहरी आय विधि के अनुसार रखी हुई आय की लागत kr वह प्रत्याय दर जो फर्म द्वारा रखी आय को बाहर सबसे अच्छे अवसर मे विनियोगिता करके अर्जित की गई है। अगर बाज़ार में संकट और प्रत्याया की बराबरी की कल्पना की जाए बाहरी विनियोग पर मिले पैसे फर्म को पड़ी समता पूंजी के बराबर होंगे, यानि उसके अपने अंशधारियों द्वारा आशित प्रत्याय। इस लिए जब तक बाहरी सुअवसर अपलब्ध हैं तब तक बचा के रखी आय की लागत समता पूंजी की लागत के बराबर होगी। क्योंकि इस विधि का प्रयोग यह कल्पना करता है कि फर्म बचाई हुई आय अन्य फर्मों में निवेशित करेगी, इसलिए कम्पनी को प्रत्येक अंशधारी के कर निश्चित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिए बची हुई आय की लागत को निश्चित करने के लिए निजी कर की समस्याओं को सुलझाने से आज़ाद हैं।

प्रतिधारित अर्जनों की लागत (Cost of Retained Earnings): कम्पनी जो शुद्ध लाभ अर्जित करती है उसके कुछ भाग को अपने अंशधारियों में लाभांश वितरण हेतु उपयोग करती है तथा शेष संचयों में हस्तान्तरित कर देती है। इसे प्रतिधारित अर्जन कोष (Retained Earnings Fund) कहा जाता है। इस प्रकार के कोषों के लिए कम्पनी को कोई लागत नहीं चुकानी पड़ती तथा न किसी प्रकार का कोई व्यय करना पड़ता है, इसलिए इसे लागत रहित पूँजी मानते हैं, किन्तु यह सत्य नहीं है। यद्यपि इसकी कोई स्पष्ट लागत नहीं होती किन्तु इसे पूँजी की अवसर लागत (Opportunity Cost) होती है।

"वेस्टन एवं ब्रिंघम" के शब्दों में "प्रतिधारित अर्जनों की लागत या प्रत्याय जिसे कि प्रतिधारित आय पर आधारित विनियोगों पर उपार्जित किया जाना आवश्यक है, प्रत्याय की उस दर के बराबर होती है जो कि विनियोजक अपनी अंश पूँजी पर प्राप्त करने की आशा रखता है।"

यदि कम्पनी इस आय को संचित करने के बजाय अंशधारियों में लाभांश के रूप में वितरित कर देती है तो अंशधारी इसे अन्यत्र कहीं विनियोजित करके कुछ आय प्राप्त कर लेते। इसलिए प्रत्येक अंशधारी इन प्रतिधारित या रोकी गई अर्जनों पर कम्पनी से उतनी आय की अपेक्षा करता है जितनी उसे इसके प्राप्त होने पर वैकल्पिक विनियोजन से उत्पन्न होने वाली आय से वंचित रहना पड़ता है। किन्तु इससे निम्नलिखित समायोजन करने आवश्यक होंगेः—

1. प्रत्येक अंशधारी को लाभांश के रूप में प्राप्त आय पर कर देना होता है। फलतः अंशधारी द्वारा विनियोजित की जाने वाली राशि आयकर दायित्व से कम हो जायेगी। किन्तु कम्पनी के विभिन्न अंशधारियों की आयकर सीमा भिन्न—भिन्न होने के कारण सभी के लिए अनुमानित औसत व्यक्तिगत आयकर दायित्व मानकर गणना की जाती है।
2. अंशधारियों को विनियोजन करते समय दलाली भी चुकानी पड़ती है, इससे भी विनियोजित की जाने वाली राशि तथा इस पर प्राप्त होने वाली अपेक्षित आय, दलाली के अनुपात में कम हो जाती है।
3. लाभांश वितरण के फलस्वरूप अंशधारी द्वारा पूर्वधारित अंशों के बाजार मूल्य में भी वृद्धि हो जाती है और उसे अंश के बाजार मूल्य से घटाया जायेगा।

6.4.5 पूँजी की भारित औसत लागत

लम्बी अवधि पूंजी के हर मुख्य स्त्रोत की लागत की गणना अलग अलग करने के बाद अब हम सारी चीज़ें इकट्ठी रखने को तैयार हैं। ऐसे गणना करके जो लागत आएगी वह इकट्ठी लागत या सम्पूर्ण लागत होगी। सम्पूर्ण लागत को जाने की परम्परागत पंहुच तो सीधी सादी है— ऋण की सभी विशेष लागतों को इकट्ठा कर लो, पूर्वाधिकार अंश पूंजी, समता पूंजी और रखी हुई आय सब को उतने अनुपात में ही जितने कि भविष्य में हर एक स्त्रोत से वित्तीय आशा है। पूंजी की औसत लागत की गणना करने के लिए निम्नलिखित पग है—

1. पूंजी के हर स्त्रोत की लागत की गणना करना। (यानि कि पूर्वाधिकार अंश पूंजी, समता पूंजी और बची हुई आय)
2. हर पूंजी स्त्रोत की लागत को पूंजी ढांचे में उसके अनुपात से गुणा करना।

3. सभी स्त्रोतों में पूंजी की औसत लागत इस तरह से बताई जा सकती है–

$K_o = k_d w_d + k_p w_p + k_e w_e + k_r w_r$

जहां

K_o=पूंजी की भारित औसत लागत

(Weighted average cost of capital)

k_d =ऋण की लागत

(cost of debt)

k_p = पूर्वाधिकार पूंजी की लागत

(cost of preference capital)

k_e = समता की लागत

(cost of equity capital)

k_q= बची हुई आय की लागत

(cost of Retained capital)

w_d =ऋण पूंजी की अनुपात

(Proportion of debt capital)

w_p = पूर्वाधिकार पूंजी का अनुपात

(Proportion of preference capital)

w_e =समता पूंजी का अनुपात

(Proportion of Equity Capital)

w_r= बची हुई आय की लागत

(Proportion of retained Eearnings)

वित्तीय निर्णय लेने में पूंजी की लागत कर की गणना करने के बाद पूंजी के आधार पर लेनी चाहिए क्योकि (i) कार्य से रोकड़ बहाव कर के बाद के आधार पर होते है (ii) यह विनियोग कार्यों का मूल्यांकन, पूंजी की लागत या तो फर्म के रोकड़ बहावों के वर्तमान मूल्य की गणना करने के बाद या रूकावट दर की विनियोग कार्यों के आंतरिक प्रत्याय दर से तुलना के बाद ही जाना जा सकता है। इसलिए पूंजी की औसत लागत की गणना में प्रयोग होने वाली सभी लागतें कर देने के बाद ही होगीं।

भार के तरीके (System of Weighting)

पूंजी की सम्पूर्ण लागत ज्ञात करने के लिए एक समस्या यह भी आती है कि फण्डों के विभिन्न स़्त्रोतों के लिए उपयुक्त भारों का चयन कैसे किया जाए। इसके लिए कई विकल्प तरीके उपलब्ध हैं। भार इन पर आधारित हो सकते हैं (i) वर्तमान पूंजी ढांचे में पूंजी के विभिन्न जोड़ों का किताबी मूल्य (ii) वर्तमान पूंजी ढांचे में पूंजी के विभिन्न जोड़ों का बाज़ारी , मूल्य और (iii) वह अनुपात जिसमें विभिन्न स्त्रोतों का वर्तमान और भविष्य विनियोगों में वित्तीय प्रयोग होगा।

किसी भी व्यावसायिक संस्था अथवा कम्पनी की पूँजी संरचना एक ही तरह की प्रतिभूतियों से निर्मित नहीं होती है। बल्कि वह अनेक प्रकार की प्रतिभूतियों के उचित मिश्रण द्वारा निर्मित होती है। संस्था के प्रबन्धक स्वामित्व, नियंत्रण, आय आदि अनेक तत्वों को ध्यान में रखकर विभिन्न स्त्रोतों से संस्था की पूँजी प्राप्त करते हैं। समस्त पूँजी का एकत्रीकरण लागत तत्व के आधार पर ही

नहीं किया जाता है। स्वामित्व कोष एवं ऋण कोष के मध्य भी उचित अनुपात बनाये रखना होता है। इसी समस्या के समाधान हेतु वित्तीय प्रबन्धकों द्वारा पूँजी की औसत लागत की धारणा विकसित की गई है। इसे पूँजी की औसत भारयुक्त लागत (Weighted Average Cost of Capital) भी कहा जाता है। पूँजी की औसत लागत को ज्ञात करने के लिए निम्न प्रक्रिया अपनाई जाती हैः–

सर्वप्रथम संस्था में प्रयुक्त समस्त पूँजी की राशि को एक मानकर उसके अनुपात में विभिन्न पूँजी मदों को भार दिया जाता है। भार देने के लिए पूँजी का पुस्तक मूल्य अथवा बाजार मूल्य में से किसी एक का प्रयोग किया जाता है।

पुस्तक मूल्य भार संस्था की कुल पूँजी संरचना में पूँजी के विभिन्न स्त्रोतों का सापेक्षिक अनुपात है। बाजार मूल्य भार, पूँजी के विभिन्न स्त्रोतों के कुल बाजार मूल्य से प्रत्येक स्त्रोत के बाजार मूल्य के अनुपात के आधार पर ज्ञात किया जाता है।

सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से बाजार मूल्य के आधार पर दिये गये भार अधिक उपयुक्त माने जाते हैं क्योंकि (i) पूँजी के प्रत्येक घटक की लागत निकालने में बाजार मूल्य का प्रयोग किया जाता है। (ii) प्रतिभूति विक्रय पर वास्तविक प्राप्त राशि एवं बाजार मूल्यों में समानता होती है किन्तु इनके निर्धारण में कई व्यावहारिक समस्यायें आती है। व्यवहार में भी पुस्तक मूल्य भारों का ही अधिक प्रयोग किया जाता है क्योंकि (i) पुस्तक मूल्य संबंधी सूचना कम्पनी के प्रकाशित लेखों से आसानी से उपलब्ध हो जाती है। (ii) प्रबंधक पूँजी संरचना संबंधी लक्ष्य निर्धारित करते समय पुस्तक मूल्य को आधार बनाते हैं (iii) प्रतिधारित अर्जनों की दशा में बाजार मूल्य के आधार पर भार देना असुविधाजनक होता है (iv) कम्पनी की जोखिम का मूल्यांकन करने के लिए ऋण समता अनुपात ज्ञात करते समय पुस्तक मूल्य को ही आधार बनाया जाता है। (v) बाजार मूल्यों में निरन्तर उच्चावचन होते रहते हैं।

समाविष्ट उदाहरण (Comprehensive Illustrations)

उदाहरण 1

अमृत स्पाईसस लिमिटेड 100 रू0 प्रति एक 16% वापिस न किए जाने 10,000 ऋण पत्र 10% के बट्टा दर पर जारी करती है। कम्पनी का कर दर 40% है। ऋण पत्रों की लागत ज्ञात कीजिए।

उत्तर (Solution)

कर के बाद ऋण की लागत निम्नलिखित इकाई से जानी जाती है–

k_d=I/NP(1-t)

k_d=ऋण की लागत

I=वार्षिक ब्याज अदायगियां

NP=Net proceeds from the issue of debt.

t=कर दर

इसलिए वर्तमान स्थिति में

k_d= 10% an Rs. 10,00,000 X(1-0.4)/10,00,000-(10% of 10,00,000)

=1,09,000 X (.6)/ 9,00,000= 0.6666 or 6.67%

उदाहरण 2

हिन्द कम्पूयटर 100 रू0 प्रति एक 16 प्रतिशत श्रेष्ठ अंश पूंजी 5 प्रतिशत के प्रीमियम पर देय जारी कर रही है। जारी मूल्य का 2 प्रतिशत जारी करने की लागत आने का अनुमान है। सहकारी कर दर 40 प्रतिशत है। श्रेष्ठ अंश पूंजी की लागत ज्ञात कीजिए।

उत्तर (Solution)

देय श्रेष्ठ अंश पूंजी की लागत की गणना निम्न इकाई द्वारा की जाती है–

k_p=D+1/N(M-P) / M+P/2

k_p= 16 Rs. + 1/5 (105-98) / 105+ 98/2

=0.1714

या 17.14%

यहां

M= 100 रू0 + 100 रू0 का 5% = 105 रू0

P=100 रू0-100 रू0 का 2% =98 रू0

उदाहरण 3

राजन टैक्स्टाईल के अंश वर्तमान में 40 रू0 प्रति एक के हिसाब से बिक रहें है। अंश का वास्तविक मूल्य 10 रू0 प्रति अंश है। वर्तमान में कम्पनी 4 रू0 प्रति अंश लाभांशा दे रही है। अगले वर्ष से हमेशा के लिए लाभांश के 5 प्रतिशत के दर से बढ़ने की आशा है। कम्पनी की अंश पूंजी की लागत की गणना कीजिए।

उत्तर (Solution)

केस के तथ्यों को देखते हुए D/P अनुपात Growth Model अंश पूंजी की लागत के अनुमान के लिए उपयुक्त लगता है।

k_e=D/P+g

k_e=Cost of Equity capital

P= Current Market price per equity share

D=Current dividend per share

g=annual growth rate in dividend

इसलिए k_e=4/40 + 0.05 = 0.15 or 15%

उदाहरण 4

नन्द लाल मुबारकपुर फूड इण्डस्टरी में अंशधारी है। हालांकि भूतकाल में कम्पनी की आय में काफी बदलाव आता रहा है तो भी उसने अनुमान लगाया है कि कम्पनी से लम्बी अवधि में उसे औसत लाभांश 4 रू प्रति अंश होगा। कम्पनी के लाभांश के बारे में जानते हुए नन्द लाल ने यह निर्णय है कि कम से कम इस अंश पर 16 प्रतिशत अर्जित करना चाहिए। अंश का उचित मूल्य क्या होगा।

उत्तर (Solution)

P_0=D /ke= 4Rs. / 16% = 25 रू0

कम्पनी के अंशों के लिए 25 प्रतिशत उचित मूल्य होगा।

6.5 उत्तोलक का अर्थ व प्रकार

सभी व्यवस्यायिक फर्म अपना कार्य इस प्रकार से करती है कि उनके लाभ बढ़ें और लाभ का मूल्य नीचे की पंक्ति या कर के बाद तक लाभ पंक्ति

तक पहुंच जाएं। यह बात इस तथ्य पर आधारित है कि फर्म की वित्तीय ताकत (बढ़ने की शक्ति कर चुकाने की शक्ति) उसके लाभ अर्जन करने की ताकत पर ही निर्भर करती है। बढ़ते लाभ के उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए वित्तीय प्रबन्धक को स्थाई सम्पत्तियों में विनियोग करने का सबसे लाभदायक तरीका अपनाना पड़ेगा (उत्पादन क्षमता को बनाने वाला विनियोग) ।

एक व्यावसायिक संस्था की पूँजी संरचना का निर्माण स्वामियों अथवा लेनदारों अथवा दोनों के कोषों से होता है। स्वामियों के कोषों में वृद्धि अंशों के निर्गमन पुर्नविनियोजन से की जा सकती है। जबकि लेनदारों के कोषों को ऋणपत्रों के निर्गमन या दीर्घकालीन ऋण द्वारा बढ़ाया जा सकता है। पूँजी संरचना संबंधी निर्णय संस्था के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होते है। किसी संस्था की कुल पूँजी में ऋण की मात्रा बढ़ने से अंशधारियों के प्रत्याय में वृद्धि होती है एवं अंशों का मूल्य बढ़ता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि उधार पूंजी की लागत, जो कि आयकर के लिए स्वीकार्य कटौती मानी जाती है, अंशधारियों के कोषों से कम होती है, किन्तु अधिक ऋण के कारण जोखिम में वृद्धि होने से अंश का बाजार मूल्य गिरता भी है। अंशधारियों के कोषों का अनुपात ऋण पूंजी की तुलना में अधिक होने पर अंशधारियों का प्रत्याय एवं जोखिम दोनों ही कम होंगे किसी संस्था की पूंजी संरचना में ऋण समता मिश्रण के निर्धारण एवं इसका अंशधारियों के प्रत्याय एवं जोखिम पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करने के लिए उत्तोलक या लिवरेज अवधारणा का प्रयोग किया जाता है।

उत्तोलन दण्ड (Lever) को इस तरह परिभाषित किया जा सकता है कि वह ताकत जिसमें कम से कम बल लगाकर अधिक से अधिक कार्य किया जा सकता है। उत्तोलन को बल या ताकत को बढ़ाने के लिए लागू किया जाता है और ज्यादा से ज्यादा उत्पाद को प्राप्त करने के लिए अपनाया जाता है। वित्तीय प्रबन्ध में उत्तोलन का अर्थ स्थाई सम्पत्तियों में इस प्रकार से विनियोग करना और वित्तीय मिक्स तो इस तरह रखना होता है ताकि स्थाई लागत रहे। स्थाई लागत होने के कारण बढ़ते उत्पादन के कारण अंशधारियों की आय को बढ़ाया जा सकता है। यह इस लिए होता है क्योंकि बिक्री द्वारा बढ़ा राजस्व कार्य को चलाने की लागत की तुलना में अधिक दर से बढ़ता है।

लाभों में वृद्धि या कमी – (1) स्थायी परिचालन लागतों (2) स्थायी वित्तीय लागतों (3) दोनों के योग के कारण होती है। इन्हीं लागतों के फलस्वरूप उत्तोलक भी तीन प्रकार के होते हैं :–

उत्तोलकों के प्रकार

परिचालन उत्तोलक (Operating Leverage)	वित्तीय उत्तोलक (Financial Leverage)	संयुक्त उत्तोलक (Combined Leverage)

6.6 कार्यकारी उत्तोलक

फैलाव (Leverage) से बेपरवाह व स्थाई उत्पादन लागत जिसकी उपस्थिति की पूर्ति अवश्य करनी है उसे कार्यकारी उत्तोलन कहते हैं। कार्यकारी उत्तोलन के विश्लेषण में छोटे समय का विश्लेषण होता परंतु लम्बे समय की तरह

सभी लागतें लगभग अस्थाई ही होती हैं। फर्म यह सोच कर स्थाई लागत लगा कर सम्पत्ति लेती है कि इससे उपजे राजस्व यह स्थाई व अस्थाई दोनों लागतों को पूर्ण करने के लिए सक्षम होगी।

परिवर्तनशील लागतों से आशय उन लागतों से है जो विक्रय या उत्पादन के अनुपात में परिवर्तित होती है। जबकि स्थायी लागतें ऐसी लागते हैं जिनका उत्पादन या विक्रय से कोई संबंध नहीं होता है। ये समय के आधार पर होती है। अतः उत्पादन शून्य होने पर भी संस्था को ये लागतें वहन करनी होती हैं। दूसरी ओर उत्पादन में वृद्धि होने पर भी इन लागतों में वृद्धि नहीं होती है। अतः स्थायी लागतों के प्रयोग के फलस्वरूप विक्रय दर में परिवर्तन की अपेक्षा लाभ दर में आनुपातिक रूप से अधिक परिवर्तन को परिचालन उत्तोलक कहा जाता है।

यदि किसी संस्था में स्थायी लागतें विद्यमान नहीं हैं तो उस संस्था में परिचालन उत्तोलक भी नहीं होगा। ऐसी संस्था में विक्रय में परिवर्तन की दर व लाभों में परिवर्तन की दर समान होगी।

परिचालन उत्तोलक की कुछ प्रमुख परिभाषायें इस प्रकार हैं :–

वाकर एवं पेट्टी के अनुसार "परिचालन उत्तोलक को स्थायी परिचालन लागतों के योग के परिणामस्वरूप दी हुई विक्रय मात्रा में हुये परिवर्तनों की तुलना में लाभों में हुये परिवर्तनों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

ई.एफ. ब्राइगम के अनुसार" यदि एक फर्म की कुल लागतों में स्थायी लागतों का प्रतिशत ऊँचा है तब यह कहा जायेगा कि फर्म में उच्च मात्रा में परिचालन उत्तोलक है।"

जॉन जे हेम्पटन के अनुसार" पचिालन उत्तोलक तब विद्यमान होता है, जब आगम में परिवर्तन में फलस्वरूप ब्याज एवं कर से पूर्व (EBIT) आय में व्यापक परिवर्तन होता है।"

संक्षेप में परिचालन उत्तोलक विक्रय में परिवर्तन का आय पर प्रभाव स्पष्ट करता है। परिचालन उत्तोलक यह बतलाता है कि विक्रय एवं लाभों के किसी स्तर को स्थिर मानते हुए विक्रय में एक निश्चित परिवर्तन किया जाता है तो लाभों में विक्रय की तुलना में कितना गुना (times) अधिक परिवर्तन होता है।

परिचालन उत्तोलक की विशेषताएँ निम्नलिखित हैंः–

1. **स्थायी लागतों से सम्बन्धित** (Related to Fixed Costs) परिचालन उत्तोलक का संबंध स्थायी लागतों से होता है। यदि किसी कम्पनी में स्थायी लागतें अधिक है तो परिचालन उत्तोलक अधिक होगा एवं किसी कंपनी में यदि स्थायी लागतें कम हैं तो परिचालन उत्तोलन भी कम होगा। इस प्रकार स्थायी लागतों एवं परिचालन उत्तोलक में सीधा संबंध होता है।
2. **स्थायी सम्पत्तियों के मिश्रण पर प्रभाव** (eff~ect on Mix of Fixed Assets) परिचालन उत्तोलक स्थायी लागत वाली सम्पत्तियों के उपयोग के कारण उत्पन्न होता है, फल्स्वरूप यह चिट्ठे के सम्पत्ति पक्ष में स्थायी सम्पत्तियों के मिश्रण को प्रभावित करता है। साथ ही यह दीर्घकालीन एवं स्थायी सम्पत्तियों के मिश्रण पर भी असर डालता है।
3. **व्यावसायिक जोखिम** (Business Risk) परिचालन उत्तोलक लाभों के साथ–साथ व्यावसायिक जोखिम में भी वृद्धि करता है। उच्च परिचालन उत्तोलक की स्थिति में एक तरफ विक्रय में मामूली सी वृद्धि के कारण

परिचालन लाभों में वृद्धि तुलनात्मक रूप से अधिक होती है तो दूसरी ओर विक्रय में मामूली सी कमी होने पर परिचालन लाभों में कमी तुलनात्मक रूप से अधिक होती है।

4. **सम–विच्छेद बिन्दु से सम्बन्ध** (Relation with Break-even Point) समविच्छेद बिन्दु उत्पादन या बिक्री का वह बिन्दु है जहाँ सम्पूर्ण स्थायी लागतों की वसूली हो जाती है, किन्तु लाभ अथवा हानि नहीं होती है। परिचालन उत्तोलक की मात्रा सम–विच्छेद बिन्दु के पास सर्वाधिक होती है। अतः समविच्छेद बिन्दु में वृद्धि से परिचालन उत्तोलक की मात्रा में वृद्धि होगी, इसके विपरीत सम–विच्छेद बिन्दु में कमी होने पर परिचालन उत्तोलक की मात्रा भी कम होगी। इस बिन्दु के पास पहुँचने के बाद बिक्री में मामूली वृद्धि लाभों में भारी वृद्धि दिलाती है।

5. **पूँजी बजटन निर्णय** (Capital Budgeting Decisions) परिचालन उत्तोलक स्थायी लागतों का परिणाम है। अतः यह पूँजी बजटन निर्णयों के लिए उपयोगी है। ब्राइगम के अनुसार "परिचालन उत्तोलक अवधारणा का विकास ही मूलरूप से पूँजी बजटन निर्णयों में उपयोग के लिए हुआ था।" पूँजी बजटन दीर्घकालीन लाभ–नियोजन के लिए आवश्यक है। इसलिए परिचालन उत्तोलक पूँजी बजटन निर्णयों एवं दीर्घकालीन लाभ–नियोजन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

6. **पूँजी संरचना निर्णय** (Capital Structure Decisions) परिचालन उत्तोलक विक्रय में परिवर्तन का परिचालन आय पर प्रभाव स्पष्ट करता है। चूँकि परिचालन आय ऋण पर ब्याज तथा ऋण के कुछ भाग के भुगतान करने के निर्णय का आधार होती है, इसलिए परिचालन उत्तोलक ऋण समता मिश्रण या पूँजी संरचना नियोजन को भी प्रभावित करता है। उच्च परिचालन उत्तोलक से अधिक जोखिम व अधिक लाभ की प्राप्ति होती है, जबकि निम्न परिचालन उत्तोलक से कम जोखिम व कम लाभ की प्राप्ति होती है। अतः एक फर्म वांछित लाभदायकता व जोखिम को ध्यान में रखते हुए ही पूँजी संरचना नियोजन करती है।

7. **निश्चित लाभ के लिए आवश्यक विक्रय की गणना में सहायक** (Helpful in computation of sales for certain level of Profit) प्रत्येक व्यवसायी इस बात को अवश्य जानना चाहता है कि एक निश्चित लाभ को प्राप्त करने के लिए उसे कितना विक्रय करना होगा। परिचालन उत्तोलक की सहायता से व्यवसायी लाभ के विभिन्न स्तरों के लिए वांछित विक्रय राशि ज्ञात कर सकते हैं एवं इस हेतु आवश्यक व्यूह रचना का निर्माण कर सकते हैं।

8. **सुरक्षा सीमा का ज्ञान** (Knowledge About Margin of Salety) ऊँचे उत्तोलक की स्थिति में परिचालन लागतों का अनुपात अधिक एवं लाभों का अनुपात कम होता है। यह स्थिति कम सुरक्षा सीमा को दर्शाती है। इसके विपरीत निम्न उत्तोलक की स्थिति में सुरक्षा सीमा पर्याप्त होने से फर्म मजबूत मानी जाती है।

6.6.1 कार्यकारी उत्तोलक की सीमा व माप

कार्यकारी उत्तोलन की सीमा (Degree of operating Leverage)

बिक्री के एक निश्चित तल पर कार्यकारी उत्तोलन की सीमा सीधे तौर पर कार्यकारी लाभों (ब्याज और कर से पूर्व लाभ) में बदलाव की प्रतिश्तता को बिक्री के बदलाव की प्रतिशतता में बदलाव द्वारा पाया जा सकता है जो कि लाभ में बदलाव का कारण होती है। यह इस विधि का प्रयोग कर पाया जा सकता है-

कार्यकारी उत्तोलन का लाभ पर प्रभाव तीन फर्मों क ख और ग का उदाहरण लेकर बताया गया है जो एक ही उत्पादन को बेच और खरीद का काम कर रही है पर उत्पादन विधियां भिन्न-भिन्न प्रयोग कर रही हैं। एक इकाई का बिक्री मूल्य 10 रूपये माना गया है। फर्म क की अस्थाई लागत प्रति इकाई 7 रूपये है और कार्यकारी स्थाई लागत 90,000 रूपये है। यह फर्म उच्च कोटि की मजदूर चलित तकनीक का प्रयोग करती है। फर्म ख की प्रति इकाई अस्थाई लागत 5 रूपये है और कार्यकारी स्थाई लागत 1,90,000 रूपये है। यह फर्म आम श्रेणी की मजदूर चलित तकनीक (Labour Intensive Technique) का प्रयोग करती है। और फर्म ग (जो उच्च दर की मशीनी विधि का प्रयोग करती है) उसकी अस्थाई लागत प्रति इकाई 4 रूपये है और कुल स्थाई लागत 2,00,000 रूपये है।

उदाहरण 6.1

सीमा लिमिटेड़ वर्तमान में 20,000 इकाइयों का उत्पादन कर रही है। अन्य सूचनाएँ निम्न प्रकार हैं :–

उत्पादन का विक्रय मूल्य	10 रूपये प्रति इकाई
स्थायी परिचालन लागत	50,000 रूपये प्रति वर्ष
परिवर्तनशील परिचालन लागत	5.00 रूपये प्रति इकाई

उपरोक्त दी हुई सूचना के आधार पर परिचालन उत्तोलक की मात्रा ज्ञात कीजिये और इस पर अपनी राय दीजिए। यदि कम्पनी विक्रय करती है – (अ) 10,000 इकाइयाँ और (ब) 40,000 इकाइयाँ। यह मान लीजिए कि समस्त उत्पादन का विक्रय कर दिया जाता है तथा कोई प्रारंभिक और अंतिम स्कन्ध नहीं है।

Illustration :6.1

Seema Limited is producing 20,000 units at present. Other information are as follows :

Selling price of the product	Rs. 10 per unit
Fixed operating costs	Rs. 50,000 per year
Variable operating costs	Rs. 5.00 per unit

On the basis of information's given above ascertain the degree of operating leverage (DOL) and comment on it, if the company sells (a) 10,000 Units, and (b) 40,000 Units. It may be assumed that all production is sold and there is no closing or opening stock.

Solution :

Degree of Operating Leverage

Items	Existing Situation	Assumed Situation (a)	Assumed Situation (b)

Sales in Units	20,000	10,000	40,000
Sales @ Rs. 10 per unit	2,00,000	1,00,000	4,00,000
Less : Variable Cost @ Rs. 5 per unit	1,00,000	50,000	2,00,000
Contribution	1,00,000	50,000	2,00,000
Less : Fixed Costs	50,000	50,000	50,000
Operating Profit (EBIT)	50,000	Zero	1,50,000
Percentage change in EBIT	_	(-) 100%	(+) 200%
Percentage change in Sales	_	(-) 50%	(+)100%
Degree of Operating Leverage:			
Formula= $\frac{\text{\% change in EBIT}}{\text{\% change in Sales}}$		$\frac{(-)\ 100\%}{(-)\ 50\%}$ = - 2 (Adverse)	$\frac{(+)\ 200\%}{(+)100\%}$ = 2 (Favourable)

6.7 वित्तीय उत्तोलक

वित्तीय उत्तोलन शुद्ध कार्यकारी आय [ब्याज और कर से पहली आय (EBIT)] में बदलाव के साथ अंशधारियों की आय में बदलाव को जताता है और इसे ऋण या श्रेष्ठ अंश पूंजी (Preference Share Capital) द्वारा लाया जाता है जिसे स्थाई ब्याज या लाभांश अदायगियों द्वारा लाया जा सकता है। दूसरे शब्दों में इसका व्याख्यान इस तरह भी किया जा सकता है कि पूंजी के उन स्रोतों का प्रयोग जिस पर पूंजी ढांचे में मालिक के पैसों के बाद स्थाई प्रत्याय (ऋण और श्रेष्ठ अंश पूंजी) को भी अदा किया जा सकता है। इस Equity पर व्यापार भी कहते हैं।

कम्पनी पर पड़ने वाले वित्तीय भार के आधार पर पूंजी को दो स्वरूपों में विभाजित किया जाता है:

1. स्थिर भार वाली पूंजी (Fixed Charged Capital)
2. परिवर्तनशील भार वाली पूँजी (Variable Charged Capital)

स्थिर भार वाली पूंजी के अन्तर्गत ऋण पूंजी तथा पूर्वाधिकार अंश पूंजी को सम्मिलित किया जाता है, उन पर देय ब्याज/लाभांश की दरें निश्चित होती हैं। इसके विपरीत परिवर्तनशील भार वाली पूंजी में समता अंश पूंजी मुख्य होती है। इस पूंजी पर लाभांश की दरें निश्चित नहीं होती हैं। स्थिर वित्तीय व्ययों का भुगतान करने के उपरांत शेष परिचालन लाभ समता अंशधारियों के लिए उपलब्ध होते हैं। ये स्थिर वित्तीय व्यय परिचालन (EBIT) लाभों के साथ–साथ परिवर्तित नहीं होते, चाहे ऐसे लाभों की मात्रा कितनी ही क्यों न हो, अतः परिचालन लाभों में परिवर्तन होने पर प्रति अंश (EPS) अर्जनें प्रभावित होती हैं। इस प्रभाव को वित्तीय उत्तोलक कहा जाता है।

वित्तीय उत्तोलक में समता अंशधारियों की लाभदायकता पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण किया जाता है और इस विश्लेषण के आधार पर पूंजी संरचना के स्वरूप के संबंध में निर्णय लिये जाते हैं।

वित्तीय उत्तोलक की परिभाषाएं निम्नानुसार हैं –

गिटमैन के अनुसार – "वित्तीय उत्तोलक को स्थायी वित्तीय व्ययों के उपयोग से संस्था की प्रति अंश अर्जनों पर परिचालन (EBIT) लाभों में परिवर्तन के प्रभाव को आवर्धित (Magnify) करने की योग्यता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

डॉ. आर.एम. श्रीवास्तव के अनुसार – वित्तीय उत्तोलक का आशय एक स्थिर व्यय पर प्राप्त किये गये कोषों का विनियोजन करने से है। इसलिये वित्तीय उत्तोलक को दीर्घकालीन ऋण के साथ कुल विनियोजन कोषों के अनुपात के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

निष्कर्ष के रूप में, वित्तीय उत्तोलक संस्था की पूँजी संरचना में स्थायी लागत साधनों से वित्त पूर्ति एवं परिवर्तनशील लागत साधनों से वित्त पूर्ति के अनुपात को दर्शाता है।

वित्तीय उत्तोलक की विशेषतायें (Characteristics of Financial Leverage)

1. **वित्तीय जोखिम** (Financial Risk) वित्तीय उत्तोलक एवं संस्था की वित्तीय जोखिम में प्रत्यक्ष संबंध होता है। उच्च वित्तीय उत्तोलक की स्थिति में संस्था के परिचालन लाभों में वृद्धि के परिणामस्वरूप प्रति अंश अर्जनों में तुलनात्मक रूप से अधिक वृद्धि हो जाती है एवं निम्न वित्तीय उत्तोलक की स्थिति में परिचालन लाभों में कमी के परिणामस्वरूप प्रति अंश अर्जनों में तुलनात्मक रूप से अधिक गिरावट आ जाती है।
2. **चिट्ठे के दायित्व पक्ष से सम्बन्धित** (Related with Liabilities side of the Balance Sheet) वित्तीय उत्तोलक संस्था की पूँजी संरचना में स्थायी लागत वाली पूँजी की मात्रा से प्रभावित होता है, अतः यह कहा जा सकता है कि वित्तीय उत्तोलक का सम्बन्ध संस्था के चिट्ठे के दायित्व पक्ष से है।
3. **प्रति अंश अर्जनों पर प्रभाव** (Effect on Earnings per Share) वित्तीय उत्तोलक स्थिर वित्तीय व्ययों के कारण संस्था के लाभों में होने वाले परिवर्तनों क प्रति अंश अर्जनों पर पड़ने वाले प्रभाव को स्पष्ट करता है।
4. **वित्तीय स्त्रोतों के मिश्रण का निर्धारण** (Determination of Mixture of Financial Resources) वित्तीय उत्तोलक की सहायता से संस्था के वित्तीय स्त्रोतों के मिश्रण को निर्धारित किया जा सकता है। पूंजी संरचना का निर्धारण इस प्रकार किया जाता है जिससे प्रति अंश अर्जन बढ़ सके।

वित्तीय उत्तोलक का महत्व (Importance of Financial Leverage)

1. **पूंजी ढांचे के निर्माण में सहायक** (Helpful in Capital Structuring) प्रत्येक फर्म अपने पूंजी ढांचे में ऋण व समता का मिश्रण इस प्रकार करना चाहती है कि न्यूनतम लागत पर पूंजी प्राप्त कर समता अंशधारियों की अर्जनों को अधिकतम किया जा सके। वित्तीय उत्तोलक का संबंध ऋण व समता पूंजी में उचित संतुलन से होता है, अतः फर्म पूंजी संरचना

के विभिन्न विकल्पों पर वित्तीय उत्तोलक की गणना कर लाभार्जन क्षमता का पता लगा सर्वश्रेष्ठ पूंजी ढांचे का चुनाव कर सकती है।

2. **वित्तीय जोखिम का ज्ञान** (Knowledge about Financial Risk) ऊँचे वित्तीय उत्तोलक की स्थिति में ब्याज एवं कर से पूर्व की (EBIT) अर्जनों में थोड़ी सी कमी होने पर प्रति अंश अर्जनों (EPS) में कई गुना कमी हो जाती है। अर्थात ऊँचे उत्तोलक की स्थिति में जोखिम अधिक तथा निम्न उत्तोलकों की स्थिति में जोखिम कम रहती है। यह जानकारी प्रबंधकीय निर्णयन का आधार होती है।

3. **समता पर व्यापार** (Trading on Equity) यदि भावी लाभार्जन क्षमता अनुकूल रहने की संभावना हो तो फर्म ऊँचे उत्तोलक की स्थिति में समता पर व्यापार कर, समता अंशधारियों की प्रत्याय में उल्लेखनीय वृद्धि कर सकती है। इसके विपरीत यदि भावी लाभार्जन क्षमता घटने की संभावना हो तो फर्म अपनी स्थिर वित्तीय लागतों को घटकर वित्तीय जोखिम कम कर सकती है।

4. **वित्तीय सम–विच्छेद बिन्दु की जानकारी** (Knowledge of Financial Break Even Point) वह बिन्दु जहां पर EBIT की राशि स्थिर वित्तीय व्ययों के ठीक बराबर होती है, वित्तीय सम–विच्छेद बिन्दु कहलाता है। इस बिन्दु पर EPS शून्य होती है, इस बिन्दु के पश्चात EBIT में वृद्धि होने पर EPS में आनुपातिक रूप से अधिक वृद्धि होगी क्योंकि स्थिर वित्तीय व्यय ज्यों के त्यों रहेंगे। अतः इस बिन्दु की जानकारी के आधार पर प्रबंधक वित्तीय सुरक्षा सीमा की जानकारी भी प्राप्त कर सकते हैं।

5. **अंशधारियों की आय में वृद्धि** (Increase in Shareholder's Income) अनुकूल वित्तीय उत्तोलक होने पर कम्पनी अपने अंशधारियों को अधिक लाभांश दे सकती है। परिणामतः अंशों के बाजार मूल्य में वृद्धि होगी। बाजार मूल्य में वृद्धि का संस्था की साख पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। साख में वृद्धि होने से नीची ब्याज दर पर आसानी से ऋण उपलब्ध हो जायेंगे।

6. **ऋण प्राप्तियों में सहायक** (Helpful in availability of Loans) वित्तीय उत्तोलकों के अनुकूल होने पर लाभ बढ़ने से संस्था की ऋण क्षमता में वृद्धि होती है एवं बाजार में साख बढ़ने से आसान शर्तों व कम ब्याज दर पर ऋण मिलना संभव हो जाता है।

6.7.1 वित्तीय उत्तोलक की सीमा व माप

वित्तीय उत्तोलन का प्रयोग बढ़ती कार्यकारी आय (EBIT) के जवाब में अंशधारियों की आय (EPS) में बढ़ौत्तरी लाता है। अगर फर्म को केवल सामान्य अंश पूंजी (Equity Share capital) द्वारा वित्त किया गया है तो EBIT में प्रतिशत बदलाव EPS में EBIT की तुलना में प्रतिशत बदलाव अधिक आता है।

EPS पर वित्तीय उत्तोलन के प्रभाव को बताने के लिए चलिए हम मान लेते हैं कि कम्पनी के कार्यों के लिए 5,00,000 रू0 की आवश्यकता है। कम्पनी को तीन वित्तीय विकल्प उपलब्ध है। पहली योजना में 5,00,000 रूपये को 10

रूपये के 50,000 अंशों में विभाजित किया गया है। दूसरी विधि के अनुसार 3,00,000 रूपयों को 10 रूपये के 30,000 सामान्य अंशों और 4,00,000 रूपयों को 12% 10 रूपये प्रति एक 20,000 श्रेष्ठ, अंश पूंजी में विभाजित किया गया है। तीसरी योजना ग के अनुसार 10 रूपए प्रति एक 3,000 सामान्य अंश होंगे और 2000 15% ऋण पत्र (Debentures) 100 रूपए प्रति एक होंगे। आशित आय ताकत 40% (कर और ब्याज से पहले जबकि कुल सम्पत्तियां 5,00,000 रू0 है।
वित्तीय उत्तोलन की सीमा को इस तरह परिभाषित किया जा सकता है अंशधारियों को उपलब्ध आय में प्रतिशत बदलाव जो कि EBIT में देय प्रतिशत बदलाव से सम्बन्धित होता है।
वित्तीय उत्तोलन की सीमा (Degree of financial Leverage)
= % Change in EPS/ % Change in EBIT
और DFL=EBIT/EBIT-I
जहां EBIT = ब्याज और कर से पूर्व आय
I=स्थाई ब्याज लागत

हमें पता है कि वित्तीय उत्तोलन तभी उभरता है जब फर्म अपने पूंजी ढांचे में सामान्य पूंजी और स्थाई प्रभारित प्रतिभूतियों (श्रेष्ठ अंश पूंजी और ऋण) के मिलाप का प्रयोग करती है। वित्तीय उत्तोलन के माप फर्म की कुल सम्पत्तियों उसके अंशधारियों के पैसे और स्थाई प्रभारित प्रतिभूतियों के सम्बन्ध पर आधारित है।

दो अनुपात यानि ऋण इक्वटी और ऋण, सम्पत्ति अनुपात जिनकी गणना तुलन पत्र (B/S) के आंकड़ों के आधार पर की जाती है वह वित्तीय उत्तोलन की उपस्थिति दर्शाती है। यह दोनों अनुपात आपस में सम्बन्धित है।
Debt Equity ratio (D/E) = Debt / Equity
Debt Assets ratio (D/A) =Debt/Assets
चलिए हम एक उदाहरण की मदद से वित्तीय उत्तोलन के इन दो मापों के सम्बन्ध को समझाएं। हिन्दुस्तान कंस्ट्रक्शन कम्पनी की योजना है कि वह पांच करोड़ मूल्य की सम्पत्तिया अर्जित करें। उसके पास वित्त के केवल दो स्त्रोत हैं– ऋण और Equity। ऋण के विभिन्न तलों के लिए उसका ऋण सम्पत्ति अनुपात इस प्रकार है– (1) शून्य (2) 1 करोड़ रूपये(3) 1.5 करोड़ रू0 (4) 2.5 करोड़ रू0 (5) 3 करोड़ रू0(6) 3.5करोड़ रूपये(7) 4 करोड़ रू0 (8) 4.5 करोड़ रू0 कम्पनी 100प्रतिशत ऋण पर निर्भर नहीं कर सकती क्योंकि अंशधारियों का भी ध्यान रखना है। उदाहरण 6.2 वांछित सूचना प्रदान करता है।

उदाहरण 6.2
Debt Equity & Debt Assets ratios
(सम्पत्तियों में कुल विनियोग – 5 करोड़ रू0)

Debt (ऋण) Rs. Crore	Equity Rs. Crore	Debt Equity %	Debt assests %
शून्य	5.0	शून्य	शून्य
1.0	4.0	25.00	20
1.5	3.5	42.86	30

2.0	3.0	66.67	40
2.5	2.5	100.00	50
3.0	2.0	150.00	60
3.5	1.5	233.33	70
4.0	1.0	400.00	80
4.5	0.5	900.00	90

Exhibit 6.6 Debt Equity अनुपात और Debt Assets अनुपात में यह सम्बन्ध दर्शाती है–

1. जब ऋण शून्य होता है तो Debt Equity अनुपात और Debt-Assets अनुपात दोनों शून्य होते है।

Debt-Assets अनुपात ऋण के मूल्य में बढौतरी और Equity के मूल्य में कमी के अनुपात में सामान्य दर से बढ़ता है। दूसरी तरफ Debt-Equity अनुपात exponentially बढ़ती है।

उदाहरण 6.3

एक कम्पनी निम्न वित्तीय योजनाओं में से किसी एक को चुनने का विकल्प रखती है। आप प्रत्येक स्थिति में वित्तीय उत्तोलक की गणना कीजिये।

Illustration 6.3:

A company has a choice of the following three financial plans. You are required to calculate the financial leverage in each case:

	Financial Plan (Rs.)		
	A	B	C
Equity Capital	40,000	20,000	60,000
Debt	40,000	60,000	20,000
Operating Profit (EBIT)	8,000	8,000	8,000

Interest @ 10% on debts in all cases

Solution :

Computation of the Financial Leverage

	Financial Plan (Rs.)		
	A	B	C
Operating Profit (OP or EBIT)	8,000	8,000	8,000
Less: Interest (10% on debt)	4,000	6,000	2,000
Earnings Before Tax (EBT)	4,000	2,000	6,000
Financial Leverage $= \left(\frac{EBIT}{EBT}\right)$	$\frac{8,000}{4,000} = 2$	$\frac{8,000}{2,000} = 4$	$\frac{8,000}{6,000} = 1.33$

6.8 सयुंक्त उत्तोलक

परिचालन उत्तोलक स्थायी परिचालन लागतों से संबंधित होता है, जबकि वित्तीय उत्तोलक स्थायी वित्तीय लागतों के आधार पर ज्ञात किया जाता है। चूँकि दोनों ही उत्तोलक स्थायी लागतों को वसूल करने की योग्यता से संबंधित होते हैं।

अतः सभी स्थायी लागतों का प्रभाव जानने हेतु दोनों उत्तोलकों को मिलाकर संयुक्त उत्तोलक की गणना की जाती है।

कार्यकारी और वित्तीय स्थाई लागत दोनों की उपस्थिति के कारण सह उत्तोलन सम्पूर्ण उत्तोलन का माप है। सह उत्तोलन की सीमा तोलन का माप है। सह उत्त्तोलन की सीमा (DCL) EPS में प्रतिशत बदलाव और बिक्री में प्रतिशत बदलाव के बीच सम्बन्ध दर्शाता है।

DCL=%change in EPS/% change in sale

जो कि इसके बराबर है

DCL=Q(P-V)/ Q(P-V)-F-I

जहां

Q= बेची गई इकाईया ं(No. of units sold)

P= प्रति इकाई बिक्री मूल्यं (Selling price per unit)

V= प्रति इकाई अस्थाई लागत (Variable cost per Unit)

F= स्थाई कार्यकारी लागत(Fixed operating cost)

I= स्थाई प्रभारित ब्याज(Fixed interest charges)

कार्यकारी उत्त्तोलन, वित्तीय उत्त्तोलन और सह उत्त्तोलन की सीमा में कार्यकारी (Functinoal) सम्बन्ध है। कार्यकारी उत्त्तोलन और वित्तीय उत्त्तोलन की गुणा करो तो सह उत्त्तोलन मिलता है।

DCL=DOL x DFL

समाविष्ट उदाहरण (Comprehensive Illustration)

उदाहरण 1

निम्न सूचना से वर्ष 1992 के कार्यकारी उत्त्तोलन की सीमा को ज्ञात कीजिए।

EBIT(1991)- 60,000 Rs.

EBIT(1992)-70,000 Rs.

Sales(1991)- 1,50,000 इकाईयां

बिक्री (1992)- 1,80,000 इकाईयां

उत्तर (Solution)

कार्यकारी उत्त्तोलन की सीमा (Degree of operating leverage)

% Change in EBIT / %Change in sales=

(70,000-60,000)/60,000 / (1,80,000-1,50,000) /1,50,000

=0.83

उदाहरण 2

कम्पनी का पुंजी ढांचा निम्न प्रकार से है

अंश पूंजी 2,00,000 रू0

10 प्रतिशत श्रेष्ठ अंश पूंजी – 2,0,000 रू0

वर्तमान EBIT 10,00,000 रू0 है। कम्पनी का वित्तीय उत्तोलन यह मान कर ज्ञात कीजिए कि वह 50 प्रतिशत की कर बरैक्ट में है।

उत्तर (Solution)

कार्यकारी लाभ		1,00,000 रू0
कम ऋण पत्रों पर ब्याज	20,000 रू	

प्रस्तावित लाभांश (कर से पूर्व के आधार पर)	40,000 रू0	60,000 रू0
कर से पहले लाभ		40,000 रू0

वित्तीय उत्तोलन =EBIT/EBT= 1,00,000/40,000=2.5

* कर के पूर्व के आधार पर प्रस्तावित लाभांश की गणना इस प्रकार की गई है–

श्रेष्ठ अंशों पर लाभांश (कर से पूर्व के आधार पर)	
2,00,000 पर 10 प्रतिशत	20,000 रू0
कर दर	50%
श्रेष्ठ अंशों पर लाभांश (कर से पूर्व के आधार पर)	20,000 रू0
	=40,000 रू0

6.9 उत्तोलकों की उपयोगिता

उत्तोलकों का विश्लेषण विनियोग एवं वित्त पूर्ति निर्णयों में सहायक होता है। दोनों ह उत्तोलकों के उच्च होने पर व्यावसायिक जोखिम में वृद्धि होता है, इसके विपरीत दोनों के निम्न होने पर समता पर व्यापार का लाभ नहीं मिल पाता है।

अतः समता अंशधारियों की प्रत्याय को अधिकतम करने हेतु निम्न परिचालन उत्तोलक व उच्च वित्तीय उत्तोलक के मिश्रण का उपयोग करना चाहिए। परिचालन उत्तोलक के नीचा होने पर स्थायी परिचालन लागतों की शीघ्र वसूली होने से स्थिर वित्तीय लागतों का भुगतान करने के लिए पर्याप्त लाभ शेष रहेंगे। ऐसे में उच्च वित्तीय उत्तोलक का प्रयोग किया जा सकता है तथा ब्याज का भुगतान बचे हुए लाभों में से किया जा सकता है। अब यदि विक्रय में वृद्धि का प्रयास किया जाये तो अंशधारियों की अर्जनों में आनुपातिक रूप से अधिक वृद्धि होगी। अतः अनुकूलतम जोखिम पर अंशधारियों की प्रत्याय को अधिकतम करने के लिए निम्न परिचालन उत्तोलक तथा उच्च वित्तीय उत्तोलक का उपयोग करना चाहिए।

6.10 सारांश

पूंजी की लागत महत्वपूर्ण वित्तीय विचार है। यह बाजार में निश्चित अंशधारियों के धन और कम्पनी के लम्बी अवधि के वित्तीय निर्णयों को आपस में जोड़ता है। पूंजी की लागत का विचार पूंजी इकट्ठे करने के उचित निर्णय लेने में सहायक होता है। पूंजी की लागत को हम इस तरह से परिभाषित कर सकते हैं कि वह धन वापसी का कम से कम अंश जो हमें अंश का मूल्य वही रखने के लिए बाजार में अर्जित करना होगा। सभी व्यवस्यायिक फर्म अपना कार्य इस प्रकार से करती है कि उनके लाभ बढ़ें और लाभ का मूल्य नीचे की पंक्ति या कर के बाद तक लाभ पंक्ति तक पहुंच जाएं। वित्तीय प्रबन्ध में उत्तोलन का अर्थ स्थाई सम्पत्तियों में इस प्रकार से विनियोग करना और वित्तीय मिक्स तो इस तरह रखना होता है ताकि स्थाई लागत रहे। वित्तीय उत्तोलन का प्रयोग बढ़ती कार्यकारी आय (EBIT) के जवाब में अंशधारियों की आय (EPS) में बढ़ौत्तरी लाता है।

6.11 शब्दावली

पूँजी की लागत (Cost of Capital) : पूँजी के प्रयोग के बदले में चुकायी गयी लागत पूँजी की लागत कहलाती है।

सीमान्त पूँजी की लागत (Cost of Marginal Capital) : अतिरिक्त पूँजी के प्रयोग के बदले अतिरिक्त चुकाई लागत।

ऋण पूँजी की लागत (Cost of Debt Capital): ऋण के प्रयोग के बदले चुकाई जाने वाली कीमत।

अधिमान अंश की लागत (Cost of Preference Share): जो अधिमान अंशधारियों को लाभंश के रूप में चुकायी जाती है।

समता अंश की लागत (Cost of Equity Share): जो समता अंशधारियों को लाभांश के रूप में चुकायी जाती है।

प्रतिधारित अर्जनों की लागत (Cost of Retained Earnings) : वह अवसर लागत जिसकी अंशधारी अपेक्षा करता है।

पूँजी की भारित लागत (Weighted Cost of Capital) : पूँजी के विभिन्न स्त्रोतों की उनके अनुपातानुसार भारांकित लागतों का औसत।

उत्तोलक (Leverage) – यांत्रिक अर्थ में उत्तोलक का अभिप्राय उस तकनीक से है जिसमें कम शक्ति में अधिक भार उठाया जा सके। वित्तीय प्रबंध के क्षेत्र में उत्तोलक का अभिप्रायः ऐसी सम्पत्तियाँ एवं कोष के प्रयोग से जिसके लिए संस्था स्थायी लागत चुकाती है।

परिचालन उत्तोलक (Operating Leverage)–यह उत्तोलक स्थायी लागतों के उपयोग के परिणामस्वरूप विक्रय मात्रा में परिवर्तन की तुलना में लाभों में परिवर्तन की स्थिति की व्याख्या करता है।

वित्तीय उत्तोलक (Financial Leverage)– वित्तीय उत्तोलक स्थायी वित्तीय व्ययों के उपयोग से संस्था को प्रति अंश अर्जनों पर परिचालन लाभों में परिवर्तन के प्रभाव की व्याख्या करता है।

संयुक्त उत्तोलक (Combined Leverage) – परिचालन एवं वित्तीय उत्तोलकों को मिलाकर सभी स्थायी लागतों पर प्रभाव की व्याख्या करता है।

6.12 बोध प्रश्न

1. .... को हम इस तरह से परिभाषित कर सकते हैं कि वह धन वापसी का कम से कम अंश जो हमें अंश का मूल्य वही रखने के लिए बाजार में अर्जित करना होगा।
2. प्रत्येक स्त्रोत के स्वामी अपने विनियोजन पर एक निश्चित .... पाने की अपेक्षा रखते हैं।
3. पूँजी की लागत एक ऐसी .... प्रत्याय दर है जो संस्था को अपने विनियोगों से अर्जित करनी चाहिये ताकि प्राप्त कोषों की लागत का भुगतान किया जा सके।
4. .... लागत से आशय किसी संस्था द्वारा किसी परियोजना में विनियोजित कोषों के लिए भूतकाल में चुकाई गई लागत से है।
5. परिवर्तनशील लागतों से आशय उन लागतों से है जो विक्रय या उत्पादन के अनुपात में .... होती है।
6. .... उत्तोलन शुद्ध कार्यकारी आय [ब्याज और कर से पहली आय (EBIT)] में बदलाव के साथ अंशधारियों की आय में बदलाव को बताता है।

6.13 बोध प्रश्न के उत्तर

1. पूंजी की लागत, 2. प्रतिफल, 3. न्यूनतम, 4. ऐतिहासिक, 5. परिवर्तित, 6. वित्तीय

6.14 स्वपरख प्रश्न

1. पूंजी की लागत को निश्चित करने में आने वाली समस्याओं का वर्णन करे। पूंजी बजटन निर्णय में पूंजी की लागत का क्या कार्य है?
(Explain the problems faced in determining the cost of capital. How is the cost of capital relevant in capital budgeting decisions?)
2. समता पूंजी की लागत गणना की सभी पहुंचों की आलोचनात्मक जांच करें।
(Examine critically the different approaches to the calculation of cost of equity capital.)
3. पूंजी की भारित औसत लागत की गणना किस प्रकार की जाती है? इस गणना में परम्परागत बनाम सीमांत भारों की अपनी महत्ता की चर्चा करो।
(How is the weighted cost of capital calculated? Discuss the relative importance of historical vs. marginal weights in such computation.)
4. वित्तीय प्रबन्धक को हर वित्तीय योजना के मूल्यांकन के लिए वित्तीय उत्तोलन की सीमा को ध्यान में रखना क्यों आवश्यक है? वित्तीय उत्तोलन कब अनुकूल होता है।
Why must the financial manager keep in mind the firm’s degree of financial leverage in evaluating various financial plans? When does financial leverage become favourable?
5. एक वित्तीय अधिकारी के लिए लाभ और वित्तीय ढांचे योजना के लिए कार्यकारी और वित्तीय उत्तोलन विश्लेषण का क्या महत्व है।
Explan the significance of operating and financial leverage analysis for a financial executive in corporate profit and financial structure planning.
6. वित्तीय उत्तोलन की सीमा की गणना किस तरह की जाती है। वित्तीय उत्तोलन के स्वभाव की कार्यकारी उत्तोलन के स्वभाव से तुलना करों?
How is the degree of financial leverage measure? Compare the nature of financial leverage with operating leverage.
7. वित्तीय उत्तोलन क्या है? यह कार्यकारी उत्तोलन से किस प्रकार भिन्न है।।
What is leverage ? How does it differ from operating leverage?
8. पूँजी की लागत से आप क्या समझते हैं?
9. विभिन्न प्रकार की पूँजी की लागत का निर्धारण कैसे किया जाता है? उदाहरण सहित समझाइये।
10. वित्तीय प्रबंध में पूँजी की लागत अवधारणा का क्या महत्त्व है?
11. पूँजी की भारांकित औसत लागत से आप क्या समझते हैं? इसका निर्धारण किस प्रकार होता है?

12. प्रतिधारित आय क्या है? क्या यह लागत रहित पूँजी होती है? समझाइये।
13. उत्तोलक क्या है?
14. परिचालन उत्तोलक से आप क्या समझते हैं?
15. परिचालन उत्तोलक की मात्रा से आपका क्या आशय है? वित्तीय उत्तोलक क्या है? सूत्र दीजिये।
16. वित्तीय उत्तोलक की मात्रा से क्या आशय है? सूत्र दीजिये। परिचालन एवं वित्तीय उत्तोलक से क्या अंतर है?
17. संयुक्त उत्तोलक क्या है?
18. ऐक्सल इण्डस्टरी लिमिटेड के पास 16,00,000 की सम्पत्तियां है जिन्हे 52,000 के ऋण, 90,00,000 रूपये की अंश पूंजी और 18,000रू के सामान्य कोष द्वारा वित किया गया है।

    31.3.18 को खत्म हुए वर्ष को कम्पनी के ब्याज और कर के बाद शुद्ध लाभ 13,500 रू थे। यह उधार लिए फण्ड पर ब्याज देती है और 50 प्रतिशत की कर दर में है। इसके पास 100 रू प्रति एक के 900 अंश है जो 120 रू प्रति अंश को हिसाब से बिक रहे है। पूंजी की Weighted औसत लागत क्या होगी?

    (Excel Industries has assets of Rs. 1,60,000 which have been financed with Rs. 52,000 of debt, Rs. 90,000 equity and genral reserve of Rs. 18,000. The firms total profits after interest and taxes were 13,500 on year ending on dated 31.3.18 It offers interest on borrowed funds and is in 50% tax bracket. It has 900 equity shares of Rs. 100 each selling at Rs. 120 per share. What is weighted average cost of capital?

    Ans. (kd=4%, ke=12.5% , Ko=9.74%)
19. ज़ेवियर कार्पेरेशन एक मज़बूत वृद्धि फर्म है जो कि कोई लाभांश नहीं देती और यह जानती है कि भाविष्य में लम्बी अवधि के लिए 7 रू प्रति अंश लाभांश दे सकती है। ज़ेवियर के अंश का चालू मूल्य 55.45 रू है। अंश की बिक्री को जारी करने की लागत अंश के मूल्य पर औसतन 10 प्रतिशत होगी। ज़ेवियर की नई अंश पूंजी की लागत क्या होगी?

    (The Xavier corporation, a dynamic firm which pays no dividends anticipates a long run level of future earning of Rs.7 per share. The current price of Xavier's share is Rs. 55.45, floatation costs for the sales of equity share would average about 10% of the price of shares which is cost of new equity capital of Xavier.)
20. फर्म के 10 वर्ष के 15प्रतिशत ऋण पत्र 90रू के मूल्य पर बिकते है। हर ऋण पत्र का वास्तविक मूल्य 100रू है और कर दर 50 प्रतिशत । आपको ऋण पूंजी की लागत की गणना करनी है।

    (Ten year 15% debentures of a firm are sold at a rate of Rs. 90 The face value of each debenture is Rs. 100 and rate of tax is 50%. You are required to compute the cost of debt capital. (Ans. 8.42%)
21. एक कम्पनी की बिक्री 7,00,000 रू., परिवर्तनशील लागतें बिक्री का :60 तथा स्थायी व्यय 2,00,000 रू. हो तो परिचालन उत्तोलक कितना होगा?

22. एक फैक्ट्री की स्थापित क्षमता 12,000 इकाइयाँ प्रति वर्ष है। वास्तविक प्रयोगिता क्षमता 8,000 इकाइयाँ वार्षिक है। प्रति इाकई विक्रय मूल्य 10 रूपये तथा परिवर्तनशील लागत 6 रूपये इकाई है। निम्न तीन स्थितियों में प्रत्येक स्थिति में परिचालन उत्तोलक की गणना कीजिये एवं व्याख्या कीजियेः

i. जब स्थायी लागत 8,000 रूपये वार्षिक हो।

ii. जब स्थायी लागत 20,000 रूपये वार्षिक हो।

iii. जब स्थायी लागत 24,000 रूपये वार्षिक हो।

22. फर्म की 1000000 रू की बिक्री है, अस्थाई लागत 700000 रू स्थाई लागत 200000 रू और 10 प्रतिशत के ब्याज दा पर ऋण 500000 रू है। कार्यकारी, वित्तीय और सह उत्तोलन क्या होगें।? अगर फर्म EBIT को दो गुणा करना चाहती है तो प्रतिशत आधार पर बिक्री में कितनी बढ़त चाहिए।

A firm has sales of Rs. 1000000 variable cost of Rs. 700000 and fixed cost of Rs. 200000 and debt of Rs. 5700000 at 10% rate of interest what are the operating, financial and combined leverages? If the firm wants to double earning Before Interest and Tax (EBIT), how much of the rise in sales would he needed in a percentage basis.

(Dol=3, DFL=2,DCL=6, 33.33% rise in sales needed to double EBIT)

23. ऐक्स कापोरेशन लिमेटेड ने यह अनुमान लगाया है कि अगर 14 रू0 प्रति इकाई के हिसाब से बिक्री की जाती है तो BEP 2000 इकाईयां पर होगा। लागत लेखा विभाग ने चालू अस्थाई लागत 9 रू0 बताई है। 2500 इकाईयां और 3000 इकाईयों की बिक्री पर कार्यकारी उत्तोलन ज्ञात कीजिए। दोनों बिक्रीयों पर उत्तोलनों से आप क्या समझते हैं और दोनों में अन्तर क्या है।

(X Corporation has estimated that for a new produce its break even point is 2000 units, if the item is sold for Rs. 14 per unit. The cost accounting department has currenty identified the variable cost of Rs. 9 per unit. Calculate the degree of operating leverage for sales volume of 2500 units and 300 units. What do you infer from the degree of operating leverage at the sales volume of 2500 units and 3000 units and their difference if any).

(Ans. DOL 5 and 3 at 2500 and 3000 units respectively in sales. At 3000 units operating income varies 3 times the variation in sales.)

6.15 सन्दर्भ पुस्तकें

1. ए के वशिष्ट, एन के साहनी, तमन्ना सहगल, वित्तीय प्रबन्ध, कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना ।

2. “Financial Management”- M.Y. Khan & P.K. Jain, Tata Mc Graw Hill.

3. "वित्तीय बाजारों की कार्यप्रणाली"– प्रो0 वी0 पी0 अग्रवाल– साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
4. "निगमीय लेखांकन"– सी0 एम0 जैन एवं ए0 के0 अग्रवाल– g Master g Educorp, मेरठ।
5. "प्रबन्ध हेतु वित्तीय विश्लेषण"– डॉ0 ए0 के गर्ग– स्वाती प्रकाशन, बुलन्दशहर।
6. "निगमीय लेखाविधि"– डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 राजकुमार– नवनीत प्रकाशन, नजीबाबाद।
7. उच्च वित्तीय प्रबन्ध : डा0 एस0पी0 गुप्ता व डा0 बी0 कुमार मिततल ।
8. Shrivastava R.M. : Financial Decision Making Text, Problems and Cases
9. Arif Pasha : Management Accounting
10. Arora M.N. : Cost and Management Accounting
11. Ravi M. Kishore : Advance Management Accounting
12. Prasanna Chandra : Financial Management
13. Sahaf M.A. : Management Accounting : Principle's and Practices.

इकाई–7 कार्यशील पूँजी का प्रबन्धन : एक सिहावलोकन (Working Capital Management : An Overview)

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 कार्यशील पूँजी

7.2.1 आशय व परिभाषा

7.2.2 संचालन चक्र की अवधारणा

7.2.3 कार्यशील पूँजी का प्रबन्ध

7.2.4 कार्यशील पूँजी की अपर्याप्तता के विपरीत परिणाम

7.2.5 कार्यशील पूँजी की अधिकता से हानि

7.3 कार्यशील पूँजी की आवश्यकता के निर्धारण करने वाले कारक

7.4 कार्यशील पूँजी के पूर्वानुमान की तकनीकियॉ

7.5 उदाहरण

7.5.1 संचालन चक्र रीति

7.5.2 चालू सम्पत्तियो एवं चालू दायित्वों की पूर्वानुमान रीति

7.5.3 रोकड़ पूर्वानुमान रीति

7.5.4 प्रक्षेपी आर्थिक–चिट्ठा रीति

7.5.5 लाभ–हानि समायोजन रीति

7.6 सारांश

7.7 शब्दावली

7.8 बोध प्रश्न

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.10 स्वपरख प्रश्न

7.11 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- कार्यशील पूँजी का आशय, परिभाषा व मात्रा से अवगत हो सकें।
- कार्यशील पूँजी की आवश्यकता के निर्धारण करने वाले कारक बता सकें ।
- कार्यशील पूँजी के पूर्वानुमान की तकनीकियॉ बता सकें।
- कार्यशील पूँजी को उदाहरण द्वारा स्पष्ट कर सकें।

7.1 प्रस्तावना

प्रत्येक व्यावसायिक संस्था को दो प्रकार की पूँजी की आवश्यकता होती है– स्थिर पूँजी व कार्यशील। व्यवसाय के संचालन में स्थायी रूप में प्रयोग हेतु कुछ सम्पत्तियों की आवश्यकता पड़ती है, जिन्हें स्थायी सम्पत्ति कहते हैं और इनमें लगायी गयी पूँजी स्थायी या स्थिर पूँजी कहलाती है। इसके विपरीत, व्यवसाय के संचालन सम्बन्धी दिन प्रतिदिन की आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु भी सम्पत्तियों की जरूरत पड़ती है, जिन्हें चल सम्पत्ति कहते हैं और इनमें लगायी गयी पूँजी को चालू पूँजी या कार्यशील पूँजी कहते हैं।

7.2 कार्यशील पूँजी

7.2.1 आशय व परिभाषा

परिभाषा – व्यापक दृष्टिकोण के आधार पर –

वानाविले व डेवे (Bonnevilley and Dewey) ने कहा है कि किसी भी फण्ड की प्राप्ति को, जो चालू सम्पत्ति को बढ़ाता है, कार्यशील पूॅजी की संज्ञा दी जा सकती है।

संकीर्ण दृष्टिकोण के आधार पर –

संकीर्ण दृष्टिकोण के आधार पर चल सम्पत्तियों में से चल दायित्वों को घटाने के बाद जो शेष बचता है, उसे ही कार्यशील पूॅजी माना जा सकता है।

सूत्र रूप में –

Working Capital = Current Assets - Current Liabilities

किसी भी संस्था की 'कार्यशील पूॅजी' सामान्यतः कच्चे माल के स्कन्ध में, अंशतः तैयार माल के स्कन्ध में, प्राप्त खातों में, विक्रय योग्य प्रतिभूतियों में और रोकड़ में विनियोजित होती है। इन सभी रूपों में लगायी गयी पूॅजी सतत रूप में नकद रोकड़ में परिवर्तित होती रहती है और यह रोकड़ पुनः कार्यशील पूॅजी के अन्य प्रारूपों के बदले में बाहर चली जाती है। इस प्रकार यह सतत रूप में चक्र काटता रहता है। रोकड़ या रोकड़ तुल्य सभी सम्पत्तियों के कुल मूल्य को कार्यशील पूॅजी का माप नहीं माना जा सकता है। चिट्ठे के दूसरी तरफ दायित्वों का एक समूह होता है जिसमें मुख्य रूप से अधिविकर्ष, लेनदार, देय बिल व अन्य अल्पकालीन दायित्व होते हैं, जो इन सम्पत्तियों के मूल्यों में से अवश्य घटाये जाने चाहिए, ताकि शुद्ध कार्यशील पूॅजी निर्धारित की जा सके। यदि ऐसा नहीं किया जाय, तो संस्था अपने आप को कार्यशील पूॅजी से पूर्ण सुरक्षित नहीं समझ सकती है, जबकि वास्तविकता यह हो सकती है कि संस्था के पास कार्यशील पूॅजी थोड़ी है या बिल्कुल नहीं है। इसलिए कार्यशील पूॅजी को चालू सम्पत्ति का चालू दायित्व पर आधिक्य के रूप में ही परिभाषित करना यथोचित होगा।

7.2.2 **संचालन चक्र की अवधारणा** (Operating Cycle Concept)

कार्यशील पूॅजी की अवधारणा बहुत कुछ संचालन चक्र से जुड़ी है। इनवेन्ट्री मदों (कच्चा माल या अर्द्ध–तैयार माल) के क्रय और फिर रोकड़ में उनके परिवर्तन के बीच का समय संचालन चक्र कहलाता है। संचालन चक्र का ही दूसरा नाम रोकड़ चक्र है। एकाउन्टिंग रिसर्च बुलेटिन संख्या 43 के अनुसार ''कच्चा माल या सेवा अधिग्रहण व प्रक्रिया में प्रवेश से और अन्तिम रोकड़ वसूली के बीच का औसत समय संचालन चक्र कहलाता है।'' एक निर्माणी फर्म की दशा में निम्न घटना क्रम को पूरा करने के लिए आवश्यक समय–सीमा संचालन चक्र कहलाता है :

(i) कच्चे माल के रूप में रोकड़ परिवर्तन (क्रय)

(ii) चालू कार्य में कच्चे माल का परिवर्तन

(iii) तैयार माल के रूप में चालू–कार्य का परिवर्तन

(iv) देनदारों के रूप में तैयार माल का परिवर्तन (बिक्री उधार)

(v) रोकड़ के रूप में देनदारों का परिवर्तन (वसूली)

7.2.3 **कार्यशील पूॅजी का प्रबन्ध** (Management of Working Capital)

व्यवसाय के अन्तर्गत कार्यशील पूँजी की एक पर्याप्त मात्रा अपरिहार्य होती है। व्यवसाय की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए कार्यशील पूँजी की मात्रा न तो उससे अधिक होनी चाहिए और न उससे कम। दोनों स्थितियॉ व्यवसाय के लिए हानिकारक सिद्ध होती है, परन्तु कार्यशील पूँजी की मात्रा निर्धारित करने के साथ–ही–साथ हमें यह भी ध्यान में रखना पड़ेगा, कि विभिन्न चल सम्पत्तियों में विनियोग का अनुकूलतम स्तर क्या हो और उस विनियोग हेतु अल्पकालीन व दीर्घकालीन दायित्वों के बीच अनुकूलतम मिश्रण क्या हो। अन्य शब्दों में, हमें यह निर्धारित करना पड़ता है कि चल सम्पत्तियों एवं चल दायित्वों का मात्रा स्तर क्या होना चाहिए क्योंकि इसी से कार्यशील पूँजी का मात्रा का स्तर निश्चित होता है। इस प्रकार के निर्धारण में संस्था की तरलता और ऋणों की अदायगी के सम्बन्ध में मूलभूत निर्णय शामिल होते हैं। अन्य शब्दों में, हमें यह देखना पड़ता है कि संस्था की तरलता की आवश्यकता क्या है और विभिन्न चल दायित्वों का भुगतान कब और किस अन्तराल पर करना है। संस्था के पास जितनी चल सम्पत्तियॉ हैं, उन्हें किस दर से या किस सीमा तक नकद में परिवर्तित कर सकते हैं, यह इस बात पर निर्भर करेगा, कि नकद व बिक्री योग्य प्रतिभूतियों का प्रबन्ध कैसे किया जा रहा है, संस्था की साख नीति एवं विधि क्या है, स्कन्ध का प्रबन्ध व नियन्त्रण किस प्रकार हो रहा है और स्थायी सम्पत्तियों का प्रबन्ध कैसा है।

यदि संस्था द्वारा स्थायी सम्पत्तियों का प्रबन्ध प्रभावशाली है, स्कन्ध पर नियमित नियन्त्रण हो रहा है और साख नीति व विधि वैज्ञानिक है, तो यह कहा जा सकता है कि तरल सम्पत्तियों में जितना ही अनुपात कम होगा, संस्था के कुल विनियोग पर प्रत्याय की मात्रा अधिक होगी।

दूसरी तरफ, चल सम्पत्तियों के द्वारा अर्थ–प्रबन्धन करने पर लागत की मात्रा दीर्घकालीन फण्ड की लागत से कम होती है। अतः लाभदायकता के दृष्टिकोण से संस्था के कुल ऋणों में चल दायित्वों का अंश या मात्रा अधिक होनी चाहिए। यही नहीं, अल्पकालीन फण्ड के प्रयोग से संस्था को अधिक लाभ मिल सकता है, क्योंकि ऋण का उस समय भुगतान किया जा सकता है जब व्यवसाय में उसकी आवश्यकता न हो।

लाभदायकता की मान्यता के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि कुल सम्पत्तियों में चल सम्पत्तियों का हिस्सा कम होना चाहिए और कुल दायित्वों में चल दायित्वों का हिस्सा अधिक होना चाहिए? परन्तु इस सिद्धान्त का पालन करने पर कार्यशील पूँजी की मात्रा न केवल निम्न होगी, बल्कि नकारात्मक भी हो सकती है। अन्य शब्दों में, इस सिद्धान्त के पालन में संस्था के सामने जोखिम उपस्थित हो सकती है। इस सन्दर्भ में जोखिम का अर्थ तकनीकी अशोधन क्षमता से है। कानूनी अर्थ में, अशोधन क्षमता उस समय उदित होती है, जब सम्पत्तियॉ दायित्व से कम हों। तकनीकी अर्थ में, अशोधन क्षमता का अर्थ उस स्थिति से है, जब संस्था अपने चल दायित्वों को पूरा करने में असमर्थ हो। जोखिम का मूल्यांकन तभी सम्भव हो सकता है, जब हम संस्था की तरलता का विश्लेषण करें। तरलता से आशय सम्पत्तियों को तुरन्त नकद रूप में परिवर्तित करने की योग्यता से है। इस प्रकार यदि हम चल सम्पत्तियों का हिस्सा कम रखना चाहें, तो यह आवश्यक हो जाता है कि सम्पत्तियों में तरलता की मात्रा अधिक हो, तभी जोखिम

की हानि से बचा जा सकता है। वस्तुतः कार्यशील पूॅजी की मात्रा निर्धारित करते समय इन सभी पहलुओं पर एकग्रित दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता पड़ती ळें

7.2.4 **कार्यशील पूॅजी की अपर्याप्तता के विपरीत परिणाम** (Adverse Consequences of Inadequate Working Capital)

1. कार्यशील पूॅजी की अपर्याप्तता से विकास अवरूद्ध हो सकता है, फण्ड की उपलब्धता न होने से लाभदायक परियोजनाओं को हाथ में लेना कठिन कार्य हो जाता है।
2. संचालनात्मक योजनाओं का क्रियान्वयन जटिल हो जाता है और फलस्वरूप फर्म का लक्ष्य (लाभ) प्राप्त नहीं किया जा सकता।
3. दिन–प्रतिदिन के वायदों को पूरा करने में कठिनाइयों के कारण, संचालनात्मक अक्षमता व अकुशलता पैदा हो सकती है।
4. कार्यशील पूॅजी की कमी के कारण स्थायी सम्पत्तियों का क्षमतापूर्वक प्रयोग नहीं हो सकता है और इस प्रकार विनियोगों पर प्रत्याय की दर नीचे की ओर गिर सकती है।
5. कार्यशील पूॅजी में कमी के कारण आकर्षक साख अवसरों को प्रायः खोना पड़ता है।
6. जब फर्म अल्पकालीन दायित्वों को पूरा करने में असमर्थ हो, तो वह अपनी ख्याति/प्रसिद्धि को भी खो देती है। फलस्वरूप फर्म को कड़ी उधार शर्तो का सामना करना पड़ता है।

7.2.5 **कार्यशील पूॅजी की अधिकता से खतरा/हानि** (Dangers of Excessive Working Capital)

1. कार्यशील पूॅजी की अधिकता अनावश्यक रूप से स्टॉक का संचय, स्टाक का दोषपूर्ण व गलत ढ़ंग से उठाना–रखना, क्षय, चोरी, आदि को प्रोत्साहित करता है।
2. कार्यशील पूॅजी की अधिकता से दोषपूर्ण साख नीति और देनदारों से वसूली में ढिलाई को भी प्रोत्साहित करता है जिसके कारण अशोध्य ऋण का भार बढ़ने लगता है और इसका प्रभाव लाभ पर पड़ता है।
3. कार्यशील पूॅजी की अधिकता प्रबन्ध को ऐसा सन्तोष प्रदान कर सकती है कि अब उसे कुछ करना ही नहीं है, फलस्वरूप प्रबन्धकीय अक्षमता पैदा होने लगती है।
4. कार्यशील पूॅजी की अधिकता सट्टे के लाभ को कमाने के लिए स्टाक संचय की प्रवृत्ति को उत्साहित कर सकती है, जिससे उदार लाभांश नीति अपनानी पड़ती है और जब सट्टे का लाभ नहीं होता है, तो इस उदार लाभांश नीति को बनाये रखने में कठिनाइयॉ आने लगती हैं।

उक्त विवेचना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि एक प्रबुद्ध वित्तीय प्रबन्धक को हमेशा कार्यशील पूॅजी की एक सही रकम/प्रमाप रकम सतत रूप से बनाये रखनी चाहिए।

7.3 कार्यशील पूॅजी की आवश्यकता के निर्धारण करने वाले कारक (Factors Determining of Working Capital Requirements)

किसी व्यावसायिक संस्था के सफल संचालन हेतु आवश्यक कार्यशील पूॅजी का निर्धारण अपने आप में एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। वास्तविक कार्यशील पूॅजी

की स्थिति का विश्लेषण भी अर्थहीन हो जाता है, यदि हम संस्था की आवश्यक कार्यशील पूॅजी का अनुमान न लगाते हों। आवश्यक कार्यशील पूॅजी का निर्धारण सम्बन्धी समस्या का समाधान तभी हो सकता है, जब हम यह पता लगा लें, कि कार्यशील पूॅजी की मात्रा किन–किन कारणों से प्रभावित होती है। कभी–कभी कार्यशील पूॅजी की अवधारणा को चालू सम्पत्तियों से सम्बन्धित किया जाता है और इस प्रकार की राय रखने वाले विशेषज्ञों की यह मान्यता है, कि संस्था की चालू सम्पत्तियों की आवश्यकता ही कार्यशील पूॅजी की आवश्यकता मानी जानी चाहिए। अन्य शब्दों में, कार्यशील पूॅजी की मात्रा इच्छित सम्पत्तियों की मात्रा के बराबर होगी, परन्तु संस्था के अन्तर्गत प्रयुक्त स्थायी सम्पत्तियों की प्रकृति व सम्भाग पर्याप्त सीमा तक चालू सम्पत्तियों की मात्रा को प्रभावित करता है। अतः कार्यशील पूॅजी की मात्रा स्थायी सम्पत्तियों से भी प्रभावित होती है। किसी भी व्यावसायिक संस्था के लिए आवश्यक कार्यशील पूॅजी की मात्रा निम्न कारकों से प्रभावित होती है और यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि कार्यशील पूॅजी का अनुमान लगाते समय इन कारकों को ध्यान में रखा जाएः

1. **व्यवसाय की प्रकति** (Nature of Business)–

कार्यशील पूॅजी की मात्रा को प्रभावित करने वाला यह एक महत्वपूर्ण कारक है। व्यवसाय की प्रकृति के अनुसार कार्यशील पूॅजी की आवश्यकता भिन्न–भिन्न मात्रा में होती है। कुछ व्यवसाय ऐसे होते हैं, जहॉ पर कार्यशील पूॅजी की आवश्यकता उतनी अधिक नहीं होती है, जितनी कि स्थायी पूॅजी की। इन्जीनियरिंग व तेल उद्योग इसका उदाहरण है। कुछ व्यवसाय इस प्रकार के होते हैं जहॉ पर स्थायी पूॅजी की तुलना में कार्यशील पूॅजी की आवश्यकता अधिक होती है, जैसे– बैंकिंग उद्योग या व्यापार करने वाली संस्था में।

2. **निर्माण अवधि की लम्बाई व उत्पादन–बिक्री का अन्तराल** (Manufacturing Cycle and Time-lag between Production and Sale)–

संस्था की कार्यशील पूॅजी की आवश्यक मात्रा को प्रभावित करने वाले तत्वों में दूसरा महत्वपूर्ण तत्व यह है, कि निर्माण अवधि कितनी है और निर्माण होने और बिक्री होने के बीच का अवधि अन्तराल कितना है? यदि संस्था की निर्माण अवधि काफी अधिक है, तो कच्चा माल खरीदने के लिए, श्रम व अन्य खर्चो के भुगतान के लिए संस्था बाध्य हो जायेगी और उसे अधिक समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, जब तक कि माल तैयार होकर, बिक्री के लिए उपलब्ध न हो जाए। ऐसी स्थिति में पूॅजी का एक यथेष्ट भाग निर्माण कार्य में बंधित हो जायेगा। इस अवधि में बिक्री न होने से, सभी प्रकार के भुगतानों के लिए अलग से कार्यशील पूॅजी की आवश्यकता पड़ती है। यही नहीं, लम्बी अवधि की दशा में कीमत–परिवर्तन की भी सम्भावना होती है और यह भय बना रहता है कि अनुमानित लाभ कम या नगण्य हो जाए। ऐसी स्थिति में कार्यशील पूॅजी की मात्रा अधिक रूप में आवश्यक होती है, ताकि कठिनाइयों को झेला जा सके।

यही नहीं, निर्माण व विक्रय के बीच की अवधि का अन्तराल जितना ही अधिक होगा उतनी ही अधिक कार्यशील पूॅजी की आवश्यकता होगी। निर्माण व बिक्री का अन्तराल अधिक होने के कारण संस्था में फण्ड का बहाव सहज, तुरन्त, नियमित व समय से नहीं हो पाता है और इसलिए निर्माण व स्कन्ध संग्रहण

सम्बन्धी खर्चों को पूरा करने के लिए अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता पड़ती है।

3. **विक्रय की कुल मात्रा व कार्यशील पूँजी का आवर्त** (Sales Volume and Turnover of Working Capital) –

संस्था की बिक्री की कुल मात्रा जितनी अधिक होगी, कार्यशील पूॅजी की मात्रा की आवश्यकता उतनी ही कम होगी, क्योंकि अधिक विक्रय मात्रा की रकम से संस्था अपने दिन–प्रतिदिन के भुगतानों का आयोजन कर सकती है, परन्तु विक्रय की गति का भी कार्यशील पूॅजी पर प्रभाव पड़ता है। यदि बिक्री सहज व नियमित है, तो कार्यशील पूॅजी की आवश्यकता अपेक्षाकृत कम होगी। अनियमित बिक्री की दशा में कार्यशील पूॅजी की मात्रा अधिक होगी। बिक्री मात्रा बढ़ाने की नीति, विशेष बिक्री अभियान पर होने वाला खर्च, कीमत में परिवर्तन व साख–नीति, आदि का भी कार्यशील पूॅजी पर प्रभाव पड़ता है। कार्यशील पूॅजी की आवर्त्त की गति भी कार्यशील पूॅजी को प्रभावित करती है। यह आवर्त्त बतलाता है कि चालू सम्पत्तियों में विनियोजित पूॅजी का कितनी बार व्यापार में प्रयोग किया गया है। यह आवर्त्त जितना ही अधिक होता है, पूॅजी की उसी मात्रा से व्यवसाय की अधिक मात्रा का व्यापार किया जा सकता है।

4. **क्रय व विक्रय की शर्तें (लेखा नीति)** (Terms of Purchases and Sales or Credit Policy)–

यदि संस्था माल का नकद क्रय करती है, परन्तु माल को उधार बेचती है, तो उसे कम से कम इतनी पूॅजी की आवश्यकता पड़ेगी जो कुछ बेचा गया है और जिसका रूपया नहीं मिला है, उसे नकद रूप में खरीदा जा सके। दूसरी तरफ, यदि संस्था माल का क्रय उधार करती है और नकद रूप में बेचती है, तो वह विक्रय हेतु स्कन्ध बिना पूॅजी के ही प्राप्त या जमा कर सकेगी और समय–समय पर नकद बिक्री से प्राप्त धन में से उधार क्रय (लेनदारों) का भुगतान कर सकेगी, परन्तु व्यवहार में ये दोनों स्थितियॉ असीम होती हैं और पायी नहीं जाती है। वस्तुतः माल का क्रय–विक्रय अंशतः नकद और अंशतः उधार दोनों रूपों में होता है। उधार बिक्री की अवधि जितनी ही लम्बी होगी, उतनी ही अधिक कार्यशील पूॅजी की आवश्यकता होगी। इसके विपरीत, उधार क्रय की अवधि जितनी अधिक होगी, कार्यशील पूॅजी की आवश्यकता भी उतनी ही कम होगी।

5. **चालू सम्पत्तियों की तरलता** (Liquidity of Current Assets)–

संस्था के पास जितनी ही अधिक तरल सम्पत्तियॉ होगीं उसे उतनी ही कम पूॅजी की आवश्यकता होगी। तरल सम्पत्तियों में केवल उन्हीं सम्पत्तियों को शामिल करते हैं, जिन्हें तुरन्त नकद धन में परिवर्तित किया जा सकता है। इसलिए यह कहा जाता है कि चालू सम्पत्तियों का मूल्य चालू दायित्वों से अधिक होना चाहिए। तरल सम्पत्तियों की आवश्यकता का अनुमान लगाते समय विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियों के मिश्रण का विधिवत् विश्लेषण करना आवश्यक होता है। तरलता का अनुमान लगाने के लिए मुख्य रूप से निम्न सम्पत्तियों का विश्लेषण महत्वपूर्ण होता है।

अ. **रोकड़ स्थिति** (Cash Position)– यह तो सर्वविदित है कि व्यावसायिक संस्था द्वारा सम्भावित प्रत्येक क्रिया से रोकड़ स्थिति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से

प्रभावित होती है। इसलिए व्यवसाय के प्रबन्ध के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह संस्था के लिए इच्छित रोकड़ का अनुमान लगाये। इसके लिए रोकड़ बजट का निर्माण किया जाना चाहिए। यह तथ्य ध्यान में रखना होगा, कि रोकड़ अपने आप में एक अप्रभावशाली एवं अनुत्पादक सम्पत्ति है और आवश्यकता से अधिक रोकड़ की विद्यमानता संस्था की लाभदायकता को कमजोर कर सकती है। यदि संस्था में रोकड़ का बहाव नियमित और सहज है, तो कम मात्रा में रोकड़ की जरूरत पड़ती है। रोकड़ स्थिति का विश्लेषण करते समय आन्तरिक कारक जैसे– कर भुगतान, लाभांश नीति, छूट नीति, लागत–कमी प्रोग्राम, कीमत परिवर्तन, आदि का भी सतर्कतापूर्वक अवलोकन व व्यवस्था की जानी चाहिए।

ब. **देनदारों की स्थिति** (Debtors Position)– तरल सम्पत्तियों की श्रेणी में देनदारों एवं प्राप्य बिलों का दूसरा स्थान है। अतः इनका भी विधिवत् विश्लेषण करके पता लगाना चाहिए, कि कुल उधार बिक्री का कितना भाग बकाया रह जाता है, देनदारों से औसतन कितनी अवधि के बाद रूपया वसूल हो पाता है, कितनी मात्रा में देनदार अशोध्य ऋण के रूप में हो जाते हैं, इत्यादि। इन सभी का प्रभाव देनदारों की स्थिति पर पड़ता है जो अन्तिम अवस्था में कार्यशील पूॅजी को भी प्रभावित करता है।

स. **स्कन्ध स्थिति** (Inventory Position)– प्रत्येक व्यावसायिक संस्था को व्यापार संचालन हेतु कच्चे माल का या तैयार माल का स्कन्ध रखना पड़ता है। स्कन्ध में तरलता का अभाव रहता है। अतः इसमें लगायी गयी पूॅजी कुछ समय के लिए बंधित हो जाती है। स्कन्ध की स्थिति कई कारकों से प्रभावित होती है। संक्षेप में, स्कन्ध स्तर की अधिकतम एवं न्यूनतम सीमाएॅ, बिक्री का आवर्त्त, निर्माण अवधि व बिक्री एवं निर्माण अवधि का अन्तराल, आदि कारक स्कन्ध स्थिति को प्रभावित करते हैं।

6. **व्यवसाय में मौसमी परिवर्तन** (Seasonal Variations in the Business)–

कुछ संस्थाएॅ ऐसी होती हैं जिनका व्यापार संचालन मौसमी प्रकृति का होता है अर्थात् एक मौसम से दूसरे मौसम में व्यवसाय की प्रकृति या मात्रा में परिवर्तनों से ये संस्थाएॅ प्रभावित होती रहती हैं। ऐसी संस्थाओं के यहॉ मौसम में व्यापार संचालन हेतु कच्चा माल अधिक मात्रा में क्रय करना पड़ता है और साथ ही सभी मौसम की मॉग को पूरा करने के लिए तैयार माल का स्कन्ध पर्याप्त मात्रा में रखना पड़ता है। दोनों दशाओं में स्पष्टतः अधिक पूॅजी, चालू सम्पत्तियों में लगानी पड़ती है और इस प्रकार इन संस्थाओं के यहॉ उस मौसम विशेष में कार्यशील पूॅजी की अधिक आवश्यकता पड़ती है।

उक्त पंक्तियों में उन कारकों का वर्णन किया गया है जो कार्यशील पूॅजी को प्रभावित करते हैं और इसलिए कार्यशील पूॅजी का अनुमान लगाते समय इन्हें ध्यान में रखना आवश्यक होता है। परन्तु इन कारकों से भी अधिक महत्वपूर्ण चीज प्रबन्ध की योग्यता व क्षमता है, जो कार्यशील पूॅजी की पर्याप्त सीमा तक प्रभावित करती है। उपर्युक्त कारकों के प्रति प्रबन्ध का दृष्टिकोण कारकों की प्रकृति की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण होता है। जोखिम उठाने की क्षमता, पूॅजी संरचना का लचीलापन, लाभांश नीति, पूॅजी का उचित स्रोत व क्रय–विक्रय सम्बन्धी साख नीति, ऐसे क्षेत्र हैं, जिनमें दक्ष प्रबन्ध अपनी कुशलता का परिचय देकर कार्यशील पूॅजी की आवश्यकता को अनुकूलतम एवं लाभदायी बनाये रख सकता है।

7.4 कार्यशील पूँजी के पूर्वानुमान की तकनीकियॉ (Techniques of Forecasting Working Capital)

किसी भी आगामी अवधि के लिए कार्यशील पूँजी की मात्रा का पूर्वानुमान लगाने के लिए निम्न में से कोई भी तकनीक प्रयोग में लायी जा सकती है :–

1. संचालन चक्र रीति (Operating Cycle Method),
2. चालू सम्पत्तियों एवं चालू दायित्वों का पूर्वानुमान रीति (Forecasting of Current Assets and Current Liabilities Method),
3. रोकड़ पूर्वानुमान रीति (Cash Forecasting Method),
4. प्रक्षेपी आर्थिक चिट्ठा रीति (Projected Balance Sheet Method),
5. लाभ–हानि समायोजन रीति (Profit & Loss Adjustment Method)

1. **संचालन चक्र रीति**– 'रोकड़–कच्चा माल–निर्मित माल–देनदार व प्राप्त बिल– नकद' यही संचालन चक्र होता है। एक संचालन चक्र की अवधि संचालन की विभिन्न अवस्थाओं की अवधि में आपूर्तिदाता द्वारा (By Suppliers) स्वीकृत अवधि का समायोजन करके ज्ञात की जाती है। संचालन चक्र रीति से किसी संस्था की भावी कार्यशील पूँजी का पूर्वानुमान लगाने के लिए एक अवधि के संचालन व्ययों में उसी अवधि के संचालन चक्रों की संख्या से भाग दिया जाता है। इस रीति के प्रयोग हेतु निम्न की गणना आवश्यक होती है –

क. **संचालन व्यय**– किसी अवधि के कुल संचालन व्यय में उस अवधि में (गैर–नकद खर्चो को छोड़कर) किये गये सामग्री क्रय, निर्माणी व्यय, विक्रय व वितरण व्यय, आदि को शामिल करते हैं। यह जरूरी है कि इन व्ययों की रकम का अनुमान लगाते समय उत्पाद मिश्रण में परिवर्तन, नवीन उत्पाद का प्रारम्भ, पुराने उत्पाद का परित्याग, मूल्य–स्तर में परिवर्तन, आदि से उत्पन्न परिवर्तनों का समायोजन कर लिया जाय।

ख. **संचालन चक्र की अवधि** – संचालन चक्र की अवधि से तात्पर्य संचालन की विभिन्न अवस्थाओं की अवधि के योग में से आपूर्तिदाताओं (लेनदारों) द्वारा प्रदत्त अवधि के घटाने के बाद बची हुई अवधि से होता है। संचालन की विभिन्न अवस्थाओं की अवधि की गणना विधि इस प्रकार है :–

(i) **सामग्री संग्रहण अवधि (दिनों में)**– उत्पादन हेतु निर्गमन से पूर्व जितने दिन सामग्री को स्टोर में रखना पड़ता है, उसे ही सामग्री संग्रहण अवधि कहते हैं। इसकी गणना के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है :–

$$\text{Material Storage Period (days)} = \frac{\text{Average Stock of Materials}}{\text{Daily Average Consumption}}$$

$$\text{Average Stock of Materials} = \frac{\text{Opening Stock + Closing Stock}}{2}$$

$$\text{Daily Average Consumption} = \frac{\text{Consumption for the Year}}{365}$$

(ii) **रूपान्तरण अवधि (दिनों में)**– जितनी अवधि में कच्चा माल निर्मित माल में परिवर्तित होता है, उसे रूपान्तरण अवधि (Conversion Period) कहते हैं। इसका गणना सूत्र निम्न प्रकार है :–

$$\text{Conversioin Period (days)} = \frac{\text{Average Stock of Semi-finished Goods}}{\text{Average Factory Stock}}$$

$$\text{Average Stock of Semi-finished Goods} = \frac{\text{Opening Stock + Closing Stock}}{2}$$

$$\text{Average Factory Cost} = \frac{\text{Total Factory Cost}}{365}$$

कुल कारखाना लागत के लिए प्रयुक्त सामग्री, श्रम, कारखाना उपरिव्यय के योग में अर्द्ध–निर्मित माल के प्रारम्भिक स्टॉक को जोड़ दिया जाता है और अन्तिम स्टाक को घटा दिया जाता है।

कभी–कभी रूपान्तरण अवधि को उत्पादन चक्र अवधि (Production Cycle Period) भी कहते हैं। यदि उत्पादन चक्र की अवधि की सूचना स्पष्ट रूप से दी गयी हो, तो इसका गणना सूत्रानुसार नहीं की जायेगी।

(iii) **तैयार माल की संग्रहण अवधि (दिनों में)** – माल के तैयार होने व बिक्री से पूर्व जितनी अवधि तक माल स्टोर में रहता है, उसे तैयार माल की संग्रहण अवधि कहते हैं। इसका गणना सूत्र इस प्रकार है :–

$$\text{Finished Goods Storage Period (days)} = \frac{\text{Average Stock of Finished Goods}}{\text{Average Cost of Sales}}$$

$$\text{Average Stock of Finished Goods} = \frac{\text{Opening Stock + Closing Stock}}{2}$$

$$\text{Average Cost of Sales} = \frac{\text{Total Cost of Sales for the Year}}{365}$$

(iv) **औसत वसूली अवधि (दिनों में)**– देनदारों से नकद रूपया प्राप्त होने में जितनी अवधि लगती है, उसे औसत वसूली अवधि कहते हैं। सामान्यतः साख नीति के रूप में इस अवधि की सूचना दी गयी होती है। गणना के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है।

$$\text{Average Collection Period (days)} = \frac{\text{Average Debtors \& B/R}}{\text{Net Credit Sales per day}}$$

$$\text{Average Debtors + B/R} = \frac{\text{Opening Debtors \& B/R + Closing Debtors \& B/R}}{2}$$

$$\text{Net Credit Sales Per Day} = \frac{\text{Total Credit Sales for the Year}}{365}$$

(v) **औसत भुगतान अवधि (दिनों में)** – आपूर्तिदाताओं (लेनदारों) द्वारा भी कुछ अवधि उधार की प्रदान की जाती है। लेनदारों के नकद भुगतान करने में जितनी अवधि लगती है, उसे औसत भुगतान अवधि कहते हैं। प्रायः इसकी सूचना भी दी गयी होती है, परन्तु गणना हेतु निम्न सूत्र का प्रयोग करते हैं :–

Average Payment Period = Average Creditors & B/P

(days) Net Credit Purchases per day

Average Creditors + B/R = = $\frac{\text{Opening Creditors \& B/R + Closing Creditors \& B/P}}{2}$

Net CreditPurchases Per Day = $\frac{\text{Total Credit Purchases for the Year}}{365}$

उपर्युक्त (i) व (iv) तक के योग की अवधि में से (v) को घटा देने पर संचालन चक्र की कुल अवधि ज्ञात हो जाती है।

(ग) **वर्ष के संचालन चक्रों की कुल संख्या**– जब वर्ष के 365 दिन को उपर्युक्त (ख) में वर्णित ढ़ंग से संचालन चक्र की अवधि से विभाजित कर देते हैं तो संचालन चक्र की कुल संख्या ज्ञात हो जाती है।

(घ) **कार्यशील पूॅजी की राशि**– वर्ष के कुल संचालन व्यय और संचालन चक्र की कुल संख्या ज्ञात करने के बाद, कार्यशील पूॅजी की रकम की गणना निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात की जाती है :–

Working Capital = $\frac{\text{Total Operating Expenses of the Year}}{\text{No. of Operating Cycles in year}}$

(ड.) **आकस्मिकताओं के लिए प्रावधान**– उपर्युक्त ढ़ंग से निकाली गयी कार्यशील पूॅजी की रकम में एक निश्चित प्रतिशत आकस्मिताओं के लिए जोड़ दिया जाता है।

7.5 उदाहरण

7.5.1 संचालन चक्र रीति–

'रोकड़–कच्चा माल–निर्मित माल–देनदार व प्राप्त बिल– नकद' यही संचालन चक्र होता है। एक संचालन चक्र की अवधि संचालन की विभिन्न अवस्थाओं की अवधि में आपूर्तिदाता द्वारा (By Suppliers) स्वीकृत अवधि का समायोजन करके ज्ञात की जाती है। संचालन चक्र रीति से किसी संस्था की भावी कार्यशील पूॅजी का पूर्वानुमान लगाने के लिए एक अवधि के संचालन व्ययों में उसी अवधि के संचालन चक्रों की संख्या से भाग दिया जाता है।

उदाहरण-1

निम्न से सकल कार्यशील पूॅजी ज्ञात कीजिए –

Calculate Gross Working Capital from the following :

रोकड़ (Cash)	15,000
स्टाक (Stock)	20,000
ऋण पत्र (Debentures)	2,50,000
अदत्त किराया (Outstanding Rent)	10,000
पूर्वदत्त व्यय (Prepaid Expenses)	5,000
देनदार (Debtors)	40,000
लेनदार (Creditors)	50,000

हल-1

Gross Working Capital = Cash + Stock + Debtors + Prepaid Exps.

= 15,000 + 20,000 + 40,000 + 5,000

= Rs. 80,000

उदाहरण-2

आर0 लि0 की निम्न सम्पत्तियों एवं दायित्वों से शुद्ध कार्यशील पूँजी ज्ञात कीजिए–

Calculate Net Working Capital of R. Ltd. from the following assets and liabilities:

रोकड़ (Cash)	10,000
ऋण पत्र (Debentures)	2,00,000
स्टाक (Stock)	20,000
देनदार (Debtors)	20,000
लेनदार (Creditors)	25,000
अदत्त किराया (Outstanding Rent)	5,000

हल-2

Net Working Capital = Total Current Assets - Total Current Liabilities

= (Cash+Stock+Debtors) - (Creditors+Outstanding Exps.)

= (10,000 + 20,000 + 20,000) - (25,000 + 5,000)

= 50,000 - 30,000

= Rs. 20,000

उदाहरण-3

कार्यशील पूँजी की आवश्यकता की गणना निम्न सूचनाओं के आधार पर कीजिए –

From the following information, calculate working capitals requirement :

Estimated Sales	6,50,000
Profit	25% of cost
Credit for Customers	10 weeks
Storage period of finished goods	8 Weeks
Estimated Creditors	40,000
Add : 10% for contingencies	

हल-3

Estimated Sales = Rs. 6,50,000

% of Net Profit on cost of Sales = 25%

Cost of Sales = $6,50,000 - 6,50,000 \times \frac{25}{125}$

= 6,50,000 - 1,30,000

= Rs. 5,20,000

Statement showing Working Capital Requirement

A. Current Assets

Debtors	=	Cost of Sales x Credit for Customers / No. of Weeks in a year		
	=	5,20,000 x 10 / 52	1,00,000	
Stock	=	Cost of Sales x Storage period of finished Goods / No. of Weeks in a year		
	=	5,20,000 x 8 / 52	80,000	1,80,000

B. Current Liabilities Deducted

Creditors	40,000
	1,40,000
Add : 10% of Contengencies	14,000
Required Working Capital	1,54,000

उदाहरण-4

संचालन चक्र पद्धति द्वारा कार्यशील पूँजी की गणना कीजिए, वर्ष में 360 दिन मानिए।

Find Out Working Capital by Operating Cycle Method, taking 360 days in a year

Sales	9,000 Unit @	Rs. 100 Each
Material Cost		Rs. 50 Per Unit
Labour Cost		Rs. 25 Per Unit
Overheads		Rs. 15 Per Unit

ग्राहकों को 45 दिन की साख दी जाती है तथा आपूर्तिदाताओं से 50 दिन की साख प्राप्त होती है। कच्चा माल 30 दिन के लिए तथा तैयार माल 15 दिन के लिए स्टाक में रहता है। उत्पादन चक्र 25 दिन का है।

Customers are given 45 days 'credit and 50 days' credit is taken from suppliers Raw Materials for 30 days and finisehd goods for 15 days are kept in stock. Production cycle period is 25 days.

हल-4

A. Total Operating Expenses for the Year :

Materials	9,000	@	Rs.	4,50,000

	Units	50		
Labour	9,000 Units	@ 25	Rs.	2,25,000
Overheads	9,000 Units	@ 15	Rs.	1,35,000
				8,10,000

B. Period of Operating Cycle :

	Days
Materials Storage Period	30
Finished Goods Storage Period	15
Production Cycle Period	25
Average Collection Period	45
	115
Less : Average Payment Period	50
Operating Cycle Period	65

C. No. of Operating Cycle in the year $= \frac{360}{65} = 5.54$

D. Working Capital $= \frac{8,10,000}{5.54} =$ Rs. 1,46,209

उदाहरण -5

'संचालन चक्र रीति' द्वारा कार्यशील पूँजी का अनुमान निम्न सूचनाओं के आधार पर लगाइए। वर्ष में 360 दिन मानिए।

From the following information, estimate the amount of Working Capital by 'Operating Cycle Method', taking 360 days in a year

Sales	50,000 Units @	Rs. 20 Per Unit
Material Cost		Rs. 10 Per Unit
Labour Cost		Rs. 4 Per Unit
Overheads		Rs. 3.5 Per Unit

ग्राहकों को 45 दिन की साख दी जाती है तथा आपूर्तिदाताओं से 60 दिन की साख प्राप्त होती है। कच्चा माल 36 दिन के लिए तथा तैयार माल 15 दिन के लिए स्टाक में रहता है। उत्पादन चक्र 18 दिन का है। औसत अन्य कार्यशील पूँजी का 1/3 आकस्तिकताओं हेतु रोकड़ रखी जाती है।

Customers are given 45 days 'credit and 60 days' credit is taken from suppliers. Raw Materials for 36 days and finished goods for 15 days are kept in stock. Production cycle is 18 days. A cash balance equal to one-third of average of other working capital is kept for contingencies.

हल-5

A. Total Operating Expenses for the Year :

Materials	50,000	@	Rs.	5,00,000

	Units	10	
Labour	50,000 Units	@ Rs. 4	2,00,000
Overheads	50,000 Units	@ Rs. 3.50	1,75,000
			8,75,000

B. Period of Operating Cycle :

	Days
Materials Storage Period	35
Finished Goods Storage Period	15
Production Cycle Period	18
Average Collection Period	45
	114
Less : Average Payment Period	60
Operating Cycle Period	54

C. No. of Operating Cycle in the year $= \frac{360}{54} = 6.67$

D. Working Capital $= \frac{8,75,000}{6.67} =$ Rs. 1,31,184

Add : 1/3 for contingencies = Rs. 43,728

= Rs. 1,74,912

Or Working Capital $= \frac{8,75,000}{360/54} = \frac{875000 \times 54}{360} = 1,31,250$

Add : 1/3 for Contingencies = 43,750

= 1,75,000

7.5.2 **चालू सम्पत्तियो एवं चालू दायित्वों का पूर्वानुमान रीति –**

इस रीति के अन्तर्गत हम आगामी अवधि में होने वाले लेन–देनों के आधार पर चालू सम्पत्तियों का रोकड़ लागत पर अनुमान लगाते हैं और इसी प्रकार चालू दायित्वों का भी अनुमान लगा लेते हैं। चालू सम्पत्तियों में से चालू दायित्वों को घटा देने पर कार्यशील पूँजी की मात्रा ज्ञात हो जाती है। यदि कार्यशील पूँजी का अर्थ चालू सम्पत्तियों से लगाया गया हो, तो चालू सम्पत्तियों के अनुमानित मूल्य को ही कार्यशील पूँजी मान लिया जाता है। गत अनुभव, साख नीति, आदि के आधार पर विभिन्न चालू सम्पत्तियों एवं दायित्वों का अनुमान लगाया जाता है।

उदाहरण-6

राम प्रसाद, जो एक व्यवसाय खरीदना चाह रहे हैं, आप से परामर्श करते हैं और एक बिन्दु, जिस पर आपको उन्हें राय देनी है, औसत कार्यशील पूॅजी है जिसे व्यापार के प्रथम वर्ष में लगाना आवश्यक होगा।
आपको निम्न अनुमान दिये गये हैं और आकलित ऑकड़ों में भावी सम्भाविताओं के लिए 10 प्रतिशत जोड़ना है।

अ.	स्टाक की औसत राशि :	प्रति वर्ष रू0
	तैयार माल	50,000
	कच्चा माल	80,000
ब.	औसत साख प्रदान की गयी :	
	घरेलू बिक्री 6 सप्ताह	3,12,000
	निर्यात बिक्री $1^{1/2}$ सप्ताह	7,80,000
स.	खर्चों के भुगतान में अन्तराल :	
	मजदूरी – $1^{1/2}$ सप्ताह	26,00,000
	अन्य व्यय सामग्री सहित (एक माह)	9,60,000

Ram Prasad who are who are willing to purchase business, have consulted you and one point, on which you are asked to advise them, is the average amount of working capital which would need to be employed in the first year's trading.
You are given the following estimates and requested to add 10% to your computed figure to allow for contingencies :

a.	Average Amount of Stocks	Per Annum (Rs.)
	Finished Goods	50,000
	Raw Materials	80,000
b.	Average Credit given :	
	Home Sales 6 weeks	3,12,000
	Export Sales $1^{1/2}$ weeks	7,80,000
c.	Lag in Payment of Expenses :	
	Wages- $1^{1/2}$ weeks	26,00,000
	Other Expenses including materials (one month)	9,60,000

<u>हल-6</u>

A. Total Current Assets to be maintained :

Stock of finished goods			50,000	
Stock of Raw Materials			80,000	
Debtors at Selling Price				
Domestic	$3,12,000 \times \frac{6}{52}$	=		36,000
Export	$78,00,000 \times \frac{1.5}{52}$	22,500	58,500	1,88,500

B. Total Current Liabilities to be created :

Outstanding Wages $26,00,000 \times \frac{1.5}{52}$		75,000
Outstanding Expenses $\frac{9,60,000 \times 1}{12}$	80,000	1,55,000

Net Current Assets	33,500
Add : 10% for Contingencies	3,350
Required Working Capital	36,850

उदाहरण-7 -

एक्स लि0 के बजट से ली गयी निम्न सूचना से संचालन चक्र रीति का प्रयोग करते हुए कम्पनी की औसत कार्यशील पूॅजी दर्शाने हेतु एक विवरण तैयार कीजिए –

(i) वार्षिक बिक्री रू0 10 प्रति इकाई की दर से 1,00,000 इकाइयों हेतु अनुमानित है।

(ii) उत्पादन व बिक्री की मात्रा एक समान होगी और पूरे वर्ष एक समान होगी।

उत्पादन लागत है :

सामग्री	5.00 प्रति इकाई
श्रम	2.00 प्रति इकाई
अप्रत्यक्ष व्यय	1.75 प्रति इकाई

(iii) ग्राहकों को 60 दिन की साख दी जाती है और आपूर्तिदाताओं से 50 दिन की साख प्राप्त होती है।

(iv) कच्चे माल की 40 दिन की आपूर्ति और तैयार माल की 15 दिन की आपूर्ति स्टोर में रखी जायेगी।

(v) उत्पादन चक्र 20 दिन का है और प्रत्येक उत्पादन चक्र के प्रारम्भ होने पर ही कच्चे माल का निर्गमन होता है।

(vi) आकस्मिताओं के लिए औसत कार्यशील पूॅजी का एक तिहाई रोकड़ शेष रखा जाता है।

From the following information taken from the Budget of X Ltd. prepare statement showing average amount of Working Capital required by the Company using operating cycle method :

i. Annual Sales are estimated at 1,00,000 units @ Rs. 10 per unit.

ii. Production and Sales quantities coincide and will be carried on evenly throughout the year and proudction cost is :

Materials	5.00 p.a.
Wages	2.00 p.a.
Overheads	1.75 p.a.

iii. Customers are given 60 days 'credit and 50 days' credit is taken from suppliers.

iv. Forty days supply of raw materials and fifteen days supply of finished goods are kept in store.

v. The production cycle is 20 days and all materials are issued at the commencement of each production cycle.

vi. A cash balance equal to one-third of the average other Working Capital is kept for contingencies.

हल-7

A. Total Operating Expenses for the Year :

Materials	1,00,000 Units	@ Rs. 5.00 p.u.	5,00,000
Labour	1,00,000 Units	@ Rs. 2.00 p.u.	2,00,000
Overheads	1,00,000 Units	@ Rs. 1.75 p.u.	1,75,000
			8,75,000

B. Period of Operating Cycle :

	Days
Materials Storage Period	40
Finished Goods Storage Period	15
Production Cycle Period	20
Average Collection Period	60
	135
Less : Average Payment Period	50
Operating Cycle Period	85

C. No. of Operating Cycle in a year $= \frac{365}{85} = 4.3$

D. Working Capital $= \frac{8,75,000}{4.3} =$ Rs. 2,03,488

Add : 1/3 for contingencies = Rs. 67,829

Required Working Capital = Rs. 2,71,317

उदाहरण-8

एक उधार लेने वाले के दारा निम्न सूचना प्रदान की गयी है :–

i.	उत्पादन का आशंसित स्तर	2,40,000 इकाइयॉ
ii.	स्टाक में रखा गया कच्चा माल	दो माह
iii.	प्राक्रियांकन अवधि	एक माह
iv.	स्टाक में रहने वाला तैयार माल	तीन माह
v.	ग्राहकों को स्वीकृत साख	तीन माह
vi.	बिक्री की लागत की अनुमानित दर :	
	सामग्री	60%
	मजदूरी	10%
	उपरिव्यय	20%
vii.	प्रति इकाई विक्रय मूल्य 20 रू0 ।	
viii.	बिक्री पर आशंसित उपान्त 10% ।	

आप को उधार लेने वाले की कार्यशील पूँजी का अनुमान लगाना है।

The following information has been submitted by a borrower :

i.	Expected level of production	2,40,000 Units
ii.	Raw materials to remain in stock	2 months
iii.	Processing period	1 month
iv.	Finished goods stay in stock	3 months

v.	Credit allowed to customers	3 months
vi.	Expected rate of cost of sales :	
	Materials	60%
	Wages	10%
	Overheads	20%
vii.	Selling price per unit Rs. 20	
viii.	Expected Marginon sale 10%	

You are requested to estimate the Working Capital requirements of the borrower.

Current Assets to be maintained :

हल-8

Stock of Raw Materials	2,40,000 x $\frac{12 \times 2}{12}$	4,80,000
Stock of Finished Goods	2,40,000 x $\frac{18 \times 3}{12}$	10,80,000
Stock of W.I.P.	2,40,000 x $\frac{18 \times 1}{12}$	3,60,000
Debtors at Cost	2,40,000 x $\frac{18 \times 3}{12}$	10,80,000
		30,00,000
Add : 10% for Contingencies		3,00,000
Estimated Working Capital		33,00,000

Notes : Per Unit Cost

Raw Materials	20 x $\frac{60}{100}$	=	12
Wages	20 x $\frac{10}{100}$	=	2
Overheads	20 x $\frac{20}{100}$	=	4

Total Costs	Rs.	=	18

उदाहरण 9

नीचे प्रदत्त सूचना से कार्यशील पूँजी की आवश्यकता की गणना कीजिए–

बजटेड बिक्री	6,50,000 रू0
बिक्री की लागत पर शुद्ध लाभ का प्रतिशत	25 प्रतिशत

ग्राहकों को प्रदत्त औसत साख	10 सप्ताह
आपूर्तिदाताओं द्वारा प्रदत्त औसत साख	4 सप्ताह
औसत स्टाक (बिक्री आवश्यकता के सन्दर्भ में)	8 सप्ताह

गणना की गयी राशि में 10 प्रतिशत आकस्मिकताओं के लिए जोड़े ।

From the information given below, calculate the Working Capital requirements :

Budgeted Sales	Rs. 6,50,000
Percentage of net profit on cost of sales	25%
Average credit allowed to customers	10 weeks
Average credit allowed by suppliers	4 weeks
Average Stock carrying (in terms of sales requirement)	8 weeks

Add 10% to computed figures for contingencies.

हल-9

Cost of Sales	$6,50,000 \times \frac{100}{125}$	=	Rs. 5,20,000
Stock	$5,20,000 \times \frac{8}{52}$	=	80,000
Debtors at Sales Value	$6,50,000 \times \frac{10}{52}$	=	1,25,000
			2,05,000
Less Creditors	$5,20,000 \times \frac{4}{52}$	=	40,000
			1,65,000
Add : 10% for Contingencies			16,500
Required Working Capital		=	1,81,500

7.5.3 **रोकड़ पूर्वानुमान रीति–**

इस रीति के अन्तर्गत अवधि में होने वाली प्राप्तियों एवं भुगतानों का अनुमान लगाया जाता है और अन्तर की रकम रोकड़ आधिक्य या कमी को दर्शाती है। कमी की रकम का कहीं–न–कहीं से अर्थ–प्रबन्धन करना पड़ता है। वस्तुतः यह रीति रोकड़ बजट का ही रूप होता है।

उदाहरण -10

श्री आर0 किशन एक नया व्यापार शुरू करना चाहते हैं और निम्न सूचना देते हैं :–

अ. एक वर्ष में कुल अनुमानित बिक्री 18,00,000 रू0 होगी।

ब. उनके खर्चे 3,000 रू0 प्रति माह स्थिर व बिक्री के 5 प्रतिशत के बराबर परिवर्तनशील के रूप में अनुमानित है।

स. वे वस्तु के लिए ऐसा विक्रय मूल्य निश्चित करने की आशा रखते हैं जो क्रय लागत का 25 प्रतिशत आधिक्य हो।

द. वे अपने स्टाक को वर्ष में चार बार आवर्त करने की आशा रखते हैं।

य. बिक्री और क्रय वर्ष पर्यन्त समान रूप से होगें। सभी बिक्री नकद होगी, परन्तु क्रय के लिए एक माह की साख की उम्मीद करते हैं।

औसत कार्यशील पूँजी की आवश्यकता की गणना कीजिए।

Mr. R. Kishan wishes to commence a new trading business and gives the following information :

a. Total estimated sales in a year will be Rs. 18,00,000

b. His expenses are estimated at a fixed expenses Rs. 3,000 per month plus variable expenses equal to 5% of this turnover.

c. He expects to fix selling price for the product which will be 25% in excess of his cost of purchase.

d. He expects to turnover his stock four times in a year.

e. The sales and purchases will be evenly spread thoughout the year. All sales will be for cash but expects one month's credit for purchases.

Calculate average Working Capital Requirement.

<u>हल</u>-10

Purchases = $18,00,000 \times \frac{100}{125}$ = 14,40,000

Stock = $\frac{14,40,000}{4}$ = 3,60,000

Creditors = $14,40,000 \times \frac{1}{12}$ = 1,20,000

Fixed Exps. = 3,000

Variable Exps.
$18,00,000 \times \frac{5 \times 1}{100 \times 12}$ = 7,500

10,500

Current Assets-

Stock = 3,60,000

Cash = 10,500

3,70,500

Less : Current Liabilities

Creditors = 1,20,000

Working Capital = 2,50,500

7.5.4 **प्रक्षेपी आर्थिक चिट्ठा रीति–**

इस रीति के अन्तर्गत आगामी अवधि में होने वाले लेन–देनों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियों एवं दायित्वों का अनुमान लगा लिया जाता है। यह अनुमान दी गयी सूचनाओं के आधार पर किया जाता है। सम्पत्तियों एवं दायित्वों के अन्तर को कार्यशील पूँजी के रूप में लिया जाता है। पूर्वानुमानित सम्पत्तियों एवं दायित्वों के आधार पर एक आर्थिक चिट्ठा बना लिया जाता है, जिसे प्रक्षेपी आर्थिक चिट्ठा कहते हैं।

उदाहरण-11

एस0वी0 कम्पनी के संचालक मण्डल ने आपसे अनुरोध किया है कि उत्पादन के 20,000 इकाई स्तर के लिए कार्यशील पूँजी की गणना अनुमान का विवरण तैयार करें। आय की गणना हेतु निम्न सूचना उपलब्ध हैः–

The Board of Directors of S.V. Co. ask you to prepare a Statement showing Working Capital estimates for a level of activity of 20,000 units of production. The following information is available for your calculations :

A.	Per unit cost and selling price	Rs.
	Raw Material	60
	Labour	35
	Overheads	55
	Total Cost	150
	Profit	50
	Selling Price	200

B.
- i. Raw material are in stock on average for one month.
- ii. Materials are in process on average for two weeks.
- iii. Finished goods are in inventories on average for one month.
- iv. Credit allowed to trade receivables two months.
- v. Credit allowed by suppliers one month.
- vi. Lag in payment of wages $1^{1/2}$ weeks.
- vii. Lag in payment of overheads is one month.

उत्पादन का 20 प्रतिशत नकद बेचा जाता है। रोकड़ हाथ में 60,000 रू0 अनुमानित है। यह माना जाय, कि उत्पादन वर्ष–पर्यन्त समान रूप से चलता है, मजदूरी व अप्रत्यक्ष व्यय भी उसी प्रकार देय होते हैं और चार सप्ताह एक माह के बराबर हैं।

20% of the production is sold against cash. Cash in hand is expected to be Rs. 60,000. It is to be assumed that production is carried on evenly through out the year, wages and overheads accrue similarly and time period of 4 weeks is equivalent to one month.

हल-11

Current Assets to be maintained :

i. Stock of Raw Materials = $20,000 \times \frac{60 \times 4}{52}$ = 92,308

ii.	Stock of W.I.P. (with respect to Materials only) =	20,000 x 60 x 2 / 52	=	46,154
iii.	Stock of Finished Stock =	20,000 x 150 x 4 / 52	=	2,30,769
iv.	Debtors at Cost = (20 प्रतिशत नकद अतः 80 प्रतिशत उधार)	20,000 x 150 x 80 / 52x100	=	3,69,230
v.	Cash Estimated		=	60,000
				7,98,461

B. Current Liabilities to be Created :

i.	Creditors	20,000 x 4 x 60 / 52	=	92,308
ii.	Outstanding Wages	20,000 x 35 x 1.5 / 52	=	20,192
iii.	Outstanding Overheads	20,000 x 55 x 4 / 52	=	84,615
	Total Current Liabilities Deducted		=	1,97,115
	Working Capital = 6,01,346			

7.5.5 **लाभ–हानि समायोजन रीति–**

इस रीति के अन्तर्गत आगामी अवधि में होने वाले लेन–देनों के आधार पर अनुमानित लाभ की गणना कर ली जाती है। इस अनुमानित लाभ में से रोकड़–आगमन व रोकड़–बहिर्गमन का समायोजन करके कार्यशील पूँजी की मात्रा ज्ञात कर ली जाती है। वस्तुतः यह विधि लाभ का रोकड़ आधार पर परिवर्तित करती है।

उदाहरण-12

एल लि0 का बजटेड लाभ–हानि विवरण निम्नवत् है :

The Budgeted Statement of Profit and Loss of L. Ltd. is as under :

Particulars	Note No.	Figures for the current reporting period (Rs.	Figures for the previous reporting period (Rs.)
I. Revenue from operations		2,00,000	
II. Other Income		10,000	

III.	Total Revenue		2,10,000	
IV.	Expenses : Adm. & Selling Expenses Depreciation IncomeTax Interest charges Loss on sale of plant Other Expenses (Dividend)		 10,000 22,000 5,000 3,000 8,000 10,000 58,000	
V.	Profit (Loss) before exceptional and extra ordinary items and tax (III-IV)		1,52,000	
VI.	Exceptional Items		-	
VII.	Profit before extra-ordinary items and Tax (V-VI)		1,52,000	
VIII.	Extra ordinary items		-	
IX.	Profit for the period		1,52,000	

अतिरिक्त सूचना :–

(i) वर्ष के दौरान 80,000 रू0 की लागत का एक नया प्लान्ट खरीदना है।

(ii) 60,000 रू0 की लागत के पुराने प्लान्ट को (सिंचित ह्ास 42,000 रू0) 10,000 रू0 में बेचने की आशा है।

(iii) वर्ष के दौरान 23,500 रू0 के ऋण पत्र शोधन हेतु परिपक्व होगें।

(iv) 50,000 रू0 के सम अंश नकद रूप में निर्गमित किये जायेगें।

कार्यशील पूॅजी में वृद्धि या कमी की रकम निर्धारित कीजिए। लाभ–हानि समायोजन रीति का प्रयोग करें।

Additional Information :-

i. A new plant costing Rs. 80,000 is to be purchased during the year.

ii. An old plant costing Rs.60,000 (accumulated depreciation Rs. 42,000) is expected to be sold for Rs. 10,000.

iii. Debentures worth Rs. 23,500 will mature for redemption during the year.

iv. Equity shares worth Rs. 50,000 will be issued for cash.

Ascertain the amount of increase/decrease in working capital by Profit and Loss Adjustment Method.

Calculation of Increase/Decrease in Working Capital

			Rs.	Rs.
		Net Profit as per Statement of P&L.		1,62,000
Add:	Non-cash charges :			
	i.	Depreciation	22,000	
	ii.	Loss on Sale of Plant	8,000	30,000
		Working Capital provided by opeations		1,92,000
Add :	Cash inflows :			

	i.	Issue of fresh Shares	50,000	
	ii.	Sale of Plant	10,000	60,000
				2,52,000
Less :	Cash outflows :			
	i.	Redemption of Debentures	23,500	
	ii.	Purchase of Plant	80,000	
	iii.	Payment of Dividend	10,000	1,13,500
				1,38,500

If this increase is added to working capital at the start, working capital of the concern may be ascertained.

7.6 सारांश

कार्यशील पूॅजी का कुप्रबन्ध अथवा कार्यशील पूॅजी की अपर्याप्तता व्यवसायिक असफलता (Business Failures) का प्रमुख कारण बन सकता है। यह कभी नहीं भूलना चाहिए, कि कार्यशील पूॅजी का प्रबन्ध, वित्तीय प्रबन्ध का एक अभिन्न अंग होता है, और अन्ततः समूचे निगम प्रबन्ध का भी। इस प्रकार कार्यशील पूॅजी का प्रबन्ध एक बहुत बड़ी चुनौती खड़ी करता है और एक वित्तीय प्रबन्धक के लिए (जो संगठन में एक अहम भूमिका अदा करने के लिए तैयार हो) को यह चुनौती स्वागतयोग सुअवसर प्रदान करती है जिसका सही दिशा में उपयोग करके वित्तीय कुशलता व क्षमता को बढ़ाया जा सकता है। कार्यशील पूॅजी के प्रबन्ध के प्रति किसी भी प्रकार की उदासीनता या उसको नजर अन्दाज करना, तकनीकी दिवालियेपन की स्थिति को पैदा कर सकता है और कभी–कभी व्यावसायिक इकाई का विघटन भी हो सकता है। कार्यशील पूॅजी के प्रबन्ध की अक्षमता व अकुशलता के फलस्वरूप या तो कार्यशील पूॅजी की अपर्याप्तता हो सकती है या कार्यशील पूॅजी की अधिकता और दोनों की स्थिति खतरनाक होती है।

7.7 शब्दावली

चालू सम्पत्तियॉ (Current Assets): नकद धन से प्राप्त की गयी वे सम्पत्तियॉ, जिन्हें पुनः नकद धन में परिवर्तित किया जा सकता है, चालू सम्पत्तियॉ कहलाती हैं। उदाहरण– Cash in hand, Cash at Bank, Book Debts, Bills Receivable, Stock, Investment in Govt. Securities, Advance Payment, Prepaid Exps. etc.

स्थायी सम्पत्तियॉ (Fixed Assets): स्थायी सम्पत्तियों से आशय उन सम्पत्तियों से होता है, जिनका क्रय व्यवसाय–संचालन में प्रयोग के लिए किया जाता है, न कि पुनर्विक्रय करके नकद धन प्राप्त करने के लिए। उदाहरण– Land, Building, Plants and Machinery, Furnitures & Fixtures etc.

चालू दायित्व (Current Liabilities): चालू दायित्वों के अन्तर्गत, ऐसे ऋणों व भारों को शामिल करते हैं जो अल्पकाल (एक वर्ष के भीतर) देय होते हैं। उदाहरण– Trade Creditors, Bills Payable, Short Term Public Deposit, Outstanding Dividend (not Proposed Dividend), Outstanding Expenses, Bank Overdraft (not Bank Loan), Tax Payable or Provision for Tax.

कार्यशील पूॅजी (Working Capital)

सूत्र रूप में– Working Capital = Current Assets - Current Liabilities

संचालन व्यय (Operating Exps.)
निर्माण व्यय, सामान्य प्रशासन व्यय, विक्रय व वितरण व्यय तथा वित्त प्राप्ति व्यय का योग संचालन व्यय कहलाता है।

औसत स्कन्ध (Average Stock or Inventory) विभिन्न प्रकार के स्कन्ध जैसे– कच्चे माल का स्कन्ध, चालू कार्य का स्कन्ध व तैयार माल का स्कन्ध आदि में पूरे वर्ष के दौरान औसतन विनियोजित रकम को ही औसत स्कन्ध कहते हैं। सूत्र रूप में–

$$\text{Average Stock} = \frac{\text{Opening Stock + Closing Stock}}{2}$$

यदि व्यवसाय नया हो और Opening Stock न हो तो Closing Stock को ही Average Stock मान लेते है।

औसत वसूली अवधि (Average Collection Period): देनदारों से नकद रूपया प्राप्त होने में जितनी अवधि लगती है उसे औसत वसूली अवधि कहते हैं।

औसत भुगतान अवधि (Average Payment Period): आपूर्तिकर्ताओं (लेनदारों) को नकद भुगतान करने में जितनी अवधि मिलती है उसे औसत भुगतान अवधि कहते हैं।

आपूर्तिकर्ताओं (Suppliers): से आशय लेनदारों (Creditors) से है।

चालू कार्य (Work in Progress): चालू कार्य से आशय अर्द्धनिर्मित माल से है।

7.8 बोध प्रश्न

1. एक कम्पनी की कुल सम्पत्तियॉ 6,00,000 रूपये, स्थायी सम्पत्तियॉ 3,50,000 रूपये तथा अंश पूॅजी व संचय आधिक्य 3,50,000 रूपये है। सकल कार्यशील पूॅजी है :

   अ. रू0 5,00,000 ब. रू0 13,50,000
   स. रू0 2,50,000 द. रू0 9,50,000

2. एक कम्पनी की चालू सम्पत्तियॉ 2,50,000 रूपये, चालू दायित्व 1,00,000 रूपये तथा दीर्घकालीन ऋण 1,50,000 रूपये हैं। शुद्ध कार्यशील पूॅजी है :

   अ. रू0 1,50,000 ब. रू0 5,00,000
   स. रू0 4,00,000 द. रू0 2,50,000

3. यदि चालू सम्पत्तियॉ 50,000 रूपये की हैं तथा चालू दायित्व 20,000 रूपये के हैं, तब कार्यशील पूॅजी होगी :

   अ. रू0 10,000 ब. रू0 20,000
   स. रू0 30,000 द. रू0 70,000

4. यदि तरल सम्पत्तियॉ 70,000 रूपये की हैं तथा कुल चालू सम्पत्तियॉ 1,00,000 रूपये के हैं, तब स्टॉक राशि होगी :

   अ. रू0 10,000 ब. रू0 30,000
   स. रू0 1,70,000 द. None of these

5. यदि परिचालन व्यय 1,00,000 रू0 हो और वर्ष में परिचालन चक्र 1.25 हो, तो कार्यशील पूॅजी होगी :

अ. रू0 1,25,000 ब. रू0 1,00,000
स. रू0 80,000 द. इनमें से कोई नहीं

निम्न कथन सत्य हैं या असत्य, बताइये :

6. चल अनुपात का आदर्श स्तर 1:1 है।
7. चल सम्पत्तियों के कुल योग को सकल कार्यशील पूॅजी कहते हैं।
8. चल सम्पत्तियों का चल दायित्व पर आधिक्त की शुद्ध कार्यशील पूॅजी कहते हैं।
9. शुद्ध कार्यशील पूॅजी = चालू सम्पत्तियॉ – चालू दायित्व
10. संचालन चक्र विधि कार्यशील पूॅजी की गणना की विधि है।

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. स 2. अ 3. स 4. ब 5. स. 6. सत्य 7. सत्य 8. सत्य

7.10 स्वपरख प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions) –

1. कार्यशील पूॅजी की परिभाषा दीजिए। इसका वर्गीकरण किस प्रकार किया जाता है? एक बड़े संगठन में सक्रिय चालू पूॅजी की राशि किस प्रकार निर्धारित की जानी चाहिए?

   Define working capital. How will you classify it? How will you determine the amount of day to day current capital in a large organisation?

2. कार्यशील पूॅजी की पर्याप्तता की जॉच कैसे करेगें? भारतीय कम्पनियों में कार्यशील पूॅजी की स्थिति का वर्णन कीजिए।

   Discuss the factors which influence the need for working capital. How will you examine the adequacy of working capital? Describe the position of working capital in Indian companies.

3. कार्यशील पूॅजी की परिभाषा दीजिए तथा उसके निर्धारक कारकों का वर्णन कीजिए।

   Define working capital and discuss deteriming factors.

4. कार्यशील पूॅजी के प्रबन्ध से आप क्या समझते हैं? इसके महत्व का वर्णन कीजिए।

   What do you mean by management of working capital? Explain its importance in finance function.

5. कार्यशील पूॅजी के विश्लेषण से आप क्या समझते हैं? इस प्रकार के विश्लेषण में प्रयोग की जानेवाली विधियों की विवेचना कीजिए।

   What do you understand by analysis of working capital? Discuss the techniques which are used in such analysis.

6. किसी व्यवसाय के लिए कार्यशील पूॅजी की आवश्यकता के पूर्वानुमान के लिए कौन–सी विधियों का प्रयोग किया जाता है? उनका उल्लेख कीजिए तथा 'परिचालन–चक्र विधि' को विस्तारपूर्वक समझाइए?

   Working Methods of estimating Working Captial requirements of a business are in use, Mention them and explain in detail The Operating Cycle Method.

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Questions) -

1. कार्यशील पूॅजी से आप क्या समझते हैं?

   What do you mean by Working Capital?

2. कार्यशील पूॅजी के प्रकारों को बताइये?
Discuss the kinds of working capital?
3. कार्यशील पूॅजी का क्या महत्व है?
What is importance of working capital?
4. कार्यशील पूॅजी के किन्हीं चार निर्धारक तत्वों के नाम लिखिए और उन्हें संक्षेप में समझाइये।
List and explain in brief any four determinants of working capital?
5. कार्यशील पूॅजी का अनुमान लगाने की परिचालन चक्रविधि क्या है?
What is operating cycle method of estimating working capital?
6. चालू सम्पत्तियॉ तथा चालू दायित्व क्या है?
What are the current assets and current liabilities?

Illustration

1. निम्न प्रदत्त सूचना से कार्यशील पूॅजी रि आवश्यकता की गणना कीजिए–
From the following information calculate the working capital requirement :

बजटेड बिक्री (Budgeted Sales)	Rs. 13,00,000
बिक्री की लागत पर शुद्ध लाभ का प्रतिशत (Percentage of Net Profit on cost of Sales)	25%
ग्राहकों को प्रदत्त औसत साख (Average Credit Allowed to customers)	10 Weeks
आपूर्तिदाताओं द्वारा प्रदत्त औसत साख (Average Credit allowed by suppliers)	4 Weeks
औसत स्टॉक (बिक्री आवश्यकताओं के सन्दर्भ में) (Average stock carrying (in terms of sales requirement)	8 weeks

गणना की गई राशि में 10 प्रतिशत आकस्मिकताओं के लिए जोड़े।
(Add10% to computed figures for contingencies)
(Ans. Rs. 3,08,000.00)

2.

लेखा अभिलेखों से प्राप्त निम्न आंकडे जेड लि0 के हैंः–	Rs.
वर्ष के दौरान कच्चे माल का औसत स्कन्ध	1,80,000
वर्ष के दौरान चालू कार्य का औसत स्कन्ध	1,00,000
वर्ष के दौरान तैयार माल का औसत स्कन्ध	54,000
व्यापारिक प्राप्य की औसत बाकी	1,50,000
व्यापारिक देय की औसत बाकी	1,20,000
औसत प्रतिदिन की बिक्री	2,000
बेचे गये तैयार माल की औसत प्रतिदिन की लागत	1,800
कच्चे माल का औसत प्रतिदिन का उपभोग	1,200
आपूर्तिदाताओं से प्राप्त औसत साख अवधि	100 दिन

उक्त आंकड़ों के आधार पर बताइए –

अ. स्टोर्स में कच्चे माल को रखने की औसत अवधि,

ब. ग्राहकों को दी गयी साख अवधि,
स. गोदाम में तैयार माल रखने की औसत अवधि,
द. कच्चे माल को तैयार माल में परिवर्तित करने की औसत विधि,
य. कार्यशील पूँजी चक्र (दिनों में)

The following are the data of Z Ltd. taken from the accounting records:	Rs.
Average Inventories of Raw Material during the year	1,80,000
Average Inventories of Work-in-progress during the year	1,00,000
Average Inventories of Finished Goods during the year	54,000
Average Balance of Trade receivables	1,50,000
Average Balance of Trade payables	1,20,000
Average Daily Sales	2,000
Average daily cost of Finished Goods sold	1,800
Average daily consumption of Raw Materials	1,200

Average period of credit available from suppliers is 100 days.

Based on the above data, state :

a Average period of Raw Materials holding in stores,
b. Credit period allowed to customers,
c. Average period for which finished goods stay in godowns,
d. Average period of conversion of raw materials into finished goods,
e. Working capital cycle (in days)

(Ans. 150 days, 75 days, 30 days, 56 days, 211 days)

3. संचालन चक्र रीति के द्वारा नीचे प्रदत्त सूचना से एक्स लि0 की आवश्यक कार्यशील पूँजी की गणना कीजिएः–

(i) अनुमानित बिक्री 20,000 इकाई प्रति वर्ष 5 रू0 इकाई, की दर से ।

(ii) उत्पादन व बिक्री की मात्राएँ मेल खाती है और वर्ष पर्यन्त रूप से जारी रहती हैं।

(iii) उत्पादन लागत निम्नवत् हैं–
सामग्री 2.50 रू0 प्रति इकाई, श्रम 1.00 रू0 प्रति इकाई, अप्रत्यक्ष व्यय 17,500 रू0

(iv) ग्राहकों को 60 दिन की साख दी जाती है और आपूर्तिदाताओं से 50 दिन की साख प्राप्त होती है।

(v) कच्चे माल की 40 दिन की पूर्ति तथा तैयार माल की 15 दिन की पूर्ति स्टोर में रखी जाती है।

(vi) उत्पादन चक्र 20 दिन का है तथा प्रत्येक उत्पादन चक्र के प्रारम्भ में ही सामग्री निर्गमित की जाती है।

(vii) अन्य औसत कार्यशील पूँजी का 1/3 भाग आकस्मिताओं के लिए नकद रूप में रखा जाता है।

Using operating cycle method, calculate working capital required by X Ltd. from the information given below :

i. Estimated Sales 20,000 units p.a. @ Rs. 5 per unit.

ii. Production and Sales Quantities coincide and will be carried throughout the year.

iii. Production cost is estimated as under :
Material Rs. 2.50 per unit,
Labour Rs. 1.00 per unit,
Overheads Rs. 17,500

iv. Customers are given 60 days 'credit and 50 days' credit availed from suppliers.

v. 40 days supply of raw materials and 15 days' supply of finished goods are kept in store.

vi. Production cycle is 20 days and all the materials are issue at the commencement of each production cycle.

vii. 1/3 of average other working capital is kept as cash balance for contingencies.
(Ans. Rs. 27,132)

4. क्षेत्रीय विकास निगम के संचालक मण्डल ने आपसे अनुरोध किया है कि उत्पादन के 15,600 इकाई कार्य–स्तर के लिए कार्यशील पूँजी अनुमान का विवरण तैयार कीजिए। आपकी गणना हेतु निम्न सूचनाएँ उपलब्ध हैं :–

अ. त व विक्रय :	रू0
कच्चा माल	90
श्रम	40
अप्रत्यक्ष व्यय	75
	205
लाभ	60
विक्रय मूल्य –	265

ब.
i. कच्चा माल चार सप्ताह का (औसतन) स्टाक में रहता है।
ii. कच्चा माल निर्माणावस्था में औसतन चार सप्ताह रहता है।
iii. तैयार माल औसतन चार सप्ताह का स्टाक में रहता है।
iv. आपूर्तिदाताओं द्वारा प्रदत्त साख चार सप्ताह की है।
v. देनदारों को दी गयी साख आठ सप्ताह की है।
vi. मजदूरी भुगतान में विलम्बना $1^{1/2}$ सप्ताह का है।
vii. अप्रत्यक्ष व्यय के भुगतान मे विलम्बना चार सप्ताह का है।
viii. देनदारों को विक्रय मूल्य पर ज्ञात किया जा सकता

है।

उत्पादन का 20 प्रतिशत नकद बेचा जाता है। रोकड़ हाथ में 60,000 रू0 अनुमानित है। यह माना जाये कि उत्पादन वर्ष–पर्यन्त समान रूप से चलता है, मजदूरी व अप्रत्यक्ष व्यय भी उसी प्रकार से देय होते हैं और चार सप्ताह एक माह के बराबर है।

The Board of Directors of Kshetriya Vikas Nigam ask you to prepare a statement showing Working Capital estimates for a level of activity of 15,600 units of production. The following information is available for you, your calculation.

		Rs.
A.	ıd Selling Price	
	Raw Materials	90
	Labour	40
	Overheads	75
		205
	Profit	60
	Selling Price	265

B.
- i. Raw Materials are in stock average for four weeks.
- ii. Raw Materials are in process on average for four weeks.
- iii. Finished Goods are in stock on average for four weeks.
- iv. Credit allowed by suppliers four weeks.
- v. Credit allowed to debtors eight weeks.
- vi. Lag in payment of wages $1^{1/2}$ weeks.
- vii. Lag in payment of overheads is four weeks.

20% of the production is sold against cash. Cash in hand is expected to be Rs. 60,000. It is to be assumed that production is carried on evenly throughout the year, wages and overheads accrue similarly and time period of 4 weeks is equivalent to one month.

(Ans. Rs. 6,45,600)

5. सीमा इण्टरप्राइजेज 1 जुलाई, 2017 को एक नयी शाखा खोलने का प्रस्ताव करती है। नीचे दिये समंको के आधार पर कार्यशील पूँजी के अर्थ–प्रबन्धन हेतु आवश्यक रोकड़ की गणना कीजिए :–

Seema Enterprises proposes to open a new branch on 1st July,2017. On the basis of data given below, calculate the amount of cash which will be required to finance the working capital :

Sales for the first six months of 2017	Rs.
January	1,20,000
February	2,40,000
March	3,60,000
April	4,80,000
May	3,60,000
June	3,60,000

यह जनवरी के केवल 3 सप्ताह के लिए है। 1 जुलाई तथा उसके बाद से बिक्री 3,00,000 रू0 पर स्थिर होने की सम्भावना है।

<u>अन्य सूचनाएँ</u> :–

i. बिक्री पर सकल लाभ का अनुपात 10 प्रतिशत है।

ii. आपूर्तिदाता एक माह की साख देते हैं।

iii. देनदारों को दी गयी साख एक माह की है।

iv. प्रत्येक माह का प्रारम्भिक स्टाक उस माह की अनुमानित बिक्री के बराबर है। आपूर्तिदाताओं द्वारा माल की सुपुर्दगी प्रत्येक माह की प्रथम तिमाही के अन्त में दी जाती है।

v. 80,000 रू0 प्रति माह की दर से वेतन प्रत्येक माह के अन्त में दिया जायेगा, जब कि 2,000 रू0 प्रति माह की दर से अप्रत्यक्ष व्यय बाद के माह में दिया जायेगा।

vi. स्थानीय बैंक से 1,00,000 रू0 की अधिविकर्ष की सुविधा प्राप्त होगी।

This is only for 3 weeks of January. From 1st July and onward sales are expected to be stabilised at Rs. 3,00,000 :

Other Information :

i. The percentage of gross profit on sales in 10%.

ii. The suppliers allow one month credit.

iii. Credit allowed to debtors is one month.

iv. Opening Stock of each month is equal to that of month's estimated sales. Good are delivered by the suppliers at the end of first quarter of the month.

v. Salaries @ Rs. 8,000 p.m. will be paid at the end of every month, while overheads @ Rs. 2,000 p.m. will be paid in the following month.

vi. Overdraft facility upto Rs. 1,00,000 will be provided by the local bank.

(Ans. Jan. -8,000, Feb. -2,22,000, March -3,16,000, April. -3,98,000, May -2,50,000, June -2,24,000)

6. 1 अप्रैल, 2017 को सी0 लि0 की अंश पूँजी 3,50,000 रू0 तथा संचिति 70,000 रू0 है, 3,00,000 रू0 स्थायी सम्पत्तियों में विनियोजित है, स्टाक तथा व्यापारिक प्राप्य क्रमशः 30,000 रू0 तथा 97,500 रू0 थे और व्यापारिक देय 15,000 रू0 थे।

व्यावसायिक क्रिया में वृद्धि को झेलने के लिए वर्ष के अन्त में स्टाक स्तर में 50 प्रतिशत की वृद्धि करने का प्रस्ताव है। पूँजी अधिग्रहण बजट के अनुसार 15,000 रू0 की मशीन खरीदने का प्रस्ताव है। 30,000 रू0 ह्रास व लाभ का 50 प्रतिशत कर के लिए चार्ज करने के बाद वर्ष का अनुमानित लाभ 52,500 रू0 है। देय अग्रिम आय कर 45,000 रू0 अनुमानित है। व्यापारिक देय दुगने हो जायेगें। 5 प्रतिशत लाभांश चुकता करना है और अगले वर्ष के लिए 10 प्रतिशत लाभांश का प्रस्ताव करना है। व्यापारिक देय 3 माह तक अदत्त रहते हैं। विक्रय बजट के अनुसार वर्ष की बिक्री 7,50,000 रू0 है। प्रक्षेपी आर्थिक चिट्ठा बनाकर कार्यशील पूँजी का पूर्वानुमान लगाइए।

On 1st April, 2017, S. Ltd. has Rs. 3,50,000 Share Capital and Rs. 70,000 reserves against Rs. 3,00,000 invested in fixed Assets; inventories and trade receivables were Rs. 30,000 and Rs. 97,500 respectively and trade payables amounted to Rs. 15,000.

To sustain the increase in business activity,it is proposed to increase the stock level by 50% at the end of the year. Machinery worth Rs. 15,000 is proposed to be bought during the year as per Capital Acquisition Budget. Estimated profit for the year is Rs. 52,000 after charging Rs. 30,000 depreciation and 50% of profit for taxation. Advance Income-Tax payment is estimated to be Rs. 45,000. Trade payables are likely to be doubled. 5% Dividend is to be paid and 10% dividend for the next year is to be proposed. Trade receivables are estimated to be outstanding for 3 months. Sales budget shows Rs. 7,50,000 as sales for the year.

Make a working capital forecast by preparing Projected Balance Sheet.

Total of Projected Balance-Sheet (Ans. Rs.5,62,500.00)

7.11 सन्दर्भ पुस्तकें

व्यावसायिक वित्त : डा0 आर0एस0 कुलश्रेष्ठ व डा0 विनय शंकर सिंह

उच्च वित्तीय प्रबन्ध : डा0 एस0पी0 गुप्ता व डा0 बी0 कुमार मित्तल

व्यावसायिक वित्त : डा0 एफ0सी0 शर्मा

वित्तीय प्रबन्ध : डा0 एम0डी0 अग्रवाल व डा0 एन0पी0 अग्रवाल

Financial Management : Dr. I.M. Pandey

वित्तीय प्रबन्ध : डा0 ओसवाल

इकाई–8 स्कन्ध का प्रबन्ध (Inventory Management)

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 स्कन्ध
8.2.1 स्कन्ध–प्रबन्ध
8.2.2 स्कन्ध–प्रबन्ध के उद्देश्य
8.2.3 स्कन्ध–प्रबन्ध की आवश्यकता
8.2.4 अत्यधिक स्कन्ध के दोष
8.2.5 अपर्याप्त स्कन्ध के दोष
8.2.6 स्कन्ध का महत्व
8.2.7 स्टाक रखने के उद्देश्य
8.3 स्कन्ध/सामग्री प्रबन्ध के उद्देश्य
8.4 स्कन्ध–प्रबन्ध की तकनीकियॉ
8.5 सारांश
8.6 शब्दावली
8.7 बोध प्रश्न
8.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
8.9 स्वपरख प्रश्न
8.10 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- स्कन्ध व स्कन्ध–प्रबन्ध का आशय बता सकें।
- स्कन्ध–प्रबन्ध की आवश्यकता व महत्व समझ सकें।
- स्कन्ध–प्रबन्ध के उद्देश्य बता सकें।
- स्कन्ध–प्रबन्ध की विभिन्न तकनीकियों को उदाहरण देकर स्पष्ट कर सकें।

8.1 प्रस्तावना

इनवेण्ट्री का आशय सब प्रकार के ऐसे माल से है जो किसी कम्पनी या फर्म द्वारा अपने व्यवसाय के सामान्य संचालन के लिए स्टाक में रखा जाता है, तथा जिसे रखने का उद्देश्य उसका विक्रय करना, अथवा विक्रय के लिए उत्पादित की जाने वाली वस्तु या सेवा के निर्माण में उसका उपयोग करना होता है। इनवेण्ट्री में ऐसे समस्त माल को सम्मिलित किया जाता है जिसकी प्रकृति स्थायी नहीं होती है और उसे स्टाक में केवल इसलिए रखा जाता है जिससे कि उसका उपभोग (Consumption) व्यावसायिक उत्पादन में किया जा सके अथवा व्यवसाय के सामान्य संचालन में उसका विक्रय किया जा सके। श्रीयुत मोंक्स के अनुसर, ''इनवेण्ट्री'' एक ऐसा उपयुक्त साधन है जो आर्थिक रूप से मूल्यवान होता है।'' श्रीयुत आर. विश्वनाथन के अनुसार, ''इनवेण्ट्री का आशय माल के ऐसे स्टाक से है, जिसे व्यवसाय द्वारा वस्तुओं एवं सेवाओं के निर्बाध उत्पादन को सफल बनाने के लिए रखा जाता है।'' इनवेण्ट्री को निम्न पॉच भागों में विभाजित किया जा सकता हैः

क. कच्चा माल (Raw-Material Inventory),
ख. निर्माणाधीन माल (Work-in-Process),
ग. निर्मित माल (Finished Goods Inventory),
घ. स्टोर्स एण्ड सप्लाईज (Stores & Supplies),
ड. अन्य माल (Other Miscellaneous Goods)।

कच्चे माल की इनवेण्ट्री में ऐसा माल सम्मिलित किया जाता है जिसके आधार पर निर्मित माल तैयार होता है, जैसे जूट की गॉठें अथवा सिगरेट फैक्ट्री में तम्बाकू आदि। निर्माणाधीन माल में वह समस्त माल सम्मिलित किया जायेगा जो उत्पादन प्रक्रियाओं के विभिन्न चरणों में ''अर्द्ध–निर्मित अवस्था'' में है और अभी निर्मित माल के रूप में परिवर्तित नहीं हुआ है। अर्द्ध–निर्मित माल जब उत्पादन की समस्त प्रक्रियाओं में होकर पूर्णतः निर्मित अवस्था को पहुॅच जाता है, तो उसे ''निर्मित माल'' की श्रेणी में गिना जाता है। ऐसे माल का पैकिंग, लेबिलिंग, मार्किंग, आदि करके उसे बाजार में विक्रय के लिए तैयार रखा जाता है। ऐसा समस्त माल जो उपर्युक्त तीनों वर्गों में से किसी में नहीं आता है (और जिसकी प्रकृति स्थायी नहीं है), चतुर्थ वर्ग में आता है और इसमें ईंधन, तेल, कोयला, लुब्रीकेटिंग–आयल, रासायनिक पदार्थ, आदि सम्मिलित किये जा सकते हैं। एक सूती मिल का उदाहरण लेकर इस वर्गीकरण को भली प्रकार समझा जा सकता है। ऐसी मिल में रूई की गॉठें तथा कृत्रिम रेशा अथवा सूत कच्चे माल की श्रेणी में आते हैं।

8.2 स्कन्ध (Inventory)

8.2.1 स्कन्ध–प्रबन्ध (Inventory Management)

विशाल उपक्रमों में इनवेण्ट्री का आकार बहुत बड़ा होता है तथा विकास एवं विस्तार के साथ–साथ वह बढ़ता चला जाता है। इतने विशाल परिमाण के विविध प्रकार के माल के स्टाक का कुशल प्रबन्ध करना सरल कार्य नहीं है। इसके लिए विशिष्ट निपुणता की आवश्यकता होती है। इसलिए 'इनवेण्ट्री मैनेजमेण्ट' व्यावसायिक प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण अंग बन चुका है।

सामान्यतः प्रबन्धकीय क्रियाओं का प्रबन्धकीय सिद्धान्तों के आधार पर स्कन्ध के क्षेत्र में सम्पादन ही स्कन्ध–प्रबन्ध कहलाता है। प्रबन्धकीय क्रियाओं में मुख्यतः नियोजन, संगठन, नियन्त्रण व समन्वय को शामिल करते हैं। जब इन चार क्रियाओं को स्कन्ध के सन्दर्भ में सम्पादित किया जाए, तो उसे स्कन्ध–प्रबन्ध कह सकते हैं। इस अर्थ में स्कन्ध–प्रबन्ध से आशय स्कन्ध की मात्रा व मूल्य सम्बन्धी नियोजन, संगठन, नियन्त्रण व समन्वय से होता है। वस्तुतः स्कन्ध–प्रबन्ध का उद्देश्य स्कन्ध के अनुकूलतम आकार का नियोजन है, जो न अधिक हो और न कम हो और साथ ही समय पर उपलब्ध हो। अनुकूलतम आकार के साथ–साथ समय पर उपलब्धि के लिए नियोजन के साथ नियन्त्रण भी आवश्यक होता है। विभिन्न नियन्त्रण तकनीकियों के आधार पर ही यह निश्चित किया जा सकता है कि समय पर स्कन्ध उपलब्ध होगा। परन्तु प्रभावशाली नियन्त्रण अपने आप में संगठन व समन्वय पर निर्भर करता है। संक्षेप में, स्कन्ध–प्रबन्ध में सभी प्रकार के माल के प्रकार, मात्रा, स्थिति, आवागमन तथा समय क्रय को नियोजित, नियन्त्रित एवं संगठित करने की क्रियाओं को शामिल करते हैं।

8.2.2 स्कन्ध–प्रबन्ध के उद्देश्य (Objectives of Inventory Management) :

सार्वजनिक उपक्रमों के ब्यूरो के अनुसार इनवेण्ट्री प्रबन्ध अथवा नियन्त्रण के निम्न चार उद्देश्य होने चाहिए– (i) व्यवसाय के अवरूद्ध (Locked-up) पूँजी में कमी करना, (ii) इस बात के प्रति आश्वस्त होना कि उत्पादन बिना किसी बाधा के निर्बाध गति से होता रहे, (iii) इस बात को निश्चित करना, कि निर्मित माल की बिक्री सुचारू रूप से होती रहे, तथा (iv) उत्पादन में भारी उतार–चढ़ावों को रोकना।

8.2.3 **स्कन्ध–प्रबन्ध की आवश्यकता** (Need for Inventory Management) :

स्कन्ध–प्रबन्ध व्यावसायिक प्रबन्ध का महत्वपूर्ण अंग बन चुका है। व्यवसाय के तीन महत्वपूर्ण क्रियात्मक पहलुओं का प्रत्यक्ष सम्पर्क स्कन्ध–प्रबन्ध से होता है और ये क्रियात्मक प्रबन्ध हैं– उत्पादन–प्रबन्ध, विक्रय–प्रबन्ध और वित्तीय–प्रबन्ध। उत्पादन–प्रबन्ध व विक्रय–प्रबन्ध का सम्बन्ध स्कन्ध–प्रबन्ध के भौतिक पहलू से है, वित्तीय–प्रबन्ध का सम्बन्ध स्कन्ध–प्रबन्ध के वित्तीय पहलू से होता है। उत्पादन–प्रबन्ध की यह चेष्टा होगी कि अच्छे किस्म का कच्चा माल इतनी मात्रा में सदैव स्कन्ध में बना रहे, ताकि उत्पादन–कार्य का संचालन अबाध गति से होता रहे। इसी प्रकार विक्रय–प्रबन्ध यह कोशिश करता है कि तैयार माल की एक गति मात्रा स्कन्ध में बनी रहे, ताकि ग्राहकों को माल की सुपुर्दगी निश्चित समय पर की जा सके और साथ ही साथ उस माल का विक्रय नियमितता के साथ होता रहे। वित्तीय–प्रबन्ध का यह प्रयत्न होगा कि विभिन्न प्रकार के माल के स्कन्ध में लगी हुई पूँजी की मात्रा ऐसी हो, ताकि संस्था को कुछ प्रत्याय–दर अधिकतम रूप में प्राप्त हो। यह कहना आवश्यक नहीं है, कि विभिन्न प्रकार के माल के स्कन्ध मात्रा में निहित वित्तीय पहलू को उत्पादन–प्रबन्ध या विक्रय–प्रबन्ध नजर–अन्दाज नहीं कर सकता है। वस्तुतः सम्पूर्ण व्यवसाय के उद्देश्य को ध्यान में रखकर एक सुनिश्चित समन्वय की आवश्यकता पड़ती है, जिसके लिए सामान्यतः बजटरी नियन्त्रण का सहारा लिया जाता है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि प्रत्येक व्यवसाय की निजी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए स्कन्ध की मात्रा निर्धारित करनी पड़ती है। स्कन्ध की यह मात्रा न तो आवश्यकता से अधिक होनी चहिए और न आवश्यकता से कम। दूसरे शब्दों में, स्कन्ध की मात्रा का आकार आर्थिक या अनुकूलतम होना चाहिए।

8.2.4 **अत्यधिक स्कन्ध के दोष** (Dangers of Excessive Inventory)–

यदि स्कन्ध की वास्तविक मात्रा आर्थिक मात्रा की सीमा से अधिक हो जाती है, तो उससे कई प्रकार की हानियॉ उत्पन्न हो सकती हैं, जैसे :

(i) स्कन्ध एक ऐसी चल सम्पत्ति है जिसमें तरलता की मात्रा नगण्य होती है। यदि कार्यशील पूँजी का अधिकांश भाग और वह भी आवश्यकता से अधिक स्कन्ध में लगा दिया जाता है, तो संस्था की तरलता का क्षय होने लगता है। दूसरे शब्दों में, धीरे–धीरे तरलता का नाश होने लगता है।

(ii) यही नहीं, स्कन्ध का आकार आवश्यकता से अधिक होने का तात्पर्य होता है, कि संस्था ने अपने फण्ड का ऐसी जगह नियोजन कर दिया है, जहॉ उस पर कोई प्रत्याय पाने की सम्भावना नहीं है। इस प्रकार अनावश्यक रूप से फण्ड बन्धित हो जाता है।

(iii) यदि आवश्यकता से अधिक स्कन्ध की मात्रा निर्मित माल के सम्बन्ध में है, तो संस्था का उत्पादन संचालन रूक सकता है। स्कन्ध की अधिक मात्रा की विद्यमानता बाध्य कर देगी, कि उत्पादन संचालन को अल्पकाल के लिए बन्द कर दिया जाए।

(iv) उपर्युक्त तीनों हानियों का सामूहिक प्रभाव लाभ–सीमा पर भी पड़ सकता है। एक तरफ अनावश्यक रूप में पूँजी स्कन्ध में फंस जाती है और दूसरी तरफ उत्पादन कार्य में शिथिलता आ जाती है, अतः यह निर्देशित होता है कि संस्था की लाभ–सीमा दुर्बल पड़ सकती है।

यदि स्कन्ध की अनावश्यक मात्रा को सतत् रूप से चालू रखा जाए, तो उक्त हानियों का प्रभाव समयातीत होने पर इतना गहरा हो सकता है कि व्यवसाय को ही बन्द करना पड़े।

8.2.5 **अपर्याप्त स्कन्ध के दोष** (Dangers of Inadequate Inventory)–

यदि स्कन्ध की वास्तविक मात्रा, आर्थिक मात्रा की सीमा से कम है, अर्थात् व्यवसाय में स्कन्ध की मात्रा अपर्याप्त है, तो यह भी व्यवसाय के लिए अहितकर है, क्योंकि अपर्याप्त स्कन्ध की मात्रा से भी अनेक दोष उत्पन्न हो सकते हैं, जैसे :–

(i) यदि स्कन्ध की मात्रा, विशेषकर कच्चे माल की मात्रा, अपर्याप्त है, तो संस्था अपनी क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं कर सकती है। ऐसी स्थिति में, न केवल संस्था की क्षमता, अप्रयुक्त रह जाएगी बल्कि उसमें कमी भी आ सकती है।

(ii) स्कन्ध की अपर्याप्त मात्रा के कारण जब क्षमता का अनुकूलतम प्रयोग नहीं हो पाता तो इसका प्रभाव उत्पादन लागत पर भी पड़ता है। चूँकि कुछ लागत के तत्व पूर्ण क्षमता के लिए होते है और क्षमता के आंशिक प्रयोग पर उनमें कोई कमी नहीं होती है। अतः आंशिक क्षमता पर कार्य होने से लागत 'राकेट' की तरह आसमान छूने की प्रवृत्ति रखने लगती है।

(iii) अपर्याप्त कच्चे माल के स्कन्ध की दशा में उत्पादन संचालन को सुगम ढ़ंग से सम्पादित नहीं किया जा सकता है। कच्चे माल के अभाव में कभी–कभी उत्पादन में देरी भी हो सकती है।

(iv) उत्पादन के देरी होने का प्रत्यक्ष प्रभाव ग्राहकों को दी जाने वाली सुर्पुदगी पर पडता है। संस्था अपने ग्राहकों के साथ किये गये सुपुर्दगी के वायदों को नहीं निभा पाती है और इस प्रकार से ग्राहकों के प्रति सेवा में कमजोरी आ सकती है।

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यावसायिक संस्था के अन्तर्गत स्कन्ध की मात्रा आवश्यकतानुसार होनी चाहिए, उससे अधिक या कम होने पर अनेक समस्याऍ एवं कठिनाइयॉ उत्पन्न हो जाती है। यही नहीं, आर्थिक या अनुकूलतम मात्रा के साथ–साथ यह भी आवश्यक है, कि इनकी पूर्ति समय पर हो। समय से पूर्व व समय के बाद स्कन्ध की उपलब्धि संस्था के लिए हानिकारक होती है। स्कन्ध के सम्बन्ध में इन दोनों तत्वों से सम्बन्धित कारकों का प्रबन्ध करना ही 'स्कन्ध–प्रबन्ध' को जन्म देता है।

8.2.6 **स्कन्ध का महत्व** (Importance of Inventory):–

1. व्यावसायिक संस्था के सुगम संचालन के लिए स्कन्ध अपरिहार्य है। व्यावसायिक संस्था के संचालन के मुख्य अंग उत्पादन व विपणन है।

स्कन्ध इन दोनों के बीच महत्वपूर्ण कड़ी स्थापित करता है। कड़ी होने के कारण यह उत्पादन व वितरण दोनों को अलग करता है और दोनो क्रियाओं के बीच समन्वय स्थापित करता है। इस प्रकार बिना वितरण अवरोध के उत्पादन का संचालन सम्भव हो जाता है और उत्पादन अवरोध के बिना विपणन भी प्रभावशाली हो जाता है।

2. प्रत्येक व्यावसायिक संस्था के संचालन पर बाजार तत्वों (विशेषकर मॉग में परिवर्तन) का प्रभाव पड़ता है। साथ ही व्यापार चक्र से उत्पन्न परिवर्तनों का भी प्रभाव संस्था के जीवन पर पड़ता है। यदि संस्था सतत रूप में उत्पादन व विपणन क्रमिक ढंग से करती रहे, तो वह इन परिवर्तनों को सहन नहीं कर पाएगी। आवश्यकता इस बात की होती है कि उसके पास स्कन्ध के रूप में कुछ निर्मित माल बना रहे ताकि मॉग में होने वाले परिवर्तनों के साथ तालमेल बैठा सके। इस प्रकार स्कन्ध, मॉग में परिवर्तन व व्यापार चक्र में परिवर्तन से उत्पन्न हानियों से बचाव करता है।

3. चूॅकि स्कन्ध उत्पादन एवं वितरण में समन्वय स्थापित करके उत्पादन एवं वितरण को सुगम एवं सतत बना देता है, इसलिए व्यावसायिक संस्था के अन्तर्गत रोजगार का स्थायीकरण होना सम्भव हो जाता है। यदि स्कन्ध न रखा जाए, तो कभी उत्पादन में कमी करनी पडेगी और कभी उत्पादन को बढ़ाना पड़ेगा। दोनों स्थतियों में रोजगार–स्थिति में उच्चावचन होने की प्रवृत्ति आ जाती है। इस प्रकार स्कन्ध रोजगार स्थायीकरण में सहायक होता है।

4. अधिकांश व्यावसायिक संस्थाओं में कार्यशील पूॅजी का बहुत बडा भाग स्कन्ध के रूप में होता है। कार्यशील पूॅजी के अंग के रूप में स्कन्ध लाभ पैदा करने में सहायक होता है। कार्यशील पूॅजी का केवल स्कन्ध ही एकमात्र ऐसा अंग है जिसके माध्यम से कुछ आय अर्जित की जा सकती है। शेष अंग तरल सम्पत्तियों के रूप में होते है, जिन पर आय की मात्रा नगण्य होती है। यह प्रमाणित हो चुका है कि स्कन्ध का आवर्त प्रत्याय दर को प्रभावित करता है।

8.2.7 <u>स्टाक रखने का उद्देश्य</u> :–

स्टॉक रखने के निम्न उद्देश्य है –

अ. **बिकी खो जाने की सम्भावना को दूर रखना** – यदि व्यवसाय के अन्दर विक्रय–योग्य माल को न रखा जाये, तो व्यावसायिक संस्था व्यवसाय खो देगी। केवल कुछ ग्राहक ही प्रतीक्षा कर सकते हैं और वह भी तब–तक जब तक प्रतियोगियों के पास उस प्रकार का माल/उत्पाद उपलब्ध न हो। अधिकांश दशाओं में एक संस्था को ग्राहकों की मॉग पर माल की आपूर्ति हेतु तैयार रखना चाहिए। टॉड स्टॉक (Shelf Stock) का अर्थ उन मदों से होता है जिन्हें संस्था द्वारा स्टोर में रखा जाता है तथा थोड़ा या नहीं के बराबर संशोधन के साथ ग्राहकों को बेचा जाता है।

ब. **मात्रा छूट का लाभ** – अधिक मात्रा या समूह में खरीदने पर बहुत से आपूर्तिदाता सप्लाइज एवं उप–अंगों की कीमत को कम कर देते हैं। बड़े पैमाने पर आदेश देने पर संस्था को नियमित कीमत पर छूट प्राप्त हो

सकती है। इन छूट की रकम से बेचे गए माल की लागत में कमी आयेगी और विक्रय पर अर्जित लाभ में वृद्धि होगी।

स. **आदेश–लागत मे कमी** – जब–जब एक संस्था आदेश देती है, तो उस पर कुछ न कुछ खर्चा करना पडता है। फॉर्म को भरकर पूरा करना पडता है, अनुमोदन प्राप्त करना पड़ता है और माल आने पर उसे स्वीकार करना पडता है, उसका निरीक्षण करना पड़ता है और गिनना भी पड़ता है। बाद में बीजक का प्रक्रियांकन करना पड़ता है और भुगतान करना पड़ता है। आदेशों की संख्या के अनुसार इनमें से प्रत्येक खर्च में परिवर्तन होता रहता है।

द. **कुशल उत्पादन रन (Run) की प्राप्ति** – प्रत्येक बार जब संस्था एक वस्तु के उत्पादन हेतु कर्मचारियों एवं मशीन का समुच्चय करती है, तो कुछ प्रारम्भिक व्यय करने ही पड़ते हैं जिन्हे बाद में उत्पादन शुरू होने पर अवशोषित कर लेते हैं। उत्पादन का रन जितना ही लम्बा होता है, उतनी ही उत्पादन की शुरूआती लागत कम होती है। बार–बार समुच्चय से लागत अधिक होती है और दीर्घकालीन रन से लागत कम होती है। लागत सम्बन्धी यह बचत इसलिए होती है क्योंकि स्टॉक क्रय उत्पादन व विपणन के बीच सुरक्षा (Buffer) का कार्य करता है।

य. **उत्पादन–अत्यता की जोखिम को कम करना** –निर्माणी संस्थाऍ सौ और कभी–कभी हजारों उपअंगों के साथ उत्पादन का कार्य करती है। यदि इनमें से किसी एक की भी उपलब्धता संदेहात्मक हो या आपूर्ति बिल्कुल न हो, तो सारा उत्पादन तन्त्र रूक जायेगा और भारी व्यय व्यर्थ हो सकते है। ऐसी स्थिति में स्टॉक की मात्रा अधिक रहने पर उत्पादन रन को स्थगित करने व नए उपअंग की खोज करने में सहायता प्राप्त हो सकती है।

8.3 स्कन्ध/सामग्री प्रबन्ध के उद्देश्य (Objectives of Inventory/Material Management)

सामग्री प्रबन्ध के मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार है –

I. कार्यचालन उद्देश्य (Operating Objectives) –

1. **सामग्री की उपलब्धता** (Availability of materials)– सामग्री प्रबन्ध का प्रथम उद्देश्य सामग्री की सतत उपलब्धता बनाये रखना है, जिससे उत्पादन का कार्य सुगमता से चलता रहे। इसके लिए सामग्री के उचित नियोजन, समन्वय और प्रबन्ध पर ध्यान दिया जाता है।
2. **क्षय को रोकना** (Avoidance of wastage)– सामग्री प्रबन्ध का एक उद्देश्य सामग्री की चोरी, रिसाव (Leakage), क्षय (spoilage) तथा गन्दगी, धूल तथा जंग इत्यादि से सामग्री के नुकसान को रोकना है।
3. **निर्माणी कार्यकुशलता को प्रोत्साहन** (Promotion of manufacturing efficiency) – सामग्री प्रबन्ध में उचित समय पर उचित मात्रा में उचित किस्म का माल उपलब्ध कराके निर्माणी कार्यकुशलता को बढ़ाने पर भी ध्यान दिया जाता है।

4. **ग्राहकों को अच्छी सेवा** (Better Service to Customers)– तैयार माल का उचित स्टॉक बनाये रखकर ग्राहकों के आदेशों की तुरन्त आपूर्ति की जा सकती है, जिससे ग्राहकों की अच्छी सेवा का उद्‌देश्य पूरा होता है।
5. **विभिन्न स्तरो का निर्धारण** (Determination of different levels) – सामग्री प्रबन्ध में सामग्री के विभिन्न स्तरो एवं मात्राओं को निर्धारित किया जाता है। इनमें न्यूनतम स्तर, अधिकतम स्तर, पुनः आदेश स्तर, मितव्ययी आदेश मात्रा इत्यादि मुख्य हैं।
6. **सामग्री संग्रहण की कुशल व्यवस्था** (Efficient System of Storage)– जिससे माल का उचित लेखा–जोखा रहे, माल की सुरक्षा रहे। माल का क्षय न हो तथा रिकार्ड से स्टाक का भौतिक प्रमाणन सरलता से हो सके।

II. <u>वित्तीय उद्‌देश्य</u> (Financial Objectives) –

1. **अनुकूलतम विनियोग** (Optimum Investment) – वित्तीय दृष्टि से सामग्री प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण उद्‌देश्य सामग्री में विनियोग की राशि अनुकूलतम बनाये रखना है। इतना कम विनियोग भी न हो, कि समय–समय पर सामग्री का स्टॉक समाप्त हो जाये और उत्पादन कार्य मे बाधा आये। दूसरी ओर अनावश्यक विनियोग भी न हो जिससे पूँजी की लागत बढ़ जाये।
2. **सामग्री की न्यूनतम लागत** (Minimum Cost of Inventory) –सामग्री क्रय करते समय विभिन्न पूर्तिकर्ताओं से सूचनाएँ प्राप्त करके तथा उचित मात्रा में माल का आदेश देकर सामग्री की लागत न्यूनतम करना सामग्री प्रबन्ध का आधारभूत उद्‌देश्य है। इस सन्दर्भ में आदेशन लागत (Ordering Cost) तथा वहन लागत (Carrying Cost)को भी न्यूनतम करने पर ध्यान दिया जाता है।
3. **अनुकूलतम स्टॉक आवर्त** (Optimum Stock Turnover)– माल की आवश्यकतानुसार स्टॉक इतना रखा जाता है जिससे स्टॉक आवर्त अनुकूलतम रह सके।

   स्टाक आवर्त का अर्थ, $\frac{\text{बेचे गये माल की लागत}}{\text{औसत स्टॉक}}$ से होता है।

8.4 स्कन्ध–प्रबन्ध की तकनीकियॉ (Techniques of Inventory Management)

स्कन्ध प्रबन्ध की मुख्य तकनीकियॉ निम्न हैं :

1. मितव्ययी आदेश मात्रा का निर्धारण।
2. स्कन्ध सीमाओं और स्तरों का निर्धारण।
3. चुनिंदा स्कन्ध नियंत्रण तकनीकियॉ।
4. स्कन्ध आवर्त अनुपात।

<u>मितव्ययी आदेश मात्रा (Economic Order Quantity)</u>

<u>मितव्ययी आदेश मात्रा का आशय</u> (Meaning of Economic Order Quantity) –

'मितव्ययी आदेश मात्रा' को 'आर्थिक मात्रा' भी कहा जाता है। इस धारणा को सर्वप्रथम सन् 1915 में श्री एफ0 एन0 हैरिस (F.N. Harris) द्वारा प्रस्तुत किया

गया था। यह क्रयादेश (Purchase Order) की वह मात्रा है, जिस पर निश्चितता की दशाओं की मान्यताओं के अन्तर्गत कुल सामग्री लागत न्यूनतम होती है।

गणितीय व्याख्या की दृष्टि से मितव्ययी आदेश मात्रा सामग्री के क्रय–आदेश की वह मात्रा है, जहॉ सामग्री की कुल आदेशन लागत (Total Ordering Cost) तथा कुल वहन लागत (Total Carrying Cost) प्रत्येक एक–दूसरे के बराबर होती है और दोनो लागतों का जोड़ न्यूनतम होता है।

वास्तव में मितव्ययी आदेश मात्रा को आदेश की 'आदर्श' या 'अनुकूलतम' (Optimal) मात्रा कहा जा सकता है, जिसमें यह ध्यान रखा जाता है कि माल की आदेशन और वहन लागत न्यूनतम हो। इसके लिए एक ओर आदेश मात्रा को इतना बडा करने पर ध्यान दिया जाता है कि, जिससे बड़ी मात्रा में माल लाने पर व्यापारिक छूट (Trade Discount) और यातायात लागत की मितव्ययिता का लाभ उठाया जा सके, वहीं दूसरी ओर उसे इनता बडा भी नही होने दिया जाता कि, ब्याज, बीमा और माल के संग्रहण की लागत अनावश्यक रूप से बढ़ जाये।

मितव्ययीय आदेश मात्रा को निर्धारित करने वाले घटक (Factors affecting the Size of Economic Order)–

यद्यपि मितव्ययी आदेश मात्रा का निर्धारण निश्चित सूत्रों के आधार पर किया जाता है, लेकिन व्यवहार में इस मात्रा को आदर्श और अनुकूलतम बनाने के लिए निम्न घटकों के प्रभावों को भी ध्यान में रखना होता है –

1. **यातायात लागत में मितव्ययिता** (Economy in Transportation Cost)– मितव्ययी आदेश मात्रा के निर्धारण में यह ध्यान रखा जाता है कि सामग्री की प्रति इकाई यातायात लागत को न्यूनतम किया जा सके और इस दृष्टि से आदेश मात्रा में आवश्यक समायोजन किए जाते है। उदाहरण के लिए, माल का भाड़ा प्रति 50 किग्रा या उसके उसके भाग के लिए 100 रू0 हो और सूत्र के आधार पर E.O.Q. 142 किग्रा आ रही है तो इसे 150 किग्रा तक करने का प्रयास हो सकता है, क्योंकि 8 किग्रा पर कोई अतिरिक्त भाड़ा नहीं लगेगा। इसी प्रकार पूरा ट्रक माल लाने में भाड़े में काफी मितव्ययिता हो सकती है।
2. **पूर्तिकर्ताओ की सुविधाओं का लाभ** (Benefits of Facilities offered by supplier)– कभी–कभी पूर्तिकर्ता निश्चित मात्रा या उससे अधिक सामग्री खरीदने पर व्यापारिक बट्टा (Trade Discount), यातायात व्यय की छूट (जैसे– F.O.R. की सुविधा), पैकिंग व्यय में छूट, इत्यादि प्रदान करते है। मितव्ययी आदेश मात्रा का निर्धारण करते समय इन सुविधाओं पर भी विचार किया जाता है।
3. **व्यवसाय की वित्तीय स्थिति** (Financial Position of Business)– E.O.Q. के निर्धारण में व्यवसाय की वित्तीय स्थिति का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। वित्तीय स्थिति की सीमितता आदेश मात्रा को छोटा कर सकती है, जबकि वित्तीय स्थिति की सुलभता आदेश मात्रा को बड़ा करने को प्रेरित है। यदि वित्तीय साधन बाहर से जुटाने हो तो यह तुलना करनी होगी कि उसकी लागत अधिक सामग्री खरीदने पर होने वाली बचत से कम है या नही।

4. **सामग्री की भविष्य में उपलब्धि की स्थिति** (Future Availability of Materials) – आदेश मात्रा के निर्धारण में इस पहलू पर भी विचार किया जाता है कि भविष्य में सामग्री की उपलब्धि की स्थिति क्या रहेगी? यदि भविष्य में सामग्री की पूर्ति सीमित होने या मूल्य बढ़ने की सम्भावना हो तो मितव्ययी आदेश मात्रा बड़ा करने की प्रेरणा मिलेगी। इसके विपरीत भविष्य में पूर्ति बढ़ने और मूल्य घटने की सम्भावना हो तो मितव्ययी आदेश मात्रा को छोटा रखा जाता है।

मितव्ययी आदेश मात्रा की मान्यताएँ (Assumptions of Economic Order Quantity)–

मितव्ययी आदेश मात्रा की सामान्य गणना कुछ निश्चित दशाओं की मान्यताओं पर आधारित है जो निम्न प्रकार है –

1. **निश्चित दर पर सामग्री उपयोग**–E.O.Q. की प्रथम मान्यता यह है कि फर्म में सामग्री का प्रयोग एक निश्चित एवं स्थिर दर के आधार पर होता है।
2. **लागतों में स्थिरता** – दूसरी मान्यता यह है कि एक निश्चित समय में सामग्री की विभिन्न लागतें स्थिर रहेंगी। इनमें सामग्री का क्रय मूल्य, आदेशन लागत तथा वहन लागत सभी शामिल है।
3. **अग्रता समय की निश्चितता** – यह मान लिया जाता है कि अग्रता समय (Lead Time or Procurement Time) ज्ञात है और यह स्थिर रहता है।
4. **माल की एक साथ पूर्ति** (Instantaneous Replenishment)–यह भी माना जाता है कि आदेश देने पर एक साथ पूरे आदेशित माल की पूर्ति हो जायेगी।
5. **माल की निरन्तर पूर्ति** (Continuous Supply)– E.O.Q. की गणना में यह मान्यता भी रहती है कि सामग्री की पूर्ति हमेशा उपलब्ध रहती है और चाहे जब आदेश प्रेषित करके तुरन्त या एक निश्चित अग्रता समय के आधार पर माल की पूर्ति प्राप्त की जा सकती है।

मितव्ययी आदेश मात्रा (EOQ) का निर्धारण (Determination of Economic Order Quantity)–

मितव्ययी आदेश मात्रा के निर्धारण के लिए निम्न सूचनाएँ या समंक आवश्यक है।

(i) वार्षिक प्रयोग की मात्रा इकाइयों में,

(ii) प्राप्ति आदेश प्रेषित करने की लागत,

(iii) प्राप्ति इकाई वार्षिक माल रखने की लागत।

मितव्ययी आदेश मात्रा के निर्धारण की विधियाँ (Methods of Determining E.O.Q.)–

मितव्ययी आदेश मात्रा का निर्धारण निम्न विधियों को अपनाकर किया जा सकता है:–

(A) **तालिका विधि** (Tabular Method)– इस विधि के अन्तर्गत, मितव्ययी आदेश मात्रा विभिन्न माँग मात्राओं के लिए तय की जाती है और इन अनेक माँग मात्राओं से सम्बन्धित आदेशित लागतें व वहन लागते निर्धारित की जाती है। मितव्ययी आदेशित मात्रा उस मात्रा पर तय की जाती है जहाँ पर वार्षिक कुल लागत न्यूनतम है।

उदाहरण -1

एक स्कूटर निर्माण कम्पनी 1,000 स्टील के पुर्जे 70 रू0 प्रति पुर्जे की दर से वर्ष भर में खरीदती है।

प्रति क्रय–आदेश की लागत, अर्थात् एक आदेश देने की लागत 35 रू0 है। इसमें अ–वहन लागतें जैसे कि लिपिकीय, डाक, स्टेशनरी, रेल किराया, आदि के व्यय सम्मिलित हैं।

वर्ष में प्रति इकाई वहन लागत 7 रू0 है जो कि निम्न प्रकार है :

विनियोग पर ब्याज 70 रू0 पर 8 प्रतिशत	5.60 रू0
किराया, कर, बीमा, रख–रखाव, व्यय, आदि	1.40 रू0
	7.00रू0

वहन लागत प्रति इकाई स्टाक मूल्य की 10 प्रतिशत होती है।

उपर्युक्त सूचना से सर्वश्रेष्ठ मितव्ययी आदेश मात्रा की गणना कीजिए।

A Scooter Manufacturing Company purchases 1,000 steel parts @ Rs. 70 per part, during the year.

The costs per Purchase Order, i.e., cost of placing an order works out to be Rs. 35. This includes the non-carrying costs, e.g., clerkial costs, postage, stationery, Rly. freight, etc.

The Carrying Cost per unit during the year is Rs. 7, calculated as follows :

Return on investment @ 8% on Rs. 70	Rs. 5.60
Rent, taxes, insurance, handling charges, etc.	Rs. 1.40
	Rs. 7.00

The carrying cost works out to be 10% on inventory price per unit.

Calculate the most economical order size, i,e,, E.O.Q. from the above information.

हल -

The most economical order size would be that where the carrying cost is equal to the non-carrying cost, as depicted below : Annual Usage : 1,000 Units

No. of Orders per year	Units per order, i.e. order size	Cost of placing order i.e. Rs. 35 each	Average Inventory Units (B÷2)	Carrying Cost Rs. 7 per unit of 'D'	Total Cost (C+E)
A	B	C	D	E	F
1	1,000	35	500	3,500	3,535
2	500	70	250	1,750	1,820
4	250	140	125	875	1,015
8	125	280	62.5	437.50	717.50
10	100	350	50	350	700
12	83	420	41.5	290.50	710.50
20	50	700	25	175	875
50	20	1,750	10	70	1,820

Economic Order Size = 100 Units per order i.e., 10 orders in the year. At this point the Carrying cost is equal to Non-carrying cost, both being Rs. 350 each and the total cost of Rs. 700 being the lowest of all the costs. If more or less than 100 units are ordered in each lot, the total cost in each case could be higher.

(B) अंकगणितीय विधि – मितव्ययी आदेश मात्रा निम्नलिखित सूत्र से ज्ञात की जा सकती है :–

$$E.O.Q.\ (q_o) = \sqrt{\frac{2 \times R \times C_0}{C_c \text{ or } C_H}}$$

जहॉ R = Annual Requirements in Units (इकाइयों में वार्षिक उपयोग)

C_0 = Cost of placing order per order, or Non-carrying Cost per order

(आदेश देने की प्रति आदेश लागत, अथवा अ–वहन लागत प्रति आदेश)

C_C Or C_H = Annual Carrying Cost per unit, or Annual Holding Cost or Carrying cost Percentage x Price per unit

(प्रति इकाई वर्षिक वहन लागत, अर्थात् वहन लागत प्रतिशत x प्रति इकाई का मूल्य)

$$E.O.Q.\ (q_o) = \sqrt{\frac{2 \times 1,000 \times 35}{10\% \text{ of Rs. } 70}}$$

$$= \sqrt{\frac{70,000}{7}}$$

$$= \sqrt{10,000}$$

= 100 Units or 10 orders

उदाहरण -1 में प्रति इकाई वहन लागत 7 रू0 को औसत स्टॉक से गुणा किया गया है। यदि समूची 1,000 इकाइया एक बार में वर्ष के आरम्भ में खरीद ली जायें, तो ये सभी 1,000 इकाइयॉ गोदाम में वर्ष भर नहीं ठहरेंगी, बल्कि वर्ष के अन्त में ये सभी समाप्त होकर शून्य हो जायेगी। अतः औसत इकाइयॉ निकालनी पड़ती है जो

कि– $\frac{1,000 + \text{शून्य}}{2}$ = 500 होगा और इसे 7 रू0 से गुणा कर वहन लागत 3,500 रू0 होगी।

उदाहरण -2

मितव्ययी आदेश मात्रा क्या है? निम्नलिखित से मि0आ0मा0 की गणना कीजिए :

अ. मात्रा = 600 इकाइयॉ, ब. आदेश देने की लागत 12 रू0 प्रति आदेश स. वहन लागत 20 प्रतिशत, द. प्रति इकाई मूल्य 20 रू0

What is Economic Order Quantity? Calculate E.O.Q. from the following :

a. Q = 600 Units, b. Ordering Cost Rs. 12 per order, c. Carrying cost 20%, d. Price per unit Rs. 20

हल -

$$\text{E.O.Q. } (q_o) = \sqrt{\frac{2 \times R \times C_0}{C_c}}$$

$$= \sqrt{\frac{2 \times 600 \times 12}{20\% \text{ of } 20}}$$

$$= \sqrt{\frac{14,400}{4}}$$

$$= \sqrt{3600}$$

$$= 60 \text{ Units}$$

$$\text{No. of Order per year} = \frac{R}{q_0} = \frac{600}{60} = 10 \text{ Orders per year}$$

उदाहरण-3

निम्नलिखित सूचना द्वारा मितव्ययी आदेश मात्रा ज्ञात कीजिए :

मासिक उपभोग	250 इकाइयॉ
एक आदेश देने व प्राप्त करने की लागत	30 रू0
मूल्य प्रति इकाई	5 रू0
सम्भरण व वहन लागत	सामग्री मूल्य का 10 प्रतिशत

Find out the Economic Order Quantity from the following information :

Monthly Consumption	250 Units
Cost of Placing and receiving one order	Rs. 30
Price per unit	Rs. 5
Storage and carrying cost	10% of inventory value

हल-

$$\text{E.O.Q. } (q_o) = \sqrt{\frac{2 \times R \times C_0}{C_c}}$$

$$= \sqrt{\frac{2 \times 3,000 \times 30}{10\% \text{ of Rs. } 5}}$$

$$= \sqrt{\frac{180000}{.5}}$$

$$= \sqrt{360000}$$

= 600 Units per order

No. of Order Per Year = $\frac{R}{q_0} = \frac{3000}{600}$ = 5 Orders per year

कुल सामग्री लागत की गणना (Calculation of Total Inventory Cost)–
कुल सामग्री लागत में निम्न तीन लागतों का योग होता है :–

1. सामग्री का क्रय मूल्य या सामग्री लागत
(Purchase Price of Material or Material Cost)–

इसकी गणना के लिए सामग्री की वार्षिक आवश्यकता की इकाइयों (R) में प्रति इकाई सामग्री की दर (P) का गुणा किया जाता है, अर्थात्

Material Cost = R x P

2. कुल आदेशन लागत (Total Ordering Cost)– इसे अधिप्राप्ति लागत भी कहा जाता

है। इसके लिये आदेशों की संख्या $\left[\frac{R}{q_o}\right]$ में प्रति इकाई आदेश लागत (C_o) का

गुणा किया जाता है, अर्थात्

Total Ordering Cost = $\frac{R}{q_o} \times C_o$

3. कुल धारण लागत (Total Holding Cost)–

इसे वहन लागत (Carrying Cost) भी कहते हैं। इसके लिए औसत स्टाक $\left[\frac{q_o}{2}\right]$ में प्रति इकाई वार्षिक धारण या वहन लागत से गुणा किया जाता है, अर्थात्

Total Holding Cost = $\frac{q_o}{2} \times C_H$

संक्षेप में कुल सामग्री लागत निम्न प्रकार की जाती है :

T.I.C. = Material Cost + Total Ordering Cost + Total Holding Cost

$$= (R \times P) + \left[\frac{R}{q_0} \times C_o\right] + \left[\frac{q_0}{2} \times C_H\right]$$

मात्रा छूट का प्रभाव (Effect of Quantity Discounts)

मात्रा का छूट का आशय मूल्यों में उस छूट या रियायत से है जो एक निश्चित मात्रा में क्रय करने पर आपूर्तिकर्ता द्वारा प्रदान की जाती है। आदेश मात्रा निर्धारित करते समय एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि मात्रा छूट के प्रस्ताव का लाभ उठाना चाहिए या नहीं? यदि कुछ वैकल्पिक प्रस्ताव हैं, तो उनमें से कौन सा प्रस्ताव लाभदायक है? इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम मात्रा छूट पर विचार किये बिना मितव्ययी आदेश मात्रा का निर्धारण करना चाहिए तथा उसके आधार पर

कुछ सामग्री लागत की गणना करनी चाहिए। इसके पश्चात् मात्रा छूट के विभिन्न विकल्पों के आधार पर कुछ सामग्री लागत की गणना करनी चाहिये। यदि मात्रा छूट के आधार पर कुछ सामग्री लागत मितव्ययी आदेश मात्रा के आधार पर कुल सामग्री लागत से कम है तो मात्रा छूट का प्रस्ताव स्वीकार किया जा सकता है।

उदाहरण-4

सामग्री 'वाई' का क्रय मूल्य 400 रू0 प्रति किग्रा है। माल को भण्डार–गृह में रखने की प्रति वर्ष लागत सामग्री के क्रय मूल्य की 10 प्रतिशत आती है तथा आदेश लागत (स्थिर) 400 रू0 प्रति आदेश हैं। यदि वर्ष में कुल आदेश लागत एवं कुछ भण्डारण लागत का योग 4,000 रू0 है तो ज्ञात कीजिए :

अ. आर्थिक आदेश आकार (किग्रा)

ब. सामग्री की कुल वार्षिक मॉग (किग्रा)

स. उपयोग किये जाने वाले माल की वार्षिक लागत।

The purchase price of material 'Y' is Rs. 400 per Kg. The carrying cost of material in store comes out to be 10% of purchase price per annum and the ordering cost (fixed) per order is Rs. 400. If the sum of total ordering cost and carrying cost of the year is Rs. 4,000, determine :

a. Economic order size (in kg)

b. Total Annual Demand of Material (in kg)

c. Annual Total Cost of Material consumed.

हल -

Given- P = Rs. 400 $C_H = \frac{400 \times 10}{100}$ C_o = Rs. 400

a. The sum of total ordering cost and carrying cost of the year is given Rs. 4,000 It is known that EOQ Level each of these two costs remains equal. It means that each cost is Rs. 2000.

C_O = Rs. 400 Hence, number of order in the year $= \frac{2,000}{400} = 5$

Total Holding Cost $= \frac{q_O}{2} \times C_H$

$2,000 = \frac{q_O}{2} \times 40$

$40\ q_O = 4,000$

$q_O = 100$ Kg.

b. Total Annual Demand of Material = Size of Order x No. of Orders

= 100 x 5 = 500 Kgs.

c. Annual Total Cost of Materials consumed :

Cost of Material (R X P = 500 x 400)	Rs.	2,00,000
Total Ordering Cost	Rs.	2,000
Total Holding Cost	Rs.	2,000
	Rs.	2,04,000

उदाहरण-5

राजवर्धन इण्डस्ट्रीज में एक सामग्री की प्रति माह आवश्यकता 2,000 इकाइयों की है। सामग्री की बीजक लागत 48 रू0 प्रति इकाई है। प्रति आदेश लागत 200 रू0 तथा सामग्री वहन लागत औसत स्कन्ध के मूल्य की 20 प्रतिशत है। ज्ञात कीजिए :

(i) आर्थिक आदेश मात्रा तथा प्रति वर्ष क्रयादेशों की संख्या।

(ii) क्या आप 1,200 इकाइयों की न्यूनतम क्रय मात्रा पर 2 प्रतिशत छूट का प्रस्ताव स्वीकार करेगें?

Rajvardhan Industries requires 2,000 units of a material per month. Invoice cost of material is Rs 48 per unit. The cost per order is Rs. 200 and the inventory carrying charges work out to 20% of the value of average inventory. Find out :

(i) Economic order quantity and No. of purchase order per year.

(ii) Would you accept a proposal of 2% discount on a minimum supply quantity of 1,200 units?

<u>हल</u> -

R = 2000 Units x 12 = 24,000

P = Rs. 48 per unit C_P = Rs. 200 C_H = 20% of Rs. 48 = Rs. 9.60

$$\text{E.O.Q.} = \sqrt{\frac{2 \times R \times C_p}{C_c}}$$

$$= \sqrt{\frac{2 \times 24000 \times 200}{9.6}}$$

$$= \sqrt{\frac{96,00,000}{9.6}}$$

= 1,000 Units

$$\text{No. of Orders} = \frac{R}{q_O} = \frac{24,000}{1000} = 24 \text{ Orders}$$

Total Inventory Cost at EOQ

Material Cost	=	R X P	
	=	24,000 x 48 =	11,52,000
Ordering Cost	=	$\frac{R}{q_O} \times C_P$	
	=	$\frac{24,000}{1000} \times 200$ =	4,800
Carrying Cost	=	$\frac{q_O}{2} \times C_H$	

$= \frac{1000}{2} \times 9.6 =$ 4,800

TIC = 11,61,600

Total Inventory Cost
at 1200 Units (at a discount of 2%)

R = 24,000 Units

P = $Rs. 48 - 48 \times \frac{2}{100}$ = Rs. 47.04

C_P = 200 C_H = 20% of 47.04 = Rs. 9.408

Material Cost	=	R X P	
	=	24,000 x 47.04 =	11,28,960
Ordering Cost	=	$\frac{R}{q_O} \times C_P$	
	=	$\frac{24,000}{1200} \times 200 =$	4,000
Carrying Cost	=	$\frac{q_O}{2} \times C_H$	
	=	$\frac{1200}{2} \times 9.408 =$	5644.80
			11,38,604.80

Ans. (ii) Hence proposal must be accepted.

सामग्री की सीमाओं व स्तरों का निर्धारण

(Determination of Inventory of Material Limits and Levels)–

क्रय कब किया जाए? –

मितव्ययी आदेश मात्रा के निर्धारण के पश्चात् दूसरा प्रमुख प्रश्न यह तय करना होता है कि क्रय के लिए आदेश कब किया जाए। क्रय–आदेश तब देना चाहिए जब स्टाक उपभोग द्वारा कम होकर आदेश–बिन्दु (order point) पर आ जाए। आदेश–बिन्दु वह है जहॉ कि आदेश मितव्ययी मात्रा के लिए दिया जाना चाहिए।

स्तरों का निर्धारण –

सामग्री का न तो अति–भण्डारण हो, न न्यून–भण्डारण, अतः संग्रहागार में रखे स्टाक के प्रत्येक मद का अधिकतम स्तर (Maximum Level), न्यूनतम स्तर (Minimum Level) तथा आदेश–बिन्दु (Order Point) होता है।

अधिकतम स्तर (Maximum Level)–

यह स्टाक रखने का शीर्ष स्तर है। इसे 'अधिकतम सीमा' या 'अधिकतम स्टाक' भी कहते हैं। इस स्तर या सीमा से अधिक सामग्री या स्टाक किसी एक

समय में उस मद का नहीं रखा जाना चाहिए, जिस मद की यह सीमा निर्धारित की गयी है। इस स्तर या सीमा का निर्धारण निम्नलिखित बातों पर निर्भर करता है :

एक दी हुई अवधि में उत्पादन की मॉग व आवश्यकता, पूँजी की उपलब्धि, संग्रहागार में रखने के लिए पर्याप्त स्थान, वहन लागतें, सामग्री की प्रकृति अर्थात् अग्नि, वाष्पीकरण व नमी लग जाने का भय, एक विशेष मौसम में ही यह सामग्री या स्टाक बाजार में मिलता है या पूरे वर्ष भर, इसका ज्ञान, मात्रा छूटें (Quantity discounts), वर्तमान मूल्य तथा भावी मूल्य, आयात की सुविधाएँ तथा क्रय हेतु निर्धारित मितव्ययी आदेश मात्रा।

अधिकतम स्टाक को सूत्र के रूप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

Maximum Level = Order Point - (Minimum Usage Rate x Minimum Lead Time) + EOQ or Re-order Quantity

न्यूनतम स्तर (Minimum Level)–

इसे 'न्यूनतम सीमा', 'न्यूनतम स्टाक', 'सुरक्षा सीमा', 'प्रत्यारोधक स्टाक' (Buffer Stock) भी कहते हैं। इस स्तर या सीमा की निर्धारित सामग्री या स्टाक संग्रहागार में अवश्य ही रहना चाहिए ताकि उत्पादन बन्द होने की हालत पैदा न हो। इसका अर्थ यह हुआ कि न्यूनतम स्तर के पहुँचने से पूर्व ही क्रय की गयी सामग्री आ जानी चाहिए। इस स्तर का निर्धारण सप्लाई–अवधि (Lead Time) पर निर्भर करता है। यदि सप्लाई–अवधि लम्बी है तो न्यूनतम स्टाक को कम रखना ठीक रहता है, विपरीत दशा में विपरीत स्थिति होती है। सप्लाई–अवधि में स्टाक का उपयोग (usage) दूसरा घटक है जो विचारणीय है। यदि सप्लाई–अवधि में वस्तु का उपयोग आशा से अधिक होता है, तो न्यूनतम स्तर शीघ्रतर आ पहुँचेगा। तीसरे, इसमें वहन लागत (Carrying Cost) अधिक महत्वपूर्ण होती है क्योंकि न्यूनतम स्टाक को सर्वदा बनाये रखना पड़ता है।

न्यूनतम स्तर को सूत्र के रूप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

Minimum Level = Order Point - (Average Usage Rate x Average Lead Time)

स्टाक तथा स्टाक समाप्ति के मध्य सन्तुलन एवं सुरक्षा स्टाक की गणना (Balancing Inventory and Stock-outs and Computation of Safety Stock)

सुरक्षा स्टाक (Safety Stock) तथा स्टाक–समाप्ति (Stock-outs) पर विचार करना आवश्यक है। न्यूनतम स्टाक ही सुरक्षा स्टाक होता है। यदि सुरक्षा स्टाक बहुत बड़ा होता है तो वहन लागतें बहुत अधिक होती है, यदि वह बहुत कम रखा जाता है तो स्टाक–समाप्ति (Stock-out) का भय रहता है तथा इस दशा में अ–वहन लागतें बहुत अधिक होती हैं। अतः उपयुक्त न्यूनतम स्तर वह हैं जहॉ वहन लागतें तथा अ–वहन लागतें दोनों सन्तुलित रूप में न्यूनतम हों। स्टाक–समाप्ति (Stock-out) की लागतें उत्पादन में कमी, बिक्री की हानि, ग्राहक ख्याति की हानि, आपात काल में ऊँचें मूल्यों पर क्रय करना, मात्रा छूटों की हानि, अधिसमय पारिश्रमिक की अदायगी, आदि की लागते हैं। ये सभी अ–वहन लागतें हैं।

आदेश बिन्दु (Order Point)–

इसे 'आदेश स्तर', 'पुनः आदेश–बिन्दु', 'पुनः आदेश स्तर', 'आदेश सीमा' या 'पुनः आदेश सीमा' भी कहते हैं। आदेश–बिन्दु वह बिन्दु हैं जिस पर सामग्री व स्टाक के क्रय हेतु आदेश दिया जाना चाहिए। आदेश–बिन्दु के निर्णय के तीन बातें प्रमुख होती हैं :

1. सप्लाई–अवधि (Lead Time), 2. सप्लाई–अवधि में उपयोग (Usage), तथा 3. न्यूनतम सीमा, अर्थात् सुरक्षा स्टाक।

सप्लाई–अवधि को तय करने में अत्यन्त सावधानी बरतनी चाहिए क्योंकि यदि माल सप्लाई–अवधि की समाप्ति से पूर्व आ पहुँचता है तो संग्रहागार में स्टाक अधिक हो जायेगा और फलस्वरूप वहन लागतें बढेगी। विपरीत अवस्था में अ–वहन लागते बढ़ेगी।

सूत्र के रूप में आदेश–बिन्दु को इस प्रकार व्यक्त किया जायेगा :

Order Point = Maximum Rate of Usage x Maximum Lead Time

भय या खतरा स्तर (Danger Level)–

यह स्तर वह होता है जिससे स्टाक नीचे जाने पर कारखाने के बन्द होने का भय हो जाता है। यदि भय स्तर आ जाता है तो सामग्री या स्टाक को तुरन्त क्रय करना पड़ता है चाहे अधिक व्यय क्यों न करना पड़े।

खतरा स्तर न्यूनतम स्तर से अधिक या कम किसी भी रूप में हो सकता है। यदि वह न्यूनतम स्तर से नीचे तय किया जाता है, तो खतरा स्तर पर पहुँच जाने पर व्यवस्था में कमी का पता लगाया जाता है तथा सुधारात्मक उपाय (Corrective Measure) आवश्यक हो जाता है। इसके विपरीत यदि खतरा स्तर न्यूनतम स्तर से अधिक और आदेश–बिन्दु से नीचे निर्धारित किया जाता है, तो खतरा स्तर पर आ जाने पर निरोधक उपाय (Preventive Measures) किये जाते हैं, जिससे स्टाक न्यूनतम स्तर से नीचे न पहुँच जाये।

सूत्र के रूप में–

Danger Level = (Average Usage Rate x Emergent Lead Time)

औसत स्टाक स्तर (Average Stock Level)

यह स्तर न्यूनतम स्तर में पुनः आदेश मात्रा की आधी मात्रा जोड़कर निकाला जाता है।

$$\text{Average Stock Level} = \text{Minimum Level} + \frac{1}{2}\,(\text{E.O.Q. or Re-order Quantity})$$

उदाहरण -6

निम्न को ज्ञात कीजिए :

1. मितव्ययी आदेश मात्रा
2. आदेशों की संख्या
3. पुनः आदश बिन्दु
4. सुरक्षा स्कन्ध

वार्षिक मॉग	सामग्री मूल्य 72,000 रू0
प्रति इकाई मूल्य	1 रू0
आदेश लागत	50 रू0
पूॅजी की लागत	30 प्रतिशत
संग्रहरण व्यय	10 प्रतिशत
अग्रता समय	1 माह

सुरक्षा स्कन्ध	दो माह का उपयोग
फैक्ट्री में कार्यशील दिन	360 दिन

Calculate the following :

1. Economic order quantity
2. No. of Orders
3. Re-order Point
4. Safety Stock

Annual Demand	Materials worth Rs. 72,000
Cost per unit	Re. 1
Ordering cost	Rs. 50
Cost of capital	30%
Storage charge	10%
Lead time	1 month
Safety stock	Two month consumption
Work in factory	360 days

हल -

Given - Annual Demand = Material worth = Rs. 72,000

R = Annual Demand/Price Per Unit

= Rs. 72,000/1 , = 72000 Units

C_P = Rs. 50 $C_H = 30\% + 10\% = 1 \times \frac{40}{100}$ = Rs. 0.4

1. E.O.Q. $= \sqrt{\frac{2 \times R \times C_P}{C_H}}$

$= \sqrt{\frac{2 \times 72{,}000 \times 50}{0.4}}$

$= \sqrt{\frac{7200000}{0.4}}$

= 4242.64 Or 4243 Units

2. No. of Orders $= \frac{R}{q_O}$

$= \frac{72{,}000}{4243}$

= 16.97 or 17 orders

3. Re-order = Safety Stock + (Lead Time x

Point		Consumption Rate)
	=	$\frac{72,000}{6}$ + (1 x 12,000)
	=	12000 + 12000 = 24000 Units
Safety Stock	=	Two months Consumption
	=	72000 ÷ 6
	=	12000 Units

उदाहरण -7

निम्नलिखित सूचना से गणना कीजिए– एक्स उपांश के सम्बन्ध में अ.पुनः आदेश स्तर, ब. अधिकतम स्तर, स. न्यूनतम स्तर, द. औसत स्टाक स्तर।

(i) पुनः आदेश मात्रा 3,600 इकाइयॉ, (ii) पुनः आदेश अवधि 6 से 9 सप्ताह, (iii) सामान्य उपयोग 450 इकाइयॉ प्रति सप्ताह, (iv) अधिकतम उपयोग 675 इकाइयॉ प्रति सप्ताह,

(v) न्यूनतम उपयोग 225 इकाइयॉ प्रति सप्ताह।

From the following information calculate :

a. Reorder Level, b. Maximum Level, c. Minimum Level, d. Average Stock Level regading the Component X.

(i) Reorder Quantity 3,600 Units, (ii) Re-order Period 6 to 9 weeks, (iii) Normal Usage 450 Units per week, (iv) Maximum Usage 675 Units per week, (v) Minimum Usage 225 Units per week.

हल -

a.	Reorder Level	=	(Maximum Usage Rate x Maximum Lead Time)
		=	675 Units x 9 Weeks
		=	6,075 Units
b.	Maximum Level	=	Reorder Level - (Minimum Usage Rate x Minimum Lead Time) + Re-order Quantity
		=	6,075 - (225 x 6) + 3600
		=	8,325 Units
c.	Minimum Level	=	Reorder Level - (Average Usage Rate x Average Lead Time)
		=	6,075 - (450 x 7.5)
		=	6,075 - 3,375
		=	2,700 Units

d. Average Stock Level = MinimumLevel + $\frac{1}{2}$ x Reorder Quantity

= 2,700 + $\frac{1}{2}$ x 3,600 = 4,500 Units

<u>**चुनिंदा सामग्री नियन्त्रण तकनीकें**</u> (Selective Inventory Control Techniques) –

सामान्यतः स्टोर में विभिन्न प्रकार की सामग्री रखी जाती है। सभी सामग्रियॉ मूल्य और प्रयोग की दृष्टि से एक समान नहीं होती इस दशा में सभी प्रकार की सामग्रियों के लिए नियंत्रण की एक ही तकनीकी को अपनाना उचित नहीं है। उच्च मूल्य की सामग्री को नियंत्रित करने के लिए विशेष ध्यान की आवश्यकता है। ऐसी तकनीकियॉ सामग्री नियंत्रण की चुनिंदा तकनीकियॉ कहलाती हैं इनमें से कुछ महत्वपूर्ण तकनीकियॉ हैं –

1. **ए0बी0सी0 विश्लेषण** (A.B.C. Analysis Techniques)–

इस तकनीक में सामग्री को तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है :

(A) सर्वाधिक उपभोग मूल्य वाली वस्तुएॅ,

(B) मध्यम स्तरीय उपभोग मूल्य वाली वस्तुएॅ,

(C) कम उपभोग मूल्य वाली वस्तुएॅ।

उपभोग मूल्य के अनुसार ही नियन्त्रण की नीति अपनायी जाती है। A वर्ग की वस्तुओं पर कठोर नियन्त्रण, B वर्ग की वस्तुओं पर मध्यम स्तरीय नियन्त्रण तथा C वर्ग की वस्तुओं पर सामान्य नियन्त्रण की नीति का पालन किया जाता है। इस तकनीक का आधार, प्रबन्ध का यह सामान्य सिद्धान्त है कि ''पौण्ड की चिन्ता कीजिए, पैनी अपनी रक्षा स्वयं करेगी'' (Take care of the Pound, the Peny will take care of itself)।

यद्यपि तीनों वर्गों में सामग्री का वर्गीकरण संस्था द्वारा निर्धारित नीति के आधार पर किया जाता है, लेकिन सामान्यतः इस वर्गीकरण के लिए विभाजन का अग्र सुझाव दिया जाता है :

वर्ग	सामग्री की संख्या या मात्रा का प्रतिशत	सामग्री के कुल उपभोग मूल्य का प्रतिशत
अ	5% से 10%	70% से 75%
ब	20% से 25%	15% से 20%
स	70% से 75%	5% से 10%

ए0बी0सी0 तकनीक अपनाने पर विश्लेषण की दृष्टि से निम्न कदम उठाने पड़ते हैं:

अ. सर्वप्रथम सामग्री की सभी मदों की सूची प्राप्त की जाती है। इसके साथ ही प्रत्येक सामग्री के वार्षिक उपभोग की मात्रा तथा प्रति इकाई दर की सूचनाएॅ भी एकत्रित की जाती हैं।

ब. प्रत्येक सामग्री की मात्रा में दर का गुणा करके वार्षिक उपभोग मूल्य (Annual Usage Value) की गणना की जाती है तथा मूल्य के आधार पर उन्हें अवरोही क्रम में क्रम (Rank) प्रदान किये जाते हैं।

स. प्रत्येक सामग्री को उपभोग मूल्य की राशि के आधार पर पहले से निर्धारित नीति के अनुसार 'अ', 'ब' अथवा 'स' वर्ग में रखते हैं।

द. वर्गानुसार बॅटवारे के पश्चात् प्रत्येक वर्ग में सामग्री की मात्रा एवं उपभोग मूल्य का प्रतिशत ज्ञात करते हैं।

उदाहरण -8

नीचे दी हुयी सूचना के आधार पर निम्न मदों को अ, ब और स श्रेणी में वर्गीकृत कीजिए–

Classify the following items into A, B and C categories on the basis of information given below :-

Category A- Rs. 40,000 and above (total value)
Category B- From Rs. 20,000 to Rs. 39,999 (total value)
Category C- Below Rs. 20,000

Item No.	Units (No.)	Units Rate (Rs.)
1	2,500	4
2	2,000	10
3	5,800	2
4	1,500	4
5	200	400
6	5,700	2
7	3,000	8
8	100	300
9	1,300	200
10	2,500	6
11	400	12
12	2,000	18

हल-

Statement of Material Analysis

Items	Units	Unit Rate	Total Units Value (Rs.)	A Rs. 40,000 and above	B fromRs. 20,000 to Rs. 39,999	C Below Rs. 20,000
1	2,500	4	10,000			10,000
2	2,000	10	20,000		20,000	-
3	5,800	2	11,600			11,600
4	1,500	4	6,000			6,000
5	200	400	80,000	80,000		
6	5,700	2	11,400			11,400
7	3,000	8	24,000		24,000	
8	100	300	30,000		30,000	
9	1,300	200	2,60,000	2,60,000		
10	2,500	6	15,000			15,000
11	400	12	4,800			4,800
12	2,000	18	36,000		36,000	
Total	27,000 Units		5,08,000	3,40,000	1,10,000	58,800

Units of A Category = 200 + 1,300 = 1,500 Units
Units of B Category = 2,000 + 3,000 + 100 + 2,000 = 7,100 Units

Units of C Category = 2,500 + 5,800 + 1,500 + 5,700 + 2,500 + 400 = 18,400 Units

SUMMARY OF ANALYSIS

	A	B	C
% of Total Units	1,500 x 100 = 5.56% 27,000	7,100 x 100 = 26.3% 27,000	18,400 x 100 = 68.14% 27,000
% of Total Value	3,40,000 x 100 = 5,08,800 = 66.82%	1,10,000 x 100 = 5,08,800 = 21.62%	58,800 x 100 = 11.56% 5,08,800

1. **वी0ई0डी0 विश्लेषण तकनीक** (V.E.D. Analysis Technique)–

इस तकनीक का प्रयोग मुख्यतः फालतू पार्ट्स तथा अवयवों (Spare Parts and Components) के नियन्त्रण में किया जाता है। इस तकनीक का पूरा नाम Vital, Essential and Desirable Analysis. इस तकनीक में स्पेयर पार्ट्स इत्यादि को निम्न तीन वर्गो में विभाजित किया जाता है :

अ. **अपरिहार्य** (Vital)– इस वर्ग में उन पार्ट्स को रखा जाता है, जो अपरिहार्य है अर्थात् जिनके बिना उत्पादन कार्य ही रूक जायेगा। उत्पादन की सुगमता एवं सततता बनाये रखने के लिए ऐसे पार्ट्स का आवश्यक स्टाक निरन्तर बनाये रखने की व्यवस्था की जाती है।

ब. **आवश्यक** (Essential)– इस वर्ग में वे पार्ट्स शामिल किये जाते हैं जो उत्पादन व्यवस्था की कुशलता के लिए आवश्यक है अर्थात् जिनके न होने पर उत्पादन पूरी तरह बन्द तो नहीं होता, लेकिन उसकी गति तथा किस्म में अस्थायी बाधाएँ आने लगती हैं। अतः इनका भी उचित मात्रा में स्टाक रखना आवश्यक है।

स. **वांछनीय** (Desirable)– इस वर्ग में वे पार्ट्स रखे जाते हैं जो उत्पादन व्यवस्था के लिए अपरिहार्य या आवश्यक नहीं होते और जिनके अभाव से उत्पादन पर तुरन्त ही प्रतिकूल प्रभाव भी नहीं पड़ता। अतः इनका कम स्टाक रखने से भी काम चल जाता है।

2. **एच0एम0एल0 विश्लेषण तकनीक** (H.M.L. Analysis Techniqe)–

यह तकनीक ए0बी0सी0 विश्लेषण की तरह ही है लेकिन अन्तर यह है कि ए0बी0सी0 तकनीक में सामग्री का वर्गीकरण कुल उपभोग मूल्य के आधार पर किया जाता है, जब कि एच0एम0एल0 तकनीक में इकाई मूल्य के आधार पर किया जाता है। H-High, M-Medium तथा L-Low मूल्य का संकेतक है।

3. **एफ0एस0एन0 विश्लेषण तकनीक** (F.S.N. Analysis Technique)–

सामग्री की विभिन्न मदों के उपभोग प्रारूप के आधार पर नियन्त्रण की दृष्टि से इन तकनीक को अपनाया जाता है। इसमें F-Fast moving, S-Slow moving तथा N-Non moving मदों के लिए प्रयोग होता है। यह तकनीक भण्डार में स्टाक की व्यवस्था करने तथा वितरण एवं हस्तन प्रारूप का निर्धारण करने में महत्वपूर्ण रहती है।

4. **एस0डी0ई0 विश्लेषण तकनीक** (S.D.E. Analysis Technique)–

सामग्री की विभिन्न मदों की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए उनकी व्यवस्था एवं नियन्त्रण की दृष्टि से इस तकनीक का प्रयोग किया जाता है। इसमें S (Scarce) उन मदों के लिए प्रयोग होता है, जिनकी पूर्ति पर्याप्त मात्रा में नहीं है। D (Difficult) उन मदों के लिए होता है, जिनकी पूर्ति तो है, लेकिन प्राप्ति में कठिनाइयॉ रहती हैं। E (Easily available) वर्ग में स्थानीय बाजार में सरलता से उपलब्ध मदों को रखा जाता है।

5. **एस–ओ0एस0 विश्लेषण तकनीक** (S-OS Analysis Technique)–

इस तकनीक का प्रयोग माल क्रय करने की उचित व्यूह रचना तैयार करने की दृष्टि से किया जाता है। इसके अन्तर्गत सामग्री की मदों को दो वर्गो में विभाजित किया जाता है– अ. मौसमी मदें (Seasonal Items) तथा ब. गैर–मौसमी मदें (Off-Seasonal Items)

स्कन्ध आवर्त अनुपात (Stock Turnover Ratios)–

इस अनुपात 'Inventory Turnover' या 'Merchandise Turnover' भी कहा जाता है। यह अनुपात एक निश्चित अवधि में बेचे गए माल की लागत का उस अवधि के औसत स्कन्ध से सम्बन्ध (अनुपात) स्थापित करता है। इस अनुपात को ज्ञात करने का मुख्य उद्देश्य यह पता लगाना है कि स्टाक का सही उपयोग हो रहा है या नहीं। स्कन्ध आवर्त अनुपात जितना अधिक होगा, वह कार्य निष्पादन की उतनी ही अधिक कुशलता को स्पष्ट करेगा। जिन उद्योगों में यह अनुपात अधिक होता है वह सामान्यतः लाभ की कम दर पर कार्य करने को तैयार हो जाते हैं। यह अनुपात कम होने का अर्थ है कि स्कन्ध में अधिक राशि विनियोग करनी होती है तथा स्कन्ध अधिक बार पलटा नहीं खा पाता। स्कन्ध आवर्त अनुपात का सूत्र निम्न प्रकार है :

$$\text{स्कन्ध आवर्त अनुपात} = \frac{\text{बेचे गए माल की लागत}}{\text{औसत स्कन्ध या इन्वेण्ट्री}}$$

$$\text{Stock Turnover Ratio} = \frac{\text{Cost of Goods Sold}}{\text{Average Stock or Inventory}}$$

नोट–

1. Cost of Goods Sold = Sales - Gross Profit

Or = Opening Stock + Purchases + Wages + Direct Exp. - Closing Stock

या = प्रारम्भिक स्कन्ध + क्रय + मजदूरी + प्रत्यक्ष व्यय – अन्तिम स्कन्ध

2. Average Stock

$$= \frac{\text{Opening Stock + Closing Stock}}{2}$$

$$= \frac{\text{प्रारम्भिक स्कन्ध + अन्तिम स्कन्ध}}{2}$$

3. यदि प्रश्न में बेचे गए माल की लागत न दी हो और न ज्ञात हो सकती है, तो इसके स्थान पर विक्रय की शुद्ध राशि (Net Sales) प्रयोग कर सकते हैं।
4. यदि प्रश्न में औसत स्कन्ध न दिया हो और न ज्ञात हो सकता हो तो प्रारम्भिक या अन्तिम स्कन्ध का ही प्रयोग किया जा सकता है।
5. प्रस्तुत सूत्र में स्कन्ध का अर्थ तैयार माल के स्कन्ध (Stock of Finished Goods) से होता है।

उदाहरण -9

निम्न विवरण से स्कन्ध आवर्त अनुपात ज्ञात कीजिए :

From the following particulars find out Inventory Turnover Ratio :

a. Opening Stock Rs. 29,000; Closing Stock Rs. 31,000; Sales Rs. 3,00,000;
Gross Profit 25% on cost.
b. Sales Rs. 4,00,000; Average Stock Rs. 60,000; Gross Loss Ratio 20%.
c. Opening Stock Rs. 60,000; Purchases Rs. 3,40,000; Cost of Goods Sold Rs. 3,00,000.
d. Opening Stock Rs. 38,500; Closing Stock Rs. 41,500; Annual Sales Rs. 2,00,000; Gross Profit 25% on cost.

हल -

a. Inventory Turnover Ratio = $\frac{\text{Cost of Goods Sold}}{\text{Average Stock}}$

Gross Profit 25% on cost इसका अर्थ है यदि लागत 100 रू0 है तो Gross Profit 25 रू0 होगा अर्थात् विक्रय मूल्य 125 रू0 होगा।

Gross Profit = $3,00,000 \times \frac{25}{125}$ = 60,000

Cost of Goods Sold = 3,00,000 - 60,000 = 2,40,000

Average Stock = $\frac{\text{Opening Stock + Closing Stock}}{2}$

= $\frac{29,000 + 31,000}{2}$ = 30,000

Inventory Turnover = $\frac{2,40,000}{30,000}$ = 8 Times

b. Sales = Rs. 4,00,000

Gross Loss = 20% of Sales (Rs. 4,00,000) = Rs. 80,000

Cost of Goods Sold = Sales + Loss

= 4,00,000 + 80,000 = Rs. 4,80,000

Inventory Turnover = $\frac{\text{Cost of Goods Sold}}{\text{Average Stock}}$

= $\frac{4,80,000}{60,000}$ = 8 Times

c. Cost of Goods Sold = Opening Stock + Purchases - Closing Stock

3,00,000 = 60,000 +3,40,000 - Closing Stock

Closing Stock = 4,00,000 - 3,00,000

= 1,00,000

Average Stock = $\frac{\text{Opening Stock + Closing Stock}}{2}$

= $\frac{60,000 + 1,00,000}{2}$

= 80,000

Inventory Turnover = $\frac{3,00,000}{80,000}$

= 3.75 Times

d. Gross Profit 25% on Cost, इसका अर्थ है यदि विक्रय–मूल्य 100 रू0 है तो Gross Profit 25 रू0 होगा अर्थात् विक्रय मूल्य 125 रू0 होगा।

Gross Profit = 2,00,000 x $\frac{25}{125}$ = Rs. 40,000

Costs of Good Sold = 2,00,000 - 40,000 = 1,60,000

Average Stock = $\frac{\text{Opening Stock + Closing Stock}}{2}$

= $\frac{38,500 + 41,500}{2}$ = 40,000

Inventory Turnover = $\frac{\text{Cost of Goods Sold}}{\text{Average Stock}}$

= $\frac{1,60,000}{40,000}$ = 4 Times

उदाहरण -10

निम्न सूचनाओं से प्रारम्भिक स्टाक तथा अन्तिम स्टाक की गणना कीजिए :

स्टाक आवर्त्त अनुपात 5 गुना, कुल बिक्री रू0 2,00,000, सकल लाभ अनुपात 25 प्रतिशत, अन्तिम स्टाक प्रारम्भिक स्टाक से 4,000 रू0 अधिक है।

From the following information, determine the Opening Stock and Closing Stock :

Inventory Turnover Ratio 5 Times, Total Sales Rs. 2,00,000; Gross Profit Ratio 25%; Closing Stock is more by Rs. 4,000 than the Opening Stock.

Solution -

Cost of Goods Sold = Sales - Gross Profit

= Rs. 2,00,000 - (25% on sales i.e. 50,000)

= Rs. 1,50,000

$$\text{Inventory Turnover} = \frac{\text{Cost of Goods Sold}}{\text{Average Stock}}$$

$$5 = \frac{1,50,000}{\text{Average Stock}}$$

Average Stock = Rs. 30,000

माना Opening Stock A है तो Closing Stock A + 4,000 होगा

$$\text{Average Stock} = \frac{\text{Opening Stock + Closing Stock}}{2}$$

$$30,000 = \frac{A + A + 4,000}{2}$$

$$30,000 = \frac{2A + 4,000}{2}$$

$$30,000 = \frac{2(A + 2000)}{2}$$

A = 28,000 (Opening Stock)

Closing Stock = A + 4,000

= 28,000 + 4,000

= 32,000

8.5 सारांश

आधुनिक युग में स्कन्ध प्रबन्ध व्यावसायिक प्रबन्ध का एक अभिन्न अंग बन चुका है। एक व्यावसायिक संस्था में तीन अभिन्न क्रियात्मक प्रबन्ध होते हैं– उत्पादन प्रबन्ध, विक्रय प्रबन्ध एवं वित्त प्रबन्ध। तीनों ही प्रकार के प्रबन्ध में स्कन्ध प्रबन्ध की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। जहॉ उत्पादन प्रबन्ध व विक्रय प्रबन्ध का सम्बन्ध स्कन्ध प्रबन्ध के भौतिक पहलू से है, वहीं वित्तीय प्रबन्ध का सम्बन्ध स्कन्ध प्रबन्ध के वित्तीय पहलू से होता है। उत्पादन प्रबन्ध का यह प्रयास रहता है कि अच्छी किस्म का कच्चा माल इतनी मात्रा में सदैव स्टाक में विद्यमान रहे, जिससे कि उत्पादन कार्य का संचालन निर्बाध गति से होता रहे। इसी प्रकार विक्रय प्रबन्ध की यह कोशिश रहती है कि तैयार माल की एक निश्चित मात्रा, स्कन्ध के रूप में सदैव रहे, ताकि सही समय पर ग्राहकों को माल की पूर्ति करके संस्था की ख्याति को बनाये रखा जा सके। वित्तीय प्रबन्ध का भी यह प्रयत्न रहता है कि विभिन्न प्रकार के माल में स्कन्ध में लगी हुई पूॅजी की मात्रा इतनी हो, जिससे संस्था अधिकतम प्रत्याय दर को प्राप्त कर सके। इसके लिए स्कन्ध–प्रबन्ध की विभिन्न तकनीकियों का प्रयोग किया जाता है।

किसी भी व्यावसायिक संस्था को स्कन्ध रखने की लागत को वहन करना पड़ता है। यदि व्यावसायिक संस्था में स्कन्ध की अनुकूलतम मात्रा का निर्धारण किया जाये तो इससे एक ओर तो उत्पादन लागत में कमी आती है एवं दूसरी ओर लाभदायकता में वृद्धि होती है। स्कन्ध प्रबन्ध के कारण संस्था को अनेक लाभ प्राप्त होते हैं।

8.6 शब्दावली

चालू कार्य (Work in Progress) : अर्द्धनिर्मित माल (Semi-finished goods) को चालू कार्य कहते हैं।

भौतिक सत्यापन (Physical Verification) : स्कन्ध को देखकर और उसकी गिनती (गणना) करके मिलान करना भौतिक सत्यापन कहलाता है।

अपरिहार्य– जिसके बिना काम न चले। उदाहरण के लिए स्कन्ध।

स्कन्ध (Stock)– स्कन्ध में कच्चा माल (Raw Materials), अल्प भाग (Spare Parts),

प्रदाय (Supplies), अर्द्ध–निर्मित माल (Semi-finished goods) व तैयार माल (Finished Goods) को शामिल करते हैं।

चल सम्पत्ति (Current Assets) : स्कन्ध को चल सम्पत्ति में शामिल करते हैं।

तरल सम्पत्ति (Liquids Assets) : स्कन्ध को तरल सम्पत्ति में शामिल नहीं करते हैं।

स्कन्ध (Stock) = चल सम्पत्ति (Current Assets) – तरल सम्पत्ति (Liquid Assets)

आदेश लागत (Ordering Cost)– स्कन्ध के आदेश (Order) देने की लागत को आदेश लागत कहते हैं।

वहन लागत (Carrying Cost)– स्कन्ध के रखने पर किराया, कर, ब्याज, बीमा व संग्रह के लागत को वहन लागत (Carrying Cost) कहते हैं।

मितव्ययी आदेश मात्रा (Economic Order Quantity) इस मात्रा का आदेश (Order) देने पर मितव्ययिता (बचत) प्राप्त होती है।

8.7 बोध प्रश्न

रिक्त स्थान की पूर्ति करें (Fill in the blank)

1. EOQ का पूरा रूप है ————————
2. EOQ ज्ञात करने का सूत्र है– EOQ = ————————
3. Maximum Level = ———————— - (Minimum Usage Rate x Minimum Lead Time)
4. Minimum Level = ———————— – (Average Usage Rate x Average Lead Time)
5. Order Point = ———————— x Maximum Lead Time
6. Danger Level = ———————— x Emergent Lead Time
7. Average Stock Level = ———————— + $\frac{1}{2}$ (E.O.Q. or Re-order Quantity)
8. ए0बी0सी0 विश्लेषण तकनीक में 'ए' का अर्थ है ————————
9. वी.ई.डी. विश्लेषण तकनीक में 'वी' का अर्थ ———————— है।

10. ———————— = $\frac{\text{Cost of Goods Sold}}{\text{Average Stock}}$

8.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. Economic Order Quantity

2. $\sqrt{\frac{2 \times R \times C_O}{C_C \text{ Or } C_H}}$

3. Order Point, 4. Order Point, 5. Maximum Rate of Usage, 6. Average Usage Rate, 7. Minimum Level, 8. सर्वाधिक उपभोग मूल्य वाली वस्तुएँ, 9. Vital (अपरिहार्य), 10. Stock Turn over

8.9 स्वपरख प्रश्न

1. निम्न सूचना से मितव्ययी आदेश मात्रा तथा वर्ष में दिये जाने वाले आदेशों की संख्या ज्ञात कीजिए–

वार्षिक उपभोग	4,000 इकाइयॉ
क्रय करने की प्रति आदेश लागत	60 रू0
प्रति इकाई मूल्य	10 रू0
गोदाम व वहन लागत औसत सामग्री की प्रतिशत के आधार पर	3 रू0

From the following information, find out the Economic Order Quantity and the number of orders placed in the year :

Annual Consumption	4,000 Units
Buying Cost per order	60 Rs.
Price Cost per order	10 Rs.
Storage and carrying cost as a percentage of Average Inventory	3 Rs.

;Ans. 400 Units per order or 10 orders per year)

2. एक मद की वार्षिक मांग 3,200 इकाइयॉ है। इकाई लागत 6 रू0 तथा सामग्री वहन लागत 25 प्रतिशत वार्षिक है। यदि एक आदेश की लागत 150 रू0 हो तो निर्धारित कीजिए: (i) मितव्ययी आदेश मात्रा, (ii) प्रति वर्ष आदेशों की संख्या तथा (iii) दो लगातार आदेशों के मध्य समय अन्तराल।

The annual demand for an item is 3,200 units. The unit cost is Rs. 6 and the inventory carrying cost is 25% per annum. If the cost of an order is Rs. 150, determine : (i) E.O.Q., (ii) Number of order per year, (iii) Time between consecutive orders.

(Ans. (i) 800 Units per order or (ii) 4 orders per year (iii) 3 months)

3. एक कारखाना उत्पादन के लिए एक पुर्जा 10 रू0 प्रति इकाई क्रय करता है और उपयोग में आता है। वार्षिक आवश्यकता 2,000 इकाइयों की है। स्कन्ध के रखरखाव की लागत 10 प्रतिशत प्रति वर्ष और आदेश देने की लागत 40 रू0 प्रति आदेश है। क्रय प्रबन्धक का प्रस्ताव है कि चूॅकि आदेश देने की लागत बहुत अधिक है। अतः पूरी आवश्यकता के लिए एक

ही क्रय आदेश देना अधिक लाभप्रद होगा। इनका यह भी कहना है कि यदि 2,000 इकाइयों का आदेश एक ही समय दिया जाता है तो हम आपूर्तिकर्ता से 2 प्रतिशत कटौती भी प्राप्त कर सकते हैं।

प्रस्ताव का मूल्यांकन कीजिए और अपना सुझाव दीजिए।

A factory buys and uses a component for production at Rs. 10 per unit. Annual requirement is 2,000 units. Carrying cost is 10% p.a. of inventory and ordering cost is Rs. 40 per order. The purchase manager proposes that as the ordering cost is very high it is profitable to place a single order for the entire annual requirement. He also says that if we order 2,000 units at one time we can get 2% discount from the supplier.

Evaluate the proposal and make your recommendation.

(Ans. 400 Units per order or 5 orders in a year; Total Inventory Cost on the basis of EOQ is Rs. 20,400. Total Inventory Cost if order is placed for 2000 units in one lot and 2% discount is availed Rs. 20,620)

(सुझाव क्रय प्रस्ताव लाभदायक नहीं है अतः EOQ के आधार पर क्रय नीति अपनानी चाहिए)

4. एक कारखाने में कोयले की प्रतिदिन औसत खपत 5 टन है, अधिकतम खपत प्रतिदिन 9 टन है, न्यूनतम स्तर 45 टन है, व मितव्ययी आदेश मात्रा (पुनः आदेश मात्रा) 208 टन है। सप्लाई आने में 8 से 10 दिन लगते हैं तथा आपातकालीन स्थिति में क्रय हेतु 2 दिन लगते हैं। विभिन्न स्तर ज्ञात कीजिए।

The average consumption of coal in a factory is 5 ton per day, the maximum consumption per day is 9 ton, Minimum level is 45 ton and Economic Order Quantity is 208 ton. It is estimated that the supply would take eight to ten days. The emergent supply time is two days. Find out different levels of inventory.

(Ans. Order Point or Order Level 90 ton; Minimum Level or Safety Stock 45 ton; Maximum Level 290 ton; Average Stock Level 149 ton; Danger Level 10 ton)

5. 'अ' तथा 'ब' नामक सामग्रियों का विवरण निम्न प्रकार हैः

सामान्य उपयोग	10 इकाइयॉ प्रति सप्ताह प्रत्येक की
न्यूनतम उपयोग	5 इकाइयॉ प्रति सप्ताह प्रत्येक की
अधिकतम उपयोग	15 इकाइयॉ प्रति सप्ताह प्रत्येक की
पुनः आदेश मात्रा	'अ'– 60 इकाइयॉ 'ब'– 100 इकाइयॉ
पुनः आदेश अवधि	'अ'– 3 से 5 सप्ताह 'ब'– 2 से 4 सप्ताह

प्रत्येक सामग्री के लिए गणना कीजिए :

अ. पुनः आदेश स्तर, ब. न्यूनतम स्तर, स. अधिकतम स्तर, द. औसत स्टाक स्तर

The particulars of A and B materials are as follows :

Normal Usage	10 units per week each
Minimum Usage	5 units per week each
Maximum Usage	15 units per week each

Re-order Quantity	A - 60 Units B - 100 Units
Re-order Period	A - 3 to 5 weeks B - 2 to 4 weeks

Calculate for each material :
a. Re-order Level; b. Minimum Level; c. Maximum Level and d. Average Stock Level.
(Ans. (a) 75 units, 60 units (b) 35 units, 30 units (c) 120 units, 150 units
(d) 65 units, 80 units)

6. एक कम्पनी चयनात्मक सामग्री नियन्त्रण के लिए विचार कर रही है, निम्नलिखित समंकों का प्रयोग करते हुए अ, ब, स योजना बनाइए :

A company is considering a selective control for its inventories. Using the following data prepare A, B, C plan :
Category A : Rs. 4,500 and above (Total Value)
Category B : Rs. 2,001 to Rs. 4,499 (Total Value)
Category C : Upto Rs. 2,000

Item No.	Units	Unit Rate (Rs.)
1	700	5.00
2	1,100	5.00
3	400	12.50
4	1,000	0.30
5	500	6.00
6	800	3.00
7	1,000	3.10
8	500	2.60
9	3,500	9.00
10	500	0.40

(Ans. Percentage of Total Units A 20%, B 30% & C 50%;
Percentage of Total A 50%, B 40% & C 10%)

7. निम्न सूचनाओं से प्रत्येक वर्ष के लिए स्कन्ध आवर्त अनुपात की गणना कीजिये–

	2015-16 (Rs.)	2016-17 (Rs.)
प्रारम्भिक स्कन्ध	20,000	32,500
वर्ष में क्रय	1,27,500	1,70,000
वर्ष में विक्रय	1,50,000	2,00,000
अन्तिम स्कन्ध	32,500	25,000

From the following information, calculate the Inventory Turnover Ratio for each year:

	2015-16 (Rs.)	2016-17 (Rs.)
Opening Stock	20,000	32,500
Purchases during the year	1,27,500	1,70,000
Sales during the year	1,50,000	2,00,000
Closing Stock	32,500	25,000

(Ans. 4.38 Times; 6.17 Times)

8. निम्न विवरण में स्कन्ध आवर्त अनुपात ज्ञात कीजिए :

From the following particulars, find out Inventory Turnover Ratio :

a. Sales Rs. 3,20,000; Gross Profit Ratio 25% on sales; Opening Stock Rs. 31,000; Closing Stock Rs. 29,000

b. Opening Stock Rs. 20,000; Closing Stock Rs. 10,000; Purchases Rs. 50,000; Carriage Inward Rs. 5,000;
Total Sales Rs. 1,00,000; Cash Sales Rs. 10,000

c. Sales Rs. 4,00,000; Gross Profit 25% on Cost; Opening Stock was 1/3 of the value of the closing stock.
Closing Stock was 30% of Sales.

(Ans. (a) 8 times (b) 4.33 times (c) 4 times)

9. निम्न समंकों से स्कन्ध आवर्त अनुपात की गणना कीजिए :

Compute Inventory Turnover Ratio from the following data :

a. Sales Rs. 2,00,000; Gross Loss Ratio 25%, Average Stock Rs. 50,000

b. Cash Sales Rs. 3,00,000; Credit Sales Rs. 1,10,000; Returns Inward Rs. 35,000; Opening Stock Rs. 27,000; Closing Stock Rs. 33,000; Gross Profit Ratio 20%

(Ans. (a) 5 times, (b) 10 times)

8.10 सन्दर्भ पुस्तकें

व्यावसायिक वित्त : डा0 आर0एस0 कुलश्रेष्ठ व डा0 विनय शंकर सिंह

उच्च वित्तीय प्रबन्ध : डा0 एस0पी0 गुप्ता व डा0 बी0 कुमार मित्तल

व्यावसायिक वित्त : डा0 एफ0सी0 शर्मा

वित्तीय प्रबन्ध : डा0 एम0डी0 अग्रवाल व डा0 एन0पी0 अग्रवाल

Financial Management : Dr. I.M. Pandey

वित्तीय प्रबन्ध : डा0 ओसवाल

इकाई–9 प्राप्तियों का प्रबन्ध तथा रोकड़ प्रबन्ध (Receivables Management and Cash Management)

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 प्राप्तियों का प्रबन्ध
9.2.1 कुल सम्पत्ति व प्राप्त–विप़त्र का अनुपात
9.2.2 प्राप्यों के प्रबन्ध का आशय
9.2.3 प्राप्यों के प्रबन्ध की परिभाषा
9.2.4 प्राप्यों के रख–रखाव के उद्देश्य
9.2.5 प्राप्यों से सम्बन्धित लागतें
9.2.6 प्राप्यों से सम्बन्धित जोखिम
9.2.7 प्राप्यों में विनियोग के आकार को प्रभावित करने वाले कारक
9.2.8 प्राप्य–प्रबन्ध के क्षेत्र
9.3 उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण (प्राप्तियों का प्रबन्ध)
9.4 रोकड़ का प्रबन्ध
9.4.1 रोकड़–प्रबन्ध के उद्देश्य
9.4.2 रोकड़ नियोजन व नियंत्रण
9.4.3 रोकड़–प्रबन्ध के आयाम
9.5 रोकड–बजट
9.5.1 रोकड़ बजट से आशय
9.5.2 रोकड़ बजट का महत्व
9.5.3 रोकड़ बजट की तैयारी
9.5.4 रोकड़ बजट के लिए रोकड़ प्राप्ति व भुगतान की मदें
9.5.5 रोकड़–बजट में समय–अन्तराल
9.6 उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण (रोकड़ का प्रबन्ध)
9.7 सारांश
9.8 शब्दावली
9.9 बोध प्रश्न
9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
9.11 स्वपरख प्रश्न
9.12 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- प्राप्यों के प्रबन्ध का आशय, परिभाषा व उद्देश्य बता सकें।
- प्राप्यों के प्रबन्ध को उदाहरण द्वारा सपष्ट कर सकें।
- रोकड़–प्रबन्ध के उद्देश्य, नियोजन, नियन्त्रण व आयाम बता सकें।
- रोकड़–प्रबन्ध को उदाहरण द्वारा स्पष्ट कर सकें।

9.1 प्रस्तावना

प्राप्तियों (Receivables) का आशय देनदारों (Debtors) एवं प्राप्य–विपत्रों (Bills Receivables) के योग से है। प्राप्तियॉ उधार विक्रय का परिणाम होती है तथा इनमें व्यवसाय के कार्यशील–कोष (Working Fund) का एक महत्वपूर्ण भाग निरन्तर विनियोजित होता है, यद्यपि इसमें व्यवसाय के उतार–चढ़ाव के साथ–साथ घट–बढ़ होती रहती है। प्राप्तियों के प्रबन्ध का सीधा सम्बन्ध उधार विक्रय एवं वसूली नीतियों (Credit Sales & Collection Policies) से होता है। नकद–विक्रय की दशा में Cash Inflow व्यवसाय में तत्काल हो जाता है, किन्तु उधार विक्रय (Credit-sales) की दशा में माल के विक्रय तथा रोकड़ के आगम में समय का अन्तराल (Time-gap) होता है। इस अन्तराल की अवधि एवं उधार विक्रय की मात्रा के अनुसार ही यह अनुमान लगाया जाता है कि कार्यकारी–कोष का कितना भाग उधार विक्रय के फलस्वरूप उत्पन्न प्राप्तियों में फॅसा रहेगा।

9.2 प्राप्तियों का प्रबन्ध

प्रबन्धकों का उद्देश्य यह होना चाहिए, कि प्राप्तियों में विनियोजित कोषों का भाग न तो अनावश्यक रूप से अधिक हो और न ही अनावश्यक रूप से कम हो, क्योंकि दोनों ही दशाओं में इसका लाभदायकता की दर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा, कि ऐसे विनियोजन की सीमा को अनुकुलतम–स्तर (Optimum Level) पर बनाये रखना ही प्राप्तियों के प्रबन्ध का सार है।

9.2.1 कुल सम्पत्ति व प्राप्त–विपत्र का अनुपात–

व्यवसाय के माल का क्रय–विक्रय प्रायः उधार के आधार पर ही किया जाता है, किन्तु यदि कुछ ग्राहक तत्काल भुगतान करते हैं, तो उन्हें इसके लिए नकद छूट (Cash Discount) दी जाती है। फिर भी अधिकतर बेचे गये माल के लिए ग्राहकों से तीस दिन (अथवा स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार इससे अधिक अवधि के भी) प्राप्य–विपत्र प्राप्त होते हैं। कम्पनी इन प्राप्य बिलों को परिपक्वता से पूर्व भी बैंकों से बट्टे पर भुना सकती है, किन्तु ऐसा तभी किया जाता है जबकि प्रबन्धकों को नकद राशि की तत्काल आवश्यकता हो, अन्यथा बेचे गये माल की एवज में प्राप्य–विपत्रों में कम्पनी की रकम फॅसती जाती है और उगाही अथवा वसूली के द्वारा समय आने पर ये प्राप्य–विपत्र रोकड़ में परिवर्तित होते रहते हैं। बैलेन्स शीट में प्राप्य–विपत्रों की रकम आस्तियों या सम्पत्तियों की ओर (On Assets Side) दिखलाई जाती है यद्यपि प्रत्येक कम्पनी की विक्रय नीति अपनी कुछ विशेषताओं से युक्त हो सकती है, किन्तु व्यापार में प्रायः सभी कम्पनियॉ प्राप्य–विपत्रों के आधार पर ग्राहकों को माल देने की सुविधा प्रदान करती है। अतः प्रबन्धकों के समक्ष यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है, कि कुल सम्पत्ति की तुलना में प्राप्य–विपत्रों में लगी राशि का क्या अनुपात रखा जाय? यह अनुपात निर्माणक कम्पनियों (Manufacturing Companies) में 5 से 10 प्रतिशत तक, तथा व्यापारिक कम्पनियों (Trading Companies) में 20 से 25 प्रतिशत तक हो सकता है।

9.2.2 प्राप्यों के प्रबन्ध का आशय –

प्राप्यों के अन्तर्गत देनदारों व प्राप्य बिलों को शामिल करते हैं। जब संस्था उधार माल बेचती है, तब भुगतान भविष्य के लिए स्थगित कर दिया जाता है।

जिन ग्राहकों को उधार माल बेचा जाता है, और जिनसे लेखाकंन अवधि के अन्त तक धनराशि प्राप्त नहीं हो पाती है, उन्हें ही देनदार कहते हैं। दूसरी तरफ जिन ग्राहकों ने माल के उधार बिक्री की राशि के बदले में विपत्र, हुण्डी या प्रतिज्ञा–पत्र स्वीकार करके विक्रेता को दे दिया है और लेखांकन अवधि के अन्त में इन विपत्रों या हुण्डियों का धारक विक्रेता ही है, उन्हें 'प्राप्त बिल (Bills Receivable) कहते हैं। इस प्रकार उधार विक्रय नीति के फलस्वरूप ग्राहकों से प्राप्त राशि को ही 'प्राप्यों में विनियोग' मानते हैं। वस्तुतः संस्था द्वारा ग्राहकों को दी गयी उधार की सुविधा के फलस्वरूप ही प्राप्यों का सृजन होता है।

9.2.3 <u>प्राप्यों के प्रबन्ध की परिभाषा</u> –

जे0जे0 हैम्पटन (J.J. Hampton) के अनुसार, ''प्राप्य व्यवसाय के सामान्य संचालन के दौरान माल अथवा सेवाओं की बिक्री के कारण फर्म को देय राशि का प्रतिनिधित्व करने वाले सम्पत्ति स्रोत होते हैं।''

इस प्रकार प्राप्य, संस्था के अपने ग्राहकों के प्रति दावों का प्रतिनिधित्व करते हैं और इन्हें चिट्ठे में चल सम्पत्तियों के शीर्षक के अन्तर्गत विविध देनदार या पुस्तकीय ऋण व प्राप्य बिल, आदि नामों से दर्शाया जाता है। अधिकांश संस्थाओं के लिए प्राप्यों में विनियोग चल सम्पत्ति का एक बड़ा भाग होता है। भारतीय औद्योगिक साख व विनियोग निगम द्वारा किये गये सर्वे में 417 कम्पनियों के आधार पर यह पाया गया कि कुल सम्पत्तियों का करीब 18 प्रतिशत और चल सम्पत्तियों का करीब 30 प्रतिशत प्राप्यों के रूप में होता है। उद्योगों की प्रकृति के अनुसार इस अनुपात में भिन्नता पाई गई। प्राप्यों में इस महत्वपूर्ण विनियोग मात्रा को ध्यान में रखते हुए ही यह माना जाता है कि प्राप्यों का कुशल प्रबन्धन बहुत ही आवश्यक होता है।

9.2.4 <u>प्राप्यों के रख–रखाव के उद्देश्य</u> (Objectives of Maintaining Receivables)–

चूँकि प्राप्यों का सृजन उधार बिक्री के कारण होता है, अतः इनके सृजन व बनाए रखने के उद्देश्य वही होते हैं, जो उधार बिक्री के होते हैं। यथा :

अ. विक्रय में वृद्धि (Increase in Sale)– कोई भी संस्था जो उधार बिक्री की सुविधा प्रदान करती है, तो वह नकद की तुलना में अधिक विक्रय कर सकेगी। विक्रय बढ़ाने के लिए उधार बिक्री की सुविधा एक शक्तिशाली प्रेरक है, क्योंकि बहुत से ग्राहक ऐसे होते हैं, जो माल नकद रूप में खरीदने की स्थिति में नहीं होते हैं। यदि संस्था उधार बिक्री नहीं करती है, तो ग्राहकों की संख्या में कमी आती है और फलस्वरूप कुल विक्रय की राशि में कमी हो जाती है। अतः उधार बिक्री अर्थात् प्राप्यों के सृजन में बिक्री में वृद्धि होती है।

ब. लाभों में वृद्धि (Increase in Profits)– उधार बिक्री के कारण लाभ की मात्रा में वृद्धि होती है। ऐसा दो कारणों से होता है– प्रथम, उधार बिक्री की दशा में लाभ का उपान्त नकद बिक्री की तुलना में अधिक रखा जाता है और दूसरे, बिक्री की बढ़ी हुई मात्रा पर अतिरिक्त लाभ की उत्पत्ति होती है।

स. प्रतिस्पर्धा का सामना करना (To meet the Competiton)– कभी–कभी ग्राहकों को इसलिए उधार की सुविधा देनी पड़ जाती है, क्योंकि प्रतियोगी

संस्थाएँ अपने ग्राहकों को इस प्रकार की सुविधा दे रही है। यदि संस्था द्वारा ऐसा नहीं किया जाता है, तो वह बाजार में अपने को स्थापित नहीं कर पाएगी और न ही विक्रय कर पाएगी। इसलिए संस्था को उधार बिक्री की नीति अपनाकर प्राप्यों का सृजन करना ही पड़ता है ताकि उसके ग्राहक प्रतियोगियों से माल खरीदने के लिए प्रेरित न हों।

9.2.5 **प्राप्यों से सम्बन्धित लागतें** (Costs Associated with Receivables) –

जब संस्था माल उधार बेचती हैं और इस क्रम में देनदारों की उत्पत्ति होती है, तो ऐसे देनदारों के सृजन से लागत व जोखिम की भी उत्पत्ति होती है। अतः प्राप्यों के प्रबन्धन हेतु इन लागतों व जोखिम के विषय में ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

लागतें (Costs)– प्राप्यों में सामान्यतः निम्न प्रकार की लागतें निहित होती हैं :

(i) प्राप्यों के अर्थप्रबन्धन की लागत या पूँजी लागत (Cost of Financing the Receivables or Capital Costs)– संस्था के वित्तीय संसाधनों का एक महत्वपूर्ण भाग प्राप्यों में फॅस जाता है, क्योंकि ग्राहकों को वस्तु/सेवा का उधार विक्रय करने तथा उनके भुगतान प्राप्त करने के बीच एक महत्वपूर्ण समय–अन्तराल होता है। इस समय–अन्तराल के दौरान संस्था का अपने दायित्वों जैसे कच्चे माल के आपूर्तिदाताओं, कर्मचारियों, आदि के भुगतान हेतु आन्तरिक वित्तीय संसाधन की व्यवस्था करनी ही पड़ती है। ऐसी व्यवस्था सम अंश निर्गमन द्वारा, ऋण–पत्र निर्गमन द्वारा, ऋण द्वारा या प्रतिधारित आय द्वारा की जा सकती है। परन्तु प्रत्येक साधन की दशा में ब्याज व लाभांश के रूप में कुछ लागत अवश्य ही आएगी।

(ii) प्रशासनिक लागत (Administrative Cost)– प्राप्यों के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की प्रशासनिक लागतें भी संस्था को वहन करनी पड़ती है। उधार बिकी की दशा में ग्राहकों की साख–योग्यता की जॉच में, ग्राहकों के खातों के रख–रखाव में तथा अन्य अभिलेखों की तैयारी में अलग से स्टाफ की नियुक्ति पर वेतन, स्टेशनरी तथा अन्य मदों पर लागतें प्रशासनिक लागत में शामिल की जाती हैं।

(iii) वसूली की लागत (Collection Cost)– संस्था को ग्राहकों से भुगतान वसूल करने में अनेक प्रकार के खर्चे करने पड़ते हैं। इसमें संग्रहण हेतु रखे गये कर्मचारियों के वेतन, प्रेरणा के रूप में ग्राहकों को देय नकद छूट, कानूनी कार्यवाही में किये गये व्यय, तीसरी एजेन्सी को प्रदत्त कमीशन, आदि को शामिल करते हैं।

(iv) अपचार की लागत (Delinquency Cost)– कभी–कभी एक ग्राहक की स्थिति अशोध्य (bad) तो नहीं, परन्तु सन्देहात्मक अवश्य होती है। प्रायः ऐसा ग्राहक देय तिथि के बाद ही भुगतान कर पाता है। देय तिथि से लेकर भुगतान तिथि तक जो धन फॅसा रह जाता है, उस अवधि के लिए बढ़ी हुई वित्त व्यवस्था पर जो खर्च करना पड़ता है, उसे ही अपचार की लागत (Delinquency Cost) कहते हैं।

(v) चूक लागतें (Default Costs)– कभी–कभी सभी प्रयासों के बावजूद भी कुछ ग्राहकों से उनकी असमर्थता के कारण धन वसूल नहीं हो पाता है और ऐसे ग्राहकों को अशोध्य मानकर उनसे प्राप्य धन को अशोध्य ऋण

के रूप में अपलिखित कर दिया जाता है। इस प्रकार के अशोध्य ऋण को भी लागत माना जाता है।

9.2.6 **प्राप्यों से सम्बन्धित जोखिम** –

प्राप्यों में विनियोग से जोखिम की भी उत्पत्ति होती है। ये जोखिम दो प्रकार की हो सकती हैं – (i) तरलता की जोखिम, (ii) अवसर खोने की जोखिम

(i) तरलता की जोखिम (Liquidity Risk)–

पर्याप्त बिक्री करने हेतु संस्था को ग्राहकों को साख की छूट देनी ही पड़ती है। ऐसा करते समय प्रबन्ध को ध्यान में रखना चाहिए कि इतनी साख की छूट न दे दी जाए तो तरलता की जोखिम की मात्रा को बढ़ा दे। तरलता की जोखिम से तात्पर्य ग्राहकों से रूपया वसूल करने की अक्षमता से होता है। ऐसी स्थिति तब उत्पन्न होती है जब संस्था ऐसे ग्राहकों को साख की छूट प्रदान करती है जिनकी वित्तीय स्थिति कमजोर या सन्देहात्मक होती है और बाद में उनसे भुगतान देर से या बिल्कुल ही प्राप्त नहीं हो जाता है। ऐसा होने पर संस्था अपने दायित्वों का समय पर भुगतान नहीं कर पाती है और इस प्रकार संस्था की अल्पकालीन व दीर्घकालीन शोधन क्षमता पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(ii) अवसर खोने की जोखिम (Risk of Opportunity Loss)–

यदि संस्था तरलता को बनाए रखने के उद्देश्य से साख की छूट कुछ ग्राहकों को ही प्रदान करती है, तो हो सकता है कि वह उतनी बिक्री न कर पाए जितनी कि उसे करनी चाहिए थी। बिक्री कम होने से आगम की हानि और अन्ततः लाभ की हानि होगी। सम्भावित ग्राहकों को साख की छूट न देने के फलस्वरूप बिक्री में होने वाली कमी को ही अवसर खाने की जोखिम कहते हैं।

इस प्रकार के प्राप्यों के प्रबन्ध का उद्देश्य इन दोनों प्रकार के जोखिमों के बीच अनुकूलतम सन्तुलन बनाए रखना ही होता है। इस प्रकार का सन्तुलन गीतशील होता है न कि स्थैतिक। इस अनुकूलतम सन्तुलन को प्राप्त करने के लिए संस्था को समय–समय पर साख–प्रमापों, साख–शर्तो, साख–नीतियों, आदि में समायोजन करना ही पड़ता है। ऐसा समायोजन करते समय सामान्य आर्थिक परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना आवश्यक होता है।

9.2.7 **प्राप्यों में विनियोग के आकार को प्रभावित करने वाले कारक** (Factors Affecting the size of Investment in Receivables)–

प्राप्यों में विनियोग का आकार अनेक कारकों पर निर्भर करता है। सुविधा की दृष्टि से इन कारकों को सामान्य कारक और विशिष्ट कारक में वर्गीकृत करके अध्ययन किया जा सकता है :

(अ) सामान्य कारक (General Factors) – इस वर्ग में उन सभी कारकों को शामिल करते हैं, जो किसी भी व्यवसाय में प्रत्येक प्रकार की सम्पत्ति में विनियोग सम्बन्धी निर्णयों को प्रभावित करते हैं। इनमे प्रमुखतः व्यवसाय की प्रकृति तथा स्वरूप, प्रबन्धकों का दृष्टिकोण, व्यवसाय की मात्रा, सामान्य आर्थिक परिस्थतियॉ, मुद्रा–स्फीति, कोषों की उपलब्धता आदि को शामिल करते हैं। ये सभी कारक अनियन्त्रणीय होते हैं तथा इनका प्रभाव अल्पकालीन न होकर दीर्घकालीन होता है। इसलिए इन्हें कभी–कभी दीर्घकालीन कारक भी कहते हैं।

(ब) विशिष्ट कारक (Specific Factors) – ये कारक संस्था द्वारा नियन्त्रणीय होते हैं और प्राप्यों में विनियोग की मात्रा पर अल्पकालीन प्रभाव डालते हैं। कुछ प्रमुख कारक इस प्रकार है :

(i) **उधार बिक्री की मात्रा** (Level of Credit Sales)– प्राप्यों में विनियोग की मात्रा तथा उधार बिक्री की मात्रा में प्रत्यक्ष धनात्मक सम्बन्ध होता है, बशर्ते अन्य बाते स्थिर रहें। दूसरे शब्दों में, उधार बिक्री की मात्रा बढ़ने पर प्राप्यों में विनियोग की मात्रा भी बढेगी और उधार बिक्री में कमी होने पर प्राप्यों में विनियोग की मात्रा में कमी होगी। उदाहरण के रूप मे :

	प्रथम वर्ष	द्वितीय वर्ष
उधार बिक्री	12,00,000 रू0	18,00,000 रू0
वसूली अवधि	3 माह	3 माह
औसत प्राप्य $\frac{(\text{उधार बिक्री x वसूली माह})}{12}$	3,00,000 रू0	4,50,000 रू0

इस प्रकार उधार बिक्री में 50 प्रतिशत की वृद्धि से प्राप्यों में भी 50 प्रतिशत की वृद्धि हो रही है।

(ii) **साख शर्ते** (Credit Terms)– संस्था द्वारा अपनाई जाने वाली उदार या कठोर साख शर्तो का भी प्राप्यों के विनियोग पर प्रभाव पड़ता है। उदार साख शर्त अपनाने में ग्राहकों को आसान शर्तो पर माल क्रय करने का अवसर मिल जाता है। इससे संस्था की बिक्री बढ़ जाती है, जिसके कारण प्राप्यों मे विनियोग भी बढ़ जाता है। यही नहीं, उधार बिक्री समान भी रहे और साख शर्तो में उदारता ला दी जाए, तो भी विनियोग की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। जब कठोर साख शर्तो का पालन किया जाता है तो इसका विपरीत प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, संस्था ने वसूली की अवधि बढ़ाकर साख शर्तो को उदार बना दिया है। अब यदि मान लें बिक्री में वृद्धि नहीं होती है (हालॉकि ऐसा असम्भव ही है) फिर भी प्राप्यों में विनियोग की मात्रा में वृद्धि हो जाएगी। देखिए :

	विकल्प प्रथम	विकल्प द्वितीय
उधार बिक्री	6,00,000 रू0	6,00,000 रू0
वसूली अवधि	3 माह	4 माह
प्राप्यों में विनियोग	1,50,000 रू0	2,00,000 रू0

इस प्रकार साख अवधि में एक माह की वृद्धि (उदारता) के कारण प्राप्यों में विनियोग की मात्रा में $33^{1/3}$ प्रतिशत की वृद्धि हो रही है।

(iii) **विक्रय की शर्ते** (Terms of Sale)– विक्रय की शर्तो का प्राप्यों में विनियोग की मात्रा पर अधिक प्रभाव पड़ता है। यदि संस्था उधार बिक्री बिल्कुल ही न करें, तो प्राप्यों के सृजन का प्रश्न ही नहीं उठता है। अतः बिक्री के सम्बन्ध में संस्था द्वारा स्थापित शर्त (अर्थात् कुल बिक्री का कितना

प्रतिशत नकद और कितना प्रतिशत उधार) का प्राप्यों के विनियोग पर प्रभाव पड़ता है।

(iv) **बिक्री की स्थिरता** (Stability of Sales)– यदि व्यवसाय मौसमी प्रकृति का है, तो मौसम विशेष में प्राप्यों मे विनियोग की मात्रा में वृद्धि हो जाएगी।

9.2.8 **प्राप्य–प्रबन्ध के क्षेत्र**

प्राप्यों के प्रबन्ध में मुख्यतः निम्न बातों पर विचार करते हैं :–

(i) प्रबन्ध को यह निश्चय करना होता है कि संस्था किसको उधार पर माल बेचे।

(ii) जो लोग उधार पर माल खरीदने की रूचि रखते हैं, उन भावी ग्राहकों का विश्लेषण करते समय किन कारकों को ध्यान में रखना चाहिए।

(iii) संस्था द्वारा उधार पर माल बेचने की शर्तो का भी निर्धारण करना चाहिए।

(iv) साख प्रदान करने का निर्णय लेने के बाद तय करना होगा कि वसूली की नीति क्या होगी? संस्था प्राप्य खातों का प्रशासन व नियन्त्रण कैसे करेगी।

इन सभी बातों पर विचार करने हेतु संस्था के प्रबन्ध को निम्न कार्य करने पड़ते हैं :

अ. साख विश्लेषण (Credit Analysis),

ब. साख प्रमाप/कसौटी (Credit Standards),

स. साख शर्ते (Credit Terms),

द. वसूली नीति (Collection Policies),

य. नियन्त्रण एवं देखभाल (Control and Monitoring)।

अ. **साख विश्लेषण–**

कोई भी संस्था प्रत्येक ग्राहक को अन्धे होकर उधार माल नहीं बेचती है। संस्था को ग्राहक की क्षमता का मूल्यांकन करना ही पड़ता है और जॉच की जाती है कि वह समय पर भुगतान करने के वायदे को पूरा कर सकता है कि नहीं। जो संस्था ग्राहकों की स्थिति के विश्लेषण की उपेक्षा करती है, वह अपने को संकट की स्थिति में पाती है, क्योंकि दिन प्रतिदिन के कार्यो हेतु पर्याप्त संसाधन का निर्माण नहीं हो जाता है। अतः ग्राहकों को साख की सुविधा देने से पूर्व उन जोखिमों का विश्लेषण अवश्य कर लेना चाहिए, जो देर से भुगतान करने या भुगतान में चूक होने से उत्पन्न हो सकती है। साख विश्लेषण के अन्तर्गत ग्राहकों के विषय में व्यक्तिगत जानकारी व उनकी भुगतान योग्यता की जॉच शामिल है। साख विश्लेषण में तीन पहलुओं का अध्ययन किया जाता है :

(i) **ग्राहकों के सम्बन्ध में सूचना का संकलन** – ग्राहकों के सम्बन्ध में वित्तीय व गुणात्मक दोनों प्रकार की सूचनाओं की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार की सूचना की प्राप्ति में समस्या निहित होती है, क्योंकि सूचना का कोई क्रमबद्ध स्रोत उपलब्ध नहीं होता है, विशेषकर छोटे–छोटे ग्राहकों की दशा में। किसी ग्राहक के विषय में कितनी मात्रा में सूचना संकलित की जाए, यह उपलब्ध समय व सूचना संकलन की लागत पर निर्भर करता है। यह ध्यान में रखना चाहिए कि समय व धन के रूप में लागत की मात्रा सूचना से प्राप्त होने वाले लाभ से अधिक न हो। सूचना प्राप्ति के निम्न स्रोत हो सकते हैं :–

अ. वित्तीय विवरण (Financial Statements),

ब. साख मूल्यांकन संस्थाएँ (Credit Rating Agencies),

स. व्यापारिक सन्दर्भ (Trade References),
द. बैंक से पूछताछ (Bankers Enquiry),
य. बाजार प्रतिवेदन (Market Reports),
र. संस्था का निजी अनुभव (Own Experience of the Concern)।
ल. अन्य स्रोत जैसे व्यापारिक संघ, वाणिज्य मण्डल, व्यापारिक निर्देशिकाएँ, सार्वजनिक अभिलेख, आदि।

(ii) **संकलित सूचना का विश्लेषण**– इसके द्वारा ग्राहक की साख–योग्यता व जोखिम का मापन किया जाता है। ग्राहकों की साख–योग्यता का विश्लेषण बहुत ही जटिल कार्य होता है। वित्तीय व गैर–वित्तीय सूचनाओं से ग्राहक की साख–योग्यता के विषय में कुछ अन्दाजा तो लग सकता है, परन्तु एक ग्राहक भूतकाल में समय पर भुगतान करता रहा है और इसलिए भविष्य में भी भुगतान करता रहेगा, ऐसा नहीं माना जा सकता है। ग्राहक की साख–योग्यता का विश्लेषण करते समय मुख्यतः छः (C) पर विचार किया जाता है :

अ. चरित्र (Character),
ब. क्षमता (Capacity),
स. पूँजी (Capital),
द. दशाएँ (Conditions),
य. लागत (Costs),
र. संपार्श्विकता (Collateral)।

यहाँ पर चरित्र से तात्पर्य ग्राहक की ऋण चुकाने की इच्छा से है। कभी–कभी ग्राहक की ऋण चुकाने में जो ख्याति है, उसे भी चरित्र के रूप में ही मानते हैं। कुछ ग्राहक ऐसे होते हैं, जो संसाधन की कमी के बावजूद भी समय पर ऋण का भुगतान कर देते हैं और कुछ ऐसे होते हैं, जो पूर्ण सम्पन्न होते हुए भी आदतन भुगतान करने में देरी करते हैं। क्षमता के अन्तर्गत यह जॉचते हैं कि साख प्राप्त होने पर ग्राहक उस साख की राशि से पर्याप्त आय अर्जित कर सकेगा या नहीं। यदि ग्राहक यथोचित आय अर्जित करने में सफल नहीं है, तो वह भुगतान करने में समर्थ नही होगा। यदि किसी असाधारण वर्ष में ग्राहक पर्याप्त आय अर्जित करने में सफल नहीं होता है अर्थात् आय–अर्जन के द्वारा ऋण वापसी सम्भव नहीं है, तो ग्राहक के पूँजी आधार की जॉच करनी चाहिए। पूँजी आधार की जॉच से यह पता चलेगा, कि कष्ट या संकट के क्षण ग्राहक कितना झेल सकता है। पूँजी आधार की जॉच शुद्ध मूल्य (Net worth) के माध्यम से करनी चाहिए। साख विश्लेषण में बाजार की दशाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। बाजार में सम्भावित मन्दी काल, बढ़ती हुई प्रतिस्पर्द्धा तथा बाजार कारक, आदि को ध्यान में रखना चाहिए। व्यापार की सामान्य आर्थिक परिस्थितियों के आधार पर यह अनुमान लगाना चाहिए, कि ग्राहक की ऋण चुकाने की क्षमता इन परिस्थितियों में कहाँ तक प्रभावित होगी।

(iii) **विश्लेषण के आधार पर निर्णय**– संकलित सूचना का समुचित विश्लेषण करने के बाद यह निर्णय लिया जाता है कि, ग्राहक विशेष को साख की सुविधा दी जाय या नहीं। इस उद्देश्य से ग्राहक की मूल्यांकित साख योग्यता, प्रमाप साख स्तर से नीची है, तो उसे साख की सुविधा नहीं दी जायेगी। कभी–कभी एक संस्था संकलित साख सूचना को हानि की सम्भावना के आधार पर विभिन्न

जोखिम वर्गो या समूहों में बॉट सकती है। इस वर्गीकरण के आधार पर संस्था यह निश्चित कर सकती है, कि उसे एक विशेष वर्ग के ग्राहकों को साख प्रदान करनी चाहिए या नहीं।

9.3 उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण (प्राप्तियों का प्रबन्ध)

1. भुगतान न करने की जोखिम (Risk of non-payment) 10 प्रतिशत

बिक्री में वृद्धि (Increment in Sales) रू0 2,00,000

उत्पादन लागत, बिक्री की 60 प्रतिशत है। (Production cost is 60% of Sales)

आय में वृद्धि ज्ञात कीजिए।

Calculate increment in income.

<u>हल-1</u>

Increment in Sales	2,00,000.00
Less : Loss in collection (10%)	<u>20,000</u>
Net Sale Proceeds	1,80,000
Less : Production Cost (60% of Sales)	<u>1,20,000</u>
Increment in Income-	<u>60,000</u>

2. निम्न विवरणों से देनदार आर्वत अनुपात ज्ञात कीजिए :

Calculate Debtors Turnover Ratio from the following particulars :

प्रारम्भिक देनदार (Opening Debtors)	रू0 25,000
कुल बिक्री (Total Sales)	रू0 6,00,000
अन्तिम देनदार (Closing Debtors)	रू0 35,000

नकद बिक्री, उधार बिक्री की आधी है।

<u>हल -2</u>

माना नकद बिक्री A है अतः उधार बिक्री 2A होगी।

कुल बिक्री A + 2A = 3A

3A = 6,00,000

A = 2,00,000 (नकद बिक्री)

2A = 4,00,000 (उधार बिक्री)

$$\text{Average Debtors} = \frac{\text{Opening Debtors + Closing Debtors}}{2}$$

$$= \frac{25,000 + 35,000}{2}$$

$$= 30,000$$

$$\text{Debtors Turnover} = \frac{\text{Net Credit Sales}}{\text{Average Debtors}}$$

$$= \frac{4,00,000}{30,000}$$

= 13.33 Times

3. निम्न ऑकड़ो से औसत वसूली अवधि ज्ञात कीजिए :
Calculate Average Collection Period from the following data :

कुल विक्रय (Total Sales)	रू0 6,00,000
विविध देनदार (Sundry Debtors)	रू0 25,000
प्राप्य बिल (Bills Receivable)	रू0 5,000

हल -3

Average Collection Period = $\frac{\text{Receivables}}{\text{Net Credit Sales Per Day}}$

Receivables = Sundry Debtors + Bills Receivable

= 25,000 + 5,000

= 30,000

Average Collection Period = $\frac{30,000}{6,00,000} \times 360$

= 18 days

Note :- एक वर्ष में 360 दिन मान कर प्रश्न को हल किया गया है।

4.

देनदार आर्वत अनुपात (Debtors turnover ratio)	5 times
औसत देनदार (Average Debtors)	रू0 40,000

औसत संग्रह दिवस ज्ञात कीजिए।
Calculate Average Collection period

हल -4

Debtors Turnover Ratio = $\frac{\text{Debtors}}{\text{Net Credit Sales Per day}}$

5 = $\frac{40,000}{\text{Net Credit Sales Per Day}}$

Net Credit Sales Per Day= 8,000

Total Net Credit Sales = 8,000 x 365

Average Collection Period = $\frac{\text{Total Net Credit Sales}}{\text{Debtors}}$

$= \frac{8,000 \times 365}{40,000}$

= 73 days

5. A compnay is currently selling 1,00,000 units of its product at Rs. 50 per unit. At the current level of production, the cost per unit is Rs. 45, variable cost unit being Rs. 40. The company is currently extending one month's (30 days) credit to its customers. It is thinking of extending credit period to two months (60 days) in the hope that sales will increase by 25%. If the required rate of return before tax on investment is 30%, is the new credit policy desirable?

Solution-5

1. Additional Sales 25,000 Units @ Rs. 50 — 12,50,000
   Less : Variable Cost 25,000 Units @ Rs. 40 — 10,00,000
   Additional Income Before Tax — 2,50,000

2. Additional Investment in Receivables (At Cost) :
   Before Extension-

   Receivables $= \frac{45,00,000 \times 30}{360}$ = Rs. 3,75,000

   After Extension
   Receivables $= \frac{55,00,000 \times 60}{360}$ = Rs. 9,16,667

   Sales before extension = 1,00,000 Units x 45= 45,00,000

   Sales After extension = 1,00,000 x 45 = 45,00,000

   25,000 x 40 = 10,00,000

   25% Increase @ Variable Cost = 55,00,000

   Additional Investment 9,16,667 - 3,75,000 = 5,41,667

   Return on Addition Investment (Before Tax) $= \frac{5,41,667 \times 30}{100}$

   = Rs. 1,62,500

   Net Income = 2,50,000 - 1,62,500

   = 87,500

Conclusion : Yes, Credit Period should be extended

6. फर्म द्वारा '2/10 Net 30 days' के आधार पर 10,000 रूपये का माल ग्राहकों को बेचा जाता है। ग्राहक के समक्ष दो विकल्प हैं : (i) वह 10 दिन के अन्दर भुगतान करके 2 प्रतिशत नकद–छूट (Cash Discount) प्राप्त करें, अथवा (ii) साख का उपयोग पूरी अवधि के लिए करके 30 दिन के बाद सकल राशि का भुगतान करें।

यह मानते हुए कि 18 प्रतिशत की दर पर बैंकों के साख की सुविधा उपलब्ध है, यह बतलाइए कि ग्राहक के लिए उपर्युक्त में से किस विकल्प का प्रयोग करना उचित होगा।

हल -6

i. In case the Ist option is exercised :

Total amount payable	Rs.	10,000
Less : Cash Discount @ 2%	Rs.	200
Net Amount to be paid	Rs.	9,800

Thus the customer saves Rs. 200 under the first option.

ii. In case the second option is exercised :

Rs. 200 is the interest payable for use of Rs. 9,800 for 20 days.

$\therefore$ Interest for one year will be $= \frac{200 \times 30 \times 12}{20}$

$= \text{Rs. } 3,600$

Annual Rate of Interest $= \frac{3,600 \times 100}{9,800}$

$= 36.74\%$

It is clear that the effective rate of interest will be more than double the interest rate on short-term bank borrowings. The customer should exercise the first option. In case he is short of cash he can borrow Rs. 9,800 from bank and avail of the cash discount facility.

7. फर्म द्वारा 'Net, 30 days' के आधार पर माल का विक्रय किया जाता है। प्रबन्धक साख–नीति को उदार (Liberal) बनाने के उद्देश्य से 2/10 Net 30 days के आधार पर माल का विक्रय करने पर विचार कर रहे हैं। वर्तमान में कुल वार्षिक विक्रय 40,00,000 रूपयों का है तथा प्रबन्धकों को आशा है कि साख नीति में उपयुक्त संशोधन के बाद वार्षिक विक्रय की मात्रा में 25 प्रतिशत की वृद्धि की जायेगी। प्रबन्धकों को विश्वास है कि 20,00,000 रूपयों की उधार विक्रय राशि के लिए ग्राहकों द्वारा 2 प्रतिशत नकद छूट (Cash Discount) का लाभ प्राप्त किया जा सकेगा। साथ ही प्राप्तियों के आकार (Size of Receivables) में वृद्धि हो जाने के कारण 5,00,000 रूपयों के अतिरिक्त कोष की आवश्यकता होगी। साख नीति में संशोधन की लागतें निम्न प्रकार होगीं :

उत्पादन एवं विक्रय की लागतें	अतिरिक्त विक्रय राशि की 65 प्रतिशत
प्रशासनिक लागतें	अतिरिक्त विक्रय राशि की 5 प्रतिशत
डूबत ऋणों की मात्रा	अतिरिक्त विक्रय राशि की 2 प्रतिशत
नकद–छूट (Cash Discount)	20,00,000 रूपयों की 2 प्रतिशत
अवसर–लागत (Opportunity	प्राप्तियों के आकार में वृद्धि के कारण

Cost)	आवश्यक 5,00,000 रूपयों की 10 प्रतिशत

उपर्युक्त सूचनाओं के आधार पर बतलाइये कि क्या प्रबन्धकों द्वारा साख नीति को उदार बनाने का निर्णय लेना फर्म लिए लाभदायक होगा?

हल -7

Cost-Benefit Analysis

			Rs.
1.	Additional Sales (25% of Rs. 40,00,000)		10,00,000
2.	Increase in costs:		
i.	Production & Selling Costs (65% of Rs. 10,00,000)	6,50,000	
ii.	Administrative Costs (5% of Rs. 10,00,000)	50,000	
iii.	Bad Debts (2% of Rs. 10,00,000)	20,000	
iv.	Cash Discount (2% of Rs. 20,00,000)	40,000	
v.	Opportunity Costs (10% of Rs. 5,00,000)	50,000	8,10,000
	Profit on Additional Sales		1,90,000

Thus it is clear that credit relaxation will be profitable to the firm.

8. 1 जनवरी, 2000 को कार्यशील पूँजी के लिए अतिरिक्त ऋण प्राप्त करने हेतु 'अ' तथा 'ब' कम्पनियों के दो आवेदन–पत्र बैंक मैनेजर के समक्ष विचाराधीन थे। वर्ष 1999 के अन्त में तैयार की गयी बैलेन्स शीट में प्राप्तियों (Receivables) की मद में 'अ' कम्पनी में 5,00,000 रूपये तथा 'ब' कम्पनी में 10,00,000 रूपये थे। दोनों कम्पनियों में चल सम्पत्तियों में विनियोजित कोषों का विश्लेषण करने के बाद यह पाया गया कि ऐसे विनियोग सामान्य सीमाओं के अन्दर थे। ऋण स्वीकृत करने से पहले बैंक मैनेजर ने यह उचित समझा कि आवेदकों को काल–क्रम के अनुसार प्राप्तियों का वर्गीकृत विवरण (Classification of Receivables according to Time Span) प्रेषित करने का कहा जाना युक्ति संगत होगा। फलस्वरूप आवेदकों द्वारा निम्न विवरण प्रेषित किये गये :

Time-span	Company 'A' (Rs.)	Company 'B' (Rs.)

30 दिन या इससे कम	4,00,000	50,000
31 दिन से 60 दिन	50,000	1,50,000
61 दिन से 90 दिन	35,000	3,00,000
90 दिन से अधिक	15,000	5,00,000

दोनों कम्पनियों द्वारा Net 30 days के आधार पर माल बेचा जाता है। उपर्युक्त सूचनाओं के आधार पर दोनों कम्पनियों की प्राप्तियों की काल–क्रम सूची (Ageing Schedule of Receivables) तैयार कीजिये। ऋण स्वीकृत करने के विषय में बैंक मैनेजर का निर्णय क्या होगा?

हल -8

Ageing Schedule of Receivables

Time-span	Company 'A'		Company 'B'	
	Amount (Rs.)	Percentage	Amount (Rs.)	Percentage
30 days or less	4,00,000	80	50,000	05
31 to 60 days	50,000	10	1,50,000	15
61 to 90 days	35,000	07	3,00,000	30
More than 90 days	15,000	03	5,00,000	50
	5,00,.000	100	10,00,000	100

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'अ' कम्पनी में प्राप्तियों के प्रबन्ध का स्तर (Level of Receivables Management) उच्च कोटि का है, क्योंकि प्राप्तियों में फॅसी कुल रकम का 80 प्रतिशत उधार की सामान्य अवधि (Normal Credit Period) के अन्दर है। 'ब' कम्पनी की स्थिति इससे बिल्कुल भिन्न है जिसमें कुल प्राप्तियों का 50 प्रतिशत 90 दिन से अधिक का, तथा 30 प्रतिशत 61 दिन से 90 दिन का बकाया है। इस प्रकार Net 30 days की तुलना 'ब' कम्पनी की प्राप्तियों की 80 प्रतिशत धनराशि दो महीने या इससे अधिक की बकाया है जो स्वयं में संदिग्ध एवं डूबत ऋणों की अधिकता की परिचायक है। निश्चय ही 'ब' कम्पनी की उधार–विक्रय एवं वसूली नीति (Credit & Collectiion Policy) दोषपूर्ण है।

स्पष्ट है कि 'अ' कम्पनी को अतिरिक्त बैंक ऋण की सुविधा देने में बैंक मैनेजर को कोई हिचक नहीं होगी, किन्तु जहॉ तक 'ब' कम्पनी का प्रश्न है इसे अतिरिक्त ऋण स्वीकृत करना, तब तक उचित नहीं होगा, जब तक कि वह अपनी प्राप्तियों के प्रबन्ध के स्तर में सुधार नहीं कर लेती है।

9.4 रोकड़ का प्रबन्ध (Management of Cash)

रोकड़ व्यवसाय का मूल आधार होता है। बिना पर्याप्त रोकड़ के व्यवसाय को कुशलतापूर्वक नहीं चलाया जा सकता। साथ ही रोकड़ एक गैर–अर्जन वाली सम्पत्ति है, अतः आवश्यकता से अधिक रोकड़ का विपरीत प्रभाव व्यवसाय की

लाभदायकता पर पड़ सकता है। इस प्रकार रोकड़ का प्रबन्ध कुशलतापूर्वक किया जाना चाहिए।

सामान्यतः रोकड़ में केवल नकद धन को ही शामिल करते हैं, परन्तु वित्तीय साहित्य में रोकड़ में नकद धन, हाथ में चेक, बैंक शेष तथा नकद–तुल्य (near cash) प्रतिभूतियों को शामिल करते हैं। नकद–तुल्य प्रतिभूतियों में विपणन–योग्य प्रतिभूतियॉ तथा बैंक में सावधि जमा इत्यादि को शामिल करते हैं।

9.4.1 **रोकड़ प्रबन्ध के उद्देश्य** (Objectives of Cash Management) –

संस्था के लाभ को अधिकतम करने के लिए तरलता एवं लाभदायकता में सन्तुलन बनाए रखना ही रोकड़ प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य होता है। संस्था के पास जितनी अधिक रोकड़ होगी, उसकी तरलता उतनी ही अधिक होगी, परन्तु लाभदायकता कम होगी। इसकी विपरीत स्थिति होगी, जब संस्था के पास रोकड़ की मात्रा कम होगी। इस प्रकार संस्था को तरलता एवं लाभदायकता में सन्तुलन बनाए रखना होता है। इस दृष्टि से रोकड़ प्रबन्ध के उद्देश्य निम्न है :

अ. भुगतान सूची के अनुसार रोकड़ वितरण की आवश्यकताओं की पूर्ति करना।

ब. रोकड़ शेष के रूप में बंधी राशि के स्तर को न्यूनतम रखना।

स्पष्ट है कि उक्त दोनों उद्देश्य परस्पर विरोधी हैं। इसलिए इनकी विसंगतियों को दूर कर अधिकतम लाभ अर्जित करना, वित्तीय प्रबन्धक के लिए चुनौती भरा कार्य है। इन दोनों उद्देश्यों का वर्णन इस प्रकार है :–

अ. **भुगतान सूची के अनुसार रोकड़ वितरण की आवश्यकताओं की पूर्ति करना**– रोकड़ प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य भुगतान अनुसूची की आवश्यकताओं को पूरा करना है। व्यापार के सामान्य संचालन में संस्था को आपूर्तिदाताओं, अल्पकालीन ऋणदाताओं, कर्मचारियों आदि को सतत भुगतान करने पड़ते हैं। यदि भुगतान सही समय पर न किया जाए, तो व्यापारिक क्रियाएँ ठप्प पड़ सकती हैं। रोकड़ के सम्बन्ध में एक कहावत है 'यह व्यवसाय के सदैव चलने वाले पहियों को चिकनाई प्रदान करने वाला तेल है, इसके बिना व्यावसायिक क्रियाएँ बन्द होने के लिए बाध्य हो जाएंगी।' इसलिए संस्था को रोकड़ वितरण की आवश्यकता को पूरा करने हेतु पर्याप्त मात्रा में रोकड़ शेष रखना ही चाहिए। लेकिन ध्यान में रखना होगा, कि पर्याप्त रोकड़ शेष रखना लागत को बढ़ाता है। अतः संस्था को पर्याप्त रोकड़ से प्राप्त लाभ व पर्याप्त रोकड़ रखने की लागत में सन्तुलन स्थापित करके अनुकूलतम रोकड़ शेष रखना चाहिए।

ब. **रोकड़ शेष के रूप में बंधी राशि के स्तर को न्यूनतम रखना** – रोकड़ प्रबन्ध का दूसरा उद्देश्य रोकड़ शेष के रूप में बंधी राशि को कम–से–कम करना होता है। रोकड़ शेष को न्यूनतम रखने के प्रयास में वित्तीय प्रबन्ध को दो विरोधी पहलुओं का सामना करना पड़ता है– उच्चतर रोकड़ शेष, जहॉ एक तरफ अन्य लाभों के साथ उचित समय पर भुगतान को सुनिश्चित करता है, दूसरी तरफ रोकड़ का महत्वपूर्ण भाग बेकार पड़ा रहता है। न्यूनतम रोकड़ शेष से संस्था की भुगतान अनुसूची की पूर्ति में कठिनाई हो सकती है। अतः पुनः वित्तीय प्रबन्धक को लाभ–हानियों को ध्यान में रखते हुए अनुकूलतम शेष रखना चाहिए।

9.4.2 **रोकड़ नियोजन व नियन्त्रण** (Cash Planning and Control)–

रोकड़ नियोजन व नियन्त्रण की आवश्यकता इसलिए पड़ती है ताकि रोकड़ शेष को न्यूनतम रखते हुए अधिकतम लाभ कमाया जा सके। रोकड़ नियोजन से तात्पर्य रोकड़ प्राप्ति की मात्रा का अनुमान लगाना एवं भुगतानों को व्यवस्थित करने से होता है। रोकड़ नियन्त्रण से अभिप्राय यह देखने से है कि रोकड़ की प्राप्ति व भुगतान नियोजन के अनुसार हो रहा है या नहीं। रोकड़ नियोजन व नियन्त्रण हेतु निम्न विधियों का प्रयोग किया जाता है :

1. **रोकड़ बहाव विश्लेषण** (Cash Flow Analysis)– यह विधि एक निश्चित अवधि में रोकड़ के विभिन्न स्रोतों एवं रोकड़ के विभिन्न प्रयोगों का विवेचन करती है। इसके अन्तर्गत रोकड़ बहाव का पूर्वानुमान लगाया जाता है। इस प्रकार के पूर्वानुमान द्वारा यह पता लगाया जाता है कि संस्था को कब और कितनी रोकड़ राशि की कमी पड़ेगी और कितनी राशि अल्पकाल के लिए अधिक होगी। अल्पकालीन रोकड़ बहाव में सुधार के लिए अनेक तकनीकियों (जैसे ताला–सन्दूक पद्धति, फ्लोट, नकद छूट की प्राप्ति और अल्पकालीन विनियोग करना) का सहारा लिया जा सकता है। सांख्यिकीय रीतियों के प्रयोग द्वारा रोकड़ प्राप्ति एवं रोकड़ भुगतान का पूर्वानुमान सरलता से लगाया जा सकता है।
2. **अनुपात विश्लेषण** (Ratio Analysis)– विभिन्न अनुपातों के माध्यम से भी रोकड़ नियोजन व नियन्त्रण का कार्य किया जा सकता है। कुछ महत्वपूर्ण अनुपात जैसे रोकड़ आवर्त्त, दैनिक नकद भुगतान अनुपात, आधारभूत रक्षक अन्तर अनुपात, नकद स्थिति अनुपात, रोकड़ बहाव कवरेज अनुपात आदि का प्रयोग करके नियोजन व नियन्त्रण का कार्य सम्पादित किया जाता है।
3. **रोकड़ प्रबन्ध मॉडल्स** (Cash Management Models)– रोकड़ नियोजन के अन्तर्गत अनुकूलतम रोकड़ शेष का निर्धारण करने के लिए कुछ विशेषज्ञों ने मॉडल्स तैयार किये हैं।

9.4.3 रोकड़ प्रबन्ध के आयाम –

रोकड़ प्रबन्ध के चार प्रमुख आयाम होते हैं, जो निम्न हैं : (i) रोकड़ आयोजन (Cash Planning), (ii) रोकड़ आगमों का नियन्त्रण (Control of Cash-Inflow), (iii) रोकड़–निर्गमों का नियन्त्रण (Control of Cash-Outflows), तथा (iv) अतिरिक्त रोकड़ का निवेश (Surplus Cash Investment)

1. रोकड़ आयोजन (Cash Planning)–

यदि रोकड़–आगमों (Cash Inflow) तथा रोकड़–निर्गमों (Cash-Outflows) में निरन्तर सामंजस्य बना रहे, तो रोकड़–नियोजन का कार्य सरल हो जाता है, किन्तु कतिपय जनोपयोगी सेवाओं (Public Utilities) को छोड़कर अन्य उपक्रमों में रोकड़ के आगमों (Inflow) एवं निर्गमों (Outflows) में पूर्ण–सामंजस्य (Perfect Synchronisation) की स्थिति प्रायः नहीं दिखलाई देती है। व्यवसाय की प्रकृति के अनुसार अलग–अलग व्यवसायों में आगमों एवं निर्गमों का ढॉचा (Pattern of Inflows and Outflows) भिन्न होता है, और यह भिन्नता प्रबन्धकों द्वारा रोकड़ नियोजन के लिए प्रत्येक दशा में उपयुक्त विधि अपनाये जाने की आवश्यकता की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है।

2. रोकड़ आगमों का नियन्त्रण (Control of Cash Inflows)–

यह वस्तुतः प्राप्य रकमों की ठीक समय पर वसूली समस्या है। बड़े निगमों में, जिनका व्यवसाय सुदूर क्षेत्रों तक फैला होता है, समस्या यह होती है कि किस

प्रकार चेकों की प्राप्तियॉ कम से कम समय में तथा बैंकों से उनकी क्लीयरेन्स न्यूनतम समय में हो। लॉक–बॉक्स प्रणाली (Lock-Box System) के द्वारा यह कार्य बैंकों द्वारा सरलता से किया जा सकता है। विभिन्न नगरों में बैंक इन लॉक–बाक्सों से प्रतिदिन चेक एकत्रित करके ग्राहकों के खाते में जमा करते रहते हैं।

इसके अतिरिक्त शाखाओं को निर्देश दिये जा सकते हैं, कि वे रोकड़–शेष (Cash Balance) की सूचना टेलेक्स या फैक्स के द्वारा मुख्यालय में देवें, जिससे कि उच्च स्तर पर प्रबन्धकों को उपक्रम की सम्पूर्ण रोकड़ स्थिति (Overall Cash Position) की निरन्तर सूचना मिल सके और वे रोकड़–नियोजन (Cash Planning) के कठिन कार्य को सरलतापूर्वक सम्पन्न कर सके। अब Computer Internet ने इस कार्य को और अधिक आसान बना दिया है।

3. रोकड़ निर्गमों का नियन्त्रण (Control of Cash Outflows)–

यह वस्तुतः भुगतानों को नियमित एवं नियन्त्रित करने की समस्या है। दिन–प्रतिदिन के भुगतान प्रायः कोई बड़ी समस्या उत्पन्न नहीं करते, क्योंकि उनकी पूर्ति दैनिक Cash Inflows से की जा सकती है। उधार खरीद का भुगतान प्रायः उधार बिक्री की वसूली में से होता रहता है किन्तु ब्याज, टैक्स, किराया तथा पूँजीगत व्यय से सम्बन्धित Cash Outflows सामान्य Inflows के आधार पर नहीं किये जा सकते हैं। अतः पूर्ण नियोजित ढ़ंग से इसके लिए आन्तरिक एवं बाहरी स्रोतों से रोकड़ की व्यवस्था करके उन्हें पूरा किया जा सकता है। सामान्यतः रोकड़ के बड़े भुगतान मुख्यालय द्वारा ही किये जाने चाहिए, यद्यपि स्थानीय प्रकृति के एवं छोटे भुगतान शाखाओं एवं उपविभागों द्वारा भी किये जा सकते हैं। भुगतान परिपक्वता की तिथि पर ही किये जाने चाहिए, उससे बहुत पहले नहीं। कुछ प्रबन्धक देय–भुगतानों को रोककर व्यवसाय के लिए अतिरिक्त कोषों की व्यवस्था करने के आदी हो जाते हैं, किन्तु व्यावहारिक दृष्टिकोण से यह उत्तम नीति नहीं मानी जाती है।

4. अतिरिक्त रोकड़ निवेश (Surplus Cash-Investment)–

अतिरिक्त रोकड़ निवेश में विनियोगों की मदों का सावधानी से चयन किया जाना चाहिए। ये मदें ऐसी होनी चाहिए, जो अल्पकालीन होते हुए भी सुरक्षा (Safety) एवं तरलता (Liquidity) की दृष्टि से सन्तोषजनक हों।

9.5 रोकड़–बजट (Cash Budget)

रोकड़ बजट किसी भी संस्था में वित्तीय नियोजन और नियन्त्रण की महत्वपूर्ण तकनीक है। इसके अन्तर्गत किसी निश्चित अवधि में रोकड़ की प्राप्ति एवं भुगतान का अनुमान लगाकर रोकड़ की कमी या आधिक्य की गणना की जाती है और उस आधार पर रोकड़ का नियन्त्रण और नियमन किया जाता है।

9.5.1 रोकड़ बजट का आशय (Meaning of Cash Budget)–

रोकड़ बजट एक लिखित विवरण है, जिसमें आने वाली एक निश्चित अवधि में रोकड़ की प्राप्तियों और भुगतानों का पूर्वानुमान होता है। रोकड़ बजट की कुछ परिभाषाएॅ निम्न हैं :

1. गुथमैन एवं डूग के अनुसार, ''एक निश्चित भावी समय अवधि के लिए रोकड़ प्राप्तियों व रोकड़ भुगतानों का पूर्वानुमान रोकड़ बजट कहलाता है।''

2. एस0सी0 कुच्छल के अनुसार, ''रोकड़ बजट किसी अवधि के लिए रोकड़ के आधिक्य एवं कमी के समय एवं मात्रा के निर्धारण के उद्देश्य से बनायी गयी रोकड़ अन्तर्वाहों (Cash Inflow) एवं बहिर्वाहों (Outflow) को अंकित करने की तालिका है।''

कुल मिलाकर रोकड़ बजट भविष्य की एक निश्चित अवधि में रोकड़ की सम्भावित प्राप्तियों और भुगतानों का विवरण है। इसमें बजट की अवधि में रोकड़ स्थिति को रोकड़ की कमी या आधिक्य के रूप में भी दर्शाया जाता है तथा कमी की व्यवस्था करने या आधिक्य का उपयोग करने के सम्बन्ध में भी संकेत होता है।

9.5.2 **रोकड़ बजट का महत्व** (Importance of Cash Budget))–

रोकड़ बजट किसी भी व्यवसाय के लिए एक महत्वपूर्ण बजट है। इस बजट के मुख्य लाभ निम्न प्रकार हैं :–

1. **रोकड़ की भावी स्थिति का अनुमान** (Estimate of Future Position of Cash)– रोकड़ बजट की सहायता से यह अनुमान किया जा सकता है कि भविष्य में कब और कितनी रोकड़ की आवश्यकता होगी और उस अवधि में रोकड़ उपलब्धता की स्थिति क्या रहेगी? यदि रोकड़ की उपलब्धता में कमी की स्थिति बन रही हो तो समय पर बैंक अधिविकर्ष या अल्पकालीन ऋण द्वारा उचित व्यवस्था की जा सकती है। इसके विपरीत यदि अधिक रोकड़ उपलब्ध हो तो अस्थायी विनियोगों में लगाकर उसका लाभपूर्ण उपयोग किया जा सकता है।
2. **रोकड़ व्ययों पर नियन्त्रण** (Control over Cash Expenditure)– रोकड़ बजट की सहायता से उपक्रम के विभिन्न विभागों द्वारा किये जाने वाले रोकड़ व्ययों पर नियन्त्रण किया जा सकता है तथा अपव्ययों को रोका जा सकता है।
3. **सृदृढ़ लाभांश नीति** (Sound Dividend Policy)– रोकड़ बजट से रोकड़ की उपलब्धता को आधार बनाकर उचित लाभांश नीति बनाई जा सकती है और अंशधारियों को संतुष्ट रखा जा सकता है।
4. **वित्तीय नियोजन में सहायक** (Helpful in Financial Planning)– रोकड़ बजट वित्तीय नियोजन में पर्याप्त सहायक होता है क्योंकि इसके आधार पर कार्यशील पूँजी, विक्रय, विनियोग, ऋणों, इत्यादि में समन्वय स्थापित किया जा सकता है।
5. **अन्य बजटों का नियमन** (Regulation of other Budgets)– रोकड़ बजट उपक्रम के अन्य बजटों जैसे– बिक्री बजट, पूँजीगत बजट, इत्यादि का भी नियमन करता है।
6. **मौसमी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक** (Helpful in Fulfilment of Seasonal Needs)– रोकड़ बजट से रोकड़ की मौसमी आवश्यकताओं पर पड़ने वाले प्रभावों की स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

9.5.3 **रोकड़ बजट की तैयारी** (Preparation of Cash Budget)–

रोकड़ बजट की तैयारी का उत्तरदायित्व सामान्यतः वित्त विभाग का होता है और इस बजट को बनाते समय निम्न प्रक्रिया अपनाई जाती है :

1. **बजट की अवधि** (Period of Budget)– सर्वप्रथम यह निर्धारित किया जाता है कि बजट की अवधि क्या होगी? सैद्धान्तिक रूप से यह बजट

दीर्घकालीन अथवा अल्पकालीन किसी भी प्रकार का हो सकता है, लेकिन व्यवहार में यह अल्पकालीन आधार पर तैयार किया जाता है। यद्यपि अल्पकाल में भी वर्ष, तिमाही, मासिक या साप्ताहिक कोई आधार हो सकता है, लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से इसे तिमाही या छमाही अवधि के लिए बनाया जाता है और उसमें भी मासिक आधार के समय खण्डों में रोकड़ की परिवर्तित स्थिति को दर्शाया जाता है।

2. **रोकड़ के स्रोतों और अन्तर्वाह का अनुमान** (Estimate of Sources and Inflow of Cash)– इसके अन्तर्गत तीन प्रकार की सूचनाएँ एकत्र की जाती हैं :–

अ. एक निश्चित अवधि में किन स्रोतों से रोकड़ प्राप्त होगी। इनमें नकद बिक्री के अतिरिक्त देनदारों से वसूली, अंशों से याचना राशि की प्राप्ति, स्थायी सम्पत्तियों का विक्रय, विनियोगों से आय, इत्यादि मदें शामिल हो सकती हैं।

ब. इन स्रोतों से कितनी राशि प्राप्त होगी?

स. राशि प्राप्ति का समय क्या रहेगा? जैसे– उधार बिक्री की वसूली एक माह बाद होगी या उधार बिक्री एक माह की शर्त पर होगी, लेकिन वास्तविक वसूली दो माह में होगी, इत्यादि।

3. **रोकड़ के प्रयोग का निर्धारण** (Identification of Application of Cash)– इसके अन्तर्गत रोकड़ में विभिन्न समयों पर किये जाने वाले भुगतानों का अनुमान लगाया जा सकता है। इनमें नकद क्रय, देनदारों को भुगतान, वेतन व मजदूरी तथा विभिन्न रोकड़ व्ययों को शामिल किया जाता है। बजट की अवधि में भुगतान की राशि का अनुमान करने में समय अन्तराल (Time-lag) का विशिष्ट ध्यान रखना चाहिए, जैसे– मजदूरी का भुगतान अगले महीने की सात तारीख को होता है या उधार क्रय का भुगतान एक माह पश्चात् होता है इत्यादि। यह उल्लेखनीय है कि रोकड़ बजट में ऐसी मदें नहीं दर्शायी जातीं जिनमें रोकड़ प्रवाह प्रभावित नहीं होता। जैसे– अदत्त व्यय, ह्रास, अशोध्य ऋण के लिए संचय, इत्यादि।

4. **रोकड़ शेष का अनुमान** (Estimate of Cash Balance)– इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम यह गणना की जाती है कि बजट की अवधि के प्रारम्भिक दिन रोकड़ शेष क्या होगा? इसके पश्चात् बजट की अवधि के प्रत्येक समय खण्ड में प्राप्तियों एवं भुगतानों के अनुमान के आधार पर अन्तिम शेष होगा।

रोकड़ शेष की न्यूनतम और अधिकतम राशियॉ भी निर्धारित की जा सकती है। ऐसी स्थिति में यदि किसी समय खण्ड में रोकड़ शेष न्यूनतम शेष से कम रह जाता है, तो उसके लिए बैंक अधिविकर्ष इत्यादि की व्यवस्था की जाती है। यदि किसी समय खण्ड में रोकड़ शेष अधिकतम शेष से अधिक हो जाता है, तो उसके अल्पकालीन विनियोग का प्रावधान किया जाता है।

5. **बजट की विधि का निर्धारण** (Determination of the method of the Budget)– रोकड़ बजट बनाने की अनेक विधियॉ हैं। अतः यह निर्धारित करना होता है कि बजट की कौन–सी विधि अपनाई जायेगी। इसके

पश्चात् तय की गयी विधि और उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर रोकड़ बजट बनाया जाता है।

9.5.4 **रोकड़ बजट के लिए रोकड़ प्राप्ति एवं भुगतान की मदें**

(Items of Cash Receipts and Payments for Cash Budget)–

रोकड़ बजट की दृष्टि से रोकड़ प्राप्ति एवं भुगतान की मदों को अग्र प्रकार रखा जा सकता है :–

(I) **रोकड़ प्राप्तियॉ** (Cash Receipts)–

1. **व्यवसाय संचालन से प्राप्तियॉ** (Receipts from Business Operations)– इसके अन्तर्गत नकद बिक्री, देनदारों से वसूल की गयी राशि, प्राप्य बिलों से प्राप्त होने वाली राशि, ग्राहकों से अग्रिम, इत्यादि मदें आती हैं।
2. **गैर–व्यवसाय संचालन से प्राप्तियॉ** (Receipts from Non-Business Operations)– इसके अन्तर्गत लाभांश, ब्याज, किराया, कर वापसी, कमीशन, इत्यादि से प्राप्त गैर–परिचालन आयें शामिल की जाती हैं।
3. **पूॅजी व्यवहारों से रोकड़ प्राप्तियॉ** (Cash Receipts from Capital Transactions)– इसके अन्तर्गत अंशों एवं ऋण पत्रों के निर्गमन से प्राप्त राशि, स्थायी सम्पत्तियों की बिक्री अथवा विनियोगों की बिक्री से प्राप्त राशि शामिल होती है। रोकड़ कमी को पूरा करने के लिए अल्पकालीन ऋणों से प्राप्त राशि भी इसमें शामिल होती है।

(II) **रोकड़ भुगतान** (Cash Payments or Disbursements)–

1. **व्यावसायिक क्रियाओं के लिए भुगतान** (Cash Payment for Business Operations) – इनमें नकद क्रय, लेनदारों को भुगतान, वेतन और मजदूरी तथा विभिन्न उपरिव्ययों को शामिल किया जाता है।
2. **गैर–परिचालन व्ययों के लिए भुगतान** (Cash Payment for Non-operating Expenses)– इसमें ब्याज, लाभांश, दान, आयकर, इत्यादि शामिल होते हैं।
3. **पूॅजी व्यवहारों के लिए भुगतान** (Cash Payment for Capital Transaction)– इसमें अंशों या ऋण पत्रों का भुगतान तथा स्थायी सम्पत्तियों या विनियोग के लिए आवश्यक रोकड़ का भुगतान शामिल किया जाता है।

9.5.5 **रोकड़ बजट में 'समय–अन्तराल' या 'समय विलम्बना पर विशिष्ट ध्यान** (Specific Consideration of Time-lag in Cash Budget)–

रोकड़ बजट बनाते समय प्राप्तियों और भुगतानों का अनुमान लगाने में महत्वपूर्ण बिन्दु 'समय–अन्तराल' होता है अर्थात् प्राप्ति और भुगतान में वास्तविक व्यवहार और वास्तविक रोकड़ प्रवाह में समय में कितना अन्तर रहेगा, क्योंकि रोकड़ बजट में राशि वास्तविक व्यवहार के आधार पर नहीं लिखी जाती, वरन रोकड़ के वास्तविक प्रवाह के समय के आधार पर लिखी जाती है। समय–अन्तराल के कुछ पहलुओं को निम्न उदाहरणों से स्पष्ट किया जा सकता है :

1. उधार बिक्री में देनदारों को दो माह का समय दिया जाता है। इसका अर्थ है कि जनवरी की उधार बिक्री की राशि मार्च में और फरवरी की उधार बिक्री की राशि अप्रैल में वसूल होगी।

2. मजदूरी में समय–अन्तराल 1/2 माह है। इसका अर्थ है कि जनवरी का 1/2 भुगतान जनवरी में और 1/2 भुगतान फरवरी में होगा।
3. निर्माणी व्ययों में समय–अन्तराल 1/8 है। इसका अर्थ है कि जनवरी में निर्माणी व्यय के 7/8 का भुगतान जनवरी में और 1/8 का भुगतान फरवरी में होगा। स्पष्ट है कि जितना समय–अन्तराल होता है उतनी राशि का भुगतान रोकड़ बजट में अगले माह या समय–खण्ड में दिखाया जाता है।
4. बिक्री का 25 प्रतिशत नकद होता है तथा उधार बिक्री का 50 प्रतिशत अगले माह में और शेष 50 प्रतिशत उससे अगले माह में वसूल होता है। इसका अर्थ है कि यदि जनवरी में 80,000 रू0 की बिक्री का अनुमान है तो इसका 25 प्रतिशत अर्थात् 20,000 रू0 जनवरी माह मे नकद बिक्री के रूप में दिखाया जायेगा तथा 60,000 रू0 की उधार बिक्री का 50 प्रतिशत अर्थात् 30,000 रू0 फरवरी माह में और शेष 30,000 रू0 मार्च माह में देनदारों से वसूली के रूप में दिखाया जायेगा।

9.6 उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण (रोकड़ का प्रबन्ध)

1. एक कम्पनी की मासिक बिक्री का अनुमान निम्न है :

The estimated monthly sales for a company is as follows :

Month	:	Jan.	Feb.	Mar.	Apr.
Sales in Rs.	:	5,000	6,000	4,500	4,000

बिक्री का 50 प्रतिशत अगले माह में व शेष अगले माह में वसूल होता है, तो उपरोक्त महीनों में बिक्री से कितनी राशि वसूली होगी?

If 50% of sales are realised in next month and balance in the next to next month. What would be the cash collection from sale in above months?

<u>हल -1</u>

Month	Sales (Rs.)	Cash Collection			
		Jan.	Feb.	Mar.	April
Jan.	5,000	-			
Feb.	6,000	-	2,500	2,500	
March	4,500	-	-	3,000	3,000
April	4,000	-	-	-	2,250
Total-		Nil	2,500	5,500	5,250

2. एक फर्म की मासिक मजदूरी का अनुमान निम्न है :

The estimated monthly wages of a firm is as follows :-

Month	:	April	May	June	July	August
Wages in Rs.	:	10,000	15,000	12,000	10,000	8,000

मजदूरी के सम्बन्ध में समय विलम्बना 1/4 माह है।

The time lag in payment of wages is 1/4 month.

हल -2

Estimation of Wages Payment (Time Lag 1/4 month)

Particulars	April (Rs.)	May (Rs.)	June (Rs.)	July (Rs.)	August (Rs.)
April Rs. 10,000 (3/4, 1/4)	7,500	2,500	-	-	-
May Rs. 15,000 (3/4, 1/4)	-	11,250	3,750	-	-
June Rs. 12,000 (3/4, 1/4)	-	-	9,000	3,000	-
July Rs. 10,000 (3/4, 1/4)	-	-	-	7,500	2,500
August Rs. 8,000 (3/4, 1/4)	-	-	-	-	6,000
Total-	7,500	13,750	12,750	10,500	8,500

3. निम्न सूचनाओं से कुल धन की कमी ज्ञात कीजिए –

Calculate total deficit of cash from the following informations :-

प्रारम्भिक शेष (Opening Balance)	Rs.	32,000
दो माह का विक्रय (Sales of two months)	Rs.	5,00,000
दो माह की खरीद (Purchases of two months)	Rs.	7,50,000
मजदूरी (Wages)	Rs.	24,000 per month

हल -3

Opening Balance + Sales - Purchases - Wages	=	
32,000 + 5,00,000 - 7,50,000 - 48,000	=	Rs. 2,66,000
Deficit	=	2,66,000

4. निम्न सूचनाओं से प्रत्येक माह में कुल भुगतान की गयी राशि ज्ञात कीजिए :

Calculate the amount of total payment for each month from the following informations :

	April (Rs.)	May (Rs.)
प्रारम्भिक शेष (Opening Balance)	25,000	25,000
कुल प्राप्तियॉ (Total Receipt)	1,00,000	2,25,000
अन्तिम शेष (Closing Balance)	-	50,000

हल -4

Opening Balance + Total Receipts - Closing Balance = the amount of total payment

April	25,000	+ 1,00,000	- 25,000	=	1,00,000
May	25,000	+ 2,25,000	- 50,000	=	2,00,000

5. निम्न सूचनाओं से नकद बिक्री तथा देनदारों से वसूली हुई रकम ज्ञात करो–

Calculate cash sales and amount received from debtors from the following informations :

प्रारम्भिक शेष (Opening Balance)	Rs.	25,000
देनदारों को भुगतान (Payment to Creditors)	Rs.	2,54,000
अन्तिम शेष (Closing Balance)	Rs.	-43,000

देनदारों से वसूल हुई रकम नकद बिक्री से दुगुनी है।

Amount received from debtors is just double in compare to cash sales.

हल -5

Cash Account

To Balance b/d	25,000	By Creditors	2,54,000
To Sales (Cash)	?		
To Debtors	?		
To Balance c/d	43,000		
	2,54,000		2,54,000

माना Cash Sales A है तो Debtors Received 2A होगा।

A + 2A	=	2,54,000 - (25,000 + 43,000)
	=	1,86,000
3A	=	1,86,000
A	=	62,000 (Cash Sales)
2A	=	1,24,000 (Received from Debtors)

6. एक कम्पनी की मासिक बिक्री का अनुमान निम्न प्रकार है :

The estimated monthly sales for a Company are as follows :

Month	Sales (Rs.)	Month	Sales (Rs.)
April	16,000	July	40,000
May	28,000	August	50,000
June	24,000	September	20,000

प्रत्येक माह बिक्री 20 प्रतिशत नकद तथा 80 प्रतिशत उधार है। उधार बिक्री का 70 प्रतिशत ठीक बाद के माह में और शेष बाद के दूसरे माह में वसूल हो जाता है। अप्रैल से सितम्बर तक प्रत्येक माह में नकद बिक्री तथा देनदारों से वसूली की कुल राशि की गणना कीजिए।

Sales are 20% cash and 80% for credit each month. Of the credit sales 70% are collected in the month following and the balance in the second month following. Calculate the total amount of cash sales and collection from debtors in each month from April to September.

हल -6

	April	May	June	July	August	September
Cash Sales	3,200	5,600	4,800	8,000	10,000	4,000
Collection from Debtors	-	8,960	3,840	6,720	5,760	9,600
			15,680	13,440	22,400	28,000
	3,200	14,560	24,320	28,160	38,160	41,600

7. एक फर्म में मजदूरी, कारखाना व्यय तथा प्रशासनिक व्ययों के सम्बध में पूर्वानुमान निम्न प्रकार है :

In a firm, the forecasts relating to wages, factory expenses and administrative expenses are as follows :

Particulars	December (Rs.)	January (Rs.)	February (Rs.)	March (Rs.)
मजदूरी (Wages)	40,000	40,000	60,000	60,000
कारखाना (Factory Expenses)	4,000	4,000	6,000	6,000
प्रशासनिक व्यय (Administrative Expenses)	3,000	3,000	4,500	4,500

मजदूरी के भुगतान में समय विलम्बना 1/8 माह, कारखाना व्यय के भुगतान में 1/4 माह तथा प्रशासनिक व्यय के सम्बन्ध में 1/2 माह है। जनवरी से मार्च तक के प्रत्येक माह में देय मजदूरी, कारखाना व्यय एवं प्रशासनिक व्यय की राशि अनुमानित कीजिए।

The time-lag in payment to wages is 1/8 month, in case of factory expenses 1/4 month and that in administrative expenses payable to each month from January to March.

<u>हल</u> -7

Estimation of Wage Payment (Time Lag 1/8)

Particulars	Jan.	Feb.	March
December Rs. 40,000 (7/8, 1/8)	5,000	-	-
January Rs. 40,000 (7/8, 1/8)	35,000	5,000	-
February Rs. 60,000 (7/8, 1/8)	-	52,500	7,500
March Rs. 60,000 (7/8, 1/8)	-	-	52,500
Total-	40,000	57,500	60,000

Estimation of Factory Exps. (Time Lag 1/4)

Particulars	Jan.	Feb.	March
December Rs. 4,000 (3/4, 1/4)	1,000	-	-
January Rs. 4,000 (3/4, 1/4)	3,000	1,000	-
February Rs. 6,000 (3/4, 1/4)	-	4,500	1,500
March Rs. 6,000 (3/4, 1/4)	-	-	4,500
Total-	4,000	5,500	6,000

Estimation of Administrative Exps. (Time Lag 1/2)

Particulars	Jan.	Feb.	March
December Rs. 3,000 (1/2, 1/2)	1,500	-	-
January Rs. 3,000 (1/2, 1/2)	1,500	1,500	-
February Rs. 4,500 (1/2, 1/2)	-	2,250	2,250
March Rs. 4,500 (1/2, 1/2)	-	-	2,250
Total-	3,000	3,750	4,500

8. निम्न समंको के आधार पर अप्रैल से जून 2015 का रोकड़ बजट बनाइए तथा प्रत्येक माह बैंक से आवश्यक सुविधाओं की सीमा को भी बताइए :

From the following data prepare a Cash Budget from April to June 2015 and indicate the extent of bank facililities required at the end to each month :

a.

Month	Sales (Rs.)	Purchases (Rs.)	Wages (Rs.)
February	1,80,000	1,24,800	12,000
March	1,92,000	1,44,000	14,000
April	1,08,000	2,43,000	11,000
May	1,74,000	2,46,000	10,000
June	1,26,000	2,68,000	15,000

b. उधार बिक्री का 50 प्रतिशत बिक्री के अगले माह में तथा शेष 50 प्रतिशत बिक्री के अगले दूसरे माह में वसूला जाता है। लेनदारों का भुगतान क्रय के एक माह पश्चात् किया जाता है।

50% of the credit sales are realised in the month following the sales and the 50% remaining sales in the second month. The creditors are paid after one month of purhase.

c. 1 अप्रैल को बैंक में अनुमानित राशि 25,000 रू0 थी।

Cash at Bank on 1st April (estimated) Rs. 25,000.

<u>हल -8</u>

Cash Budget

<u>For the Quarter ended 30th June 2015</u>

Particulars	April	May	June
Opening Balance	25,000	56,000	47,000
Receipts Collection from Debtors	1,86,000	1,50,000	1,41,000
	2,11,000	2,06,000	94,000
Payments- Payment to Creditors	1,44,000	2,43,000	2,46,000
Wages	11,000	10,000	15,000
	1,55,000	2,53,000	2,61.000
Closing Balance	56,000	(-)47,000	(-)1,67,000
Bank overdraft required	-	47,000	1,20,000

<u>Calculation of Collection from Debtors</u>

Month of Credit Sales	Total Sales (Rs.)	Collection Months		
		April	May	June
February	1,80,000	90,000	-	-
March	1,92,000	96,000	96,000	-
April	1,08,000	-	54,000	54,000
May	1,74,000	-	-	87,000
		1,86,000	1,50,000	1,41,000

9. प्रतिभा कम्पनी अप्रैल से जून 2015 के माहों के लिए बैंक अधिविकर्ष की सुविधा की व्यवस्था करना चाहती है, जब कि वह मुख्यत: स्टॉक करने के लिए उत्पादन तैयार करेगी। निम्न समंकों से उपरोक्त अवधि का रोकड़ बजट तैयार कीजिए तथा यह बताइए कि प्रत्येक माह के अन्त में कम्पनी में बैंक सुविधा की कितनी आवश्यकता होगी।

Pratibha company wishes to arrange overdraft facilities with Bank during the period April to June 2015. When it will be manufacturing mostly for stock. Prepare a Cash Budget for the above period from the following data, indicating the extent as the Bank facilities the company will require at the end of each month.

माह (Month)	विक्रय (Sales) Rs.	क्रय (Purchases) Rs.	व्यय (Expenditure) Rs.
February	90,000	60,000	6,000
March	95,000	70,000	7,000
April	50,000	1,20,000	10,000
May	85,000	1,20,000	5,000
June	60,000	1,30,000	7,000

(i) उधार बिक्री का 50 प्रतिशत बिक्री होने वाले माह से अगले माह में वसूल होता है और शेष 50 प्रतिशत उससे अगले माह में।
50% of the credit sales are realised in the month following the sales and the remaining in the second month following the sales.

(ii) लेनदारों को क्रय वाले माह के अगले माह में भुगतान किया जाता है।
The creditors are paid after one month of purchase.

(iii) व्ययों के भुगतान का अन्तराल–1/4 माह।
Lag in payment of expenses-1/4 month.

(iv) 5 प्रतिशत विक्रय कमीशन वास्तविक बिक्री के अगले माह में भुगतान किया जाता है।
5% sales commission is to be paid within the month following actual sales.

(v) 1 अप्रैल , 2015 को बैंक में अनुमानित रोकड़ 30,000 रू0 थी।
Estimated cash at Bank on 1st April, 2015 was Rs. 30,000

<u>हल -9</u>

(Amount in Rs.)

Particulars	April	May	June
Opening Balance	30,000	38,500	(-)17,750
Receipts-			
Collection from Debtors (Note 1)	92,500	72,500	67,500
	1,22,500	1,11,000	49,750
Payments:			
Payment to Creditors	70,000	1,20,000	1,20,000
Payment of Expenditure (Note 2)	9,250	6,250	6,500
Sales Commission (5%)	4,750	2,500	4,250
	84,000	1,28,750	1,30,750
Closing Balance	38,500	(-)17,750	(-)81,000
Bank overdraft required	-	17,750	63,250

<u>Calculation of Collection from Debtors</u>

(Amount in Rs.)

Month of Credit Sales	Total Sales (Rs.)	Collection Months		
		April	May	June
February	90,000	45,000	-	-
March	95,000	47,500	47,500	-
April	50,000	-	25,000	25,000
May	85,000	-	-	42,500
		92,500	72,500	67,500

Calculation of Expenditure

Particulars	April (Rs.)	May (Rs.)	June (Rs.)
Martch 7,000 (1/4)	1,750	-	-
April 10,000 (3/4, 1/4)	7,500	2,500	-
May 5,000 (3/4, 1/4)	-	3,750	1,250
June 7,000 (3/4)	-	-	5,250
	9,250	6,250	6,500

9.7 सारांश

व्यावसायिक संस्थाओं द्वारा अपनायी गयी विभिन्न विक्रय विधियों में एक आम विधि उधार बिक्री है। प्रत्येक संस्था अपनी पूर्व निर्धारित साख (उधार) नीति के अनुसार ग्राहकों को माल बेचती है। जिन ग्राहकों को उधार माल बेचा जाता है उन्हें पुस्तकीय देनदार (Book-Debts or Debtors) कहते हैं। अमेरिका में इन्हें प्राप्य खाता (Accounts Receivables) कहते हैं। कभी–कभी संस्था ऐसे ग्राहकों को भी माल बेचती है, जो विक्रय मूल्य के भुगतान के बदले में बिल या हुण्डी स्वीकार कर लेते हैं। ऐसे ग्राहकों से प्राप्त बिल को प्राप्य बिल (Bills Receivables) कहते हैं। अमेरिका में इन्हें Notes Receivables कहा जाता है। इस प्रकार संस्था के कुल प्राप्य (Total Receivables) के अन्तर्गत पुस्तकीय देनदार व प्राप्य बिल को शामिल करते हैं।

यह अति आवश्यक होता है कि न वसूल हुए कुल प्राप्यों का बिक्री की रकम से एक यथोचित सम्बन्ध सदा बना रहे। संस्था की विपणन व साख नीति के आधार पर प्राप्य (Receivables) की रकम समय के भीतर ही वसूल हो जानी चाहिए। यदि संस्था समय के भीतर पुस्तकीय देनदारों या प्राप्य बिलों से धन नहीं वसूल पाती है, तो अनावश्यक रूप में संस्था का धन प्राप्यों में फॅसा रहता है और चालू दायित्वों के भुगतान के लिए कहीं से अल्पकालीन ऋण लेना पड़ सकता है। अतः क्षमता का विश्लेषण करते समय यह आवश्यक होता है कि पुस्तकीय देनदारों व प्राप्य बिलों, आदि की तुलना विक्रय से की जाय। इसके लिए प्राप्य आवर्त (Receivables Turnover) ज्ञात किया जाता है। प्राप्य आवर्त वर्ष की शुद्ध बिक्री और औसत प्राप्य (Average Receivables) के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है।

रोकड़ प्रबन्ध के चार प्रमुख आयाम होते हैं (i) रोकड़ आयोजन (Cash Planning), (ii) रोकड़ आगमों का नियन्त्रण (Control of Cash In-flow), (iii) रोकड़ निर्गमों का नियन्त्रण (Control of Cash-Outflows), तथा (iv) अतिरिक्त रोकड़ का निवेश (Surplus Cash Investment)

9.8 शब्दावली

प्राप्य (Receivables)– प्राप्य के अन्तर्गत प्राप्य–विपत्र तथा देनदार को शामिल करते हैं। इसे औसत प्राप्य (Average Receivables) भी कहते हैं।

शुद्ध विक्रय (Net Sales)– शुद्ध विक्रय का आशय शुद्ध उधार विक्रय से है। इसकी गणना Total Sales में से Cash Sales घटा कर की जाती है।

औसत वसूली अवधि (Average Collection Period)–

सूत्र रूप में– $\frac{\text{Average Receivables}}{\text{Net Credit Sales Per day}}$

इसका उत्तर दिनों (days) में आता है। यह जितना कम हो, उतना ही अच्छा माना जाता है।

तरलता की जोखिम (Liquidity Risk)– तरलता की जोखिम से तात्पर्य ग्राहकों से रूपया वसूल करने की अक्षमता से होता है।

उदार साख शर्ते (Liberal Credit Terms)– उदार साख–शर्त अपनाने पर ग्राहकों को आसान शर्तो पर माल क्रय करने का अवसर मिल जाता है।

अशोद्धय ऋण (Bad Debts)– जिस धनराशि की प्राप्ति, प्राप्यों से नहीं हो पाती है, उसे अशोद्धय ऋण कहते हैं।

सन्देहात्मक ऋण (Doubtful)– ऐसे प्राप्यों, जिनके मिलने में सन्देह होता है, सन्देहात्मक ऋण (Doubtful Debts) कहते हैं।

समय अन्तराल या समय विलम्बना (Time-lag)– इसका आशय समय–अन्तर से है जैसे मजदूरी भुगतान में समय अन्तर 1/8 माह है इसका अर्थ है इस माह में इसका 7/8 भुगतान करना है तथा अगले माह 1/8 भुगतान करना है।

रोकड़–अन्तर्वाह (Cash Inflow)– जब व्यवसाय में रोकड़ आता है तो उसे रोकड़–अन्तर्वाह कहते हैं।

रोकड़–बहिर्वाह (Cash Outflow)– जब व्यवसाय में रोकड़ बाहर जाता है तो इसे रोकड़–बहिर्वाह कहते हैं।

9.9 बोध प्रश्न

1. प्राप्यों का रख–रखाव करना पड़ता है :

   अ. बिक्री में वृद्धि के लिए ब. लाभ में वृद्धि के लिए
   स. प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए द. उक्त सभी के लिए

   Receivable are maintained for :

   a. Increasing the sale b. Increasing the profit
   c. Meeting the competition d. All the above.

2. उदार साख प्रमाप का परिणाम हो सकता है :

   अ. अशोध्य ऋण में वृद्धि ब. औसत वसूली अवधि में वृद्धि
   स. वसूली लागत में कमी द. केवल (अ) तथा (ब)

   Liberal credit standards may result into :

   a. Increase in bad debts b. Increase in averagbe collection period
   c. Decrease in collection costs d. only (a) & (b)

3. साख अवधि बढ़ाने पर :

अ. विक्रय की मात्रा में वृद्धि होती है ब. अशोध्य ऋण पर हानि में वृद्धि होती है
स. औसत वसूली अवधि में वृद्धि होती है द. उपर्युक्त सभी

Extension in credit period results into :

a. Increase in Sales volume b. Increase in loss or bad debts
c. Increase in average collection period d. All the above

4. निम्न में से कौन–सा रोकड़ में शामिल नहीं होता है?

अ. हस्तगत रोकड़ ब. बैंक शेष
स. ऋण पत्र द. इनमें से कोई नहीं

Which of the following is not included in cash :

a. Cash in hand b. Bank Balance
c. Debentures d. None of these

5. एक व्यवसाय में रोकड़ रखने के उद्देश्य होते हैं?

अ. व्यापार सम्बन्धी ब. सुरक्षा सम्बन्धी
स. क्षतिपूर्ति सम्बन्धी द. उपर्युक्त सभी

Motives for holding the cash in a business are :

a. Transactionary b. Precautionary
c. Compensative d. All the above

6. एक व्यवसाय में रोकड़ स्तर प्रभावित होता है :

अ. क्रय–विक्रय की शर्तों से ब. राजनीतिक परिस्थितियो से
स. वित्तीय प्रबन्धक की इच्छाओं से द. इनमें से कोई नहीं

Level of cash in a business is affected by :

a. Terms of purchase & sale b. Political situations
c. Wishes of Financial Manager d. None of these

7. जमा फ्लोट में शामिल है :

अ. पोस्टल फ्लोट ब. प्रोसेसिंग फ्लोट
स. बैंक फ्लोट द. उपर्युक्त सभी

Deposit float consists of :

a. Postal float b. Processing float
c. Bank float d. All the above

8. Receivables = Bills Receivables + ?

9. Net Sales = Total Sales - ?

10. Average Collection Period = $\frac{?}{\text{Net Credit Sales per day}}$

9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. d. 2. d. 3. d 4. c 5. d

6. a 7. d 8. Debtors 9. Cash Sales

10. Average Receivables

9.11 स्वपरख प्रश्न

<u>दीर्घ उत्तरीय प्रश्न</u> –

1. प्राप्तियों में निवेश के आकार के निर्धारक तत्व क्या हैं? इस निवेश को समुचित सीमा में रखने हेतु नियमन की किस पद्धति का आप सुझाव देगें?
   What are the derterminants of size investment in receivables? What system of control would you suggest to keep this investment within reasonable limits?
2. काल्पनिक ऑकड़ों के आधार पर प्राप्य–राशियों की एक काल–क्रम अनुसूची तैयार कीजिए तथा समझाइये कि यह प्राप्य–राशियों को नियन्त्रित करने में किस प्रकार सहायक होती है?
   Draw up an "Ageing Schedule of Receivables" with imaginary figures and explain how it helps in controlling receivables".
3. ''औसत वसूली अवधि'' से आप क्या तात्पर्य समझते हैं? प्राप्तियों के सम्बन्ध में इसका क्या महत्व है?
   What do you understand by 'Average Collection Period'? What is its role in the management of Receivables?
4. किसी कम्पनी में प्राप्तियों के प्रबन्ध के स्तर के विश्लेषण के लिए आप किन विधियों का उपयोग करेगें? कतिपय उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।
   What techniques of analysis will you adopt for analysing the level management of receivables in a company? Explain by giving a few illustrations.
5. प्राप्तियों के प्रबन्ध के मूल उद्देश्य क्या होने चाहिए? प्रबन्धक प्राप्तियों में विनियोग को अनुकुलतम स्तर पर बनाये रखने में किस प्रकार सफल हो सकते हैं?
   What should be the basic objectives of receivables management? How can management succeed in maintaining investment in receivables at the optimum level?
6. 'अत्यधिक–उदार' एवं 'अत्यधिक–कठोर' उधार विक्रय–नीति के गुण दोषों की विवेचना कीजिए।
   Discuss the merits and demerits of a 'too-liberal' and a 'too-strict' credit policy.
7. तरलता का व्यवसाय में क्या महत्व है, तथा व्यवसाय को रोकड़ की आवश्यकता क्यों होती है? विवेचन कीजिए तथा रोकड़ प्रबन्ध के विभिन्न आयामों की व्याख्या कीजिए।
   What is the role and need of liquidity in business? Discuss and explain the various facts of cash management.
8. एक फर्म द्वारा रोकड़ धारण करने की अभिप्रेरणा को प्रभावित करने वाले कारणों को बतलाइए। संग्रह तथा भुगतान की उन विभिन्न विधियों का संक्षेप में विवेचन कीजिए, जिनसे एक फर्म अपनी रोकड़–प्रबन्ध क्षमता में सुधार कर सकता है।
   Point out the factors that influence the motive for holding cash by a firm. Discuss in brief the various collection and disbursement methods by which a firm can improve its cash management efficiency.

<u>लघु उत्तरीय प्रश्न</u> –

1. प्राप्यों का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
   Explain the meaning of 'receivables'
2. प्राप्यों के रख–रखाव के उद्देश्य क्या है?
   What are the objectives of maintaining receivables?
3. प्राप्यों के अर्थप्रबन्धन की लागत अर्थात् पूँजी लागत क्या है?
   What are the costs of financing the receivables i.e. capital costs?
4. प्राप्यों से सम्बन्धित जोखिम का वर्णन कीजिए।
   Discuss the risk associated with receivables.
5. प्राप्यों में विनियोग के आकार को प्रभावित करने वाले किन्हीं दो कारकों की व्याख्या कीजिए।
   Explain any two factors affecting the size of investments in receivables.
6. वित्तीय दृष्टि से रोकड़ क्या है?
   What is cash from financial view point?
7. नकद कोषों की आवश्यकता क्यों होती है?
   Why are cash holding needed?
8. रोकड़ स्तर को प्रभावित करने वाले किन्हीं चार कारकों का वर्णन कीजिए।
   Discuss any four factors affecting the level of cash.
9. रोकड़ प्रबन्ध के उद्देश्य क्या हैं?
   What are the objectives of cash management.
10. रोकड़ नियोजन व नियंत्रण हेतु प्रयोग की जाने वाली किन्हीं दो विधियों को समझाइए।
    Explain any two methods used in cash planning and control.
11. रोकड़ बजट क्या है?
    What is Cash Budget.
12. रोकड़ बजट का महत्व क्या है?
    What is the importance of Cash Budget?
13. रोकड़ बजट में 'समय–विलम्बना' की धारणा क्या है?
    What is the concept of 'time-lag' in Cash Budget?
14. रोकड़ बजट में प्राप्ति एवं भुगतान की 5–5 मदों का उल्लेख कीजिए।
    Mention five items each of receipt and payment in Cash Budget.

<u>क्रियात्मक प्रश्न</u>–

1. एक कम्पनी अधोलिखित श्रेणी के ग्राहकों को साख की सुविधा देकर अपनी बिक्री को बढ़ाना चाहती है :

श्रेणी 'अ' ऐसे ग्राहक जिनके द्वारा भुगतान न करने की जोखिम 10 प्रतिशत है।
श्रेणी 'ब' ऐसे ग्राहक जिनके भुगतान न करने की जोखिम 30 प्रतिशत है।
बिक्री में वृद्धि की सम्भावना श्रेणी 'अ' की दशा में 4,00,000 रू0 तथा श्रेणी 'ब' की दशा में 5,00,000 रू0 है।

उत्पादन लागत व विक्रय लागत बिक्री की 60 प्रतिशत है जब कि वसूली लागतें श्रेणी 'अ' की दशा मे ंबिक्री की 5 प्रतिशत तथा श्रेणी 'ब' की दशा में बिक्री की 10 प्रतिशत है।

आपको संस्था द्वारा उपर्युक्त श्रेणी के ग्राहकों को साख सुविधा देने के सम्बन्ध में राय देनी है।

A company is considering pushing up its sales by extending credit facilities to the following categories of customers :
Category 'a' Customers with 10% risk of non-payment;
Category 'b' Customers with 30% risk of non-payment.

The incremental sales expected in the case of category 'a' are Rs. 4,00,000, while in the case of category 'b' they are Rs. 5,00,000.

The cost of production and selling cost are 60% of sales, while collection costs amount to 5% of sales in the case of category 'a' and 10% of sales in the case of category 'b'.

You are required to advise the company about extending credit facilities to each of the above categories of customers.

(Ans. 'अ' श्रेणी के ग्राहकों को साख प्रदान करने से 1,00,000 रू0 की अतिरिक्त आय होगी, अतः कम्पनी इन्हें उधार पर माल विक्रय कर सकती है।
'ब' श्रेणी के ग्राहकों को साख प्रदान करने पर न तो अतिरिक्त आय होगी और न ही अतिरिक्त हानि। अतः इन ग्राहकों को साख (उधार) पर माल नहीं बेचना चाहिए)

2. निम्न सूचनाओं क आधार पर एक्स, वाई तथा जेड कम्पनियों के औसत संग्रह दिवस ज्ञात कीजिए :

Find out average collection days of X, Y and Z companies on the basis of the following informations :

	कम्पनियॉ (Companies)		
	X (Rs.)	Y (Rs.)	Z (Rs.)
प्राप्य (Receivables)	60,000	4,50,000	4,00,000
उधार विक्रय (Credit Sales)	7,20,000	27,00,000	20,00,000

नोट : एक वर्ष में 360 दिन मानिए।

(Ans. x 30 days : y 60 days and z 72 days)

3. वर्ष में 360 दिन लेते हुए निम्न विवरणों से औसत संग्रह अवधि की गणना कीजिए:

Calculate the average collection period from the following details by adopting 360 days in a year :

औसत स्कन्ध (Average Inventory)	Rs.	3,60,000
देनदार (Debtors)	Rs.	2,30,000
स्कन्ध–आवर्त अनुपात (Inventory Turnover Ratio)		6
सकल लाभ अनुपात (Gross Profit Ratio)		10%
कुल बिक्री से उधार बिक्री (Credit Sales to Total Sales)		20%

(Ans. Cost of goods sold Rs. 21,60,000; Sales Rs. 24,00,000 ; Credit Sales Rs. 4,80,000 ; Average Collection Period 172.5 days)

4. एक कम्पनी की मासिक बिक्री का अनुमान निम्न है :

The estimated monthly sales for a company is as follows :

Month Feb. March April May June

Rs.	90,000	96,000	54,000	87,000	63,000

यदि बिक्री का 50 प्रतिशत अगले माह में व शेष अगले से अगले माह में वसूल होता है, तो अप्रैल, मई, जून, में कितनी वसूली होगी?

If 50% of sales are realised in the next month and balance in the next month, what wouldbe the cash collection from sale in April, May, June?
(Ans. April Rs. 93,000 ; May Rs. 75,000 & June Rs. 70,500)

5. एक फर्म में मजदूरी, कारखाना व्यय तथा प्रशासनिक व्ययों के सम्बन्ध में पूर्वानुमान निम्न प्रकार है :
In a firm, the forecasts relating to wages, factory expenses and administrative expenses are as follows :

Expenses	December (Rs.)	January (Rs.)	February (Rs.)	March (Rs.)
मजदूरी (Wages)	4,800	6,000	6,400	6,800
कारखाना व्यय (Factory Exp.)	1,000	1,000	1,200	1,400
प्रशासनिक व्यय (Administrative Exp.)	600	600	700	700

मजदूरी के सम्बन्ध में समय विलम्बना 1/8 माह, कारखाना व्यय के भुगतान में 1/4 माह तथा प्रशासनिक व्यय के सम्बन्ध में 1/2 माह हैं। जनवरी से मार्च तक के प्रत्येक माह में देय मजदूरी, कारखाना व्यय तथा प्रशासनिक व्यय की रकम अनुमानित कीजिए।

The time-lag in payment of wages is 1/8 month, in case of factory expenses 1/4 month and that in case of administrative expenses 1/2 month. Estimate the amount of Wages, Factory Expenses and Administrative Expenses payable in each month January to March.
(Ans. Wages Rs. 5,850 ; 6,350 ; 6,750 ; Factory Exps. Rs. 1,000 1,150 ; 1,350 Administrative Exps. Rs. 600 ; 650 ; 700)

6. एस0के0 लिमिटेड वर्ष 2015 में जुलाई से सितम्बर तक के तीन महीनों के लिए बैंक से अधिविकर्ष की सीमाओं के बारे में तय करना चाहती है। विभिन्न पूर्वानुमान निम्न प्रकार है :
S.K. Ltd. wishes to arrange overdraft limits with its bankers for the three months period from July to September 2015. The various forecasts are as follows :

(Amount in Rs.)

Months	Sales	Purchases	Expenses
May	18,000	12,500	1,200
June	19,000	14,500	1,400
July	11,000	24,000	1,100
August	18,000	25,000	1,000
September	12,000	27,000	1,500

अतिरिक्त सूचनाएँ (Additional Informations)

i. 1 जुलाई, 2015 को रोकड़ शेष 2,500 रू0 था।
Cash balance on 1st July, 2015 was Rs. 2,500

ii. उधार बिक्री की 50 प्रतिशत की वसूली एक माह के पश्चात् तथा शेष 50 प्रतिशत की वसूली दो माह पश्चात् होगी।

50% of the Sales are realised in the month following the sale and the remaining 50% in the second month following.

iii. आपूर्तिकर्ताओं से माल के क्रय का भुगतान क्रय के माह में नकद किया जायेगा।

Suppliers will be paid in cash in the month of purchase.

iv. पूरी बिक्री उधार के आधार पर होती है।

All the sales are made on credit basis.

उपर्युक्त सूचनाओं के आधार पर 30 सितम्बर, 2015 को समाप्त होने वाली तिमाही के लिए रोकड़ बजट बनाइए तथा स्पष्ट कीजिए कि कम्पनी को प्रत्येक माह के अन्त में बैंक अधिविकर्ष की कितनी सीमा की आवश्यकता होगी?

On the basis of the above informations, prepare a Cash Budget for the quarter ending September 30, 2015 and indicate the limits of bank overdraft which the company will require at the end of each month?
(Ans. Bank Overdraft required Rs. 4,100 ; 11,000 ; 14,000 in the month July, August and September respectively).

7. निम्न सूचना से माह जनवरी से अप्रैल 2015 तक का एक रोकड़ बजट तैयार कीजिएः

From the following information, prepare a Cash Budget for the month of January to April 2015 :

माह (Month)	अनुमानित बिक्री (Expected Sales)	अनुमानित क्रय (Expected Purchase)
जनवरी (January)	80,000	60,000
फरवरी (February)	55,000	1,05,000
मार्च (March)	62,000	95,000
अप्रैल (April)	53,000	1,15,000

मजदूरों को 6,000 रू0 प्रति माह मजदूरी दी जानी है। 1 जनवरी, 2015 को बैंक शेष 16,000 रू0 सम्भावित है। प्रबन्ध द्वारा यह निर्णय लिया गया है कि –

अ. यदि धन की कमी 10,000 रू0 तक हो बैंक से प्रबन्ध किया जाए।

ब. यदि धन की कमी 10,000 रू0 से अधिक हो, परन्तु 50,000 रू0 से अधिक न हो तो ऋण पत्रों के निर्गमन को प्राथमिकता दी जाए।

स. यदि धन की कमी 50,000 रू0 से अधिक हो तो अंशों के निर्गमन को प्राथमिकता दी जाए।

Wages to be paid to workers Rs. 6,000 each month. Balance at Bank on 1st January, 2015 is expected to be Rs. 16,000. It has been decided by the management that :

a. In the case of deficit of funds within the limit of Rs. 10,000 arrangements can be made with the bank.

b. In the case of deficit of funds exceeding Rs. 10,000 but within the limit of Rs. 50,000 issue of Debentures is to be preferred.

c. In the case of deficit of funds exceeding Rs. 50,000 issue of shares is to be preferred.

(Ans. जब कोष की कमी पर विचार चारों माह के लिए एक साथ किया जाए, तो कुल कमी 50,000 रू0 से अधिक है अतः अंशों के निर्गमन को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

जब कोष की कमी पर प्रत्येक माह अलग–अलग विचार किया जाए, तो जनवरी में Surplus Rs. 30,000 ; फरवरी में Deficit Rs. 26,000 (Issue of Debentures) ; March में Deficit Rs. 39,000 (Issue of Debentures); April में कमी 68,000 रू0 (Issue of Shares)

9.12 सन्दर्भ पुस्तकें

व्यावसायिक वित्त : डा0 आर0एस0 कुलश्रेष्ठ व डा0 विनय शंकर सिंह
उच्च वित्तीय प्रबन्ध : डा0 एस0पी0 गुप्ता व डा0 बी0 कुमार मित्तल
व्यावसायिक वित्त : डा0 एफ0सी0 शर्मा
वित्तीय प्रबन्ध : डा0 एम0डी0 अग्रवाल व डा0 एन0पी0 अग्रवाल
Financial Management : Dr. I.M. Pandey
वित्तीय प्रबन्ध : डा0 ओसवाल

इकाई–10 पूँजी बजटन : अवधारणा व प्रक्रिया

इकाई की संरचना

10.1 प्रस्तावना

10.2 पूँजी बजटनः अर्थ व परिभाषाएँ

10.3 पूँजी बजटन की विशेषताएँ

10.4 पूँजी बजटन के उद्देश्य व आवश्यकता

10.5 पूँजी बजटन की महत्ता

10.6 पूँजी बजटन निर्णयों के प्रकार

10.7 पूँजी बजटन विधि

10.8 पूँजी बजटन के महत्वपूर्ण घटक

10.9 पूँजी बजटन की सीमाएँ

10.10 सारांश

10.11 शब्दावली

10.12 बोध प्रश्न

10.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.14 स्वपरख प्रश्न

10.15 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- पूँजी बजटन के अर्थ व परिभाषाओं का वर्णन कर सकें ।
- व्यावसायिक उपक्रम के लिए पूँजी बजटन की उपयोगिता की व्याख्या कर सकें ।
- पूँजी बजटन की प्रक्रिया का वर्णन कर सकें ।
- पूँजी बजटन निर्णयन की व्याख्या कर सकें ।
- पूँजी बजटन के महत्वपूर्ण घटकों का वर्णन कर सकें ।

10.1 प्रस्तावना

पूर्व की इकाईयों में यह वर्णित है कि फण्ड का सुरूचिपूर्ण आबंटन आज के समय का बहुत महत्वपूर्ण वित्तीय कार्य है फण्ड के आबंटन में सम्पत्तियों और गतिविधियों को पैसे देना भी शामिल होता है। इसको विनियोग निर्णय भी कहा जाता है यानि कि इस बात का निर्णय करना कि किन सम्पत्तियों में पैसा निवेशित किया जाए। व्यवसाय को दो प्रकार के विनियोग निर्णय होते है।– पहला विनियोग निर्णय चालू सम्पत्तियों के ग्रहण और प्रबन्ध से सम्बन्धित है। इसे कार्यशील पूंजी प्रबन्ध भी कहते हैं। दूसरा विनियोग निर्णय स्थिर सम्पत्तियों और लम्बी अवधि के विनियोगों के निर्णय फर्म के लिए महत्वपूर्ण होते है क्योंकि वह फर्म की उन्नति, लाभ क्षमता और संकट को प्रभावित कर फर्म के आकार और मूल्य को प्रभावित

करता है। चूंकि इसमें चालू पैसों का भविष्य लाभों के लिए विनियोग किया जाता है इसलिए वित्तीय प्रबन्ध को इसके लिए बहुत सोचना व कार्य करना पड़ता है।
व्यवसाय के सफल संचालन के लिए वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता होती है। इन वित्तीय संसाधनों का विनियोग दो प्रकार की सम्पत्तियों (चालू एवं स्थायी सम्पत्तियों) में किया जाता है। चालू सम्पत्तियों में विनियोग वह व्यय है जिनका लाभ संस्था को अधिक से अधिक एक वर्ष की अवधि में प्राप्त होता है, इन्हें आयगत व्यय भी कहा जाता है। विभिन्न क्रियात्मक बजट बनाकर आयगत व्ययों का नियोजन एवं नियंत्रण किया जाता है। स्थायी सम्पत्तियों में विनियोग वह व्यय है जिसका लाभ संस्था को एक से अधिक वर्षों में प्राप्त होता है। व्यवसाय की दीर्घकालीन पूंजी का अधिकांश हिस्सा इन्हीं सम्पत्तियों में विनियोजित होता है। ये सम्पत्तियां व्यवसाय को आधार प्रदान करती है, अतः इन्हें ढांचागत या आधारभूत सम्पत्तियां कहा जाता है। स्थायी सम्पत्तियों पर किये जाने वाले व्यय को पूंजीगत व्यय कहा जाता है।
पूँजी बजटन प्रबंध की वह तकनीक है जिसके अनतर्गत पूँजीगत व्यय का इस प्रकार नियोजन होता है जिससे इन व्ययों के उद्देश्य को सरलता पूर्वक प्राप्त किया जा सके। इसके अन्तर्गत पूँजीगत पूंजी विनियोग के समस्त अवसरों एवं विकल्पों का विश्लेषण कर सर्वश्रेष्ठ विकल्प/अवसर का चुनाव किया जाता है।

10.2 पूँजी बजटनः अर्थ व परिभाषाएँ

पूंजी बजटन में दो शब्द हैं पूंजी और बजटन। पूंजी व्यवसाय के थोड़े से अर्थिक स्त्रोतों के बारे में बताती है और बजटन वह विस्तारित वित्तीय। आंकड़े योजना है जो भविष्य की गतिविधियों का इस प्रकार मार्गदर्शन करती है ताकि मूल्य अधिकतम का उद्देश्य प्राप्त किया जा सके। इसलिए पूंजी बजटन उस योजना से सम्बन्धित हैं जिसके अनुसार उपलब्ध पूंजी को स्थिर लम्बी अवधि की सम्पत्तियों में निवेशित किया जाता है ताकि फर्म को अधिकतम लाभ हो।
पूंजी बजटन को हैम्पटन (Hamton) द्वारा इस तरह परिभाषित किया गया है, ''वह निर्णय लेने की विधि जिसके द्वारा फर्म मुख्य स्थिर सम्पत्तियों जिसमें बिल्डिंग मशीनरी और औजार भी शामिल हैं कि खरीद का मूल्यांकन करती है।'' यह मानते हुए कि भविष्य में इन वर्षों पर लाभों का बहाव होगा यह उन निर्णयों से सम्बन्धित है जिसमें यह निर्णय लिया जाता है कि किस प्रकार चालू पैसों को लम्बी अवधि की सम्पत्तियों में सुरूचिपूर्वक निवेशित किया जाए। लम्बी अवधि की सम्पत्तियों वह सम्पत्तियां हैं जो कि व्यवसाय के कार्य को चलाने के लिए आवश्यक हैं और एक साल से ज्यादा अवधि के लिए आय अर्जित करती हैं। पूंजी बजटन निर्णय उन निर्णयों से सम्बन्धित हैं एक साल से ज्यादा अवधि के भाविष्य में होने वाले लाभों के कारण रोकड़ स्त्रोतों का विनियोग किया जाता है। यह लाभ या तो अधिकतर राजस्व या कम लागतों के रूप में होते हैं।
पूँजी बजटन एक प्रबन्ध तकनीक है जिसका प्रस्तावित पूँजी व्ययों एवं उनके अर्थ–प्रबन्धन पर विचार करने तथा उपलब्ध साधनों से सर्वोत्तम विनियोजन की योजना बनाने तथा उसे क्रियान्वित करने के लिए प्रयोग किया जाता है। इसकी कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्न प्रकार हैं :–

आर.एम. लिंच के अनुसार – ''पूँजी व्यय बजटन उपलब्ध पूँजी के विकास के नियोजन से सम्बन्धित है, जिसका फर्म की दीर्घकालीन लाभदायकता को अधिकतम करने के लिए प्रयोग किया जाता है।''

आर.एन. एन्थोनी के अनुसार – ''पूँजी बजटन प्रबन्ध द्वारा विश्वास की गई उचित परियोजनाओं के लिए मांगी गई नई पूँजी सम्पत्तियों की सूची है जिसमें परियोजना की
अनुमानित लागत भी दी हुई होती है।''

मिल्टन एच. स्पेन्सर के शब्दों में – ''पूँजी बजटन सम्पत्तियों के लिए व्ययों का नियोजन है जिनसे भावी अवधियों में प्रत्यायें प्राप्त होगी।''

इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि पूंजी बजटन वह प्रबन्धकीय तकनीक है, जिसके द्वारा फर्म के दीर्घकालीन लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य से विभिन्न विनियोग प्रस्तावों के उद्भव, मूल्यांकन, निर्णयन अनुवर्तन संबंधी प्रक्रिया पूर्ण की जाती है।

10.3 पूँजी बजटन की विशेषताएँ

पूंजी बजटन निर्णय व्यवसाय के सामान्य निर्णयों से भिन्न होते हैं और ये निर्णय व्यवसाय के साथ–साथ निवेशकर्त्ताओं के भविष्य को भी प्रभावित करते हैं। पूंजी बजटन की मुख्य चरित्रिक विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. भविष्य के लाभों के चालू फण्डों की अदला बदली।
2. लम्बी अवधि की सम्पत्तियों में पूंजी लगाना।
3. भाविष्य लाभ भविष्य में कई सालों तक होते रहेंगे।
4. भविष्य लाभों के सम्बन्ध में उच्च मात्रा का संकट होता है।
5. फण्डों के विनियोग और आशा अनुसार प्रत्याय में लम्बी अवधि होती है।

1. **बड़े कोषों का विनियोग (Investment of Large Funds)** : पूँजी बजटन निर्णयों के तहत् संस्थानों की विशाल योजनाओं में बड़े कोषों का विनियोग किया जाता है। इस तकनीक के माध्यम से बड़ी–बड़ी परियोजनाओं के बारे में निर्णय किये जाते हैं कि उन्हें लागू करना है या नहीं, अतः कोषों का कुशल बजटन आवश्यक है।

2. **भावी पूँजी निवेश योजनाओं का अध्ययन (Study of Future Capital Projects)**: पूँजी बजटन प्रक्रिया के अन्तर्गत संस्था की विभिन्न भावी निवेश योजनाओं का विस्तृत एवं गहन अध्ययन किया जाता है जिससे यह निर्णय किया जा सकता है कि कौन सी परियोजना कितनी लाभदायक है।

3. **तुलनात्मक विश्लेषण (Comparative Analysis)** : पूँजी बजटन की दूसरी विशेषता यह है कि इस प्रक्रिया के अन्तर्गत भावी निवेश की विभिन्न योजनाओं की लागतों एवं संभावित लाभों का तुलनात्मक विश्लेषण किया जाता है। इसके अन्तर्गत यह भी देखा जाता है कि किस–किस योजना को क्रियान्वित करने में कितना–कितना समय लगेगा।

4. **निर्णय करना (Decision Making)** – सभी परियोजनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् यह निर्णय किया जाता है कि कौन सी परियोजना में विनियोजन करना है। चूँकि यह निर्णय दीर्घकाल तक प्रभाव डालता है, अतः

परियोजना की लागत, उपलब्ध संसाधनों की मात्रा, भावी लाभ की संभावना आदि बातों पर गहराई से विचार करके ही निर्णय लिया जाना चाहिए।

5. **निर्णय अपरिवर्तनीय (Unchangeable Decisions)** – व्यावसायिक संस्थान में पूँजी बजटन सम्बन्धी निर्णय प्रायः अपरिवर्तनीय होते हैं। एक बार पूँजी विनियोजन योजना लागू करने के बाद उसमें परिवर्तन करना संभव नहीं हो पाता है। अतः पूँजीगत विनियोग के संबंध में विवेकपूर्ण निर्णय लेना अत्यन्त आवश्यक है।

6. **लाभदायकता पर दीर्घकालीन प्रभाव (Long-term Effects on Profitability)**– पूँजी बजटन निर्णयों का व्यावसायिक संस्था की लाभदायकता पर दीर्घकालीन प्रभाव पड़ता है। अतः विशाल कोषों का विनियोग पूँजी बजटन तकनीक को ध्यान में रखकर दीर्घकालीन लाभ के लिये किया जाना चाहिए।

10.4 पूँजी बजटन के उद्देश्य व आवश्यकता

पूँजीगत सम्पत्तियों में विनियोग एक बहुत ही महत्वपूर्ण परन्तु कठिन समस्या है। बजटन स्वयं में एक आवश्यक यन्त्र है। परन्तु पूँजीगत सम्पत्तियों के बजटन की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से और भी अधिक हो जाती है :–

1. **तुलनात्मक रूप से अधिक लागत (Relatively High Cost)** – पूँजीगत परियोजनाओं में बहुत अधिक धन का विनियोग होता है। अतः उनका कुशल बजटन आवश्यक है।

2. **दीर्घकालीन प्रभाव (Long-term Effects)** – पूँजीगत परियोजनायें व्यवसाय के आगामी कई वर्षों की अर्जनों को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए श्रम के स्थान पर मशीन के प्रतिस्थापन से व्यवसाय की स्थिर लागतें बढ़ जाती हैं।

3. **स्थायी विनियोग (Permanent Investment)** – पूँजीगत परियोजनाओं में विनियोजित धन एक स्थायी विनियोग है। बिना महत्वपूर्ण हानि के इनसे धन तुरन्त वापिस नहीं लिया जा सकता है।

4. **लाभप्रदता व वित्तीय स्थिति पर प्रभाव पड़ना (Vitally affects Profits and Financial Position)** – पूँजीगत विनियोगों से संस्था की लाभप्रदता तथा वित्तीय स्थिति तुरन्त प्रभावित होती है तथा प्रबन्ध अपनी संस्था के वित्तीय लोच के लिए भावी घटनाओं पर आश्रित हो जाता है। अतः ये विनियोग बड़ी सावधानी से करने चाहियें।

5. **अनिश्चितता व जोखिम (Uncertainty and Risk)** – दीर्घकालीन विनियोग निर्णयों की पेचीदगियाँ अल्पकालीन निर्णयों से अधिक विस्तृत होती हैं क्योंकि एक तो इन निर्णयों का प्रभाव चालू वर्ष से भी आगे तक रहता है और इनकी शुद्धता का तुरन्त सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता। दूसरे, इन परियोजनाओं का प्रभाव आगामी बहुत वर्षों तक रहने के कारण इनमें अनिश्चितता व जोखिम भी अधिक होती है।

उपर्युक्त कारणों से यह आवश्यक हो जाता है कि पूँजीगत व्ययों को करने या न करने के बारे में निर्णय लेने से पूर्व उपलब्ध विकल्पों का सम्यक विश्लेषक एवं सावधानीपूर्वक मूल्यांकन किया जाये। इस महत्वपूर्ण दायित्व के निर्वाह हेतु अपनाई जाने वाली तकनीक को वित्तीय प्रबंध में पूँजी बजटन कहा जाता है।

उद्देश्य

व्यावसायिक संस्थानों में पूँजी बजटन निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये किया
जाता है :–

1. **पूँजी व्यय परियोजना का मूल्यांकन (Evaluation of Capital Expenditure Projects)** – पूँजी बजटन का प्रमुख उद्देश्य संस्थान के समक्ष उपलब्ध विभिन्न प्रस्तावित पूँजी व्यय परियोजनाओं का मूल्यांकन करना है, जिससे लाभप्रद परियोजना के चयन का कार्य सरल हो जाता है।
2. **प्राथमिकता निर्धारित करना (Determination of Priority)** – पूँजी बजटन तकनीक अपनाने पर विभिन्न परियोजनाओं को उनकी सही लाभप्रदता का क्रम में विन्यासित किया जाता है। इससे प्रबन्ध को परियोजनाओं के संबंध में विस्तृत जानकारी प्राप्त होने के साथ–साथ उनकी संस्थान में उपयोगिता व लाभदायकता के क्रम की जानकारी मिल जाती है।
3. **समन्वय (Coordination)** – बड़े संस्थान के अन्तर्गत कार्य अनेक विभागों में विभाजित किया जाता है, किन्तु प्रभावी नियंत्रण हेतु इनके मध्य समन्वय बनाये रखना अति आवश्यक होता है। पूँजी बजटन के माध्यम से विभिन्न विभागों के पूँजी व्यय में संतुलन स्थापित किया जा सकता है।
4. **पूँजी व्ययों पर प्रभावी नियन्त्रण (Effective Control on Capital Expenditure)**: पूँजी बजटन में भी अन्य बजटों के समान ही परियोजना पर किये जाने वाले व्ययों के लिए बजट का निर्माण किया जाता है, जिससे विभिन्न विभागों द्वारा किये जाने वाले पूँजी व्ययों पर नियंत्रण किया जा सकता है। इसमें भी वास्तविक व्ययों की पूर्व निर्धारित व्ययों से तुलना करके इन पर प्रभावकारी नियंत्रण रखा जा सकता है।
5. **पूँजी व्ययों के लिए वित्त व्यवस्था (Financing of Capital Expenditure)**: पूँजी बजटन से प्रबन्ध को इस बात की पहले से जानकारी हो जाती है कि कब कितनी राशि का पूँजी विनियोजन करना होगा। जिससे संस्था के प्रबन्धक समय पर उस राशि के लिए उचित व्यवस्था भी कर सकते हैं।
6. **भूतकालीन निर्णयों का विश्लेषण (Analysis of Past Decisions)** : पूँजी बजटन के तहत् गत अवधि में लिये गये निर्णयों का विश्लेषण करके यह पता लगाया जा सकता है कि वे निर्णय कहाँ तक उपयुक्त थे।
7. **भावी हानियों से सुरक्षा (Safety from Future Losses)** : पूँजी बजटन में प्रत्येक पूँजीगत व्यय का विस्तृत अध्ययन होने से जोखिमों एवं अनिश्चितताओं की पूर्व में जानकारी हो जाती है। इससे सुरक्षात्मक कदम उठाकर भावी हानियों से बचा जा सकता है।
8. **स्थायी सम्पत्तियों का मूल्यांकन (Evaluation of Fixed Assets)** – पूँजी बजटन के माध्यम से स्थायी सम्पत्तियों का समय–समय पर मूल्यांकन होता है, जिससे कम्पनी के चिट्ठे में इन्हें बताने में सुविधा रहती है।

10.5 पूँजी बजटन की महत्ता

पूंजी बजटन एक महत्वपूर्ण गतिविधि है क्योंकि यह फर्म के सीमित स्त्रोतों को प्रतियोगी विनियोग कार्यों में विनियोगित करती है। किसी व्यवसाय की

सफलता या असफलता बहुत हद तक कार्यालय में रही पूंजी बजटन के स्तर पर निर्भर करती है। निम्नलिखित कारणों के कारण पूंजी बजटन एक बहुत ही महत्वपूर्ण गतिविधि बन गया है।

1. **अधिक व्यय (Substantial Expenditure)**: लम्बी अवधि की सम्पत्तियों को ग्रहण करने के लिए बहुत अधिक पैसे की आवश्यकता होती है इसलिए फर्म को अपने विनियोग प्रोग्रामों की योजना बहुत ध्यानपूर्वक बनानी चाहिए। व्यवसाय में पूंजी बजटन में एक भी त्रुटि बहुत खतरनाक साबित हो सकती है। इतना बड़ा व्यय खुद ही पूंजी बजटन की महत्ता को शामिल करता है।
2. **संकट (Risk)**: स्थिर सम्पत्तियों में विनियोग फर्म की संकट स्थिति को बदलती है। नई ओर बेहतर स्थिर सम्पत्तियों में विनयोग जहां एक ओर बढ़ती योग्यता के कारण सम्पूर्ण आय को बढ़ाता है वहीं दूसरी ओर संकट को भी बढ़ाता है। यह इसलिए होता है कि स्थिर सम्पत्तियों में बढ़ते विनियोग के कारण स्थिर लागतों में भी बढ़ौतरी होती है। अगर स्थाई सम्पत्तियों का प्रयोग पूर्ण रूप से नहीं हो पाता तो लाभों में गिरावट आती है।
3. **लम्बी अवधि (Long time Periods)*:*** पूंजी बजटन के निर्णयों का प्रभाव भविष्य में कई वर्षों तक फर्म अनुभव करती रहती है। भविष्य की अनिश्चितताओं के कारण पूंजी कार्यो से मिलने वाले लाभों का निर्धारण आसानी से नहीं हो सकता। प्रतियोगी पूंजी कार्यों के भविष्य के लाभों का अनुमान लगाने के लिए अधिक मेहनत और घ्यान की आवश्यता है।
4. **उन्नति/वृद्धि (Growth):** पूंजी बजटन विधि का फर्म के वृद्धि दर और दिशा पर निर्णयक प्रभाव होता है। सही पूंजी बजटन निर्णय फर्म की सही दिशा में वृद्धि को सुविधाजनक बनता है। दूसरी तरफ गलत निर्णय फर्म को चलाए रखने के लिए हानिकारक साबित होते हैं।
5. **अपरिवर्तनीयता(Irreversibility):** स्थिर सम्पत्तियों में विनियोग अपरिवर्तनीय है। एक बार ग्रहण की गई स्थाई सम्पत्तियों को बेचना बहुत मुश्किल है। अगर स्थाई सम्पत्तियों को बेच भी दिया जाता है तो भी फर्म को भारी हानि उठानी पड़ती है।
6. **जटिलता (Complexity):** पूंजी बजटन निर्ण बहुत कठिन निर्णय होते हैं। इन निर्णयों में भविष्य की स्थितियों पर भविष्यवाणी करनी होती हैं ताकि विभिन्न पूंजी कार्य से मिलने वाले भविष्य रोकड़ बहावों का अनुमान लगाना जा सके। भविष्य स्थितियों और आशान्वित रोकड़ बहावों में अनिश्तिता, अनिश्चित आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक और तकनीकी बहावों के कारण होती है।

10.6 पूँजी बजटन निर्णयों के प्रकार

फर्म अपनी पूंजी बजटन विधि में विभिन्न प्रकार के विनियोग प्रस्तावों को शामिल कर सकती है। कुछ महत्वपूर्ण विनियोग प्रकार इस प्रकार हैं।

1. **विस्तार (Expansion)**: विस्तार का अर्थ है कि वर्तमान उत्पादनों पर अतिरिक्त उत्पादन सुविधाएं देकर कार्य के आकार को बढ़ाना । विस्तार की आवश्यकता तब पड़ती है जब फर्म के उत्पादन की मांग बहुत अधिक हो और वर्तमान उत्पादन सुविधाएं अपर्याप्त हों।

2. **प्रतिस्थापना और नवीनीकरण (Replacements and Modernisations)**: क्योंकि स्थाई सम्पत्तियों का प्रयोग होता है इसलिए वह घिस जाती हैं या तकनीक में बदलाव के कारण बेकार हो जाती हैं। प्रतिस्थापना और नवीनकरण का मुख्य उद्देश्य कार्य में क्षमता को बढ़ाना और लागत की बचत करना है। अगर घिसी हुई या बेकार सम्पत्तियों का प्रयोग किया जाएगा तो इसका नतीजा यह होगा कि क्षमता कम होगी और लागत बढ़ेगी। इसलिए फर्म को यह निर्णय अवश्य ही लेना चाहिए कि बेकार सम्पत्त्यिों की जगह नही सम्पत्तिया लेगी ताकि फर्म का कार्य पूर्ण आर्थिकता से किया जा सके। प्रतिस्थापना और नवीनकरण ज्यादा आर्थिक और क्षमतापूर्ण सम्पत्तियों के परिचय में सहायक होते हैं इसलिए इन्हें लागत कम करने के लिए विनियोग भी कहा जाता है।

3. **बढ़ौतरी (Diversification)**: बढ़ौतरी का अर्थ होता है कि बाजार में कार्य करने की जगह कई बाज़ारों में कार्य करना। बढ़ौतरी में यह कार्य भी शामिल है कि वर्तमान उत्पादनों में कई नए उत्पादन जोड़ना। इसका उद्देश्य ज्यादा बाज़ारों में कार्य कर और ज्यादा उत्पादनों के साथ सम्बन्ध रख कर संकट को कम करना होता है। वह फर्में जो नए बाज़ारों में प्रवेश करना चाहती हैं या अपने उत्पादन को बदलना चाहती है उन्हें नये कार्या को सम्भालने के लिए नई मशीनरी की खरीद और सुविधाओं के प्रस्तावों पर ध्यान रखना होगा।

4. **अनुसन्धान और निर्माण (Research & development)**: वह फर्में जहां तकनीक शीघ्रता से बदलती है उसमें अनुसन्धान और निर्माण पर व्यय आवश्यक है। तकनीक में परिवर्तन के कारण उपस्थित उत्पादन बेकार हो जाते हैं और नए उत्पादनों के अनुसन्धान और निर्माण की आवश्यकता होती है। सामान्यतः इनके लिए बहुत बड़ी रकम चाहिए होती है जिसके कारण पूंजी बजटन निर्णय लेने पड़ते हैं।

5. **सामाजिक लक्ष्यों पर पूंजी व्यय (Capital Expenditure for social goals)**:

फर्म को अपनी सामाजिक ज़िम्मेवारियों को पूरा करने के लिए भी पूंजी व्यय करना पड़ता है। यह खर्च सीधे तौर पर लाभ लक्ष्य को पूरा करने में सहायक नहीं होता। इन प्रस्तावों में काफी व्यय हो सकता है जैसे प्रदूषण को नियंत्रण में रखने का यंत्र, आग से बचने के लिए तरीके और स्कूल व अस्पताल खोलना। चूंकि इनसे प्राप्त लाभ भविष्य में कई सालों तक होते रहते हैं, इसलिए इन्हें पूंजी बजटन विधि में शामिल किया जाता है।

इसके अतिरिक्त पूंजी बजटन कार्य का वर्गीकरण विभिन्न कार्यों की स्वीकार्यता के आधार पर भी हो सकता है। स्वीकार्यता के आधार पर उपक्रमों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से हो सकता है।–

1. **परस्पर निवारक कार्य (Mutually Exclusive Projects)**: यह वह कार्य होते हैं जो एक दूसरे के प्रतियोगी होते हैं। वह एक ही कार्य (Same purpose) के लिए किए जा सकते हैं। अगर परस्पर निवारक कार्यों में

से एक का चुनाव हो जाता है, तो यह अन्य की स्वीकार्यता समाप्त कर देता है। उदाहरण के तौर पर कम्पनी चाहे तो ज्यादा मज़दूर और उप आटोमैटिक (Automatic) मशीन का प्रयोग कर सकती है या उत्पादन के लिए पूर्ण रूप से स्वचलित यंत्रों को भी नियुक्त कर सकती है। अगर कम्पनी पहले वाला प्रस्ताव स्वीकार कर लेती है यानि ज्यादा मज़दूर और उप स्वचलित मशीन तो पूर्ण रूप से स्वचलित मशीन में विनियोग की संभावना ही नहीं रहती।

2. **आज़ाद (स्वच्छंद, मुक्त) कार्य (Independent Projects)**: यह वह कार्य है जो एक दूसरे से आज़ाद होते हैं और विभिन्न कामों के लिए प्रयुक्त होते हैं। उनका स्वीकार्य या अस्वीकार्य होने दूसरे कार्य की स्वीकार्यता या अस्वीकार्यता पर निर्भर नहीं करता। उदाहरण के तौर पर कम्पनी अपने उपलब्ध प्लांट के विस्तार और नये उत्पादन को बनाने के लिए, अपने पहले कार्य से भिन्न एक नया प्लांट स्थापित करने की सोचे। यह कार्य एक दूसरे से आज़ाद है। क्योंकि इनके लिए कुछ भी किया जा सकता है। दोनों कार्य स्वीकार भी किए जा सकते है, एक को स्वीकार और दूसरे को निरस्त भी किया जा सकता है। दोनों कार्य स्वीकार भी किए जा सकते है, दोनों को निरस्त (Reject) भी किया जा सकता है। आज़ाद कार्यों के मामलों में फर्म उन्हें ऊंची से निम्न प्राथमिकता की सीढ़ियों पर आबंटित करता है फिर एक विच्छेद जगह (Cutt off point) का चयन किया जाता हैं। जो प्रस्ताव विच्छेद जगह से ऊपर होते हैं उन्हें स्वीकार कर लिया जाता है और जो नीचे होते हैं उन्हें अस्वीकार। सभी कार्यों को ध्यानपूर्वक देख, आशन्वित प्रत्याय दर और उपलब्ध पैसों को ध्यान में रखते हुए विच्छेद जगह का चयन किया जाता है।

3. **पूरक कार्य (Complimentary Projects)**: यह कार्य एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। एक कार्य में विनियोग दूसरे एक या ज्यादा कार्यों में विनियोग आवश्यक कर देता है। यह कार्य अलग अलग स्वीकार नहीं किए जा सकते। अगर एक कार्य को स्वीकार किया जाता है तो दूसरे को भी करना होगा। उदाहरण के तौर पर एक फर्म नई कार्यालय बिल्डिंग किया जाता है तो दूसरे को भी करना ही होगा। उदाहरण के तौर पर एक फर्म नई कार्यालय बिल्डिंग और कर्मचारियों के वाहन आदि खड़ा करने के लिए नए निर्माण की ओर ध्यान दे रही है अगर फर्म नए भवन के निर्माण को स्वीकार करती हैं तो उसे उस जगह के लिए भी स्वीकृति देनी होगी जहां कर्मचारी वाहन आदि खड़ा कर सकते हैं। अगर वह बिल्डिंग के निर्माण को ही रद्द कर देती है तो उस जगह की भी कोई आवश्यकता नहीं रहेगी जहाँ वाहन खड़ा करने हैं। पूरक कार्यों के मामले में सम्पूर्ण व्यय एक ही विनियोग समझा जाता है।

10.7 पूँजी बजटन विधि

पूंजी बजटन का मुख्य लक्ष्य फर्म के सीमित स्त्रोतों को सबसे समक्ष प्रयोगों में डालना हैं प्रतियोगी कार्यों मे सबसे प्रभावी ढ़ंग में स्त्रोंतों का आबंटन

करने के लिए, फर्म को पूंजी बजटन निर्णय के लिए एक सुरूचिपूर्ण विधि को अपनाना चाहिए। एक प्रभावी पूंजी बजटन विधि में निम्नलिखित पग होते है–

(I) लाभवन्य अवसरों के लिए उत्पादन अनुसन्धान (Creative Search for Profitable oppurtunities):

पूंजी बजटन कार्य 'लाभवन्य अवसरों' के उत्पादक अनुसन्धान और वित्तीय प्रस्तावों को पहचानने से आरम्भ होता है। अच्छे विनियोग अवसरों को पहचानने का मंतव्य होता है कि (i) बाहरी वातावरण के साथ संगठन को समायोजित करना (2) स्वॉट विश्लेषण के ऊपर आधारित सहकारी योजना का निर्माण करना (स्वाट– ताकत, कमजोरीयों, अवसर और धमकी विश्लेषण) (3) पूंजी बजटन में शामिल व्यक्तियों को सहकारी योजना के बारे में बताना और योजना बनाने मे उनको शामिल करना और (4) उन कर्मचारियों के सुझाव लेना जिन्होनें पूंजी बजटन निर्णय लागू करने है।

फर्म में अच्छे विनियोग अवसरों को पहचानने के लिए फर्म को वातावरण की ताकतों का विश्लेषण करना पड़ेगा, उपलब्ध अवसरों को पहचानना होगा और उन खतरों को भी पहचानना होगा जिसका फर्म पर प्रभाव हो सकता है। उसके बाद उसे अपनी ताकतों और कमजोरियों को पहचानना होगा। वातावरण विश्लेषण और अपनी ताकतों और कमज़ोरियों के आधार पर उसे उन पूंजी कार्यों की पहचान करनी चाहिए जिसमें विनियोग किया जा सकता है।

(II) वित्तीय प्रस्तावों का समायोजन (Assembly of Investement Proposals):

संगठन के विभिन्न विभागों में जो वित्तीय प्रस्ताव पारित होते हैं वह कई व्यक्तियों द्वारा बजट कमेटी में देखी जाते हैं। विभिन्न व्यक्तियों द्वारा प्रस्ताव को देखने का मंतव्य यह होता है कि प्रस्ताव को विभिन्न तरफों से अच्छी तरह जांच परख लिया जाए। उदाहरण के तौर पर एक नई मशीन में विनियोग उत्पादन की उत्तमता के दृष्टिकोण से वांछनीय हो सकता है परंतु उचित कार्यकुशलता के अभाव से काम नहीं कर सकती। संगठन के विभिन्न अनुभागों से प्राप्त वित्तीय प्रस्तावों को निर्णय लेने के लिए विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है।

(1) प्रतिस्थापना (2) विस्तार (3) अनुसन्धान और निर्माण (4) ज़रूरी कल्याण विनियोग आदि। कार्यों का स्वीकार्यता के आधार पर भी वर्गीकरण किया जा सकता है जैसे (1) परस्पर निवारक प्रस्ताव (2) आज़ाद प्रस्ताव (3) पूरक प्रस्ताव।

(iii) कार्य मूल्यांकन (Project Evaluaiton)

प्रस्तावों को इकट्ठा करने के बाद अगला कार्य यह है कि लागत और लाभों की शर्तों में प्रत्येक प्रस्ताव का मूल्यांकन करो। विनियोग प्रस्तावों के मूल्यांकन में विकल्पों की पहचान, उपयुक्तता अध्ययन, रोकड़ बहाव भविष्यवाणी प्रोग्राम, आर्थिक दृष्टिकोण से समर्थता, संकट और ऐच्छिक प्रत्याय दर सब कुछ शामिल है।

हैरालड बाईरमैंन (Harold Bierman) और सेमायर समिडल (Saymour Smidl) ने विनियोग निर्णयों के विश्लेषण और मूल्यांकन के लिए एक मैनुअल (Manual) का सुझाव दिया है। यह मैनुअल विनियोग निर्णय के वित्तीय और अवित्तीय दोनों पहलुओं को शामिल करता है। विनियोग निर्णयों को निम्नलिखित चीज़ों को शामिल करना होगा –

1. **ब्यौरा और न्यायोचित सारांश (Description and Justification Summary)**: यह कार्य के स्वभाव और किस प्रकार के लाभों की उससे आशा की जाती है उसका छोटा सा ब्यौरा होता है।
2. **जोखिम विश्लेषण सारांश (Risk Analysis Summary)**: यह विभिन्न प्रकार की अनिश्चित गतिविधियों और कार्य के रोकड़ बहाव पर उनके प्रभाव का ब्यौरा होता है।
3. **रोकड़ बहाव सारांश(Cash flow Summary)**:यह कार्य के विभिन्न रोकड़ बहावों को दर्शाता है और हर एक रोकडत्र बहाव को पाने की प्रतिशतता भी बताता है।
4. **अर्थिक गणना का सारांश (Summary of Economic Measures)**: यह सबसे सम्भावित वर्तमान मूल्य, सम्भावित आय और रोकड़ भुगतान अवधि दर्शाता है और आय पर छोटी और लम्बी अवधि पर प्रभाव बताता है।
5. **हानि की संभावना (Probability of Loss)**: यह इस बात को भी बताता है कि कितनी सम्भावना है कि वर्तमान मूल्य शून्य से नीचे हो। कार्य का सिलसिलवार मूल्यांकन इस बात को पक्का करता है कि व्यवसाय के थोड़े से स्त्रोतों का विनियोगों का सक्षम प्रयोग हो। इसलिए मूल्यांकन में यह शामिल हैं (a) प्रतियोगी विनियोग प्रस्तावों के लाभों और लागतों का अनुमान (b) विभिन्न कार्यों की वांछनियता को परखने के लिए एक उचित तरीके का चयन और (c) प्रथमिकता की सीढ़ी में कार्य को स्थान देना।
6. **कार्य चयन (Project Selection)**: पूंजी कार्यों की स्वीकृति उनमें होने वाले व्ययों से जुड़ी होती है। विभिन्न स्तरों पर कार्य की स्वीकृति के लिए सिद्धांत बनाए जाते हैं । छोटे कार्य छोटे स्तर पर ही अनुमोदन पर जाते हैं जहाँ कि बड़े कार्यों के लिए उच्च स्तरीय प्रबन्ध की स्वीकृति चाहिए।

(IV) पूंजी बजटों और स्वायत्तीकरण बनाना (Preparation of Capital Budgets and appropriatives)

कार्य का चयन करने के बाद पूंजी बजट बनाया जाता है, और पैसों के लिए आवश्यक व्यवस्था की जाती है। पूंजी बजट कम से कम एक साल पहले बनाया जाता है जो कि भविष्य में 5, 10,.......15 वर्षों के लिए चलता है । सबसे महत्वपूर्ण तथ्य जो कि योजना घेरे को प्रभावित करता है वह इंडस्ट्री (Industry) में तकनीक के बदलने का दर है। अगर फर्म की तकनीक फिर भी स्थाई है तो पूंजी विनियोग कई वर्षों तक उपयोगी रहेगा। फर्म सम्पति की सेवा जिंदगी दस, पन्द्रह या अधिक वर्षों तक योजना अंतर्गत कर सकती है। दूसरी तरफ वह फर्म जिसे शीघ्र तकनीकी बदलावों का सामना करना पड़ता है उसे विनियोग पर शीघ्र प्रत्याय की योजना बनानी चाहिए ताकि बेकार औज़ारों के बदलने के लिए पैसे उपलब्ध हों।

कार्य को अच्छी तरह से चलाने के लिए बजट के अनुसार आवश्यक पैसे दिए जाते हैं। प्रबन्ध आंतरिक वित्तीय या बाहरी वित्तीय तरीकों से पैसे उपलब्ध करवाता है। सही समय पर पैसे उपलब्ध हों, इसलिए विभिन्न प्रस्तावों में सही समय पर ही पैसों का आबंटन कर देना चाहिए।

(V) लागू करना (Implementation)

पूंजी बजट बनाने और आवश्यक पैसों के आबंटन के बाद, वह कदम उठाए जाते हैं ताकि कार्य सही समय पर सम्पन्न हो जाए। इसमें निम्नलिखित कार्य शामिल हैं–

1. प्रारम्भिक अध्ययन करना और कार्यों को सम्पन्न करने सम्बन्धी गतिविधियों की योजना बनाना।
2. दायित्व निर्धारित करना और कर्मचारियों को अधिकार देना ताकि कार्य लागू कर सके।
3. नैटवर्क तकनीकों का प्रयोग करना जैसे PERT (Programmme Evaluation and Review Technique) और C.P.M. (Critical Path method) ताकि कार्य समय पर पूरा हो सकता है और लागत प्रभाविकता बनी रहे।

(VI) कार्य पुनर्निरीक्षण (Performance Review)

कार्य शुरू करने के बाद उसकी उन्नति का सामयिक अंतरालों पर निरीक्षण कर लेना चाहिए। ऐसा पुनर्निरीक्षण इन में सहायक सिद्ध होगा। (1) कार्य की सम्पन्नता से सम्बन्धित वास्तविक और योजनागत कार्य में अन्तर (2) उन कल्पनाओं पर रोशनी डालना जिनके आधार पर कार्य का चयन किया गया था और यह बताना कि वह कितनी वास्तविक हैं (3) निर्णय लेने के लिए तजुर्बा उपलब्ध करवाना (4) परख द्वारा ली गई तरफ को बताना कार्य के प्रयोगकर्त्ता के बीच में वांछित सावधानियां को जगाना।

(VII) कार्य उपरांत अंकेक्षण (Post Completion Audit)

एक बार जब विनियोग कार्य सम्पन्न होता है तो कार्य उपरांत अंकेक्षण करना चाहिए। इस अंकेक्षण का उद्देश्य पूंजी बजटन विधि की कमज़ोरियां पकड़ना और गल्तियों के लिए दायित्व निर्धारित करना है। कार्य उपरांत अंकेक्षण कमज़ोरियों सुधारने और पूंजी बजटन विधि को भी सुधारने में सहायक होता है।

(IX) **सेवा निवृति और छुटकारा (Retirement & Disposal)**

विनियोग कार्य के लिए प्रबन्ध का दायित्व तब खत्म होता है जब सुविधाओं से छुटकारा पा लिया हो। सम्पत्ति को तब तक रखना चाहिए जब तक उसे प्रभावी ढंग से प्रयोग किया जा सके और जब वह काम न रहे तो उससे एक दम छुटकारा पा लेना चाहिए।

10.8 पूँजी बजटन के महत्वपूर्ण घटक

पूँजीगत निवेश निर्णय लागत एवं उसके फलस्वरूप प्राप्य भावी आगम की सूचना पर निर्भर करते हैं। विभिन्न पूँजी व्यय प्रस्तावों का मूल्यांकन कर सर्वोत्तम विकल्प चयन करने के लिए पूँजी बजटन की किसी भी तकनीक का प्रयोग करने से पूर्व निम्नांकित घटकों या सूचनाओं की आवश्यकता होती हैः–

1. **शुद्ध विनियोग राशि अथवा रोकड़ बहिर्वाह (Net Investment or Cash Outflows)** : यह परियोजना की लागत होती है, अर्थात् यह वह राशि है जो किसी परियोजना पर खर्च की जाती है। इसकी गणना निम्नलिखित तरीके से की जाती है। **i. नवीन परियोजना (New Project)** : नवीन परियोजना की दशा में विनियोजन

राशि ज्ञात करने के लिए सम्पत्ति की लागत में सम्पत्ति स्थापना संबंधी व्यय, अवसर लागत एवं अतिरिक्त आवश्यक कार्यशील पूंजी को जोड़ा जाता है। अर्थात्

Calculation of Net Cash Outflows -

	Rs.
Purchase Price of New Machine / Project (Including Duties and Taxes)	....
Add - i. Installation Cost	....
ii. Insurance & Freight	....
iii. Additional Working Capital Required	....
iv. Net Opportunity Cost	....
Less - i. Investment Allowance	....
ii. Saving in Working Capital	....
Net Cash Outflows	....

ii- प्रतिस्थापन परियोजना (Replacement Project) – ऐसी परियोजना में पुरानी सम्पत्ति को नयी सम्पत्ति से प्रतिस्थापित किया जाता है। अतः नयी सम्पत्ति के रोकड़ बहिर्वाह की गणना निम्नानुसार की जाती है :–

Computation of Net Cash Outflows (Replacement Project)

	Rs.
Purchase Price of the Asset (including taxes and duties)	....
Add - i. Insurance, Freight	....
ii. Installation Cost	....
iii. Net Opportunity Cost (if any)	....
iv. Increase in Working Capital	....
v. Increase in Tax Liabilities	....
Less - i. Sales Proceeds of Old Machine	....
ii. Decrease in working capital	....
iii. Decrease in tax liabilities	....
iv. Investment Allowance	....
Net Cash Outflows	....

2. **शुद्ध रोकड़ अन्तर्वाह (Net Cash Inflows)** – परियोजना के कारण रोकड़ में होने वाली शुद्ध वृद्धि ही शुद्ध रोकड़ अन्तर्वाह होती है, इसे हम शुद्ध रोकड़ लाभ भी कह सकते हैं। किन्तु यह लेखांकन लाभ नहीं है, क्योंकि लेखांकन लाभ की गणना ह्रास, आयोजन, उपार्जनों को ध्यान में रखते हुए की जाती है। जबकि रोकड़ अन्तर्वाह से आशय ह्रास पूर्व किन्तु कर पश्चात् की नकद आय से है। यदि गैर रोकड़ी व्यय जैसे ख्याति का अपलेखन, आयोजन का निर्माण, जिन्हें कर पश्चात् लाभों की गणना के लिये पहले घटाया जा चुका हो, को भी पुनः जोड़ देना चाहिए। ये रोकड़ अन्तर्वाह परियोजना के जीवनकाल में प्रतिवर्ष समान हो सकते हैं अथवा एक वर्ष से दूसरे वर्ष में परिवर्तित हो सकते हैं। संक्षेप में शुद्ध प्राप्त राशि की गणना निम्न प्रकार लाभदायकता विवरण बनाकर की जा सकती है:–

a. Profitability Statement (New Projects or In Revenue Increasing Decisions)

Rs.	
Annual Sales Revenue	....
Less - Operating Expenditure including depreciation	....
Earning Before Tax (EBT)	....
Less - Income tax	....
Earning After Tax (EAT)	....
Add - Depreciation	....
Net Cash Inflows	....

b. Profitability Statement (Replacement Projects or its Cost Reduction Decisions)

Rs.	
Savings in Cost (Due to replacement)	....
Less: i Additional Depreciation	....
ii. Any other additional cost	....
Net savings before tax	....
Less - Taxes on savings	....
Savings after tax	....
Add - Additional Depreciation	....
Net Cash Inflows	....

3. **परियोजना का जीवनकाल (Project Life)** : यह वह अवधि होती है जिसमें परियोजना से आय प्राप्त होती रहेगी। जीवनकाल का निर्धारण सम्पत्ति का उपयोग, सम्भावित तकनीकी परिवर्तन, परियोजना की प्रकृति, रखरखाव आदि तत्वों को ध्यान में रखकर किया जाता है। अर्थात् यह परियोजना का आर्थिक जीवनकाल होती है, भौतिक जीवनकाल नहीं।

4. **वांछित न्यूनतम प्रत्याय दर ;Cut off Rate or Minimum required Rate of Return)** : न्यूनतम प्रत्याय दर वह दर होती है जिसके प्राप्त न होने पर विनियोग प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया जाता है। यह प्रायः संस्था की "पूँजी की औसत" लागत के बराबर होती है।

5. **उपलब्ध कोष (Available Funds)** : पूँजी व्यय निर्णयों का सम्बन्ध लम्बे समय तक अधिक धन के विनियोजन से होता है। अतः परियोजना को स्वीकार करने का निर्णय संस्थान के पास उपलब्ध या उपलब्ध होने वाले संसाधनों को ध्यान में रखकर करना चाहिए।

6. **अप्रचलन से जोखिम (Risk of Obsolescence)** : वर्तमान में बहुत तेजी से तकनीकी परिवर्तनों के कारण प्रचलित उत्पादन विधियाँ, मशीनें, उपकरण अप्रचलित हो जाते हैं, एवं उनका स्थान नवीन विधियाँ, मशीनें ले लेती है। अतः प्रबन्ध को परियोजना लागू करने से पूर्व अप्रचलन की जोखिम पर गहराई से विचार कर लेना चाहिए। ऐसी परियोजना को चुना जा सकता है जिसकी पुनर्भुगतान अवधि कम हो ताकि लागत की शीघ्र वसूली हो सके।

7. **अवसर लागत (Opportunity Cost)** : अवसर लागत वह आय है जो कोषों का अन्यत्र विनियोग करने पर प्राप्त हो सकती थी। पूँजी व्यय निर्णयों में

अवसर लागत का महत्व है क्योंकि वांछित न्यूनतम प्रत्याय दर की गणना करते समय इसकी आवश्यकता होती है।

8. **प्रबन्ध का प्रकार (Type of Management)** : पूंजी विनियोजन निर्णय प्रबन्ध की सोच पर निर्भर करते हैं। यदि प्रबन्ध आधुनिक एवं प्रगतिशील विचारधारा का है तो संस्था में शोध एवं विकास परियोजनाओं को प्रोत्साहन दिया जाएगा। इसके विपरीत प्रबन्ध की रूढ़िवादी विचारधारा होने पर परम्परागत विधियाँ प्रयुक्त की जायेगी। नवीन विनियोजन व शोध को ज्यादा महत्व नहीं दिया जायेगा।

9. **बाजार की स्थिति (Market Situation)** : बाजार में उत्पाद की मांग भी दीर्घकालीन विनियोजन निर्णयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यदि भावी पूर्वानुमान से यह पता लगता है कि दीर्घकाल में उत्पाद का विस्तृत बाजार है तो नवीन पूंजी विनियोजन का निर्णय अवश्य लिया जायेगा।

10. **राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)** : सरकार की कर नीतियां यथा नये विनियोग पर छूट, विनियोग आय पर कर छूट, ह्रास स्वीकृति की विधि, कर की दरें आदि विनियोग निर्णयों को प्रभावित करती है।

11. **प्रतिस्पर्धी की व्यूहरचना (Competitors Strategy)** : प्रतिस्पर्धी की व्यूहरचना भी पूंजी विनियोजन निर्णय लेते समय महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। यदि प्रतिस्पर्धी द्वारा उत्पादन वृद्धि हेतु नया प्लान्ट स्थापित किया जाता है या शोध एवं विकास द्वारा उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार किया जाता है तो विचाराधीन संस्था को भी अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए ऐसा ही करना होगा।

10.9 पूँजी बजटन की सीमाएँ

यद्यपि पूँजी बजटन में विनियोग प्रस्तावों के मूल्यांकन की विभिन्न विधियों द्वारा वैकल्पिक प्रस्तावों का व्यवस्थित विश्लेषण किया जाता है जिससे प्रबन्ध द्वारा सही निर्णय लिये जाने की सम्भावना रहती है। किन्तु मूल्यांकन के लिए प्रयुक्त समंकों के अशुद्ध होने पर इन विधियों से सदैव सर्वोत्तम विकल्प के चुने जाने की आशा नहीं की जा सकती। अतः पूँजी बजटन प्रक्रिया में कुछ कठिनाईयाँ प्रबन्धकों के समक्ष आती है जिनका उपयुक्त हल आवश्यक है। ये कठिनाईयाँ अथवा सीमाएँ निम्न हैं :–

1. **पूँजी की लागत का अनुमान लगाना कठिन** : पूँजी की लागत को अनुमानित करना पूँजी व्यय निर्णय के लिए प्रथम आवश्यकता है क्योंकि जो राशि विनियोग के लिए प्राप्त की गई है उसकी कुछ न कुछ लागत अवश्य लगेगी। किन्तु इस लागत का एक निश्चित अवधि तक अनुमान लगाना बहुधा एक कठिन कार्य होता है। बहुत सी मान्यताओं के आधार पर ही पूँजी लागत का अनुमान लगाया जा सकता है।

2. **अवधि का अनुमान लगाना कठिन** : विनियोग प्रतिवर्ष कितना करना पड़ेगा और कितने वर्षो तक करना होगा तथा आय कितने वर्षो तक प्राप्त होती रहेगी; यह सब भी जानना आवश्यक है; तभी किसी सम्पत्ति में विनियोग किया जाए, इस सम्बन्ध में उचित निर्णय लिया जा सकता है। सामान्यतः इन अवधियों का निर्धारण भी एक कठिन समस्या है।

3. **प्रत्याय दर का अनुमान कठिन** : विनियोजित पूँजी से भविष्य की अवधि में कितना लाभ मिलेगा इसे अनुमानित करना भी आसान कार्य नहीं है। प्रायः भविष्य अनिश्चित ही रहता है और जैसे कि पहले बताया गया है, आज का युग अनिश्चितताओं एवं जोखिमों का युग है। अतः ऐसी स्थिति में भविष्य का पूर्वानुमान एक जटिल प्रक्रिया है।

4. **मौद्रिक मूल्यांकन कठिन** : परियोजना प्रस्तावों का अध्ययन करते समय परियोजना से सम्बन्धित अनेक घटक ऐसे हैं जो कि विनियोग निर्णयों को प्रभावित करते हैं किन्तु जिनका परिणात्मक माप सम्भव नहीं, जैसे कर्मचारी मनोबल, देश का आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक वातावरण आदि। ये कारक भी पूँजीगत विनियोगों पर निर्णय को जटिल बनाते हैं। फलतः पूंजी बजटन तकनीक के द्वारा लिये गये निर्णयों की सफलता संदिग्ध हो जाती है।

5. **निर्णय का परिणाम अनिश्चित** : यह कहना बड़ा कठिन है कि भविष्य में वही परिस्थितियाँ रहेंगी जो वर्तमान में है। प्रतिस्पर्धा एवं विकास के युग में यह कहना अत्यन्त कठिन है कि जिस आधार पर पूंजी व्यय का निर्णय किया गया है वह बनी रहेगी और उसी के अनुसार परिणाम भी मिलेंगे। नये संयत्र को काम में लाने के लिए नई तकनीक प्रयोग में लेनी पड़ती है तथा श्रमिक इस नई तकनीक को समझकर कितना सहयोग कर पाते हैं, इस सम्बन्ध में पहले से लगाया गया अनुमान बाद में गलत निकल सकता है।

समाविष्ट उदाहरण

उदाहरण 1

नीलू फूड प्रोडक्टस लिमिटेड उस वांछित रोकड़ बाहवाहों को निश्चित करने की कोशिश कर रही है जो पुरानी मशीन क जगह नई मशीन की प्रतिस्थापना के लिए चाहिए। नई मशीन का खरीद मूल्य 3,90,000 है। उसको चालू करने के लिए इसके अतिरिक्त 20,000 रू की आवश्यकता है। यह अनुमान लगाया गया है। कि इसके अतिरिक्त 40,000 रू कार्यकारी पूंजी की आवश्यकता होगी। इसका मूल्यह्यस 10 वर्षों के लिए सीधी पंक्ति विधि से होगा।

पुरानी मशीन 3 वर्ष पहले 1,60,000 रूपये की लागत से खरीदी गई थी और उसकी बची हुई प्रयोगात्मक आयु 5 वर्ष है। उस पर भी सीधी पंक्ति विधि से मूल्यह्यस हुआ है। कम्पनी को 255 विनियोग भत्ता मिलता है। कम्पनी का सहकारी आय कर दर 40 प्रतिशत है। रोकड़ बाहवाहों का अनुमान लगाइए।

उत्तर

रोकड़ बाहर्वाहों का अनुमान

1.	नई मशीन की लागत रू	-390,000रू
2.	जरी करने की लागत(Installation cost)	+20,000रू
3.	कार्यकारी पूंजी(Working Capital)	+40,000रू
4.	विनियोग भत्ता(Investment allowance) (3,90,00 x 0.25) x 0.40	-390,000रू
5.	पुरानी मशीन की बिक्री आय 80,000 रू	
6.	पुरानी मशीन की बिक्री पर हानि के कारण कर अर्जन 20,000 का 40 प्रतिशत	-8,000रू

		3,23,000रू

कार्यकारी नोट(working notes)

मशीन का बिक्री मूल्य	**-80,000 रू**
किताबी मूल्य 1,60,000 (2,20,000)	**1,00,000रू**
छोटी अवधि की पूंजी हानि	**20,000**
कर बचत	**-20,000 का 40 प्रतिशत =-8,000रू**

उदाहरण 2

अनीता पलस्टिक लिमिटेड नये उत्पादन में विनियोग के बारे में सोच रही है। एक वर्ष की सूचना निम्न दी गई हैं–

(i)बिक्री	1,20,000 रू0
(ii)उत्पादन लागत (10,000 रू मूल्यह्यस को मिलाकर)	50,000 रू0
(iii) बिक्री व प्रशासनिक व्यय(उत्पादन के साथ सीधे जुड़े हुए)	25,000 रू0
(iv)दूसरे उत्पादनों के देय मूल्यों में कटौती	3000 रू0
(v)मिलने वाले खातों में बढ़ौतरी	8000 रू0
(vi) कोष में बढ़ौतरी (Inventory increase)	10,000 रू0
(vii)चालू दायित्वों में बढ़ौतरी	7000 रू0
(viii)उत्पादन आये के साथ जुड़े आय कर	10,000 रू0

आपको वर्ष के उन उचित, रोकड़ बहावों की गणना करनी है जो विनियोग प्रस्ताव के मूल्यांकन के लिए चाहिए।

उत्तर

(i) कर के बाद वार्षिक रोकड़ बहाव (CFAT)

बिक्री	1,20,000 रू0
कम उत्पादन लागत (Less) (50,000–10,000)	–40,000 रू0
बिक्री और प्रशासनिक व्यय	–25,000 रू0
अन्य उत्पादनों के देय मूल्यों में कटौती	–3000रू0
उत्पादन के साथ जुड़े आय कर	–10,000रू0
	42,000 रू0
(ii) प्राथमिक लागत में जुड़ने वाली कार्यकारी पूंजी में बढौतरी मिलने वाले	–8,000 रू0

मूल्यों में बढ़ौतरी	
Add कोषों में बढ़ोतरी (Increase in inventories)	–10,000 रू0
	18,000 रू0
कम(Less) चालू दायित्व में बढ़ौतरी	–7000 रू0
	11000 रू0

10.10 सारांश

पूँजी का अधिकांश भाग स्थायी सम्पत्तियों में विनियोजित रहता है अतः यह आवश्यक है कि ऐसे व्यय बहुत सोच समझ कर किये जाये। किसी भी प्रकार का गलत निर्णयन दीर्घकाल तक प्रभाव डालता है। इससे भावी अर्जन, उत्पादन क्षमता, उत्पादन किस्म, लाभ मात्रा एवं रोजगार क्षमता आदि प्रभावित होती है। इस स्थिति में प्रबंधकों का यह दायित्व हो जाता है कि पूंजीगत व्यय करने से पूर्व उनके संदर्भ में सही निर्णय लें। जिससे भावी जोखिम न्यूनतम हों एवं अर्जनों की प्रत्याशा अधिकतम। पूँजी बजटन तकनीक का उपयोग कर प्रबन्धक इस दायित्व निर्वहन भली भाँति कर सकते हैं। पूँजी बजटन प्रबंध की वह तकनीक है जिसके अनतर्गत पूँजीगत व्यय का इस प्रकार नियोजन होता है जिससे इन व्ययों के उद्देश्य को सरलता पूर्वक प्राप्त किया जा सके। इसके अन्तर्गत पूँजीगत पूंजी विनियोग के समस्त अवसरों एवं विकल्पों का विश्लेषण कर सर्वश्रेष्ठ विकल्प/अवसर का चुनाव किया जाता है।

दीर्घकालीन

पूँजीगत व्ययों का प्रबंध इसके माध्यम से किये जाने के कारण इसे 'पूँजी व्यय प्रबंध' (Capital Expenditure Management), या 'दीर्घकालीन विनियोग निर्णय' (Long Term Investment Decision), भी कहा जाता है । स्थायी सम्पत्तियों का नियोजन इस तकनीक के आधार पर किया जाता है अतः स्थायी सम्पत्तियों का प्रबंध (Management of Fixed Assets), विशिष्ट परियोजना के निर्णय में उपयोग किये जाने के कारण इसे परियोजना बजटन विधियों (Project Budgeting Methods) आदि नामों से भी पुकारा जाता है। एक बार जब विनियोग कार्य सम्पन्न होता है तो कार्य उपरांत अंकेक्षण करना चाहिए। कार्य उपरांत अंकेक्षण कमज़ोरियों सुधारने और पूंजी बजटन विधि को भी सुधारने में सहायक होता है।

10.11 शब्दावली

बजटन (Budgeting) : एक निश्चित भावी अवधि के लिए बनायी गयी योजना एवं नीतियों के औपचारिक लेख को बजटन कहते हैं।

आयगत व्यय (Revenue Expenditure) : ऐसे व्यय जो चालू सम्पत्तियों में एवं नियमित प्रक्रिया में विनियोजित हो, आयगत व्यय कहलाते हैं।

व्ययगत व्यय (Capital Expenditure) : स्थायी दीर्घकालीन सम्पत्तियों में विनियोग को पूंजीगत व्यय कहलाते हैं।

प्रतिस्थापन परियोजना (Replacement Project) : किसी पुरानी परियोजना के स्थान पर नयी/आधुनिक परियोजना लागू करना, जिससे नवीन तकनीक का प्रयोग हो सके।

स्वतंत्र परियोजना (Independent Project) : जो एक–दूसरे के प्रतिस्पर्धी नहीं हो, वह स्वतंत्र परियोजना होती है।

प्रतिस्पर्धी परियोजना (Competitive Project) : जो एक दूसरे के प्रतिस्पर्धी हो इस स्थिति को श्रेष्ठ को स्वीकार एवं शेष अन्य को अस्वीकार किया जाता है।

10.12 बोध प्रश्न

1. .... निर्णय स्थिर सम्पत्तियों और लम्बी अवधि के विनियोगों के निर्णय फर्म के लिए महत्वपूर्ण होते है।
2. .... प्रबंध की वह तकनीक है जिसके अनतर्गत पूँजीगत व्यय का इस प्रकार नियोजन होता है जिससे इन व्ययों के उद्देश्य को सरलता पूर्वक प्राप्त किया जा सके।
3. पूंजी बजटन वह प्रबन्धकीय तकनीक है, जिसके द्वारा फर्म के .... लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य से विभिन्न विनियोग प्रस्तावों के उद्भव, मूल्यांकन, निर्णयन अनुवर्तन संबंधी प्रक्रिया पूर्ण की जाती है।
4. .... का अर्थ है कि वर्तमान उत्पादनों पर अतिरिक्त उत्पादन सुविधाएं देकर कार्य के आकार को बढ़ाना।
5. .... कार्य वह कार्य होते हैं जो एक दूसरे के प्रतियोगी होते हैं।
6. .... परियोजना की लागत होती है, अर्थात् यह वह राशि है जो किसी परियोजना पर खर्च की जाती है।

10.13 बोध प्रश्न के उत्तर

1. विनियोग, 2. पूँजी बजटन, 3. दीर्घकालीन, 4. विस्तार, 5. परस्पर निवारक, 6. शुद्ध विनियोग राशि अथवा रोकड़ बहिर्वाह

10.14 स्वपरख प्रश्न

1. पूंजी बजटन से आपका क्या तात्पर्य है ? पूंजी बजटन विधि का वर्णन कीजिए।

   (What do you mean by capital Budgeting? Explain the capital budgeting process.)
2. लाभ और रोकड़ बहावों में अन्तर स्पष्ट कीजिए। विनियोग निर्णयों में रोकड़ बहाव क्यों महत्वपूर्ण होते हैं?

   (Distinguish between profits and cash flows ? Why are cash flows importance in investment decisious ?**)**
3. कर के बाद रोकड़ बहाव में बढ़ौतरी के आधार पर पूंजी बजटन का मूल्यांकन करना क्यों आवश्यक है? लेखा आंकड़े रोकड़ बहाव के स्थान पर प्रयोग क्यों नहीं किये जा सकते।

   (Why is it important to evaluate capital budgeting projects on the basis of incremental after tax cash flows? Why not use accounting data instead of cash flows)
4. पूंजी बजटन के सिद्धांतों और विशेषताओं का सारांश में वर्णन करो।

   (Discuss briefly the principles and characteristics of capital Budgeting)

5. विभिन्न प्रकार के पूंजी बजटन प्रस्तावों का वर्णन कीजिए। चयन के लिए उन्हें आप कैसे स्थान देंगे।

(State the different kinds of capital budgeting proposals. How would you rank them for the purpose of selection?)

6. पूंजी बजटन का क्या अर्थ हैं? पूंजी बजटन की महत्ता के बार में बताओ।

(What do you mean by capital budgeting. Describe the importance of capital budgeting).

7. पूंजी बजटन निर्णय में शुद्ध रोकड बहिर्वाह में क्या शामिल होता है? लौकिक रोकड़ बहावों ऐसा बहिर्वाह कब किया जाता है?

(What are the components of net cash outlay in the capital budgeting decision? At what time such an outlay incurred in the case of connential cash flows?)

8. वित्तीय विधि से सम्बन्धित रोकड़ बहावों का क्या अर्थ है? रोकड़ बहाव के अनुमान में उठाए जाने वाले कदमों का वर्णन कीजिए।

(What do you mean by cash flow pertaining to an investment procedure? Explain the steps in estimation of cash flow.)

9. पूंजी बजटन से आप क्या समझते हैं?

10. पूंजी बजटन क्या है? पूंजी बजटन की विशेषतायें बताते हुए इसके उद्देश्यों का वर्णन कीजिये।

11. ''पूँजी बजटन पूँजी व्यय विकल्पों के उद्भव, मूल्यांकन, चयन तथा अनुवर्तन की प्रक्रिया है'', समझाइये।

12. रोकड़ प्रवाह क्या होता है? इसे कैसे ज्ञात किया जाता है?

13. पूंजी परियोजना के प्रकार बताते हुए पूंजी बजटन की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

14. पूंजी बजटन की सीमायें बताइये।

15. अदायगी अवधि विधि से आप क्या समझते हैं? इसकी गणना किस प्रकार की जाती है? इस विधि के लाभ एवं दोषों का वर्णन कीजिए।

16. औसत प्रत्याय दर द्वारा परियोजना का मूल्यांकन किस प्रकार किया जाता है? इस विधि की सीमायें बताइये।

17. एक परियोजना की लागत 5,00,000 रू. है तथा उससे प्रतिवर्ष 2,00,000 रू.की आय होना संभावित है। अदायगी अवधि की गणना कीजिए।

The cost of a project is Rs.5,00,000. Possibilities of the annual cash received from the project is Rs.2,00,000. Calculate Pay back Period.

18. जेब्रा लिमिटेड एक मशीन खरीदने पर विचार कर रही है। बाजार में इस हेतु दो मशीनें एक्स व वाई उपलब्ध है। प्रत्येक मशीन की लागत 2,00,000 रू. है। अपेक्षित रोकड़ अन्तर्वाह निम्नानुसार है :–

Zebra Ltd. is considering to purchase a machine. Two machines X and Y are available in the market. Cost of each machine is Rs.2,00,000. Expected cash inflows are as follows :-

Years	1	2	3	4	5
Cash Inflows Machine X	60,000	60,000	60,000	60,000	60,000
Cash Inflows Machine Y	50,000	60,000	80,000	60,000	40ष000

अदायगी अवधि विधि के अनुसार दोनों विकल्पों का मूल्यांकन कीजिये।

Evaluate the two alternatives according to Pay-back Period Method.

19. 30 प्रतिशत पूंजी लाभ, कर और 40 प्रतिशत सामान्य कर पर मान निम्न मामलों में सम्पत्ति की बिक्री से उचित रोकड़ बहावों की गणना कीजिए। सम्पत्ति 3 वर्ष पहले 2,00,000रू की खरीदी गई थी और 8 वर्षों में सीधी पंक्ति विधि से उसका मूल्य ह्रास होगा।

सम्पत्ति (a) 125000 रू0 (b) 1,75,000रू0 (c)2,25,000रू0 (d)1,00,000रू की बेची गई।

(Determine the relevant cash flows from the sale of asset in each of the following cases assuming 30%. Capital gains tax and 40% normal tea rate. The asset was eariginally purchased 3 year ago for Rs. 2,00,000 and was being depreciated on straight live had over its eigh year period.)

The assets was sold for(a) Rs. 125000 (b)Rs. 175000(c) Rs. 225000 (d) Rs. 1,00,000

Ans. (a)Rs. 125000 (b)Rs. 155000(c) Rs. 185000 (d) Rs. 1,10,000

10.15 सन्दर्भ पुस्तकें

1. ए के वशिष्ट, एन के साहनी, तमन्ना सहगल, वित्तीय प्रबन्ध, कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना ।
2. “Financial Management”- M.Y. Khan & P.K. Jain, Tata Mc Graw Hill.
3. ”वित्तीय बाजारों की कार्यप्रणाली”– प्रो0 वी0 पी0 अग्रवाल– साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
4. ”निगमीय लेखांकन”– सी0 एम0 जैन एवं ए0 के0 अग्रवाल– g Master g Educorp, मेरठ।
5. ”प्रबन्ध हेतु वित्तीय विश्लेषण”– डॉ0 ए0 के गर्ग– स्वाती प्रकाशन, बुलन्दशहर।
6. ”निगमीय लेखाविधि”– डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 राजकुमार– नवनीत प्रकाशन, नजीबाबाद।
7. उच्च वित्तीय प्रबन्ध : डा0 एस0पी0 गुप्ता व डा0 बी0 कुमार मिततल ।
8. Shrivastava R.M. : Financial Decision Making Text, Problems and Cases.
9. Arif Pasha : Management Accounting.
10. Arora M.N. : Cost and Management Accounting.
11. Ravi M. Kishore : Advance Management Accounting.
12. Prasanna Chandra : Financial Management.
13. Sahaf M.A. : Management Accounting : Principle's and Practices.

इकाई–11 पूँजी बजटन की तकनीकें

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.2 पूँजी बजटन कार्यों का मूल्यांकन करने की विधि

11.3 परम्परागत तकनीकें

11.3.1 पुनर्भुगतान अवधि

11.3.2 लेखा प्रत्याय दर

11.4 रोकड़ बहाव बट्टा तकनीकें

11.4.1 शुद्ध वर्तमान मूल्य

11.4.2 लाभांश सूचक

11.4.3 आंतरिक प्रत्याय दर

11.5 शुद्ध वर्तमान मूल्य व आंतरिक प्रत्याय दर की तुलना

11.6 शुद्ध वर्तमान मूल्य व आंतरिक प्रत्याय दर में समानताएँ व भिन्नताएं

11.7 सारांश

11.8 शब्दावली

11.9 बोध प्रश्न

11.10 बोध प्रश्नो के उत्तर

11.11 स्वपरख प्रश्न

11.12 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- पूँजी बजटन कार्यों का मूल्यांकन करने की विधि का वर्णन कर सकें ।
- पूंजी बजटन की परम्परागत तकनीकों का वर्णन कर सकें ।
- पूंजी बजटन की रोकड़ बहाव बट्टा तकनीकों का वर्णन कर सकें ।
- शुद्ध वर्तमान मूल्य व आंतरिक प्रत्याय दर की तुलना व समानताओं की व्याख्या कर सकें ।

11.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने पूंजी बजट के सामान्य सिद्धांतों के बारे में चर्चा की थी। याद करने के लिए पूंजी बजटन उन निर्णयों से सम्बन्धित हैं, जहॉ चालू विनियोगों के बारे में निर्णय किया जाता हैं, जिनसे प्राप्य लाभ भविष्य मे एक वर्ष से अधिक के लिए ऐच्छिक होते हैं। इसे उस विधि को तरह भी परिभाषित किया जा सकता है, जो यह निर्णय करती हैं, कि उन कार्यों में स्त्रोत लगाए जाएं या नहीं जिनके लाभ एक वर्ष से अधिक तक प्राप्त होंगे।

चार्लस0 टी0 होरनमन (Charles.T.Horngren) के अनुसार, ''पूंजी बजटन विनियोग और वित्त के लिए किया गया लम्बी अवधि का योजना निर्णय है।''

पूंजी बजटन निर्णय सबसे कठिन और महत्वपूर्ण निर्णय है, क्योंकि भविष्य के बारे में जानना बहुत कठिन है। इन निर्णयों का कम्पनी की भविष्य आय और वृद्धि पर भी बहुत प्रभाव होता है। सही पूंजी बजटन निर्णय कम्पनी को वृद्धि के रास्ते पर ले जा सकता है। दूसरी तरफ गलत पूंजी बजटन निर्णय का नतीजा कम्पनी की असफलता भी हो सकता है। इसलिए व्यवसाय की सफलता और असफलता, उसमे नियोजित पूंजी बजटन विधि की उत्तमता पर भी निर्भर करता है।
पूंजी बजटन निर्णय में तीन कदम शामिल है :–

1. रोकड बहावों का अनुमान
2. आवश्यक प्रत्याय दर का अनुमान (पूंजी की लागत)
3. चुनाव करने के लिए निर्णय के तरीकों को लागू करना।

पहले दो कदम यानि कि सेंकड बहावों के अनुमानों और आवश्यक प्रत्याय दर के अनुमानों की चर्चा पिछली इकाई मे कर ली गई है। वर्तमान इकाई का केन्द्र विभिन्न निर्णय तरीकों की विशेषताओं और कर्मियों और पूंजी बजटन पर उनके प्रभाव के अध्ययन से सम्बन्धित है।

11.2 पूँजी बजटन कार्यो का मूल्यांकन करने की विधि

विनियोग मूल्यांकन तरीके को पूंजी बजटन तकनीक भी कहा जा सकता है। पूंजी बजटन निर्णयों के लिए विभिन्न तकनीकें है। वह क्षेत्र जहॉ यह तकनीकें प्रयोग होती है, वह इनसे सम्बन्धित है – (1) विनियोग प्रस्तावों को स्वीकार या अस्वीकार करना (2) स्वतंत्र वित्तीय प्रस्तावों को स्थान देना (3) परस्पर निवारक विनियोग प्रस्तावों का चयन करना।
विनियोग मूल्यांकन तरीके बहुत ऊँचें अधिकरण–अन्तर्ज्ञान परख से बहुत छोटे आंकडे पहुंच तक विस्तारित है। दोनों में अंतर केवल मात्रा का है प्रकार का नहीं क्योंकि हर एक विधि में भविष्य के लाभों का अनुमान लाने के लिए अधिकरण और अन्तर्ज्ञान की आवश्यकता तो होती ही है। छोटी पहुंचों में आशा किए जाने वाले राजस्वों और लागतों के बारे मे अलग अनुमान लगाए जाते हैं, जबकि यह चीज अधिकरण अन्तर्ज्ञान पहुचों मे अनुपस्थित होती है। पूंजी बजटन निर्णय के योजनात्मक तरीके के कारण विनियोग मूल्यांकन तरीको उद्‌देश्य अनुसार और मजबूत होना चाहिए। मजबूत तरीके की आवश्यक विशेषता यह है, कि यह अंशधारियों के धन में वृद्धि करें। निम्नलिखित अन्य विशेषतएं भी मजबूत विनियोग तरीके में होनी चाहिए :–

1. इसे वित्तीय प्रस्तावों से जुडे हर रोकड बहाव का ध्यान रखना चाहिए।
2. इसे अच्छे कार्यों और बुरे कार्यों मे अन्तर छोटे और निश्चित तरीके से बताना चाहिए।
3. इसे इस बात की भी पहचान करनी चाहिए, कि बडे और शीघ्र रोकड अन्तर्वाह छोटे और बाद के वर्षों के अन्तर्वाहों से अधिक वांछनीय है।
4. इसे स्वतंत्र कार्यों को साधारण तौर में स्थान देने में सहायता करनी चाहिए।
5. कार्यों मे से इसे उस कार्य को चुनने में मदद करनी चाहिए, जो अंशधारियों का धन बढाए।

6. यह बहुत उलझा हुआ नहीं होना चाहिए और प्रयोग करने के लिए बहुत मुश्किल नहीं होना चाहिए।

पूंजी बजटन तरीका मुख्यतः दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।
(1) परम्परागत तकनीकें (2) रोकड बहावों के उपलेखन की बट्टा दर तकनीकें। दोनों तकनीकों में सैद्धांतिक अन्तर यह है कि परम्परागत पहुंच पैसे के सामायिक मूल्य को नजरदाज करती है, जबकि रोकड प्रवाहों के उपलेखन की बट्टा पर तकनीक कार्य की लागत और लाभों का मूल्यांकन करते हुए पैसे के सामयिक मूल्य का भी ध्यान रखती है।

एक तरह या दूसरी तरह रोकड प्रवाहों के उपलेखन की बट्टा दर तकनीके के लिए यह आवश्यक है, कि रोकड प्रवाह का उपलेखन किसी निश्चित बट्टा दर पर हो जो, कि लागत के रूप में जाना जाता है। दोनों तरह की तकनीकों में अन्य अन्तर यह है, कि सभी रोकड बहाव बट्टा तकनीकें कार्य की पूरी जिंदगी में होनें वाले लाभों और लागतों को ध्यान में रखते हैं जबकि कुछ परम्परागत तकनीकें एक समय के बाद रोकड बहावों को नजरअंदाज करते हैं।

पूँजी बजटन की तकनीकें (Techniques of Capital Budgeting)

परम्परागत तकनीकें (Traditional Techniques)
- पुनर्भुगतान अवधि (Pay Back Period)
- लेखा प्रत्याय दर (Accounting Rate of Return)

रोकड़ बहाव बट्टा तकनीकें (Discounted Cash Flow Techniques)
- शुद्ध वर्तमान मूल्य (Net Present Value)
- लाभांश सूचक (Profitability Index)
- आंतरिक प्रत्याय दर (Internal Rate of Return)

चित्र–1 पूँजी बजटन की तकनीकें

11.3 परम्परागत तकनीकें

इन विधियों के अन्तर्गत भविष्य में प्राप्त राशियों के वर्तमान मूल्य को ध्यान में नहीं रखा जाता है अतः इन्हें असमायोजित समय विधियाँ (Unadjusted Time Method) भी कहा जाता है। इसमें निम्न विधियाँ सम्मिलित की जाती है :–

11.3.1 पुनर्भुगतान अवधि

पुनर्भुगतान अवधि पूंजी बजटन की सबसे आसान और सबसे अधिक प्रयोग होने वाली विधि है। पुनर्भुगतान अवधि को हम उस अवधि के रूप मे परिभाषित कर सकते हैं जितने समय में विनियोग की वास्तविक लागत हमें वापिस मिल जाती है। इसलिए पुनर्भुगतान उन वर्षों की गणना करती है, जितने वर्ष हमें कार्य से रोकड लाभों को प्राप्त करते हुए लगेगें ताकि वास्तविक विनियोग का पुनर्भुगतान किया जा सके। रोकड लाभ यहॉ कर के बाद रोकड बहावों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

पुनर्भुगतान अवधि की गणना रोकड बहावों के नमूने पर निर्भर करती है, यानि कि रोकड बहाव कार्य की जिंदगी के दौरान एक समान है या हर वर्ष बदलते हैं। समान रोकड बहावों के मामले में पुनर्भुगतान अवधि पाने के लिए विनियोग की प्राथमिक लागत को वार्षिक समान रोकड बहावों से तकसीम कर दिया है।

पुनर्भुगतान अवधि = प्राथमिक विनियोग /एक समान वार्षिक रोकड बहाव

उदाहरण के तौर पर एक कार्य में विनियोग से यह आशा की जाती है, कि उससे 8 वर्षों तक कर के बाद रोड बहाव वार्षिक रूप में 15000 रूप्ये होंगे तो

पुनर्भुगतान अवधि $\frac{60000}{15000} Rs = 4$वर्ष

अदायगी विधि वह अवधि है जिसके अन्तर्गत शुद्ध रोकड़ अन्तर्वाह विनियोग की मूल लागत अर्थात् रोकड़ बहिर्वाह के समान होता है। अर्थात् वह अवधि जिसमें परियोजना की लागत के वसूल होने की सम्भावना होती है, अदायगी अवधि कहलाती है। दीर्घ अवधि में उत्पादन तकनीक, मांग, रूचियां, फैशन, सरकारी नीतियों आदि में परिवर्तन होने तथा परियोजना के अप्रचलित होने की जोखिमें बढ़ जाती है। यही कारण है कि एक विवेकशील विनियोजक लागत को शीघ्र वसूल करने का प्रयास करता है। इस विधि के अन्तर्गत उस परियोजना को सर्वोत्तम माना जाता है जिसकी पुनर्भुगतान अवधि न्यूनतम हो, तथा वह अवधि निर्धारित अधिकतम अवधि से अधिक न हो। पूंजी परियोजनाओं के मूल्यांकन की यह विधि अमेरिका एवं इंग्लैण्ड में बहुत लोकप्रिय है।

4 वर्षों की पुनर्भुगतान अवधि इस बात का संकेत करती है, कि कार्य में 60000 रूपये का विनियोग 4 वर्षों में हमें वापिस मिल जाएगा।

बदलते रोकड बहावों के मामले में पुनर्भुगतान अवधि की गणना चल वर्षों के रोकड बहावों के जोड की विधि (Process of Cumulating Cash Flows of Successive year) से की जाती है, जब तक रोकड बहाव वास्तविक विनियोग के बराबर नहीं हो जाते । तरीके का समझने के लिए एक कार्य जिस पर विनियोग 60000 रूपये है, उससे यह आशा की जाती है कि 1 से 6 वर्षों तक क्रमशः 13000 रूपये, 17000 रूपये, 15000 रूपये, 20000 रूपये, 21000 रूपये और 25000 रूपये हैं। वार्षिक रोकड बहाव और रोकड बहावों का जोड तालिका 11.1 में दर्शाया गया है –

तालिका –11.1

वर्ष	वार्षिक कर के बाद रोकड बहावों	कर के बाद रोकड बहावों का जोड
1	13000	13000
2	17000	30000
3	15000	45000
4	20000	65000
5	21000	86000
6	25000	111000

इस तालिका से यह जाना जा सकता है, कि पुनर्भुतान अवधि तीसरे और चौथे वर्ष के बीच में पडती है, क्योंकि 60000 रूपये का प्राथमिक विनियोग तीसरे और चौथे वर्ष के रोकड बहावों के जोड यानि 45000 रूपये और 65000 रूपये के बीच में

पडता है। पुनर्भुगतान अवधि 3 वर्ष और चौथे वर्ष का कुछ अंश होगा। अंश की गणना करने के लिए हमें साधारणतः चौथे वर्ष मे विनियोग का मूल्य वापिस लेने के लिए जितने पैसे चाहिए उसे उस वर्ष के कुल कर के बाद रोकड बहावों से तकसीम कर दिया जाता है। 45000 रूपये तीसरे वर्ष तक वापिस मिल चुके हैं और 60000 रूपये के प्राथमिक विनियोग को वापिस लेने के लिए 15000 रूपये बाकी है। कर के बाद रोकड बहाव चौथे वर्ष मे 20000 रूपये हैं। चौथे वर्ष मे वांछित अंश 0.75 है, यानि कि (150000 रू/20000 रू) । इसलिए कार्य की पुनर्भुगतान अवधि 3.75 वर्ष है।

स्वीकृति/अस्वीकृति नियम (Acceptance / Rejection Rule)

पुनर्भुगतान अवधि विधि का प्रयोग पूंजी बजटन कार्यों की स्वीकृति व अस्वीकृति के लिए भी किया जा सकता हैं। अगर कार्य की पुनर्भुगतान अवधि प्रबन्ध द्वारा निश्चित पुनर्भुतान अवधि से कम है, तो कार्य स्वीकार कर लिया जाएगा नही तो अस्वीकार। परस्पर भिन्न कार्यों के मामले में जिस कार्य की सबसे कम पुनर्भुगतान अवधि होगी उसे स्वीकार कर लिया जाएगा और बाकी सभी को निरस्त कर दिया जाएगा। आजाद कार्यों में सभी कार्यों को स्थान देते वक्त, वह कार्य जिसकी सबसे कम पुनर्भुगतान अवधि है को सबसे उच्च स्थान और सबसे ज्यादा पुनर्भुगतान अवधि वाले कार्य को सबसे निम्न स्थान दिया जाता है।

पुनर्भुगतान अवधि विधि के गुण या लाभ (Merits or Advantages of Pay back Period Method)

1. **सरल (Simple)** – यह विधि गणना करने एवं समझने दोनों दृष्टिकोणों से सरल है।

2. **तरलता पर बल (Emphasis on Liquidity)** – ऐसी संस्थाओं के लिए जिनमें रोकड़ की कमी है अथवा जिनमें अर्थ प्रबन्धन ऋण लेकर किया जाता है, इस विधि का बहुत अधिक महत्व है। संस्था की तरलता स्थिति नाजुक होने पर उन विनियोग प्रस्तावों को प्राथमिकता प्रदान की जाती है जिनसे विनियोग लागत शीघ्र वसूल हो सके अर्थात् इस विधि में लाभदायकता के स्थान पर तरलता को प्राथमिकता दी जाती है।

3. **मितव्ययी (Economic)** – इस विधि हेतु अत्यन्त कुशल विशेषज्ञों की आवश्यकता नहीं होती है, क्योंकि गणना प्रक्रिया आसान व कम समय लेने वाली होती है, अतः कम खर्चीली विधि है।

4. **अप्रचलन का भय नहीं (No danger of obsolence)** – एक ऐसे उद्योग जिसमें बहुत अधिक प्रौद्योगिक व तकनीकी विकास हो रहे हों, विनियोग की लागत की वापसी का लघुकालीन दृष्टिकोण अपनाने से सम्पत्ति के अप्रचलन से होने वाली हानि से सुरक्षा मिलती है। किसी परियोजना की अदायगी अवधि जितनी कम होगी, उतनी ही अप्रचलन से उत्पन्न हानि से सुरक्षा की मात्रा बढ़ती है।

5. **जोखिम में कमी (Low Risk)** – अधिक अवधि वाली परियोजना की तुलना में कम अवधि वाली परियोजना कम जोखिमपूर्ण होती है। अतः इस विधि को अपनाने से जोखिम में कमी आती है।

पुनर्भुगतान अवधि विधि की हानियॉ (Disadvantages)

हालांकि पुनर्भुगतान अवधि विधि सबसे पुरानी, आसान और सबसे अधिक प्रयुक्त होने वाली पूंजी बजटन विधि है, तो भी इसकी कुछ गंभीर सीमाएं है। इसकी मुख्य हानियां इस प्रकार है :–

1. पुनर्भुगतान अवधि विधि पुनर्भुगतान अवधि के बाद हुए रोकड अन्तर्वाहों को पूर्ण रूप से नजरंदाज करता है। इस खराबी के कारण पुनर्भुगतान अवधि विधि गलत और अनआर्थिक पूंजी बजटन निर्णय भी ले सकती है।
2. यह पैसे के सामायिक मूल्य को नजरंदाज करती है। यह रोकड अन्तर्वाहों के समय और मूल्य के आधार पर विभिन्न कार्यों में भिन्नता नहीं करती। यह केवल पूर्ण रूप से भुगतान को ही ध्यान में लेता है। यह भावी रोकड अर्न्वाहों पर बट्टा नहीं लगता और दूसरे व तीसरे वर्ष मे ंमिले रूप्ये के मूल्य को भी प्रथम वर्ष मे ंमिले रूपए के मूल्य के समान समझता है।
3. यह कार्य की लाभवन्यता की गणना नहीं करता क्योंकि यह कार्य द्वारा उगाहे पूर्ण रोकड बहावों को ध्यान में नहीं लेता। तालिका 5.2 को देखते हुए यह मालूम होता है कि पुनर्भुगतान अवधि विधि कार्य ख के समूर्ण रोकड अन्तर्वाह को ध्यान मे ंनहीं लेती।
4. अत्यधिक पुनर्भुगतान अवधि को निश्चित करना एक कठिन कार्य है। अत्यधिक पुनर्भुगतान अवधि विधि की गणना करने के लिए कोई निश्चित आधार नहीं है।
5. विभिन्न कार्यों के लाभ और लाभों को बढाने के लिए अपर्याप्त कोशिशें की जाती है। इसलिए पुनर्भुगतान अवधि विधि फर्म के अंशों के बाजारी मूल्य बढाने के उद्‌देश्य पर पूरा नहीं उतरता।
6. यह पूंजी की लागत को ध्यान में नहीं लेता जो, कि मजबूत विनियोग के लिए हेतु महत्वपूर्ण है।

इसकी कमजोरियों होने पर भी पुनर्भुगतान अवधि विधि काफी लोकप्रिय है। यह विधि मूल्यांकन और छोटे और मध्यम विनियोग प्रस्तावों के लिए प्रयोग की जा सकती है।

पुनर्भुगतान अवधि विधि में सुधार (Improvements in Payback Period Techniques) :– पुनर्भुगतान अवधि विधि की हानियां पुनर्भुगतान अवधि के निम्नलिखित तरीके अपना कर कुछ हद तक कम की जा सकती है।

(अ) पुनर्भुगतान अवधि के बाद लाभवन्यता विधि :– पुनर्भुगतान अवधि विधि की सबसे बडी हानि यह है कि यह पुनर्भुगतान के बाद लाभों को ध्यान में नहीं होती। इसलिए पुनर्भुगतान के बाद लााभों को ध्यान में रखकर पुनर्भुगतान विधि में सुधार लाया जा सकता है। पुनर्भुगतान के बाद लाभ वह रोकड अन्तर्राह है, जो पुनर्भुगतान अवधि के बाद मिलते है। पुनर्भुगतान के बाद का लाभ सूचक पुनर्भुगतान के बाद लाभों को प्राथमिक विनियोग के साथ जोड कर बनाई जा सकती है ।

पुनर्भुगतान के बाद लाभवन्यता सूचक

= पुनर्भुगतान के बाद के लाभ / प्राथमिक विनियोग x 100

पुनर्भुगतान के बाद का लाभ सूचक किसी कार्य की लाभवन्यता का सही सूचक है, क्योंकि यह प्राथमिक विनियोग से अधिक हुए रोकड अन्तर्वाह दर्शाता है और यह भी बताता है कि कार्य में कितनी प्राथमिक विनियोग की आवश्यकता है। इस विधि

को प्रयोग करते हुए उन कार्यों को श्रेष्ठ माना जाता है जिनका पुनर्भुगतान के बाद लाभ सूचक अधिक है।

(ब) **पुनर्भुगतान विपरीत विधि** = वार्षिक रोकड अन्तर्वाह / कुल विनियोग

या = 1 / पुनर्भुगतान अवधि

पुनर्भुगतान विपरीत अवधि की गणन प्रतिशत में भी की जा सकती है अगर हम उपर दिए गए अनुपात को 100 से गुणा कर दें। पुनर्भुगतान विपरीत विधि को जब हम पूंजी बजटन क्रिया के रूप में प्रयोग करते हैं, तो वह कार्य जिनकी पुनर्भुगतान विपरीत अवधि आधिक है, वह कम अवधि वाले से श्रेष्ठ मानी जाती है।

पुनर्भुगतान विपरीत विधि कुछ परिस्थितियों में प्रयोगात्मक है। एक सबसे महत्वूपर्ण बात जो इसके हक में है कि यह आंतरिक प्रत्याय दर का एक अच्छा सूचकांक है अगर निम्नलिखित दोनों प्रावधान संतुष्ट हो जाते हैं।

1. कार्य की जिंदगी पुनर्भुगतान अवधि से कम से कम दोगुनी है।
2. कार्य में बराबर वार्षिक रोकड अन्तर्वाह होते हैं।

पुनर्भुगतान अवधि विधि शीध्रता से सही प्रत्याय दर (Rate of Return) की गणना करने के लिए उचित है। पर इसकी मुख्य हानि यह है कि सभी विनियोग कार्य उपर दी गई दोनो प्रावधानो को संतुष्ट नहीं करते।

(c) पुनर्भुगतान के बाद की अवधि विधि (Post Payback Period Method) :– पुनर्भुगतान अवधि विधि की मुख्य हानि यह है कि यह एक समय के बाद रोकड अन्तर्वाह (Cash Inflow) को ध्यान में नहीं लेती। पुनर्भुगतान अवधि के बाद की विधि कार्य के पुनर्भुगतान अवधि के बाद की अवधि को भी गणना मे लेती हैं। कार्य के पुनर्भुगतान की अवधि की गणना कुल कार्य जिंदगी में से पुनर्भुगतान अवधि को निकाल कर की जाती है । इसे पुनर्भुगतान विधि के उपर अत्यधिक जिंदगी भी कहते हे। पूंजी बजटन निर्णय में इस विधि का प्रयोग उन्ही कार्यों के लिए श्रेयकर है, जिनकी पुनर्भुगतान के बाद अवधि लंबी है। यह विधि उन कार्यों के उपर सफलता से प्रयोग की जा सकती है, जिनका प्राथमिक विनियोग लगभग बराबर या और रोकड अन्तर्वाह कार्य की पूर्ण जिंदगी पर एक सार है।

(d) बट्टा पुनर्भुगतान अवधि विधि (Discounted Pay Back Period Method) :– परम्परागत पुनर्भुगतान अवधि विधि की एक मुख्य हानि थी कि वह सामयिक मूल्य (Time Value) को नजरंदाज करती थी जो कि यह विधि नहीं करती। इस विधि के अनुसार रोकड बाहर्वाहों और अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य एक उपयकुत बट्टा दर (पूंजी की लागत) पर गणित किए जाते हैं। रोकड अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य समय के साथ साथ जोड लिए जाते हैं। वह समय जहॉं पर रोकड अन्तर्वाहों का जोड रोकड बाहर्वाहों के वर्तमान मूल्य के बराबर हो जाता है उसे बट्टा दर पुनर्भुगतान अवधि कहते है। इस विधि को प्रयोग करने के लिए वह कार्य जिसकी पुनर्भुगतान अवधि सबसे छोटी है उसे लिया जाता है।

उदाहरण 11.1

नीचे दिए गए आंकडों से बट्टा दर पुनर्भुगतान अवधि की गणना कीजिए

कार्य मे प्राथमिक विनियोग = 9,00,000 रू0

कार्य की जिंदगी 5 वर्ष

वार्षिक रोकड अन्तर्वाह = 3,00,000 रू0

पूंजी की लागत = 10%

उत्तर

रोकड अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्यों की गणना

वर्ष	अन्तर्वाह	वर्तमान मूल्य 10 प्रतिशत बट्टा दर पर	वर्तमान मूल्य	वर्तमान मूल्यों का जोड
1	3,00,000	.909	272700	272700
2	3,00,000	.826	247800	520500
3	3,00,000	.751	225300	745800
4	3,00,000	.683	204900	950700
5	3,00,000	.621	186300	1137000

बट्टा दर रोकड अन्तर्वाहों के जोड का मूल्य तीसरे वर्ष के अन्त में 7,45,800 रू0 और चौथे वर्ष के अन्त में 9,50,700 रू0 है। इसलिए बट्टे पर पुनर्भुगतान अवधि (Discounted Pay Back Period) तीन वर्ष से अधिक है, पर चार वर्ष से कम है।

= 3 वर्ष + 9,00,000–77,45,800 / 204900

= 3 वर्ष + 154200 / 204900

= 3,75 वर्ष

Illustration

Preeti Ltd. is considering the purchase of a new machine which will carry out some operations performed by labour. X and Y are alternative models. From the following information, you are required to prepare a profitability statement and which will you select on the basis of (a) pay-back period and (b) post pay-back profitability. Tax rate is 50%. Ignore depreciation for calculation of tax.

प्रीति लिमिटेड एक नयी मशीन के क्रय पर विचार कर रही है जो कि श्रम द्वारा की जाने वाली क्रियाओं को करेगी। Xतथा Y वैकल्पिक प्रतिरूप है। नीचे दी गई सूचना से लाभदायकता विवरण बनाइये और (i) अदायगी अवधि विधि तथा (ii) अदायगी अवधि विधि के पश्चात् लाभप्रदता को आधार लेते हुए सर्वोत्तम का चयन कीजिये। कर की दर 50% है। ह्रास का ध्यान नहीं रखना है।

	Machine X	Machine Y
Estimated life of machine (years)	6 years	5 years
Cost of machine	2,25,000	2,70,000
Cost of indirect materials	9,000	10,000
Estimated savings in scrap	15,000	20,000
Additional cost of maintenance	16,000	20,000
Estimated saving in direct wages :		
Employees not required (no.)	200	260
Wages per employee	500	500

Solution :

Statement of Profitability

Particulars	Machine X	Machine Y
Estimated savings in scrap	15,000	20,000
Estimated savings in direct wages	1,00,000	1,30,000
Total Savings (a)	**1,15,000**	**1,50,000**
Cost of indirect materials	9,000	10,000
Additional cost of maintenance	16,000	20,000
Total Cost (b)	**25,000**	**30,000**
Net savings before tax (a) - (b)	90,000	1,20,000
Less : Tax @ 50%	45,000	60,000
Net savings per year (after tax)	**45,000**	**60,000**

i. $\text{Pay-back Period} = \frac{\text{Investment}}{\text{Savings per year}}$

$\text{Machine X} = \frac{2,25,000}{45,000} = 5 \text{ years}$

$\text{Machine Y} = \frac{2,70,000}{60,000} = 4.5 \text{ years}$

मशीन Y की पुनर्भुगतान अवधि कम है अतः मशीन Y का चयन किया जायेगा।

11.3.2 लेखा प्रत्याय दर

प्रत्याय दर विधि (Rate of Return Method) यह विधि उन सभी आयों को ध्यान में लेती है जो कि कार्य की पूर्ण जिंदगी मे होते है। इसे लेखा प्रत्याय दर (Accouinting rate of return (ARR) भी कहते हैं क्योंकि यह वित्तीय विवरणों द्वारा दी गई लेख सूचना का भी प्रयोग करता है। इस विधि मे कर और मूल्यहास के बाद कुल लाभ के लेखा विचार का प्रयोग किया जाता है न कि रोकड अन्तर्वाह का। प्रत्याय दर कार्य से आशित लाभों को विनियोग से विभाजित कर 100 से गुणा कर के प्राप्त होता है।

प्रत्याय दर विधि के दो तरीके हैं, जिनकी चर्चा नीचे की गई है :–

औसत प्रत्याय दर विधि (Average Rate of Return Method) :– यह विधि औसत वार्षिक लाभ और कुल विनियोग मे सम्बन्ध स्थापित करती है। औसत प्रत्याय दर की गणना करने के लिए कर के बाद औसत लाभ और मूल्य ह्ास की गणना की जाती है और फिर इसे कुल विनियोग से विभाजित कर दिया जाता है।

औसत प्रत्याय दर = मूल्यह्ास और कर के बाद कुल लाभ/कार्य में शुद्ध विनियोग X 100

जहॉं –

औसत लाभ (मूल्यह्ास और कर के बाद)

(Average profit (After deprieiation texes) = कुल लाभ (मूल्यहृास और कर के बाद)/कुल वर्ष

शुद्ध विनियोग = प्राथमिक विनियोग – आखिरी मूल्य

(Net Investment = Initial Investment – Salvage Value)

उदाहरण 11.2 एक कार्य को 15,00,000 का विनियोग चाहिए और पांच वर्षों बाद जिसका अंतिम मूल्य 50,000 रू0 है। पांच वर्षों मे कर और मूल्यहृास के बाद क्रमशः निम्नलिखित लाभ होने की आशा है :

उत्तर

कुल लाभ = 140000+180000+200000+150000+70000

= 740000 रू0

औसत लाभ = 740000 रू0 / 5

= 148000

कार्य में शुद्ध विनियोग = 1500000 रू0 – 50000 रू0

औसत प्रत्याय दर = औसत लाभ / शुद्ध विनियोग x 100

= 148000 / 1450000 x 100 = 10.25%

ब) औसत विनियोग पर औसत प्रत्याय (Avarage Return on Average Investment) :–

यह विधि औसत प्रत्याय दर विधि से श्रेष्ठ मानी जाती है। औसत विनियोग पर औसत प्रत्याय दर की गणना मूल्यहृास और कर के बाद औसत लाभों को औसत विनियोग से विभाजित कर के की जाती है।

औसत विनियोग पर औसत प्रत्याय = औसत वार्षिक लाभ /औसत विनियोग x 100

औसत विनियोग की गणना शुद्ध विनियोग को 2 से विभाजित कर और फिर उसे शेष मूल्य (Salvage Value) में जोड कर की जाती है। यह औसत विधि सीधी दर पर मूल्यहृास (Straight Line Method of Depriciation) को प्रयोग करती है यह माना जाता है और इस मामले में सम्पत्ति का किताबी मूल्य खरीद मूल्य से शेष मूल्य तक नियमित तौर पर घटता है। इसका अर्थ यह है कि औसतन कम्पनी की किताबों मे सम्पत्तियों का मूल्यहृास मूल्य से आधा और शेष मूल्यों का जोड होगा। शेष मूल्य को 2 से विभाजित नहीं किया जाता क्योंकि यह पूरे समय कार्य की जिंदगी से बंधी रहती है। और कार्य की जिंदगी के अंतिम चरण में ही मिलता है। इसी तरह अगर और कार्यकारी पूंजी की आवश्यकता है जो कार्य की जिंदगी के अंत में ही मिलेगी उसे भी शुद्ध विनियोग की गणना के लिए जोडा जाएगा। औसत विनियोग की गणना इस प्रकार की जाती है :–

= 1/2 (प्राथमिक विनियोग – शेष मूल्य) + शेष मूल्य + शुद्ध कार्यकारी पूंजी

(1/2 (Intial Investiment – Salvage Value) + Salvage Value + Net Working Capital)

चलिए हम औसत विनियोग पर औसत प्रत्याय की गणना करें।

जो आंकडे हमें उदाहरण 2 में दिए गए थे :–

औसत लाभ = 148000 रू0

औसत विनियोग = ½ (1500000 – 50000) + 50000

= 725000 + 50000
= 775000
औसत विनियोग पर औसत प्रत्याय
= 148000 / 775000 x 100 =19.1 %

Illustration : 11.3

A project costs Rs. 16000 and has a scrap value of Rs. 4000. Its stream of income before depreciation and taxes during first five years is Rs. 3,000; Rs. 3,600; Rs. 4,200; Rs. 4,800 and Rs. 6,000. Assuming tax rate at 50% and depreciation on straight line basis, calculae the average rate of return for the project.

उदाहरण –11.3 एक परियोजना की लागत 16,000 तथा अवशिष्ट मूल्य 4000 है। इससे ह्रास एवं कर से पूर्व प्रथम पाँच वर्षों में आय का प्रवाह क्रमशः 3,000 रू.; 3,600 रू.4,200 रू.; 4,800 रु. तथा 6,000 रू. है। परियोजना के लिए औसत प्रत्याय दर की गणना यह मानते हुये कीजिये कि आयकर की 50% दर है तथा ह्रास सीधी रेखा पद्धति से अपलिखित किया जाता है।

हल :

Calculation of Average Rate of Return

Year	1 Rs.	2 Rs.	3 Rs.	4 Rs.	5 Rs.	Total Rs.	Average Rs.
Income before depreciation and taxes	3,000	3,600	4,200	4,800	6,000	21,600	4,320
Less : Depreciation	2,400	2,400	2,400	2,400	2,400	12,000	2,400
Net Income befoe taxes	600	1,200	1,800	2,400	3,600	9,600	1,920
Less : Income taxes @ 50%	300	600	900	1,200	1,800	4,800	960
Net Income after taxes	300	600	900	1,200	1,800	4,800	960

$$ARR = \frac{\text{Average Annual Income after tax and depreciation}}{\text{Average Investment}} \times 100$$

$$ARR = \frac{\text{Rs. } 960}{\text{Rs. } 10{,}000} \times 100 = 9.60\%$$

$$AI = \frac{1}{2}(\text{Initial Investment + Salvage Value})$$

$$AI = \frac{1}{2}(16,000 + 4,000)$$

A I = 10,000 Rs.

उदाहरण 11.4 एक कम्पनी अपने कार्य मे विस्तार करने के लिए एक प्लांट खरीदना चाहती है। वांछित प्लांट 300000 रूपए के रोकड या 90000 रू0 की वार्षिक किश्तों जो साल के अंत मे देय है पर उपलबध है। अगर वांछित प्रत्याय दर 15% है, तो कम्पनी कौन से विकल्प का चयन करेगी।

उत्तर

वर्तमान मूल्य टेबल दर्शाता है कि एक रूपए की वार्षिकी का पांच वर्षों के लिए 15% बट्टा दर पर वर्तमान मूलय 3.352 रू0 है।

इसलिए 90000 वार्षिकी का वर्तमान मूल्य 90000 x 3.352 = 301680 होगा। चूॅकि किश्तों में पूर्ण अदायगी 301680 रूपए 300000 रूपए से अधिक है तो बेहतर है, कि सारी की सारी अदायगी एक ही बार कर दी जाए।

स्वीकार्य/अस्वीकार्य नियम :

लेखा प्रत्याय दर विधि के अनुसार वह कार्य जिनका लेखा प्रत्याय दर अधिक है वह कम प्रत्याय दर कार्यों से श्रेष्ठ माने जाते हैं। फर्म का प्रबन्ध एक न्यूनतम प्रत्याय दर (प्रत्याय दर का तोड) भी निश्चित कर सकता है जो कि हर विनियोग कार्य से अर्जित करना ही होगा। वह कार्य जिनका प्रत्याय दर निश्चित से अधिक है उन्हें स्वीकार्य कर लिया जाएगा और जिनका कम है उनहें अस्वीकार कर दिया जाएगा। प्रत्याय दर विधि को हम आजाद कार्यों को स्थान देने के लिए भी प्रयोग कर सकते है। वह कार्य जिसका प्रत्याय दर अधिकतम है वह सबसे ऊपर आएगा और न्यूनतम प्रत्याय दर वाले प्रस्ताव को सबसे नीचे दिखाया जाएगा।

प्रत्याय दर विधि के लाभ (Advantages of Rate of Return Technique) :–

1. यह समझने और गणना करने में आयान है । इसके लिए कर के बाद लेखा लाभों की आवश्यकता होती है, आसानी से मिल सकते है।
2. बट्टा रोकड बहावों के तकनीक के विपरीत इसमें कोई मुश्किल गणना नहीं होती।
3. यह कार्य के पूर्ण लाभों को ध्यान में रखता है, इसलिए यह पुनर्भुगतान अवधि विधि की तुलना में बेहतर तरीका है।

हॉनियॉ (Disadvantages) :–

1. यह विधि रोकड बहावों की नहीं बल्कि लेखा लाभों का प्रयोग करती है। रोकड बहावों को लेखा लाभों से बेहतर माना जाता है, अगर किसी कार्य का मूल्यांकन करना हो। लेखा लाभों में लेखा त्रुटियां भी होती है और वह कार्य के लाभों में उसकी दोबारा से विनियोग करने की क्षमता को नजरंदाज कर देता है। रोकड बहाव विचार मे कोई त्रुटि नहीं होती, वह दोबारा से विनियोग करने की कार्य की क्षमता को पहचानता है, इसलिए कार्य के सम्पूर्ण लाभों का ध्यान रखता है।

2. यह विधि कार्य के पैसे के सामायिक मूल्य को नजरंदाज करती है, क्योंकि विभिन्न वर्षों में अर्जित लाभों को औसत लाभ निकालते समय एक समान लिया जाता है। यह विधि इस तथ्य को नजरंदाज करती है, कि पहले मिले रूपये का मूल्य बाद में मिले रूपए से अधिक है।
3. इस में विच्छेद प्रत्याय दर (Cut off rate of return) निकालना कार्य को स्वीकार या अस्वीकार करने के लिए आवश्यक है और उसकी गणना के लिए कोर्ठ सीधा तरीका नहीं है।
4. यह विभिन्न कार्यो में निवेशित की जाने वाली पूंजी को ध्यान में नहीं रखती है। विभिन्न कार्यो का प्रत्याय दर बेशक समान हो लेकिन हो सकता है, कि वह अलग अलग विनियोग की मांग करता है। ऐसी स्थिति में फर्म की स्थिति अनिश्चित हो जाएगी।
5. यह विधि उन लाभों को ध्यान में नहीं लेती जो कम्पनी को उन औजारों के नई विनियोग की प्रतिस्थापना पर हो सकते हैं जो कम्पनी ने बेचे थे। वित्तीय निर्णय लेने के लिए नए विनियोग को नए विनियोग के बढते रोकड बाहृर्वाहों के हिसाब से गणना करनी चाहिए, यानि नए विनियोग – प्रतिस्थापना औजारों के बिक्री मूल्य = कर समायोजन
6. यह विधि उस स्थिति में लागू नहीं होती जहॉ विनियोग हिस्सों में होता है और कार्य की कामकाजी प्रयोग में लाने के लिए अभी काफी समय चाहिए।

औसत प्रत्याय दर की विधि के लाभ (Advantages of ARR)

1. **सरलता** : औसत आय एवं औसत विनियोग के आधार पर इसकी गणना की जाती है। अतः यह विधि समझने की दृष्टि से बहुत सरल है एवं इसमें गणना प्रक्रिया भी बहुत आसान है। इसे लेखांकन समंकों से ही ज्ञात किया जा सकता है। परियोजना के रोकड़ प्रवाहों के लिए किसी प्रकार के समायोजन की आवश्यकता नहीं है।
2. **ह्ास के बाद शुद्ध आय पर विचार**– इस विधि में शुद्ध आय की गणना करने के लिए ह्ास की राशि घटा दी जाती है जो कि सैद्धान्तिक दृष्टि से उचित है।
3. **लाभदायकता की जाँच** – इसमें परियोजनाओं की लाभदायकता की जांच की जाती है तथा विनियोगों से प्राप्त सभी वर्षों के लाभों पर विचार किया जाता है। अतः विभिन्न परियोजनाओं की तुलना करके अधिक लाभदायक परियोजनाओं को चुना जा सकता है।
4. **दीर्घकालीन परियोजना के विश्लेषण में उपयोगी**–इस विधि में परियोजनाओं की सम्पूर्ण जीवन अवधि पर ध्यान दिया जाता है। अतः यह विधि दीर्घकालीन परियोजनाओं के विश्लेषण में उपयोगी रहती है।

औसत प्रत्याय दर की सीमाएँ (Limitations of ARR)

1. **मुद्रा के समय मूल्य पर विचार नहीं**–यह विधि मुद्रा के समय मूल्य पर विचार नहीं करती है। विभिन्न परियोजनाओं के तुलनात्मक अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि इन परियोजनाओं में भविष्य के विभिन्न वर्षों की आय का वर्तमान मूल्य निकालना चाहिए।

2. **लेखांकन लाभों का उपयोग** – इस विधि में प्रत्याय दर की गणना के लिए लेखांकन विवरणों द्वारा प्रदर्शित लाभों का प्रयोग किया जाता है। किन्तु इन लाभों को रोकड़ अन्तर्वाहों का सही रूप नहीं मान सकते हैं।

3. **उचित प्रत्याय दर का निर्धारण कठिन** – प्रत्येक संस्था में उच्च प्रबंध द्वारा एक न्यूनतम प्रत्याय दर निश्चित कर दी जाती है। इस दर से कम प्रत्याय वाली परियोजनाओं को अस्वीकृत कर दिया जाता है। किन्तु इस प्रकार की न्यूनतम दर का निर्धारण अत्यन्त कठिन होता है।

4. **विनियोग व आय की धारणा अस्पष्ट**– इस विधि में प्रयुक्त सूत्रों में आय एवं विनियोग शब्दों का प्रयोग किया जाता है जिनके अनेक अर्थ होते हैं। उदाहरणार्थ कुछ लोग विनियोग का आशय मूल विनियोग से लेते हैं तो कुछ विद्वान इसका आशय औसत विनियोग से लेते हैं। इसी तरह अर्जनों की गणना ह्रास से पूर्व अथवा ह्रास के बाद की जा सकती है। अतः इस विधि में निश्चितता का गुण नहीं है।

5. **व्यावसायिक लाभों पर पड़ने वाले सूक्ष्म प्रभावों की जाँच संभव नहीं**– यह विधि व्यवसाय के लाभों को औसत रूप में देखती है। अतः इस विधि द्वारा व्यवसाय के कुल लाभों पर पड़ने वाले सूक्ष्म प्रभावों को नहीं मापा जा सकता है।

11.4 रोकड़ बहाव बट्टा तकनीकें

परंपरागत विधियों का भी अपना महत्व है परन्तु इन विधियों की अपनी सीमायें भी हैं, विशेष रूप से इन विधियों में भविष्य में होन वाली अर्जनों के वर्तमान मूल्य की गणना नहीं की जाती है जबकि यह सभी जानते हैं कि पूंजी विनियोग वर्तमान में किया जाता है एवं इनसे अर्जनें भविष्य में प्राप्त होती हैं साथ ही भविष्य में प्राप्त होने वाली अर्जनों का मूल्य वर्तमान मूल्य से कम होता जाता है। अतः उक्त मूल्यों की गणना आवश्यक है तब ही पूंजी बजटन संबंधी निर्णयन उचित तरीके से लिये जा सकते हैं।

बट्टा रोकड बहाव या समय समायोजित तकनीकें (Discounted cash flow or Time Adjusted Techniques) :– बट्टा रोकड बहाव या समय समायोजित तकनीकें पूंजी बजटन की नवीन विधियां मानी जाती है और बडी शीघ्रता से लोकप्रिय होती जा रही है क्योंकि यह परम्परागत विधियां जैसे पुर्नभुगतान अवधि और औसत प्रत्याय दर से बेहतर है। यह माना गया है कि बट्टा रोकड बहाव (Discounted Cash Flow (DCF) । पंजी बजटन निर्णय के लिए ज्यादा अच्छा आधार है और काल्पनिक रूप से सही है।

बट्टा रोकड बहाव विधि लाभों और लागतों के रोकड बहाव विचार के ऊपर आधारित है। इस विधि की मदद से किसी विनियोग कार्य के मूल्यांकन के लिए प्रथम कदम कर के बाद कार्य के रोकड बहावों का अनुमान लगाना होगा। यह विधियां कार्य की जिंदगी में आने वाले सभी लाभों और लागतों को ध्यान में रखते है। सर्वोपरि यह सभी विधियां कार्य के लाभ और लागतों का मूल्यांकन करने के लिए पैसे के सामायिक मूल्य को ध्यान में रखते हैं। एक तरह या दूसरी तरह सभी विधियां इस बात की मांग करती है कि फर्म की पूंजी की लागत पर रोकड बहावों को बट्टा दर पर लिया जाए। फर्म की पूंजी की लागत वह न्यूनतम

प्रत्याय दर जो कि कार्य में विनियोग के लिए अर्जित करना ही होगा तो ही विनियोग न्यायोचित होगा।

पूँजी बजटन की परम्परागत विधियों में किसी परियोजना से भविष्य के वर्षों में प्राप्त होने वाली रोकड़ प्रवाहों के वर्तमान मूल्य अर्थात् मुद्रा के समय मूल्य (Time value of Money) पर विचार नहीं किया जाता है। चूँकि बजटन में भविष्य के बारे में सभी निर्णय वर्तमान में लिये जाते है, इसलिए भविष्य में प्राप्त होने वाली अर्जनों का वर्तमान मूल्य ज्ञात कर निर्णय लेना उपयुक्त है। इस विधि को समय समायोजित प्रत्याय दर विधि अथवा अपहारित रोकड़ प्रवाह विधि भी कहते हैं क्योंकि इस विधि में परियोजना के भावी रोकड़ प्रवाहों को समय के संदर्भ में समायोजित किया जाता है अथवा एक निश्चित ब्याज दर से कटौती की जाती है। इसके अंतर्गत निम्न प्रमुख विधियाँ हैं :–

1. शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि (Net Present Value Method)
2. शुद्ध वर्तमान मूल्य सूचकांक विधि (NPV Index Method)
3. आंतरिक प्रत्याय दर विधि (Internal Rate of Return Method)

11.4.1 शुद्ध वर्तमान मूल्य

पूँजी बजटन की परम्परागत विधियों में रोकड़ प्रवाहों के वर्तमान मूल्य अर्थात् समय कारक (Time Factor) पर विचार नहीं किया जाता है। अतः वे विधियाँ दोषपूर्ण मानी जाती हैं। आज वित्तीय प्रबन्ध के भावी वचनबद्धता (Future Commitments) तथा परियोजनाओं से सम्बन्धित निर्णयों में समय–समायोजित दर अत्यधिक महत्वपूर्ण औजार बन गई है। समय–समायोजित प्रत्याय दर विधि इस धारणा पर आधारित है कि आज के एक वर्ष बाद या किसी अन्य अवधि के बाद प्राप्त होने वाला एक रूपया वर्तमान में प्राप्त होने वाले एक रूपये से कम मूल्यवान होता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि भविष्य में प्राप्त होने वाले एक रूपये का मूल्य वर्तमानकाल के एक रूपये से कम ही होगा। परियोजना पर विनियोग वर्तमान में किया जाता है एवं प्राप्तियाँ भविष्य में होंगी।

शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि (Net Present Value (NPV) Method) :– शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि पैसे के सामायिक मूल्य को ध्यान में रखती है। यह विधि इस तथ्य को पहचानती है कि आज अर्जित किए गए रूपये का मूल्य कल अर्जित किए जाने वाले रूपए से अधिक होगा। एक सीधा मुहावरे का उदाहरण देना यहाँ उचित होगा, ''नौ नकद न तेरह उधार (A bird in hand is beter than two in bush) यह विधि इस बात की भी पहचान करती है कि विभिन्न अवधियों में मिले रूपयों का मूल्य भी भिन्न होता है, इसलिए तुलना योग्य नही है। ऐसे रोकड बहावों की तुलना के लिए उनके वर्तमान मूल्य का पता लगाना होगा। भविष्य में होने वाले रोकड बहावों का वर्तमान मूल्य उन्हें उचित बट्टा दर पर (फर्म की पूंजी की लागत) पर बट्टा कर के लगाया जा सकता है। किसी कार्य का शुद्ध वर्तमान मूल्य पता लगाने के लिए वर्तमान रोकड अन्तर्वाहों में से रोकड बाहर्वाहों को घटा कर लगया जा सकता है। इसलिए कार्य के शुद्ध वर्तमान मूल्य को इस तरह परिभाषित कर सकते हैं कि सभी वर्षो में हुए सम्पूर्ण रोकड अन्तर्वाहों के जोड में से रोकड बाहर्वाहों को निकाल कर जो शेष बचता है वही शुद्ध वर्तमान मूल्य है। शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना के लिए निम्नलिखित कदम उठाने पडेगे :–

1. भविष्य में होने वाले रोकड अन्तर्वाहों और बाहर्वाहों के बारे में भविष्यवाणी करना।
2. भविष्य में होने वाले रोकड बहावों के वर्तमान मूल्य को जानने के लिए उचित बट्टा दर निश्चित करना।
3. पहले से निश्चित किए गए बट्टा दर पर कुल विनियोग के वर्तमान मूल्य की गणना करना। अगर कार्य को केवल प्राथमिक वर्ष मे विनियोग चाहिए तो रोकड बाहर्वाहों का वर्तमान मूल्य विनियोग की लागत जितना ही होगा।
4. विभिन्न बट्टा दरों का प्रयोग कर के कार्य के विभिन्न वर्षों में होने वाले रोकड अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य की गणना करना।
5. रोकड अन्तर्वाहों के वर्तमान मूलय में से रोकड बाहर्वाहों के वर्तमान मूल्य को घटा कर शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना करना।

अतः भविष्य में प्राप्त आय को वर्तमान मूल्य पर समायोजित करना आवश्यक होगा। यदि किसी व्यवसाय में विनियोजित कोषों पर 10% प्रत्याय प्राप्त हो सकती है तो व्यवसाय में विनियोजित 100 रूपये की राशि विभिन्न वर्षों में निम्न प्रकार बढ़ेगी –

तालिका 11.2

प्रारम्भिक विनियोग	एक वर्ष के पश्चात् $(1 + .10)$	दो वर्ष के पश्चात् $(1 + .10)^2$	तीन वर्ष के पश्चात् $(1 + .10)^3$	n वर्षों के पश्चात् $(1 + .10)^n$
रूपये	रूपये	रूपये	रूपये	रूपये
100 बढ़कर	110	121	133.1	$(1+01)_n$

वर्तमान मूल्य के दृष्टिकोण से यह कहा जा सकता है कि प्रथम वर्ष के अंत में प्राप्त (1.10) रू. का वर्तमान मूल्य (1+.10) = 0.909 रू. है। द्वितीय वर्ष के अंत में प्राप्त $(1+.10)^2$ या 1.21 रू. का वर्तमान मूल्य $1/(1.10)^2$ अथवा 0.826 रू. है। इसी तरह जैसे–जैसे समय बढ़ता जायेगा भविष्य में प्राप्त होने वाले रूपये की वर्तमान राशि कम होती जायेगी। वर्तमान मूल्य ज्ञात करने की यह विधि मुख्यतः चक्रवृद्धि करने **(Compounding)** या भावी मूल्य विधि के विपरीत है।

विभिन्न वर्षों के रोकड़ अंतर्वाहों के वर्तमान मूल्य भावी की रोकड़ गणनाः अंतर्वाहों के वर्तमान मूल्य ज्ञात करने के लिए गणित के निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है :–

$$PV = \frac{C_1}{(1+r)^1} + \frac{C_2}{(1+r)^2} + \frac{C_3}{(1+r)^3} \dots\dots\dots \frac{C_n}{(1+r)^n}$$

जबकि;

PV = भावी रोकड़ अर्न्तवाहों का वर्तमान मूल्य (Present Value of Future Cash Inflows);

C = रोकड़ अन्तर्वाह (Cash Inflows);

r = ब्याज दर या वांछित अर्जन दर (Rate of Interest or Required Earnings rate)

n = वर्षों की संख्या (Number of years)

वर्तमान मूल्य सारणियाँ (Present Value Tables)

वर्तमान मूल्य की गणना हेतु वर्तमान मूल्य सारणियाँ तैयार की गई है जिनमें 1 रू. का विभिन्न ब्याज की दरों पर विभिन्न वर्षों का वर्तमान मूल्य दिया होता है। किसी वर्ष की आय का वर्तमान मूल्य ज्ञात करने के लिये वर्तमान मूल्य सारणी से उस वर्ष के सामने निर्दिष्ट दर पर एक रूपये का वर्तमान मूल्य ज्ञात करते हैं ओर फिर उसे उस वर्ष की आय से गुणा करके उसका वर्तमान मूल्य ज्ञात किया जाता है अर्थात् असमान रोकड़ अन्तर्वाहों की दशा में प्रत्येक वर्ष का वर्तमान मूल्य असंचयी वर्तमान मूल्य सारणियों की सहायता से ज्ञात किया जाता है। यदि विनियोग से आय लगातार एवं समान दर से होती है तो इनका वर्तमान मूल्य ज्ञात करने के लिये संचयी वर्तमान मूल्य सारणी का प्रयोग किया जा सकता है। इस सारणी में संचयी अंक दिये होते हैं। अर्थात् यह सारणी एक रूपया प्रति वर्ष लगातार प्राप्त होने पर उसका विभिन्न वर्षों में तथा विभिन्न ब्याज की दरों पर वर्तमान मूल्य प्रदर्शित करती है। इस सारणी से किन्हीं भी दो समयों के बीच लगातार समान दर पर प्राप्त आय का वर्तमान मूल्य भी ज्ञात किया जा सकता है। इसके लिये उस अवधि के अंतिम वर्ष के मूल्य से प्रारंभिक वर्ष से पूर्व के वर्ष का मूल्य घटाना होता है। जैसे यदि 4 से 8 वर्ष तक लगातार प्राप्त आय का वर्तमान मूल्य ज्ञात करना है तो इसके लिये निर्दिष्ट दर पर आठवें वर्ष के कारक में से चौथे वर्ष का कारक घटाकर प्राप्त शेष को चौथे से आठवें वर्ष तक प्राप्त वार्षिक आय से गुणा किया जायेगा।

बाहर्वाहों को निकाल कर जो शेष बचता है वही शुद्ध वर्तमान मूल्य है। शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना के लिए निम्नलिखित कदम उठाने पडेगे :–

1. भविष्य में होने वाले रोकड अर्न्वाहों और बाहर्वाहों के बारे में भविष्यवाणी करना।
2. भविष्य में होने वाले रोकड बहावों के वर्तमान मूल्य को जानने के लिए उचित बट्टा दर निश्चित करना।
3. पहले से निश्चित किए गए बट्टा दर पर कुल विनियोग के वर्तमान मूल्य की गणना करना। अगर कार्य को केवल प्राथमिक वर्ष मे विनियोग चाहिए तो रोकड बाहर्वाहों का वर्तमान मूल्य विनियोग की लागत जितना ही होगा।
4. विभिन्न बट्टा दरों का प्रयोग कर के कार्य के विभिन्न वर्षों में होने वाले रोकड अर्न्वाहों के वर्तमान मूल्य की गणना करना।
5. रोकड अन्तर्वाहों के वर्तमान मूलय में से रोकड बाहर्वाहों के वर्तमान मूल्य को घटा कर शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना करना।

वह कार्य जिनके परम्परागत रोकड बहाव होते हैं उनके शुद्ध वर्तमान मूलय को सांकेतिक तौर पर इस तरह लिखा जा सकता है :–

$$NPV = \frac{CF_1}{(HK)^1} + \frac{CF_2}{(HK)^2} + \frac{CF_n}{(HK)^n} - C_0$$

$$\sum_{t=0}^{n} \frac{Cft}{(1+K)^t} - C_0$$

जहॉ CF_1 CF_2 CF_n क्रमशः 1,2,......n वर्षों तक होने वाले रोकड अन्तर्वाह हैं। 10 प्राथमिक विनियोग है। K बट्टा दर है।

जहॉ एक जैसे रोकड बहाव नहीं होते यानि रोकड बाहर्वाह प्राथमिक विनियोग के समय से इधर उधर होने की आशा होती है, तो शुद्ध वर्तमान मूल्य इस प्रकार होगा–

वास्तविकता में शुद्ध वर्तमान मूल्य वर्तमान मूल्य टेबल के प्रयोग से जाना जाता है। दो तरह के वर्तमान मूल्य टेबल होते हैं (1) 1 रूपये की वार्षिकों का वर्तमान मूल्य (The Present Value of an annuity of Rs1) और (2) एक रूपये का वर्तमान मूल्य (Present Value of of Rupee) यह टेबल किताब के पीछे दिए गए हैं। पहला टेबल उस रूपये का मूल्य दर्शाता है, जो कुछ वर्षों बाद मिले रूपए की गए निश्चित बट्टा दर पर वर्तमान मूल्य क्या होगा। उदाहरण के तौर पर 5 वर्षों बाद मिले रूप्ए का 10% बट्टा दर पर वर्तमान मूल्य 0.621 रूपए होगा। एक रूपए की वार्षिकी का वर्तमान मूल्य टेबल समान रोकड बहावों मे प्रयुक्त होता है। और एक रूपए का वर्तमान मूल्य टेबल असामान्य रोकड बहावों के लिए प्रयुक्त होता है। उदाहरण 11.5 और 11.6 शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना की विधि बताई गई है।

उदाहरण 11.5 एक कम्पनी अपने कार्य मे विस्तार करने के लिए एक प्लांट खरीदना चाहती है। वांछित प्लांट 300000 रूपए के रोकड या 90000 रू0 की वार्षिक किश्तों जो साल के अंत मे देय है पर उपलबध है। अगर वांछित प्रत्याय दर 15% है, तो कम्पनी कौन से विकल्प का चयन करेगी।

उत्तर

वर्तमान मूल्य टेबल दर्शाता है कि एक रूपए की वार्षिकी का पांच वर्षों के लिए 15% बट्टा दर पर वर्तमान मूल्य 3.352 रू0 है।

इसलिए 90000 वार्षिकी का वर्तमान मूल्य 90000 x 3.352 = 301680 होगा। चूॅकि किश्तों में पूर्ण अदायगी 301680 रूपए 300000 रूपए से अधिक है तो बेहतर है, कि सारी की सारी अदायगी एक ही बार कर दी जाए।

उदाहरण 11.6 कम्पनी एक विनियोग प्रस्ताव के बारे मे सोच रही है जिसके अन्तर्गत एक नया मिलिंग नियंत्रण व्यवस्था लगानी है। कार्य की लागत 100000 रू0 आंशित जिंदगी 5 वर्ष और शेष मूल्य शून्य होगा। कम्पनी का कर दर 50% है । फर्म मूल्यहृांस की सीधी लाईन विधि प्रयोग करती हे। प्रस्तावित कार्य से कर के पहले अनुमानित रोकड बहाव 1,2,3,4,5 वर्षों में क्रमशः 20000 रू0 22000 रू0 28000 रू0 30000 रू0 और 50000 रू0 होंगे। 10% बट्टा दर शुद्ध वर्तमान मूल्य निकालों।

उत्तर

इस प्रश्न के उत्तर में चार कदम उठाने होंगे :–

1. कर से पहले लाभ की गणना करना। इसे करने के लिए कर पूर्व रोकड बहावों में से मूल्यहृास की कटौती करनी होगी।
2. कर के बाद लाभ की गणना करना। इस के लिए कर से पहले लाभों में से देय कर की कटौती करती होगी।
3. कर के बाद रोकड बहावों की गणना करना। इस के लिए कर के बाद लाभों में मूल्यहृास को जोडना होगा।
4. विभिन्न वर्षों के कर के बाद रोकड बहावों मे से प्राथमिक विनियोग की कटौती कर शुद्ध वर्तमान मूल्य निकाला जा सकता है।

इन सभी तथ्यों को ध्यान में रख कर टेबल 3 व 4 बनाए गए ताकि वह वास्तविक और उचित रोकड बहाव व वर्तमान मूल्य की गणनाओं को दर्शाऐं।

तालिका 11.3

वर्ष (Year)	कर से पूर्व रोकड बहाव (CFBT)	मूल्यहृास (Depriciation)	कर से पूर्व लाभ (PBT) (Col.2-Col-3)	कर (Taxes)	कर के बाद लाभ PAT (Col.4 Col 5)	कर के बाद लाभ रोकड बहाव CFAT (Col.6 +Col.3)
1	2	3	4	5	6	7
1	20,000	20,000	Nil	Nil	Nil	20,000
2	22,000	20,000	2000	1000	1000	21,000
3	28,000	20,000	8000	4000	4000	24,000
4	30,000	20,000	10,000	5000	5000	25,000
5	50,000	20,000	30,000	15,000	15,000	35,000

तालिका 11.4

वर्ष (Year)	कर के बाद रोकड बहाव (CFAT)	वर्तमान मूल्य तथ्य 10% दर (PuFat 10%)	वर्तमान मूल्य (Present Value) Col 2 * Col 4)
1	2	3	4
1	20,000	0.909	18180
2	21,000	0.826	17345
3	24,000	0.751	18024
4	25,000	0.683	17075
5	35,000	0.621	21735

शुद्व वर्तमान मूल्य = कर के बाद रोकड बहावों का वर्तमान मूल्य (CFAT) – प्राथमिक विनियोग (Initial Investment) = 92360-1,00,000= -7640

स्वीकार्य / अस्वीकार्य तरीका (Accept / Reject Criteria)

पूंजी बजटन कार्यों में शुद्व वर्तमान मूल्य निर्णय विधि के रूप में प्रयोग होता है। जिनका कार्यों का वर्तमान मूल्य बढोत्तरी (Positive) है, उन्हें स्वीकार लिया जाता है और जिनका वर्तमान मूल्य कटौती (Negative) है उन्हें सीधे ही अस्वीकार दिया जाता है। सांकेतिक रूप में लिखा जाए तो

1. शुद्व वर्तमान मूल्य – शून्य स्वीकार
2. शुद्व वर्तमान मूल्य – शून्य अस्वीकार
3. शुद्व वर्तमान मूल्य – शून्य कार्य को स्वीाकर या अस्वीकार करने के लिए स्थिति भिन्न अगर कार्य का वर्तमान मूल्य शून्य है, तो इसका अर्थ है कि न तो यह फर्म का मूल्य बढाएगा न घटाएगा। जब वर्तमान मूल्य शून्य है तो फर्म कार्य को स्वीकार भी कर सकती है और अस्वीकार की। ऐसे मामलों में पूंजी का उपलब्ध होना इस कार्य का अन्य कार्यों पर प्रभाव जैसे तथ्यों पर निर्णय लेते हुए ध्यान रखा जाता है।

शुद्व वर्तमान मूल्य को निरन्तर न मिलने वाले कार्यों के बीच में चयन करने के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है। वह कार्य जिनका शुद्व वर्तमान मूल्य अधिक

है, उनको दूसरे कार्यो की तुलना में प्राथमिकता दी जाती है। पूंजी राशन (Capital Rationing) की स्थिति में जब आजाद कार्यों को स्थान दिया जाता है, तो शुद्ध वर्तमान मूल्य के हिसाब से कार्यों को स्थान दयिा जाता है। जिस कार्य का अधिकतम शुद्ध वर्तमान मूल्य है उसे प्रथम स्थान दिया जाता है और बाकियों को इसी क्रम में स्थान दिया जाता है।

शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि के लाभ (Advantages of Net Present Value Method) :– वर्तमान मूल्य विधि के बहुत लाभ हैं। कुछ मुख्य लाभ नीचे दिए गए हैं :–

1. यह पैसे के सामायिक मूल्य को पहचानता है। यह विधि उन कार्यों के मूल्यांकन के लिए उचित है, जिनमें असामान्य रोकड बहाब होते हैं और रोकड बहाव विभिन्न समय पर होते हैं।
2. यह प्रस्ताव की पूरी जिन्दगी में होने वाले कुछ लाभों (रोकड अन्तर्वाहों) को ध्यान में रखती हैं।
3. यह फर्म के मूल्य को अधिकतम करने के लक्ष्य को ध्यान में रखती हैं।
4. व्ह स्थिति जिसमें भविष्य में फर्म की पूंजी की लागत में अन्तर आने का अंदेशा है, वहॉ Denominator को बदल कर शुद्ध वर्तमान मूल्य मे ंबदलता हुआ बट्टा दर प्रयोग किया जा सकता है।

शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि की हानियां (Disadvantages of Net Present Value Method) :– हालॉकि शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि की तकनीक विनियोग प्रस्तावों के चयन के लिए विषय रूप में सही है परन्तु इसकी भी कुछ सीमाएं हैं। कुछ मुख्य हानियों का वर्णन नीचे किया गया है :–

1. शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि मे पूंजी की लागत, वांछित प्रत्याय दर की गणना आवश्यक हैं। पूंजी की लागत की गणना करना मुश्किल कार्य है, जैसा कि "**पूंजी की लागत**" इकाई में पढा है।
2. परम्परागत विधि की तुलना में यह विधि समझने व प्रयोग में कठिन है।
3. यह विधि उन कार्यों का मूल्यांकन नहीं कर सकती जिनकी जिंदगिया सामान्य नहीं है।

यह विधि उन कार्यो के मूल्यांकन में भी अच्छे नतीजे नहीं देती जिनके प्राथमिक विनियोग असामान्य है।

11.4.2 लाभांश सूचक

लाभांश सूचक (Profitability Index (P1) या लाभ लागत अनुपात (Benefit Cost Ratio B/C Ratio :– लाभांश सूचक या लाभ लागत अनुपात विधि शुद्ध वर्तमान मॅल्य पहुंच के समान है। शुद्ध वर्तमान मूल्य पहुंच की तरह लाभांश सूचक विधि में भी रोकड अन्तर्वाहों और बाहृयर्वाहों को वर्तमान मूल्यों की गणना करना आवश्यक है।

लाभांश सूचक वह सम्बन्ध है जो रोकड अन्तर्वाहों और रोकड बाह्र्वाहों को वर्तमान मूल्य में स्थापित होता है। इसको भविष्य में होने वाले रोकड अर्न्वाहों और बाहृयर्वाहों के अनुपात की तरह भी परिभाषित किया जा सकता है:–

अगर हम आंकडों में लिखना चहों तो

$$\text{लाभांश सूचक} = \frac{\text{रोकड अन्तर्वाहों का वर्तमान मूल्य}}{\text{रोकड बाहर्वाहों का वर्तमान मूल्य}}$$

डपरोक्त उदाहरण में दी गई सूचना के अनुसार व रोकड अन्तर्वाहों और बाहर्वाहों के वर्तमान मूल्य के अनुसार कार्य का लाभांश सूचक यह होगा :–

$$\frac{92360}{100000} = 0.9236$$

स्वीकार्य / अस्वीकार्य विधि (Acceptance / Rejection Criteria) :– जब लाभांश सूचक विधि का प्रयोग किया जाता है तो अधिक लाभांश सूचक कार्यों को कम लाभांश सूचक कार्यों की तुलना मे प्राथमिकता दी जाती है। हर तरह से वह कार्य जो स्वीकार्यता की कसौटी पर उतरना चाहता है, उसका लाभांश सूचक का एक से अधिक होना चाहिए। जब लाभांश सूचक एक के बराबर होता है, तो फर्म कार्य को स्वीकार्य या अस्वीकार्य करने के लिए शीघ्रता से तैयार नहीं होती। पूंजी राशनिंग (Capital Rationing) की स्थिति में आजाद कार्यों को स्थान प्रदान करने के लिए उस कार्य को प्रथम स्थान दिया जाएगा लाभांश सूचकांक अधिकतम है और बाकियों को लाभांश सूचकांक के हिसाब से स्थान दिया जाएगा।

विनियोग प्रस्तावों से सम्बन्धित शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि और लाभांश सूचकांक एक जैसे नतीजे देते हैं। जब लाभांश सूचकांक 1 से बढ जाता है, तो शुद्ध वर्तमान मूल्य = (Postive) होगा और कार्य को शुद्ध वर्तमान मूल्य या लाभांश सूचक विधि के अनुसार स्वीकार कर लिया जाएगा। जब लाभांश सूचक 1 से कम होगा तो शुद्ध वर्तमान मूल्य (-) (Negative) होगा और कार्य दोनों विधियों के अनुसार अस्वीकार्य होगा। जब लाभांश सूचक 1 होगा तो शुद्ध वर्तमान मूल्य शून्य होगा और फर्म कार्य को स्वीकार करने के लिए पूर्ण रूप से तैयार नहीं होगी।

लाभांश सूचक के लाभ (Advantages of Profitability Index) :–

1. यह पैसे के सामायिक मूल्य को पहचानता है।
2. यह कार्य की पूर्ण जिदगी में होने वाले लाभों को ध्यान मे लेता है।
3. यह फर्म के मूल्य को अधिकतम करने के उद्देश्य के साथ मेल खाता है।
4. भविष्य के रोकड अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य की गणना के लिए बडा दर में बदलाव इस विधि मे हो सकता है।
5. पूंजी राशनिंग की स्थिति में यह विधि शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि से बेहतर है क्योंकि शुद्ध वर्तमान मूलय कार्य का सम्पूर्ण रूप से मूल्यांकन करता है वह लाभांश सूचक विधि कार्य की Relative Worth का मूल्यांकन करती है।

लाभांश सूचक विधि की हानियां (Disadvantages of Profitability Index) :–

1. यह समझने व प्रयोग करने में कठिन है।
2. इसमें पूंजी की लागत की गणना करनी पडती है जो कि एक कठिन कार्य है।
3. यह उन कार्यों की तुलना के लिए प्रयोग नहीं हो सकता जिनकी जिंदगियां असामान्य है।

11.4.3 आंतरिक प्रत्याय दर

आंतरिक प्रत्याय दर विधि (Internal Rate of Return Method) :– शुद्ध वर्तमान मूल्य और लाभांश सूचक विधि पूंजी विनियोग प्रस्ताव के मूल्यांकन के लिए बट्टा रोकड बहाव विधि की तीसरी विधि आंतरिक प्रत्याय दर विधि है। आंतरिक प्रत्याय दर विधि को विनियोग पर आय पूंजी की न्यूनतमक समर्थता

(Marginal Efficiencey of Capital) पूंजी की न्यूनतम उत्पादक समर्थता (Marginal Productivity of Capital) समय समायोजित प्रत्याय दर विधि (Time Adjusted rate of Return) आदि के नाम से जानी जाती है।

आंतरिक प्रत्याय दर विधि को उस बट्टा दर विधि की तरह परिभाषित किया जा सकता है जो कि कार्य से सम्बन्धित सम्पूर्ण रोकड अन्तर्वाहों के जोड और रोकड बाहर्वाहों के जोड को आपस में मिलाता है । दूसरे शब्दों में आंतरिक प्रत्याय दर विधि वह विधि है जो कार्य के शुद्ध वर्तमान मूल्य को शून्य के बराबर दर्शाती है।

परम्परागत रोकड बहावों के मामलों में, आंतरिक प्रत्याय दर निम्नलिखित इकाई में r (बट्टा दर) द्वारा प्रतिनिधित्व करता है :–

$$C = C\frac{F_1}{(1+r)} + C\frac{F_2}{(1+r)^2} + \cdots - C\frac{F_n}{(1+r)^n}$$

जहॉ 1,2,......... है वर्षों में क्रमशः रोकड अर्न्वाह CF_1, CF_2 .... है। C_o प्राथमिक विनियोग है।

अपरम्परागत रोकड बहावों के मामले में यानि के जब यह आशा की जाती है कि रोकड बाहर्वाह प्राथमिक विनियोग के इलावा किसी और समय पर होंगें तो निम्नलिखित इकाई में आंतरिक प्रत्याय दर r होगा।

$$Co + \frac{C_1}{(1+r)} + C\frac{C_2}{(1+r)^2} + \cdots C\frac{C_n}{(1+r)^n} = \frac{CF_1}{(1+r)} + C\frac{CF_2}{(1+r)^2} + \cdots \frac{CF_n}{(1+r)^n}$$

जहॉ C_o प्राथमिक विनियोग है। 1,2.................. n वर्षों में क्रमशः रोकड बाहर्वाह $C_1, C_2, \ldots\ldots$ C_n है। 1,2.................. n वर्षों में क्रमशः रोकड अन्तर्वाह CF_1, CF_2 ....CF_n है।

स्वीकार्य/अस्वीकार्य विधि (Acceptance / Rejection Rule) :– आंतरिक प्रत्याय, दर विधि के अनुसार पूंजी बजटन निर्णय लेने के लिए कार्य जो आंतरिक प्रत्याय दर की तुलना आंशिक प्रत्याय दर (पूंजी की लागत) से की जाती है। अगर आंतरिक प्रत्याय दर आंशित प्रत्याय दर से अधिक है तो कार्य स्वीकार्यता की कसौटी पर खरा उतरता है। दूसरी तरफ अगर आंतरिक प्रत्याय दर कार्य की पूंजी की लागत से कम है , तो कार्य को सीधे सीधे ही अस्वीकार कर दिया जाता है। परस्पर न मेल खाने वाले कार्य (Mutually Exclusive Project) में से अगर किसी कार्य का चयन करना हो, तो वह कार्य जिसका आंतरिक प्रत्याय दर अधिकतम होगा। उसका चयन कर लिया जाएगा। पूंजी राशनिंग की स्थिति में आजाद कार्यों को स्थान अवलोकन करने के लिए भी आंतरिक प्रत्याय दर विधि अधिकतम होता है, उसे सबसे उच्च स्थान दिया जाता है और बाकी कार्यों को प्रत्याय दर के अनुसार स्थान दिया जाता है।

आंतरिक प्रत्याय दर की गणना (Computation of Internal Rate of Return) :– आंतरिक प्रत्याय दर की गणना करना एक कठिन कार्य है। इसमे कोशिश व त्रुटि विधि (Trial and Error Prceedure) का प्रयोग होता है। परिभाषा के अनुसार आंतरिक प्रत्याय दर का अर्थ वह दर है, जो रोकड अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य

और बाहर्वाहों के वर्तमान मूल्य का मिलान करता है। वांछित बट्टा दर की गणना के लिए विभिन्न दरों का प्रयोग किया जाता है, ताकि उस दर से रोकड अर्न्वाह और बाहर्वाहों का अनुपात में लाया जा सके। रोकड अर्न्वाहों और बाहर्वाहों के वर्तमान मूल्य जानने के लिए सबसे पहले प्रयोग किया दर शुद्ध वर्तमान मूल्य बताता है जो कि 1. शून्य 2. +(Positive) 3. -(Nigative) हो सकता है। पहले मामले में निश्चित तौर पर प्रयुक्त दर आंतरिक प्रत्याय दर होगा। दूसरे मामले में चूॅंकि शुद्ध वर्तमान मूल्य + हो तो उच्च प्रत्याय पर का प्रयोग किया गया जाना चाहिए ताकि शुद्ध वर्तमान मूल्य शून्य हो जाए और तीसरी स्थिति में चूॅंकि शुद्ध वर्तमान मूल्य - है, तो पहले प्रयुक्त दर सें कम दर का प्रयोग करना चाहिए, ताकि शुद्ध वर्तमान मूल्य शून्य के बराबर हो जाए।

वास्तविकता में प्रत्याय दर की गणना वर्तमान मूल्य टेबलों से की जाती है। आंतरिक प्रत्याय दर की गणना की विधि रोकड अन्तर्वाहों के तरीके पर निर्भर करती है, यानि क्या रोकड अन्तर्वाह कार्य की पूर्ण जिंदगी में एक सार है या असामान्य।

उदाहरण 11.7 :— एक सार रोकड अर्न्वाह का मामला (Case of Uniform Cash Inflows) :— एक कार्य की लागत 66000 रूपये हैं और 5 वर्षों तौर पर उस से 22500 रूपये रोकड अर्न्वाह होने की आशा है। आंतरिक प्रत्याय दर की गणना कीजिए।

उत्तर :— उदाहरण 11.7 में रोकड अन्तर्वाह कार्य की सम्पूर्ण जिंदगी में एक समान है। इस मामले में आंतरिक प्रत्याय दर की गणना के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जाते हैं :—

1. पुर्नभुगतान अवधि को निश्चित करना

$$PB = \frac{I}{CF}$$

जहॉं I – प्राथमिक विनियोग है

और CF = वार्षिक रोकड अन्तर्वाह उदारहण 6 में पुर्नभुगतान अवधि

$$\frac{66000}{22500} = 2.933$$

2. एक रूपए की वार्षिकी के वर्तमान मूल्य की वर्ष कतार में पुर्नभुगतान अवधि के बिल्कुल नजदीक बट्टा तथ्यों को देखें। उचित वर्ष कार्य की जिंदगी के वर्ष होंगें। उदाहरण 11.7 में कार्य की जिंदगी 5 वर्ष है। इस लिए वार्षिकी टेबल में पांचवे वर्ष के वर्तमान मूल्य के नीचे 2.933 के करीब बट्टा दर को खोजना होगा। पांचवे वर्ष मे 2.933 के करीब बट्टा दर 2. 991 और 2.926 है। एक तथ्य पुनर्भुगतान से अधिक है व दूसरा कम 1. 2991 और 2.926 के सामान्य दर 20 प्रतिशत व 21 प्रतिशत है। इसका अर्थ है कि आंतरिक प्रत्याय दर 20 प्रतिशत व 21 प्रतिशत के बीच है।

निम्नलिखित विधि को प्रयोग कर आंतरिक प्रत्याय दर को प्दजमतचवसंजम करों

$$IRR = RI + \frac{DF1-PB}{DF1-DFh}$$ (उच्च दर –कर दर)

जहॉं RI दोनों बट्टा दरों में से कम दर है।

$DF1$ कम ब्याज दर पर बट्टा तथ्य है।

DFh उच्च ब्याज दर पर बट्टा तथ्य है।

PB पुर्नभुगतान अवधि

उदाहरण 11.7 में दी गई सूचना को प्रयोग करते हैं।

आंतरिक प्रत्याय दर $= 20 + \frac{2.991 - 2.933}{2.991 - 2.926} = 20.89\%$

उदाहरण 11.8 (असामान्य रोकड अन्तर्वाहों का मामला)

कम्पनी एक मशीन जिस पर 50000 की लागत आनी है को खरीदने की सोच रही है। मशीन को खरीदने से 1 से 5 वर्षों तक 15000, 20000, 20000, 25000 और 15000 रूपये क्रमशः रोकड अन्तर्वाहों में बढोत्तरी होने की आशा है। आंतरिक प्रत्याय दर की गणना कीजिए।

उत्तर :– उदाहरण में 11.8 रोकड अन्तर्वाह कार्य की पूर्ण जिंदगी पर सामान्य तौर पर विभाजित नहीं है। ऐसी स्थिति में एक मनगंढत वार्षिकी को शुरूआत केन्द्र रख आंतरिक प्रत्याय दर की गणना की जाती है। आंतरिक प्रत्याय दर की गणना करने के लिए निम्नलिखित तरीका अपनाया जाता है।

1. कार्य के सम्पूर्ण रोकड अन्तर्वाहों की गणना करें।
2. मन गढत वार्षिकी पाने के लिए रोकड अन्तर्वाहों के औसत की गणना कीजिए।
3. कदम दो में पाई गई मनगंढत वार्षिकी से प्राथमिक विनियोग को तकसीम कर मनगंढत पुनर्भुगतान अवधि की गणना करो।
4. वार्षिकी टेबल के वर्तमान मूल्य के बट्टा दर की कार्य के जिंदगी के कुल वर्षों के सामने गणना करें। बट्टा दर से मिलते ब्याज दर को खोजें। यह दर इस मान्यता दर कि रोकड अर्न्वाह कार्य की सम्पूर्ण जिन्दगी पर अच्छी तरह से विभाजित है आंतरिक प्रत्याय दर का त्वनही अनुमान होगा।
5. रोकड अन्तर्वाहों के तरीके पर निर्भर करते हुए चौथे कदम में पाए गए आंतरिक प्रत्याय दर को उचित तौर पर समायोजित (Adjust) करें। अगर कार्य के प्राथमिक वर्षों में रोकड अन्तर्वाह अधिक होते हैं तो प्रत्याय दर कुछ प्रतिशत तथ्यों से अधिक होता है। इससे उल्ट अगर कार्य के प्राथमिक वर्षों में रोकड अन्वर्ताह तुलनात्मक तौर पर कम है तो प्रत्याय दर को निम्न ओर समायोजित किया जाता है।
6. पांचवे कदम में पाये मनगंढत आंतरिक प्रत्याय दर को प्रयोग करते हुए रोकड अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य को ज्ञात करों और शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना करें।
7. अगर छट्टे कदम में पाया गया शुद्ध वर्तमान मूल्य शून्य के बराबर है, तो जिस बट्टा दर का प्रयोग हुआ है वह वास्तविक आंतरिक प्रत्याय दर ही है। दूसरी तरफ अगर शुद्ध वर्तमान मूल्य + है तो अधिक दर का प्रयोग करें और अगर शुद्ध वर्तमान मूल्य - है तो कम दर का प्रयोग करें। एक बार दो लगातार बट्टा दरों को अगर ढूंढ लिया जाए जो शुद्ध वर्तमान मूल्य को क्रमशः + और - करते हैं तो दोनों दरों मे से शुद्ध वर्तमान मूल्य को शून्य के करीब लाएगा तब 10 प्रतिशत तक की करीबी आंतरिक प्रत्याय दर होगा।

8. निम्नलिखित विधि को प्रयोग कर के Interpolations के तरीके से वास्तविक आंतरिक प्रत्याय दर की गणना करनी चाहिए।

$$IRR = \frac{R1 + Pv1 - 1}{PV1 - PVh} \times (Rh - R1)$$

जहॉं $R1$ प्रयोग किया हुआ निम्न बट्टा दर

Rh प्रयुक्त उच्च बट्टा दर

$PV1$ निम्न बट्टा दर पर वर्तमान मूल्य

PVh उच्च बट्टा दर पर वर्तमान मूल्य

I प्राथमिक विनियोग

उदाहरण 11.9 में रोकड अन्तर्वाहों का जोड 95000 रूपये जिसे अगर (कार्य की जिंदगी) से विभाजित किया जाए तो वह मनगंढत वार्षिकी 19000 देगा। प्राथमिक लागत 50000 रू0 को अगर 19000 रू0 से विभाजित किया जए तो हमें मनगढंत (False) औसत पुनर्भुगतान अवधि जो कि 2.632 वर्ष है मिलेगी। वार्षिकी टेबल के वर्तमान मूल्य में 5 वर्षों के लिए 2.632 के निकटतम बट्टा दर 2.632 26 प्रतिशत के दर पर। इसका अर्थ है कि आंतरिक प्रत्याय दर 26 प्रतिशत के निकट होगा। क्योंकि रोकड अन्तर्वाह उचित तौर पर (Fairly) विभाजित हुए है। 26 प्रतिशत की दर से वर्तमान मूल्य के तथ्यों को प्रयोग कर **तालिका** 11.5 में 1.5 वर्षों के वर्तमान मूल्यों की गणना की गई है।

तालिका 11.5

वर्ष (Year)	रोकड अन्तर्वाह (Rs) (Cash Inflows)	वर्तमान मूल्य तथ्य (PV Factor)	वर्तमान मूल्य (Rs) Present Valuue (2x3)
1	2	3	4
1	15000	0.794	11910
2	20000	0.630	12600
3	20000	0.500	10000
4	25000	0.397	9925
5	15000	0.315	4725
कुल	95000		49160

26 प्रतिशत के दर से वर्तमान मूल्य 49610 रूपये प्राथमिक विनियोग 50000 रू0 से थोडा कम है। तुलनात्मक तौर पर एक निम्न बट्टा दर का प्रयोग करना चाहिए, ताकि वर्तमान मूल्य को प्राथमिक विनियोग के करीब लाया जा सके । 24 प्रतिशत बट्टा दर का प्रयोग कर जो कि 26 प्रतिशत से कम है, **तालिका** 11.6 में गणना दर्शाई गई है।

तालिका 11.6

वर्ष (Year)	रोकड अन्तर्वाह (Rs) (Cash Inflows)	वर्तमान मूल्य तथ्य (PV Factor)	वर्तमान मूल्य (Rs) Present Valuue (2x3)
1	2	3	4
1	15000	0.806	12090
2	20000	0.650	13000

3	20000	0.524	10480
4	25000	0.423	10575
5	15000	0.341	5115
	95000		51260

24 प्रतिशत के दर पर रोकड अन्तर्वाहों का वर्तमान मूल्य 51260 प्राथमिक विनियोग से अधिक है। आपने पास पास दो बट्टा दर 24 प्रतिशत और 26 प्रतिशत की गणना की है, एक दर प्राथमिक विनियोग से अधिक मूल्य दर्शाता है और दूसरा कम। इसलिए आंतरिक प्रत्याय दर 24 प्रतिशत और 26 प्रतिशत के बीच है । Interpolation की विधि से आंतरिक प्रत्याय दर की गणना की जा सकती है।

$$IRR = 24 + \frac{51260 - 50000}{51260 - 49960} \times (26 - 24)$$

$$= 24 + \frac{1260}{2100} \times 2 = 25.2\%$$

आंतरिक प्रत्याय दर के लाभ (Advantages of Internal Rate of Return)

दूसरी DCF (Discounted Cash Flow) तकनीकों की तरह यह विधि भी पूंजी कार्यो के मूल्यांकन के लिए ठीक विधि है । इसके निम्नलिखिल लाभ है।

1. यह पैसे के सामाजिक मूल्यों को पहचानती है । क्योकि विभिन्न समय पर भविष्य में होने वाले रोकड़ अन्तर्वाहों को इस विधि में वर्तमान मूल्य पर बटिटत किया जाता है ।

2. यह कार्य की सम्पूर्ण जिंदगी पर विभाजित रोंकड़ अन्तर्वाहों को ध्यान में लेती है ।

3. यह वर्तमान मूल्य विधि से पूंजी बजटन का बेहतर तरीका है, क्योकि यह विनियोग पर वापसी का अनुमान भी देता है । उदाहारण के तौर पर कि एक प्रस्ताव जिसका आंतरिक प्रत्याय दर 20 है पूंजी की लागत 10 है पर निर्णय लेना आसान है जबकि यह बात कर निर्णय लेना कठिन है कि कार्य का शुद्व वतर्मान मूल्य 20000 रू है।

आंतरिक प्रत्याय दर की हानियां (Disadvantages of Internal Rate of Return)

हालांकि आंतरिक प्रत्याय दर विधि मौलिक रूप से मजबूत तरीका है, पर यह कई हानियों से बाहा है।

1. इसमें गणना कठिन है । इसमें कोशिश व गलती विधि को प्रयोग किया जाता है और आंतरिक प्रत्याय दर विधि में समय बहुत लगता है।

2. इस विधि से कई आंतरिक प्रत्याय दर की गणनाएं की जाती है जो कि समझ से बाहर है । एक से ज्यादा आंतरिक प्रत्याय दर का अर्थ है कि एक से अधिक बटटा दर भी रोकड अन्तर्वाहो और बाहर्वाहे के वर्तमान मूल्य में समता ला सकता है यह स्थिति उन मामलों में उत्पन होती है जब कार्य की जिदगी निशिचत नही होती ।

3. यह विधि इस बात को मानती है कि आय कार्य की बची जिदगी के लिए आंतरिक प्रत्याय दर पर दोबारा से विनियोगित कर दी जाती है । यह मान्यता उस स्थिति में न्यायोचित नही है जब फर्म द्वारा अर्जित औसत प्रत्याय दर आंतरिक प्रत्याय दर से भिन्न है ।

4. परस्पर न मिलने वाले कार्यो में से यह विधि उस कार्य का चयन करती हे जिसका आंतरिक प्रत्याय दर अधिकतम है वास्तविकता में यह बात मूल्य अधिकतम उदेशय से मेंल नही खाती फर्म के मूल्य का सीधा सम्बन्ध शुद्व वर्तमान मूल्य से है इसलिए जब कार्य के आकार भिन्न है और पूंजी राशनिग की कोई कठिनाई नहीं है तो शुद्व वर्तमान मूल्य विधि बेहतर तरीका है।

11.5 शुद्ध वर्तमान मूल्य व आंतरिक प्रत्याय दर की तुलना

शुद्व वर्तमान मूल्य और आंतरिक प्रत्याय दर विधि दोनों ही पूंजी बजटन की समय समायोजित तकनीकें है। किसी स्थिति में वह एक जैसा स्वीकार्य अस्वीकार्य निर्णय भी दे सकती है और अन्य कई स्थितियां में यह विपरीत निर्णय भी देती है । इसलिए दोनों विधियां में तुलना के लिए हमें इन बातों पर चर्चा करनी होगी दोनो विधियों की समानताएं, उनमें भिन्नताएं और भिन्नताओं के कारण।

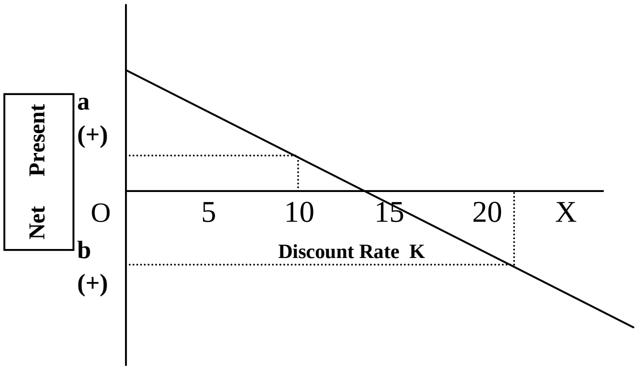

चित्रः 11.1

11.6 शुद्ध वर्तमान मूल्य व आंतरिक प्रत्याय दर में समानताएँ व भिन्नताएं

शुद्व वर्तमान मूल्य और आंतरिक प्रत्याय दर विधियों दोनो ही पैसे के सामाजिक मूल्य को पहचानती है । दोनो कार्य की सम्पूर्ण जिंदगी पर बिखरे रोकड़ बहाबों को ध्यान में लेती है । परम्परागत आजाद कार्यों में दोनो विधियां समान स्वीकार्य अस्वीकार्य निर्णय देती है परम्परागत कार्य वह है जिसमें प्राथमिक विनियोग के बाद रोकड़ अन्तर्वाह होते है और रोकड़ बाहर्वाह प्राथमिक विनियोग के बाद वांछनीय है । आजाद कार्य वह कार्य है जिनको स्वीकारना या अस्वीकारना दूसरो को स्वीकार्यता/अस्वीकार्यता पर निर्भर नही करता । परम्परागत और आजाद कार्ये में दोनो विधियों के समान निर्णय का राज समझ में आ सकता है।

शुद्व वर्तमान मूल्य विधि में वह कार्य जिनका NPV + है (NPV>0) उन्हें स्वीकार किया जाएगा ओर IRR विधि के अनुसार वह कार्य जिनका आंतरिक प्रत्याय दर बटटा दर (पूंजी की लागत) से अधिक है उसको स्वीकार किया जाएगा जब NPV_2 0 या IRR_2 पूजी की लागत होगा तो कार्य को अस्वीकार कर दिया जाएगा। वह कार्य जिनका NPV + है उनका आंतरिक प्रत्याय दर भी पूंजी की लागत से अधिक होगा। वह कार्य जिनका NPV (-) है उनका आंतरिक प्रत्याय दर भी पूंजी की लागत से कम होगा।

चित्र 11.1 तीन परिथितियां दर्शाता है जब NPV (i) + है (ii) शून्य और (iii) (-) जब कि (i) आंतरिक प्रत्याय दर पूंजी दर की लागत से अधिक है (ii) आंतरिक प्रत्याय दर = पूंजी की लागत (iii) आंतरिक प्रत्याय दर पूंजी की लागत से कम है ।

यह चित्र बटटा दर k व कार्य के NPV में सम्बन्ध दर्शाता है जब बटटा दर शून्य है तब NPV रोकड अन्तर्वाहो और बाहर्वाहो के जोंड का शेष है। इस केन्द्र पर यह अधिकतम है। जैसे जैसे बटटा दर k बढता है NPV गिरता है । 15 प्रतिशत बटटा दर शुद्व वर्तमान मूल्य और परिभाषा के अनुसार यह कार्य का आंतरिक प्रत्याय दर है । बटटा दर 15 पर NPV (-) है । पूंजी की लागत को अगर 10 प्रतिशत मान लिया जाए, कार्य को NPV विधि से व IRR विधि दोनो से ही स्वीकार कर लिया जाएगा (क्योकि NPV(+) है और 15 प्रतिशत पूंजी की लागत से अधिक है) अगर पूंजी की लागत को 20% मान लिया जाए तो, यह दोनों ही विधियों से अस्वीकार्य है, क्योंकि NPV(-) है और IRR पूंजी की लागत से कम है। इसलिए परम्परागत व आजाद कार्यो के मामले में दोनों विधियां समान स्वीकार्य/अस्वीकार्य निर्णय देती है।

शुद्व वर्तमान मूल्य और आंतरिक प्रत्याय दर विधियांः भिन्नताएं (NPV and IRR Methods: Difference)

कई परिस्थितियों में NPV व IRR विधियां विपरीत निर्णय देती है, जबकि NPV विधि एक प्रस्ताव को स्वीकार करती है, जबकि IRR विधि दूसरे कार्य को प्राथमिकता देती है। यह परस्पर न मेल खाने वाले कार्यो (Mutually Exclusive Projects) में हो सकता है। यह कार्य वह कार्य है, जब एक कार्य की स्वीकार्यता दूसरे को अस्वीकार कर देती है। यह न मेल खाना उन कार्यो में भी हो सकता है जब विकल्प कार्यो का भी काम समान हो सकता है। वित्तीय न मेल खाना स्रोत से उत्पन्न हो सकती है, जबकि फर्म को जबरन उस कार्य का चयन करना पड़ता है, जो सबसे अधिक लाभदायक है न कि उन सभी कार्यो जिनका IRR पूंजी की लागत से अधिक है।

निम्नलिखित कारणों से NPV और IRR विधि द्वारा पाए गए नतीजे भिन्न हैः–

1. प्राथमिक विनियोग में भिन्नता
2. रोकड़ बहावों के समय में भिन्नता
3. कार्यो की जिंदगियों में भिन्नता

1. प्राथमिक विनियोग में भिन्नता (Difference in initial Investment)

वह स्थिति जहां परस्पर न मेल खाने वाले कार्यो में प्राथमिक विनियोग भिन्न है, वहां NPV और IRR विधियों से उत्तर भिन्न आएगा। उदाहरण 5.8 देखिए।

उदारहण 11.10

अ और ब परस्पर न मेल खाने वाले कार्य हैं। दोनों की लागत भिन्न है। विस्तार से

	कार्य अ	कार्य ब	ब–अ
Cash outlay	-6000	-10,000	-4000
Cash inflows			
At the end of	7500	12000	4500

first year			
IRR	25%	20%	12.5%
Cash of capital k	10%		
NPV	818.18	909.09	90.91

ऊपर दिए गए आंकड़े यह बताते है, कि NPV और IRR विधि कार्यो को विभिन्न स्थान देती हैं। IRR विधि कार्य अ को प्राथमिकता देती है चूंकि इसका IRR (25%) कार्य ब के IRR (20%) से अधिक है। NPV कार्य ब को प्राथमिकता देती है, क्योंकि कार्य ब का NPV 909.09 कार्य अ के NPV 818.18 से अधिक है। निर्णय लेने वाला इस स्थिति में कठिनाई में पड़ जाएगा कि किस कार्य का चयन करें? अ या ब

यह कठिनाई बढते रोकड बहावों के IRR की गणना से सुलझाई जा सकती है। अगर बढ़ते रोकड़ बहावों का IRR पूंजी की लागत से अधिक होगा तो कार्य जिस पर अधिक लागत वांछित है वह ज्यादा लाभदायक होगा और दूसरी तरफ अगर बढ़ने रोकड़ बहावों का IRR पूंजी की लागत से कम है तो कार्य जिस पर कम लागत आनी है उसे प्राथमिकता दी जाएगी। उदाहरण 8 में बढ़ते रोकड़ बहावों का IRR 12.5% है जो कि पूंजी की लागत 10% से अधिक है। इसलिए कार्य ब को कार्य अ पर प्राथमिकता दी जाएगी।

2. **रोकड़ अन्तर्वाहों के समय में भिन्नता** (Difference in timing of Cash inflows)

वह स्थिति जहां परस्पर न मेल खाने वाले कार्यो का रोकड़ अन्तर्वाहों का तरीका भिन्न है चाहे उनका प्राथमिक विनियोग समान है तो भी NPV और IRR विधि से विभिन्न नतीजे प्राप्त होंगे।

उदाहरण 11.11 देखिए।

वर्ष	कार्य अ	कार्य ब
0	—70,000रू0	—70,000रू0
1	4000	10,000
2	30000	20,000
3	20,000	30,000
4	10,000	50,000
IRR	20% approximately	16% approximately
NPV at 8%	15890	16970

हम देख रहे है कि IRR विधि के अनुसार कार्य अ श्रेष्ठ है, जबकि NPV विधि के अनुसार कार्य ब। कौन से कार्य का चयन किया जाए। अ या ब। ऐसी स्थिति में जहां प्राथमिक विनियोग समान है और रोकड़ अन्तर्वाहों के तरीके में भिन्नता तो NPV विधि को प्राथमिकता देनी चाहिए।

ऊपर दी गई स्थिति कार्य ब को कार्य अ पर प्राथमिकता दी जाएगी।

3. कार्यो की जिदगियों में भिन्नता (Difference in times of the projects)

वह स्थितियां जहां परस्पर न मेल खाने वाले कार्यो की जिंदगिया भिन्न है वहां NPV और IRR विधि से भिन्न नतीजे आएंगे। यह उदाहरण 11.12 में दर्शाया गया है।

उदाहरण 5.10

कम्पनी दो कार्यो अ और ब की ओर ध्यान दे रही है, जिनकी कार्यकारी जिंदगिया भिन्न हैं। अ की कार्यकारी जिंदगी ए वर्ष है, जबकि ब की प्रयोगात्मक जिंदगी 5 वर्ष है। दोनो कार्यो की प्राथमिक लागत 10,000 रू0 है। कार्य अ में वर्ष के अन्त में 12,000 रू0 रोकड़ अन्तर्वाह होंगे पांचवे वर्ष के अन्त में कार्य ब से 20,100 रूपये का रोकड़ अन्तर्वाह होगा। पूंजी की लागत 10% मानिए।

दोनों कार्यो का IRR और NPV इस प्रकार होगा।

	IRR	NPV
कार्य अ	20%	Rs. 908
कार्य ब	15%	Rs. 2482

साफ तौर पर NPV और IRR विधि द्वारा दिए गए स्थान भिन्न है। IRR विधि कार्य अ को श्रेष्ठ मानती है और NPV विधि कार्य ब को। इस स्थिति से उबरने के लिए समान समय में तुलना करनी चाहिए। तुलना दोनों की जिदगियों के Multiples तक बढ़ सकती है। इस लिए अगर एक कार्य की जिंदगी 2 वर्ष और दूसरे की 5 वर्ष है, तो तुलना 10 वर्ष की अवधि तक होनी चाहिए, दोनों के लिए प्रतिस्थापना करते हुए।

समाविष्ट उदाहरण

उदाहरण 1

एक लिमिटेड कम्पनी एक ऐसे कार्य में विनियोग के बारे में सोच रही है, जिसमें प्राथमिक लागत 3,00,000 रू0 है। कार्य की जिदंगी 5 वर्ष है और शेष मूल्य शून्य है। मूल्यह्रास के बाद व कर से पहले वार्षिक आय की भविष्यवाणी इस प्रकार है –

वर्ष	रू0
1	1,50,000
2	1,50,000
3	1,20,000
4	1,20,000
5	60,000

मूल्यह्रास का सीधी पंक्ति के आधार (Straight line basis) और कर का शुद्ध आय के 50% के ऊपर प्रावधान कीजिए।

कार्य का निम्न विधियों के अनुसार मूल्यांकन कीजिए।

1. पुनर्भुगतान विधि (Pay back method)
2. औसत विनियोग पर प्रत्यांय दर विधि (Rate of return on average investment method)
3. वास्तभविक विनियोग पर प्रत्यायय दर विधि (Rate of return and original investment method)
4. पूंजी की लागत को 10% लेकर शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि (Net present value method taking cost of capital as 10%)
5. लाभांश सूचकांक विधि (Profitability IndeÛ method)
6. आंतरिक प्रत्याय दर (Internal rate of return)

उत्त.र (Solution)

1. पुनर्भुगतान विधि (Pay back Method)

कर के बाद शुद्ध रोकड़ अन्तर्वाहों की स्टेटमेंट

वर्ष (Year)	मूल्य ह्रास के बाद लाभ (Profits after Depreciation)	मूल्यह्रास (Depreciation)	कर (Taxes)	कर के बाद लाभ (Profit after tax) (Col. 2. – Col. 4)	कर के बाद (Cash flow after tax) (Col. 5 + Col. 3)
1	2	3	4	5	6
1	1,50,000	60,000	75,000	75,000	1,35,000
2	1,50,000	60,000	75,000	75,000	1,35,000
3	1,20,000	60,000	60,000	60,000	1,20,000
4	1,20,000	60,000	60,000	60,000	1,20,000
5	60,000	60,000	30,000	30,000	90,000
				3,00,000	6,00,000

$$\text{मूल्यह्रास} = \frac{\text{मशीन की लागत – शेष मूल्य}}{\text{वर्षों में कार्य की जिंदगी}}$$

$$= \frac{3,00,000 - \text{शून्य}}{5}$$

$$= 60,000 \text{ रु.}$$

कार्य की पुनर्भुगतान अवधि की गणना करने के लिए हमें यह ढूंढना पड़ेगा कि 3,00,000 रु. की प्राथमिक लागत कितने वर्षों में वसूल होगी। इस के लिए निम्नलिखित जुड़े हुए (cumulative) रोकड़ बहावों का टेबल बनाया गया है।

वर्ष	CFAT	Cumulative CFAT
1	1,35,000	1,35,000
2	1,35,000	2,70,000
3	1,20,000	3,90,000
4	1,20,000	5,10,000
5	90,000	6,00,000

ऊपर दी गई टेबल से यह साफ है, कि विनियोग की वसूली अवधि तीसरे व चौथे वर्ष के बीच में है। इसलिए पुनर्भुगतान अवधि 2 वर्ष और तीसरे वर्ष का एक अंश है। अंश मूल्य को निश्चित करने के लिए हमें तीसरे वर्ष में वसूली के फण्डों को तीसरे वर्ष के रोकड अन्तर्वाहों से विभाजित करना होगा। इस तरह पुनर्भुगतान अवधि यह होगी।

30,000
पुनर्भुगतान अवधि = 2 वर्ष + -------------------- वर्ष = 2.25 वर्ष
1,20,000

(b) औसत विनियोग पर प्रत्याय दर (Rate of Return on Average Investment)

कर के बाद औसत लगभग
(Average profit after tax)
औसत विनियोग पर प्रत्याय दर = --------------------------------- x 100
औसत विनियोग
(Average investment)

इकाई में हमने चर्चा की थी, कि कर के बाद औसत लाभ उस मूल्य के बराबर होते हैं जो हमें कार्य के कुल लाभों को कार्य की जिंदगी से विभाजित करने के बाद मिलता है।

3,00,000 रु.
कर के बाद औसत लाभ = -------------------- = 60,000 रु.
5

I - S
और औसत विनियोग = ------------------ + S
2

जहॉ I = प्राथमिक विनियोग (Initial investment)
S = शेष मूल्य (Salvage value)

3,00,000 रु. – शून्य
= -------------------- + 0 = 1,50,000 रु.
2

औसत विनियोग पर प्रत्याय दर = 60000 x 100 = 40% 1,50,000

C. वास्तविक विनियोग पर प्रत्यायय पर (Rate of ruturn on original investment) वास्तपविक विनियोग पर प्रत्यायि दर औसत लाभों को वास्त विक विनियोग से विभाजित कर और 100 से गुणा कर हासिल किया जाता है। इस लिए वर्तमान मामले में

60,000 रु.
वास्तविक विनियोग पर प्रत्याय दर = -------------------- X 100 = 20%
3,00,000 रु.

D. शुद्ध वर्तमान मूल्य (Net present value)

वर्ष	CFAT	बट्टा तथ्य 10% की दर पर	वर्तमान मूल्य

		(Discount factor @ 10%)	(Present Value) रु.
1	1,35,000	0.909	122715
2	1,35,000	0.826	111510
3	1,20,000	0.751	90120
4	1,20,000	0.683	81960
5	90,000	0.621	55890
	रोकड़ अर्न्तवाहों का वर्तमान मूल्य प्राथमिक विनियोग		462195 रू0 3,00,000 रू0
	शुद्ध वर्तमान मूल्य		162195

(e) लाभांश सूचकांक (Profitability Index)

$$= \frac{\text{रोकड़ अन्तर्वाहों का कुल वर्तमान मूल्य}}{\text{रोकड़ बाहर्वाहों का कुल वर्तमान मूल्य}}$$

$$= \frac{462195}{3,00,000} = 1.541$$

आंतरिक प्रत्याय दर (Internal Rate of Return)

वर्तमान स्थिति में रोकड़ बहाब समान नहीं है, उचित प्रत्याय दर ढूंढने के लिए वर्तमान मूल्य खोजना आवश्यक है।

$$F = \frac{I}{C}$$

जहॉ F = Factor to be located

I = Initial Investment = Rs. 30,000

C = Average annual cash flow

$$C = \frac{6,00,000}{5} = \text{Rs. } 1,20,000$$

$$F = \frac{\text{Rs. } 3,00,000}{\text{Rs. } 1,20,000} = 2.5$$

वार्षिकी तालिका का वर्तमान मूल्य यह दर्शाता है कि इस तथ्य का 5 वर्ष के कोलम में प्रत्याय दर 28% है। इस मामले में चूंकि रोकड़ अन्तर्वाहों का अधिक भाग प्राथमिक वर्षों में अर्जित किया गया है, तो हमें 28% से अधिक दर पर

भुगतान करना पड़ेगा। इसलिए हम 30% पर रोकड़ अन्त्र्वाहों के वर्तमान मूल्य को ढूंढेंगे।

30% पर वर्तमान मूल्य

वर्ष (Year)	रोकड़ अन्तर्वाह (Cash in flows)	बट्टा तथ्य (Discount factor)	वर्तमान मूल्य (Present Value) रू0
1	1,35,000	0.769	103815
2	1,35,000	0.592	79920
3	1,20,000	0.455	54600
4	1,20,000	0.350	42000
5	90,000	0.269	24210
	कुल वर्तमान मूल्य प्राथमिक विनियोग		304545 3,00,000
	शुद्ध वर्तमान मूल्य		4545

30% पर वर्तमान मूल्य 4545 रू0 से अधिक है। आंतरिक प्रत्याय दर 30% से अधिक होगा। हमें 30% से अधिक दर प्रयोग करना पड़ेगा, ताकि वर्तमान मूल्य प्राथमिक विनियोग के बराबर हो जाए। चलिए हम 31% पर रोकड़ अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य खोजें।

31% पर वर्तमान मूल्य

वर्ष (Year)	रोकड़ अन्तर्वाह (Cash in flows)	बट्टा तथ्य (Discount factor)	वर्तमान मूल्य (Present Value) रू0
1	1,35,000	0.763	103005
2	1,35,000	0.583	78705
3	1,20,000	0.445	53400
4	1,20,000	0.340	40800
5	90,000	0.259	23310
	कुल वर्तमान मूल्य प्राथमिक विनियोग		299220 3,00,000
	शुद्ध वर्तमान मूल्य		780

30 % पर रोकड़ अन्तर्वाहों की शुद्ध वर्तमान मूल्य Negative है। इसलिए आंतरिक प्रत्याय दर 30% व 31% के बीच में स्थित है। हम आंतरिक प्रत्याय दर निम्न् विधि में से Interpolate कर सकते हैं:–

$$\text{जहॉं} \quad IRR = \frac{LR + PV \text{ at } LR - I}{PV \text{ at } LR - PV \text{ at } HR} \times (HR - LR)$$

IRR = Internal rate of return

LR = Lower rate

HR = Higher rate

$$IRR = 30 + \frac{304545 - 3,00,000}{304545 - 299220} \times (31 - 30) = 30.85\%$$

निचोड़ (Conclusion) – पूंजी बजटन के विभिन्नं तरीकों द्वारा कार्य के मूल्यांकन से पता लगता है, कि कार्य स्वीकार्य है। इसकी पुनर्भुगतान अवधि (2.25 वर्ष) है, जो कि अधिक नहीं है। इसकी औसत विनियागे पर प्रत्या्य (90%) और वास्तविक विनियोग पर प्रत्या्य (20%) है, जो कि काफी ऊंचा है। इसका वर्तमान मूल्य Positive है और लाभांश सूचकांक एक से अधिक है। इसका आंतरिक प्रत्याय दर 30.85% फर्म की पूंजी की लागत 10% से अधिक है। इसीलिए कार्य स्वीकृति के लिए मजबूत है।

11.7 सारांश

पूंजी बजटन उन निर्णयों से सम्बन्धित हैं, जहॉ चालू विनियोगों के बारे में निर्णय किया जाता हैं, जिनसे प्राप्य लाभ भविष्य मे एक वर्ष से अधिक के लिए ऐच्छिक होते हैं। पूंजी बजटन निर्णय सबसे कठिन और महत्वपूर्ण निर्णय है, क्योंकि भविष्य के बारे में जानना बहुत कठिन है। इन निर्णयों का कम्पनी की भविष्य आय और वृद्धि पर भी बहुत प्रभाव होता है। सही पूंजी बजटन निर्णय कम्पनी को वृद्धि के रास्ते पर ले जा सकता है। दूसरी तरफ गलत पूंजी बजटन निर्णय का नतीजा कम्पनी की असफलता भी हो सकता है। इसलिए व्यवसाय की सफलता और असफलता, उसमे नियोजित पूंजी बजटन विधि की उत्तमता पर भी निर्भर करता है। पूंजी बजटन निर्णय में तीन कदम शामिल है, i) रोकड बहावों का अनुमान, ii) आवश्यक प्रत्याय दर का अनुमान (पूंजी की लागत), iii) चुनाव करने के लिए निर्णय के तरीकों को लागू करना। पूंजी बजटन तरीका मुख्यतः दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। (1) परम्परागत तकनीकें (2) रोकड बहावों के उपलेखन की बट्टा दर तकनीकें। दोनों तकनीकों में सैद्धांतिक अन्तर यह है कि परम्परागत पहुंच पैसे के सामायिक मूल्य को नजरदाज करती है, जबकि रोकड प्रवाहों के उपलेखन की बट्टा पर तकनीक कार्य की लागत और लाभों का मूल्यांकन करते हुए पैसे के सामयिक मूल्य का भी ध्यान रखती है।

प्रत्याय दर विधि (Rate of Return Method) उन सभी आयों को ध्यान में लेती है जो कि कार्य की पूर्ण जिंदगी मे होते है। इसे लेखा प्रत्याय दर (Accouinting rate of return (ARR) भी कहते हैं क्योंकि यह वित्तीय विवरणों द्वारा दी गई लेख सूचना का भी प्रयोग करता है। बट्टा रोकड बहाव विधि लाभों और लागतों के रोकड बहाव विचार के ऊपर आधारित है। इस विधि की मदद से किसी विनियोग कार्य के मूल्यांकन के लिए प्रथम कदम कर के बाद कार्य के रोकड बहावों का अनुमान लगाना होगा। यह विधियां कार्य की जिंदगी में आने वाले सभी लाभों और लागतों को ध्यान में रखते है। शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि पैसे के सामायिक मूल्य को ध्यान में रखती है। यह विधि इस तथ्य को पहचानती है कि आज अर्जित किए गए रूपये का मूल्य कल अर्जित किए जाने वाले रूपए से अधिक होगा। आंतरिक प्रत्याय दर विधि को उस बट्टा दर विधि की तरह

परिभाषित किया जा सकता है जो कि कार्य से सम्बन्धित सम्पूर्ण रोकड अन्तर्वाहों के जोड और रोकड बाहर्वाहों के जोड को आपस में मिलाता है । शुद्व वर्तमान मूल्य और आंतरिक प्रत्याय दर विधि दोनों ही पूंजी बजटन की समय समायोजित तकनीकें है। किसी स्थिति में वह एक जैसा स्वीकार्य अस्वीकार्य निर्णय भी दे सकती है और अन्य कई स्थितियां में यह विपरीत निर्णय भी देती है ।

11.8 शब्दावली

वर्तमान मूल्य **(Present Value)** : भावी रोकड़ अन्तर्वाहों का एक निश्चित कटौती दर पर वर्तमान मूल्य।

शुद्ध वर्तमान मूल्य (Net Present Value) : भावी रोकड़ अन्तर्वाहों का निश्चित कटौती पर ज्ञात वर्तमान मूल्य में से रोकड़ बहिर्वाह मूल्य को घटाने पर ज्ञात मूल्य।

लाभदायकता सूचकांक **(Profitability Index)** : भावी रोकड़ अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य का प्रारंभिक विनियोग से अनुपात ।

आन्तरिक प्रत्याय दर (Internal rate of Rrturn) : वह दर जो विनियोजन से प्राप्त होने वाले प्रत्याशित कुल अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य को विनियोजन की लागत तुल्य कर देती है।

मापी प्रणाली (MAPI Method) : प्रतिस्थापन को एक निश्चित अवधि तक टालने के बजाय वर्तमान में करने पर प्राप्त प्रत्याय दर ।

अंतिम मूल्य विधि (Terminal Value Method) : प्रत्येक वर्ष प्राप्त होने वाले रोकड़ अन्तर्वाहों का एक निश्चित दर पर परियोजना समाप्ति तक विनियोग से प्राप्त मूल्य ।

पूँजी समभाजन (Capital Rationing): सीमित पूँजी को विभिन्न प्रतियोगी विनियोगों में आवश्यकतानुसार वितरित करना जिससे अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके।

बजटन (Budgeting) : एक निश्चित भावी अवधि के लिए बनायी गयी योजना एवं नीतियों के औपचारिक लेख को बजटन कहते हैं।

आयगत व्यय (Revenue Expenditure) : ऐसे व्यय जो चालू सम्पत्तियों में एवं नियमित प्रक्रिया में विनियोजित हो, आयगत व्यय कहलाते हैं।

व्ययगत व्यय (Capital Expenditure) : स्थायी दीर्घकालीन सम्पत्तियों में विनियोग को पूंजीगत व्यय कहलाते हैं।

प्रतिस्थापन परियोजना (Replacement Project) : किसी पुरानी परियोजना के स्थान पर नयी/आधुनिक परियोजना लागू करना, जिससे नवीन तकनीक का प्रयोग हो सके।

स्वतंत्र परियोजना (Independent Project) : जो एक–दूसरे के प्रतिस्पर्धी नहीं हो, वह स्वतंत्र परियोजना होती है।

प्रतिस्पर्धी परियोजना (Competitive Project) : जो एक दूसरे के प्रतिस्पर्धी हो इस स्थिति को श्रेष्ठ को स्वीकार एवं शेष अन्य को अस्वीकार किया जाता है।

11.9 बोध प्रश्न

1. ....विनियोग और वित्त के लिए किया गया लम्बी अवधि का योजना निर्णय है।

2. .... तरीके को पूंजी बजटन तकनीक भी कहा जा सकता है।
3. परम्परागत पहुंच पैसे के .... मूल्य को नजरदाज करती है।
4. पुनर्भुगतान अवधि को हम उस अवधि के रूप मे परिभाषित कर सकते हैं जितने समय में विनियोग की .... हमें वापिस मिल जाती है।
5. .... विधि औसत वार्षिक लाभ और कुल विनियोग मे सम्बन्ध स्थापित करती है।
6. बट्टा रोकड बहाव या समय समायोजित तकनीकें पूंजी बजटन की .... विधियां मानी जाती है।
7. शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि इस तथ्य को पहचानती है कि आज अर्जित किए गए रूपये का मूल्य कल अर्जित किए जाने वाले .... से अधिक होगा।
8. आंतरिक प्रत्याय दर विधि वह विधि है जो कार्य के शुद्ध वर्तमान मूल्य को .... के बराबर दर्शाती है।

11.10 बोध प्रश्न के उत्तर

1. पूंजी बजटन, 2. विनियोग मूल्यांकन, 3. सामायिक, 4. वास्तविक लागत, 5. औसत प्रत्याय दर, 6. नवीन, 7. रूपए, 8. शून्य

11.11 स्वपरख प्रश्न

1. पूंजी बजटन से आप क्या समझते हैं?
2. पूंजी बजटन क्या है? पूंजी बजटन की विशेषतायें बताते हुए इसके उद्देश्यों का वर्णन कीजिये।
3. ''पूँजी बजटन पूँजी व्यय विकल्पों के उद्भव, मूल्यांकन, चयन तथा अनुवर्तन की प्रक्रिया है'', समझाइये।
4. रोकड़ प्रवाह क्या होता है? इसे कैसे ज्ञात किया जाता है?
5. पूंजी परियोजना के प्रकार बताते हुए पूंजी बजटन की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
6. पूंजी बजटन की सीमायें बताइये।
7. अदायगी अवधि विधि से आप क्या समझते हैं? इसकी गणना किस प्रकार की जाती है? इस विधि के लाभ एवं दोषों का वर्णन कीजिए।
8. औसत प्रत्याय दर द्वारा परियोजना का मूल्यांकन किस प्रकार किया जाता है? इस विधि की सीमायें बताइये।
9. पैसे के सामयिक मूल्य से आप क्या समझते हैं। कौन सा पूंजी बजटन तरीका इस विचार को ध्यान में लेता है? पूंजी बजटन तरीके के लिए यह किस प्रकार संभव है, कि वह पैसे के सामयिक मूल्य को ध्यान मे न लें और गलत पूंजी व्यय निर्णय लें?

   Explain what is mean by time value of money? Which capital budgeting decisions take into consideration this concept? How is it Possible for the capital budgeting systems that do not take into

consideration the value of money to lead to capital expenditure decision?

10. पूंजी बजटन से क्या तात्पर्य है? पूंजी विनियोग प्रस्तावों पर निर्णय लेने वाली विभिन्न विधियों की विशेषताएं, लाभ व हानियों पर चर्चा करें।

(What is meant by term Capital budgeting? (Discuss the characteristics and relative merits and demerits of the different methods of appraising capital investment proporals.

11. IRR और NPV विधि में अन्तर स्पष्ट कीजिए कि स्थितियों में (a) दोनों के सुझाव समान होते हैं (b) असामान्य होते हैं? जिन स्थितियों वह विपरीत नतीजे देते हैं, उनमें कौन सी विधि से कार्य का चयन करना चाहिए और क्यों?

(Contrast the IRR and NPV methods under what circumstances may they lead to (a) Comparable recommendations (b) conflicting recommendations? In circumstances in which they give contradictory results, which criteria should be used to select the project and why?)

12. विभिन्न आर्थिक जिंदगियों, आकारों और रोकड़ अन्तर्वाहों और बाहर्वाहों के तरीके मे भिन्नता के कारण कार्य को स्थान देने में आने वाली मुश्किलों की चर्चा करें।

(Discuss the problems of ranking projects with varying economic lives, sizes and patterns of cash outflows and inflows)

13. विभिन्न पूंजी कार्यों से सम्बन्धित सूचना नीचे दी गई है?

(The Particulars relating to two alternative capital projects are furnished below)

Life of the project	Project X 4 वर्ष (Rs. in lacs)	Project Y 6 वर्ष (Rs. in lacs)
Eastimated cash outflow estimated cash inflow	15	15
1 वर्ष	8	7
2 वर्ष	10	8
3 वर्ष	7	8
4 वर्ष	3	6
5 वर्ष	-	5
6 वर्ष	-	4

कार्य X और Y के आंतरिक प्रत्याय दर की गणन कीजिए और बताईए कि आप कौन से कार्य को स्वीकार करेंगें? (कार्यों X और Y का IRR क्रमशः 35.8% और 40.05%)

(Compute the internal rate of return of project X& Y and state which project you would recommend).

(IRR of project X and Y are 35.8% and 40.05% respectively)

14. पैसे के सामायिक मूल्य से आपका क्या तात्पर्य है। IRR और NPV विधियां किस प्रकार पैसे के सामायिक मूल्य को ध्यान में लेती हैं। विस्तार से समझाइए।

(What is meant by time value of money? Explain how IRR and NPV techniques take into consideration time value of money.

15. विनियोग कार्यों के मूल्यांकन में प्रयोग होने वाली समय समायोजित तकनीकों के लाभ व हानियां लिखिए।

(Explain the merits demerits of time adjusted methods of evaluations of investment projects.)

16. कम्पनी दो परस्पर न मेल खाने वाले कार्यों पर विचार कर रही है। कार्य 1 मशीन में 2,68,000 रू का प्राथमिक विनियोग होगा। यह आशा की जाती है, कि मशीन की प्रयोगात्मक जिंदगी 10 वर्ष होगी और अंत में शेष मूल्य 20,500 रू होगा। कार्य में रोकड़ देनदार और माल का अतिरिक्त विनियोग 40,000 रू होगा। कार्य के शुरू होने के 5 वर्षों के बाद 45,000 रूपए के औजार लगाने होंगे ताकि काम शुरू किया जा सके। अतिरिक्त मशीनरी की लागत कार्य की सम्पूर्ण जिंदगी में मूल्यह्रास के रूप में विभाजित हो जाएगी। कार्य से मूल्यह्रास से पहले 1,00,000 रूप्ए वार्षिक रोकड़ अन्तर्वाह होने की आशा है। Project K, जो कि ध्यान में विकल्प कार्य है, उस पर मशीनों में 3,00,000 रूपए का विनियोग है और कार्य की तरह उसमें भी चालू सम्पत्तियों में 40,000 रूप्ए अतरिक्त विनियोग करना पड़ेगा। 10 वर्ष की प्शीन की प्रयोगात्मक जिंदगी के बाद उसका शेष मूल्य 25000रू होगा। कार्य से मूल्यह्रास के पहले प्रथम 5 वर्षों में रोकड़ अन्तर्वाह 80,000 वार्षिक होंगे और उसके बाद अगले 5 वर्षों में 1,80,000 वर्ष के हिसाब से रोकड़ अन्तर्वाह होंगे।

(A company is considering two muntually excluisive projects project mill require an initial investment in machinery of Re. 2,68,000. It is anticipated than the machinery will have a useful life of ten years at the end of which its salvage will realize Rs. 20,500. The project will also require an additional investment in cash, Sundry debtors & stock of Rs. 40,000. At the and off five years from the commencement of the project, balancing equipment for Rs. 45000 has to be installed to make the unit workable. The cost of additional machinery will be written off to depreciation over the balance life of the project. The project is expected to yield a net cash flow (before depreciation) of Rs. 1,00,000 annually. Project B, which is the alternative one under consideration, requires an investment of Rs. 3,00,000 in machinery & as in Project K, investment in current assets of Rs. 40,000. The residual Salvage value of the machinery at the end of its useful life to ten years is expected to be Rs. 25,000. The annual cash inflow (before depreciations) form the project is worked at Rs. 80,000 p.a. for the first five years & Rs. 1,80,000. Per annum for the next five years.

न्युनतम प्रत्याय दर 16% रखा गया है। 1 से 10 वर्षों में क्रमशः 1 रूपए का 16% की दर से वर्तमान मूल्य .86, .74, .64, .55, .48, .41, .35, .30, .26 और .23 है।

A minimum rate of return objective has been calculated at 16% . The present value of Re. 1 at interest of 16% p.a. is .86, .74, .64, .55, .48, .41, .35, .30, .26 and .23 for years 1 to 10 respectively.

कौन सा कार्य बेहतर है? अगर यह मान लिया जाए कि पूंजी लाभ शून्य हैं, तो कार्य के की गणन कीजिए।

Which project is better? Assuming no capital gains taxes, calculate the Net Present value of each project. (Project R is better than K. NPV off K Rs. 157115& that of R is Rs. 206350).

17. The cost of a project is Rs.5,00,000. Possibilities of the annual cash received from the project is Rs.2,00,000. Calculate Pay back Period.

एक परियोजना की लागत 5,00,000 रू. है तथा उससे प्रतिवर्ष 2,00,000 रू. की आय होना संभावित है। अदायगी अवधि की गणना कीजिए।

11.12 सन्दर्भ पुस्तकें

1. ए के वशिष्ट, एन के साहनी, तमन्ना सहगल, वित्तीय प्रबन्ध, कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना ।
2. “Financial Management”- M.Y. Khan & P.K. Jain, Tata Mc Graw Hill.
3. ”वित्तीय बाजारों की कार्यप्रणाली”– प्रो0 वी0 पी0 अग्रवाल– साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
4. ”निगमीय लेखांकन”– सी0 एम0 जैन एवं ए0 के0 अग्रवाल– g Master g Educorp, मेरठ।
5. ”प्रबन्ध हेतु वित्तीय विश्लेषण”– डॉ0 ए0 के गर्ग– स्वाती प्रकाशन, बुलन्दशहर।
6. ”निगमीय लेखाविधि”– डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 राजकुमार– नवनीत प्रकाशन, नजीबाबाद।
7. उच्च वित्तीय प्रबन्ध : डा0 एस0पी0 गुप्ता व डा0 बी0 कुमार मिततल ।
8. Shrivastava R.M. : Financial Decision Making Text, Problems and Cases.
9. Arif Pasha : Management Accounting.
10. Arora M.N. : Cost and Management Accounting.
11. Ravi M. Kishore : Advance Management Accounting.
12. Prasanna Chandra : Financial Management.
13. Sahaf M.A. : Management Accounting : Principle's and Practices.

इकाई–12 लाभांश नीति व लाभांश के सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 लाभांश : अर्थ व परिभाषाएं
12.2.1 लाभांश के प्रकार
12.3 लाभांश नीति
12.3.1 लाभांश नीति के उद्देश्य
12.3.2 लाभांश नीति के प्रकार
12.3.2 लाभांश नीति को प्रभावित करने वाले तत्व
12.3.4 लाभांश नीति का विधिक पक्ष
12.4 लाभांश के सिद्धांत
12.4.1 वाल्टर्स मॉडल
12.4.2 गार्ड़न्स मॉडल
12.4.3 मोदिगिलानी और मिलर मॉडल
12.5 बोनस अंश के रूप में लाभांश
12.6 भारतीय कम्पनी अधिनियम में लाभांश वितरण सम्बन्धी प्रावधान
12.7 सारांश
12.8 शब्दावली
12.9 बोध प्रश्न
12.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
12.11 स्वपरख प्रश्न
12.12 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- लाभांश का वर्णन कर सकें ।
- लाभांश नीति प्रकारों की व्याख्या कर सकें ।
- लाभांश नीति को प्रभावित करने वाले तत्वों का वर्णन कर सकें ।
- लाभांश नीति एवं फर्म के मूल्य को कैसे प्रभावित करती है, की व्याख्या कर सकें ।
- भारतीय कम्पनी अधिनियम में इस संदर्भ में क्या प्रावधान है, का वर्णन कर सकें ।
- बोनस अंश के रूप में लाभांश वितरण के संदर्भ में क्या प्रावधान है, की व्याख्या कर सकें ।

12.1 प्रस्तावना

जैसा कि हम जानते हैं कि व्यवसाय का प्रमुख उद्देश्य लाभ अर्जित करना होता है। एकाकी व्यापार में लाभ पर पूर्ण अधिकार एकाकी स्वामी का होता है तथा साझेदारी व्यापार में लाभ आपस में तय किये गये अनुपात में विभाजित कर लिया जाता है। कम्पनियों में पूंजी अंशधारियों द्वारा विनियोजित होती है, अतः अंशधारियों की इच्छा रहती है कि विनियोजित पूंजी पर कम्पनी को लाभ होने पर पर्याप्त मात्रा में लाभांश मिले। इस प्रकार कम्पनी को प्राप्त लाभांश में से कितना लाभांश अंशधारियों को उचित नीति के आधार पर वितरित किया जाये जिससे अंशधारियों को भी पर्याप्त लाभांश मिल सके, भावी आवश्यकताओं के मध्य नजर कम्पनी के पास भी पुर्नविनियोजन के लिए पर्याप्त कोष उपलब्ध हो सके एवं बाजार में फर्म का मूल्य भी स्थिर हो, इस हेतु संतुलित लाभांश नीतियां अपनाया जाना आवश्यक है।

व्यवसायिक संस्थान द्वारा अर्जित लाभों का प्रयोग एक महत्वपूर्ण निर्णय है। व्यवसाय द्वारा अर्जित लाभ या तो मालिकों में बांट दिए जाते हैं या व्यवसाय में दोबारा लगा दिए जाते हैं । इसलिए जरूरत होती है एक समझदारी पूर्वक निर्णय की कि कितने लाभ मालिकों में वितरित किए जाएं और कितने व्यवसाय में लगाएं जाएं । यह निर्णय स्वचालित या सहयोगी व्यवस्यायों में कठिन नहीं होता क्योंकि मालिक स्वयं निर्णय लेने का कार्य में शामिल होते हैं । इसके विपरित कम्पंनी के मामले में जहॉ प्रबन्ध और मालिक दो अलग अलग हस्तियां होती हैं, लाभों के वितरण की समस्यां पर खास ध्या्न देना होता है । कम्पनी के व्यवसाय में कितने लाभ लाभांश के तौर पर वितरित करने हैं, यह निर्णय नियंत्रक बोर्ड के निर्णय पर आधारित होता है । अंशधारी बोर्ड की इस ताकत में हस्तंक्षेप नहीं कर सकते, चाहे यह दर अंत में अंशधारियों द्वारा निश्चित किया जाता है लेकिन यह बोर्ड द्वारा सुझावित दर से अधिक नहीं हो सकता।

नियंत्रक बोर्ड को दर निश्चित करते हुए दो बातें ध्यान में रखनी पड़ती हैं । पहली कि अंशधारियों को उनके विनियोग पर अच्छा् प्रत्याय दे कर संतुष्ट करना : दूसरा बोर्ड इस पर भी बाध्य होता है कि कम्पनी द्वारा आंतरिक रूप से उगाहे पैसों द्वारा कार्पोरेशन का विस्तार करना । इसके अतिरिक्त लाभों को लाभांशों के रूप में वितरित करने से पहले नियंत्रक बोर्ड को कर्मचारियों, ऋणपत्रधारियों और वित्तीय संस्थारओं के स्वार्थ को भी ध्यान में रखना पड़ता है । इसलिए ऐसी लाभांश नीति जो सभी पार्टियों के स्वार्थ के बीच में समन्वय बना सके बहुत जरूरी है ।

12.2 लाभांश : अर्थ व परिभाषाएं

लाभांश का अर्थ है कि कम्पनी के अंशधारियों को दिए जाने वाला पुरस्कार । मूल्यह्रास और कर आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद लाभों में से यह रोकड़ के रूप में दिया जाता है । भारतीय आयकर अधिनियम 1961 की धारा 2(22) के अनुसार इसके अतिरिक्त बिना कुछ लिए ऋण पत्र और जमा प्रमाण पत्र देना और किन्हीं विशेष परिस्थितियों में कम्पनी द्वारा अंशधारियों को ऋण दिया जाना भी लाभांश है ।

कम्पनी की अर्जनों का वह भाग जो पूंजी प्रदाताओं को प्रत्याय के रूप में वितरित किया जाता है, लाभांश कहलाता है। किन्तु लाभांश वितरण से पूर्व विभाजन योग्य

लाभ की गणना आवश्यक है। ऐसे लाभ जो अंशधारियों को लाभांश के लिए उपलब्ध है एवं जिनकी गणना कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 394 एवं धारा 205 के प्रावधानों को ध्यान में रखकर की गई है, विभाजन योग्य लाभ कहलाते हैं। इन्स्टीटयूट ऑफ चार्टर्ड एकाउण्टेन्ट्स ऑफ इण्डिया के अनुसार "उपलब्ध लाभों एवं रिजर्व में से अंशधारियों को किया गया वितरण ही लाभांश है।"
एस. एम. शाह के अनुसार "लाभांश एक व्यवसायिक कम्पनी के लाभ हैं, जो उसके सदस्यों में अंशों के अनुपात में बांटे जाते हैं"
इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कम्पनी को प्राप्त समस्त लाभों में से समायोजन के पश्चात् जो लाभ अंशधारियों में वितरण हेतु उपलब्ध कराया जाता है, उसे लाभांश कहते हैं।

12.2.1 लाभांश के प्रकार

1. **रोकड़ लाभांश** (Cash Dividend) :

रोकड़ लाभांश रोकड़ में दिया जाता है। यह लाभांश अदा करने का सामान्य तरीका है। रोकड़ कम्पनी के शुद्ध मूल्य (Net worth) को कम करता है, इसलिए प्रबन्धो को सोच समझ कर योजना बनानी चाहिए। नियम के अनुसार रोकड़ लाभांश कार्य द्वारा उगाहे रोकड़ में से दिया जाता है । पर कई प्रबन्ध उधार लिए पैसों में से देते हैं क्योंकि उनकी योजना सोच समझ पूर्वक नहीं बनाई गई होती। ऐसी स्थिति को वर्जित करना चाहिए क्यों कि उधार लिया पैसा उत्पीदक प्रयोगों के लिए होता है न कि लाभांश अदायगी के लिए ।

कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 205 (3) के अनुसार रोकड़ के अलावा कोई लाभांश नहीं दिया जाएगा। हालांकि धारा 205 (5) के अनुसार लाभांश चैक या वारण्ट द्वारा अंशधारियों के पते पर रजिस्टार्ड डाक से या उन व्यक्तियों को भेज सकती है जिनका निर्देश लिखित में अंशधारी ने दिया हो। एक बार घोषित लाभांश 42 दिनों के भीतर देना पड़ता है । वह हर एक नियंत्रक जो जानबूझ कर समय पर लाभांश न देने का अपराधी है उसे सजा दी जाती है ।

2. **स्टॉक लाभांश (Stock Dividend)**:

स्टॉक लाभांश का आशय बोनस अंश जारी करना भी है । स्टॉक लाभांश कम्पनी के अतिरिक्त अंशों में दिया जाता है। यह अंश श्रेष्ठ अंश या सामान्यम अंश भी हो सकते हैं। अंशधारियों को ऐसे अंशों के लिए पूर्ण आजादी है । वह यह अंश बेच भी सकते हैं और रख भी सकते हैं ।
स्टॉक लाभांश (बोनस अंश जारी करना) लाभों का पूंजीकरण है, वितरण नहीं। स्टॉक लाभांश का कम्पनी की सम्पत्तियों पर कोई प्रभाव नहीं क्योंकि कोई अदायगी रोकड़ में नहीं करनी होती। हालांकि स्टॉक लाभांश अंशधारियों के हाथों में कम्पनी के अंशों को बढ़ा देता है। इसलिए कम्पनी का प्रबन्ध् जो कि बोनस अंश जारी करने के विषय में सोच रहा है उसे इस बारे में सोच लेना चाहिए कि बोनस अंश जारी करने के बाद अधिक अंशों पर भी पूर्व रोकड़ लाभांश दर बना रहेगा ।

बोनस अंश सामान्य तौर पर पूर्व एकत्रित लाभों में से जारी किए जाते हैं पर चालू लाभों में से इन्हें जारी करने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है । बोनस अंश पूंजी लाभों में से भी जारी किए जा सकते हैं बशर्ते यह लाभ रोकड़ में अर्जित किए गए हों। बोनस अंश कुछ खास कार्य के लिए इकट्ठे रिजर्व, रोकड़ के अलावा

मिले अंश प्रीमीयम और सम्पित्तियों के मूल्यांकन से हुए रिजर्व में से जारी करने की अनुमति नहीं है। कम्पनी ऐक्ट की धारा 78(2) और 80(5) क्रमशः के अनुसार रोकड़ में मिला अंश प्रीमीयम और श्रेष्ठ अंशों के भुगतान के समय Capital Redemption Reserve में से बोनस अंश जारी कर सकती है ।

3. **सक्रिय/पत्रक लाभांश** (Scrip Dividend):

सक्रिय लाभांश कम्पनी द्वारा अंशधारियों को अन्य) कम्पनी के अंशों या ॠण पत्रों के रूप में दिया जाता है । यह प्रतिज्ञा पत्र (Promissory Note) के रूप में भी दिया जा सकता है । जिसमें यह वायदा किया जाता है कि भविष्य में लाभांश रोकड़ में दिया जागा। यह नोट लाभांश प्रभावपत्र या सक्रिय कहलाता है । ऐसी सेक्रिप्स कम्पनी द्वारा तब जारी की जाती है जब कम्पनी रोकड़ में लाभांश अदा करने के लिए मजबूत नहीं होती । सक्रिय/पत्रक लाभांश बैंक से ॠण लेने के लिए प्रतिभूति के तौर पर प्रयोग की जा सकती है ।

कम्पनी (संशोधन) ऐक्टर 1960 के अनुसार भारत में कम्पनियों पर सक्रिय लाभांश देने पर सरल प्रतिबन्धं है। यह इसलिए किया गया ताकि उन कम्पनियों पर रोक लागाई जा सके जो अंशधारियों के बीच रोकड़ लाभांश के बदले उन अन्य कम्पनियों के ॠण पत्र या अंश दे देती थी जिनका कोई मूल्य नहीं है ।

4. **मलकियत लाभांश** (Property Dividend) :

मलकियत लाभांश रोकड़ के अलावा कम्पनी की सम्पत्ति के रूप में दिया जाता है। यह असामान्य परिस्थितियों में दिया जाता है जैसे कम्पनी का दोबारा से संगठन। ऐसी घटनाएं दोबारा नहीं होती और हो सकता है कम्पनी की जिंदगी में एक ही बार हों। मलकियत लाभांश कम्पनी की उस सम्पत्ति के रूप में दिया जाता है जिसकी अब कम्पनी को जरूरत नहीं है, Subsidiary कम्पनी की प्रतिभूतियां या वर्तमान कम्पनी की प्रतिभूतियां ।

5. **अधिमान अंश लाभांश (Preference Share Dividend)**:

वह लाभांश जो कम्पनी द्वारा निर्गमित अधिमान अंशों पर चुकाया जाता है, अधिमान अंश लाभांश कहलाता है। इन अंशों पर लाभांश की दर अंश निर्गमन के समय ही निश्चित कर दी जाती है। जिसका भुगतान लाभ होने पर समता अंशधारियों को भुगतान से पूर्व किया जाता है। अधिमान अंशों के प्रकार के अनुसार कुछ अधिमान अंशों पर वर्तमान में लाभ नहीं होने पर भविष्य में चुकाया जाता है (संचयी अधिमान अंश), कुछ अंशधारियों को पूर्व निश्चित दर के अतिरिक्त समता अंशों को चुकान के पश्चात् बचे लाभ में भी हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार (अवशिष्टभागी अधिमान अंश) होता है।

6. **समता अंश लाभांश (Equity Share Dividend)**:

कम्पनी के सामान्य अंश जिन्हें समता अंश या वास्तविक मालिक के नाम से जाना जाता है, पर चुकाये जाने वाले लाभांश को समता अंश लाभांश कहा जाता है। इन अंशों पर लाभांश दिया जाये या नहीं, लाभांश की दर कितनी होगी, लाभांश कब व कैसे चुकाया जाये आदि का निर्धारण करने में संचालक मण्डल पूर्णतः स्वतंत्र होता है, संचालक मण्डल द्वारा प्रस्तावित दर का अनुमोदन वार्षिक साधारण सभा द्वारा आवश्यक है। किन्तु साधारण सभा को दर में वृद्धि करवाने का अधिकार नहीं होता है।

7. **अंतरिम लाभांश (Interim Dividend)**:

वह लाभांश जो दो वार्षिक साधारण सभाओं के मध्य वर्ष के अनुमानित लाभ के आधार पर संचालकों द्वारा घोषित किया जाता है, अंतरिम लाभांश कहलाता है। यह अंतिम खाते बनाने से पूर्व (साधारणतः लेखा वर्ष के मध्य में) अधिक लाभ होने की संभावना को देखते हुए दिया जाता है। संचालक मण्डल उक्त घोषणा पार्षद् अंतर्नियमों द्वारा अधिकृत होने पर ही कर सकता है वर्ष के अंत में लाभ कम रह जाने पर संचालक मण्डल को पूँजी में कमी का दोषी माना जाता है अतः अंतरिम लाभांश देने से पूर्व लाभों का सही निर्धारण अत्यावश्यक है।

8. **अंतिम या नियमित लाभांश (Final or Regular Dividend):**
संचालक मण्डल की सभा में घोषित लाभांश जिसे साधारण सभा की स्वीकृति मिलने पर अंशधारियों में वितरित कर दिया जाता है, अंतिम या नियमित लाभांश कहलाता है। ऐसी घोषणा वर्ष के अंत में की जाती है, लाभांश नीति का निर्धारण मुख्यतः इस लाभांश पर ही निर्भर करता है।

12.3 लाभांश नीति

लाभांश नीति का अर्थ है कि वितरण और बकाया कोष रखने के लिए एक नियमित पहुंच को अपनाना कि वर्ष दर वर्ष किसी अस्थाई निर्णय को लेना। यह लाभांश की अदायगी के समय और मूल्य पर भी ध्यान देती है । उपयुक्त् लाभांश नीति बनाना प्रबन्ध् के लिए बड़ा सोच विचार का कार्य है क्योंकि इससे कम्पंनी की उन्नति और अंश के बाजारी मूल्य पर प्रभाव पड़ता है ।

कम्पंनी के वित्तीय प्रबन्धि में लाभांश नीति निर्णय तीन अन्तर सम्बन्धित नियमों में से एक है : दूसरे दो विनियोग और वित्त हैं । विनियोग निर्णय कम्पनी के लिए सम्पत्तियों के चयन (दोनों स्थाई व अस्थाई) से सम्बधन्धित है । वित्तीय निर्णय में कम्पनी के लिए उपयुक्त। पूंजी ढांचे और वित्तीय मिक्स का चयन करना होता है। यह उस निर्णय से सम्बन्धित है जिसमें यह निर्णय लेना होता है कि कम्पनी की कुल वित्तीय जरूरतों में विभिन्न वित्तीय स्त्रोतों का अनुपात क्या होगा।

लाभांश नीति बहुत ही व्यापक एवं लोचपूर्ण शब्द है। लाभांश से तात्पर्य कम्पनी द्वारा अर्जित आय में से अंशधारियों को मिलने वाले हिस्से से है। व्यवहार में 'तरीके' या 'कार्य करने के सिद्धान्तों' को नीति कहा जाता है। अतः संचालक मण्डल द्वारा लाभांश हेतु अपनायी जाने वाली नीति को लाभांश नीति कहा जाता है। इस प्रकार लाभांश की दर के निर्धारण एवं वितरण हेतु जिन सिद्धान्तों, नियमों व योजनाओं का पालन किया जाता है, लाभांश नीति कहलाती है।

साधारण अर्थ में लाभांश नीति का आशय उस नीति से है, जो संचालक मण्डल लाभांश वितरण हेतु अपनाते हैं। व्यापक अर्थ में लाभांश नीति का आशय उस नीति से है जिसमें लाभांश वितरण के सिद्धान्तों के नियमों के आधार पर कार्य प्रणाली निश्चित कर लाभांश वितरित करने हेतु कार्य योजना बनायी जानी है। इस प्रकार लाभांश नीति संचालकों द्वारा अपनायी वह योजना है जो लाभांश वितरण हेतु निर्धारित की जाती है। यह नीति केवल समता अंशों को लाभांश वितरण हेतु ही निर्धारित होती है, पूर्वाधिकार अंशों के लिए नहीं।

लाभांश नीति को परिभाषित करते हुए वैस्टन एवं ब्रिंघम ने लिखा है, ''लाभांश नीति अर्जनों का अंशधारियों को भुगतान एवं प्रतिधारित अर्जनों में विभाजन निश्चित करती है।'' अतः लाभांश वितरण के सम्बन्ध में संचालकों द्वारा अपनायी

गई कार्यकारी योजना को लाभांश नीति कहा जाता है। लाभांश नीति समता अंश पूँजी से सम्बन्धित नीति है। पूर्वाधिकार अंश पूँजी पर लाभांश की घोषणा एवं दर पूर्व निर्धारित होने के कारण ये अंश लाभांश नीति से सम्बन्धित नहीं होते हैं।

12.3.1 लाभांश नीति के उद्देश्य

एक अच्छी लाभांश नीति अंशधारियों के धन को बढ़ाने का उद्देश्य रखती है। इसे अंशधारियों और कम्पनी दोनों के स्वार्थों को ध्यान में रखते हुए बनाना चाहिए । सभी कम्पनियों के लिए एक जैसी लाभांश नीति नहीं बनाई जा सकती क्योंकि सभी कम्पनियां एक समान नहीं होती। इसका अर्थ है कि हर एक कम्पनी को अपने उत्पादनों, बिक्री, उत्पादन के स्वभाव, लाभ, तरलता स्थिति, वित्तीय नीति और विनियोग मौकों की उपलब्धता के देखते हुए लाभांश नीति बनानी चाहिए । हालांकि कुछ सामान्य बातें बताई जा सकती हैं, जो लाभांश नीति बनाते हुए ध्याान में रखनी चाहिए ।

1. **कम्पनी के मूल्य में बढ़ौतरी** (Increase in the value of Company) : लाभांश नीति का उद्देश्य कम्पनी के मूल्य़ में बढ़त होनी चाहिए जो कि अंशधारियों के धन पर निर्भर करता है । इसलिए विभिन्न् प्रस्तावित नीतियों के अंतिम चयन से पहले कम्पनी के अंशों पर उनके प्रभाव का अवश्य मूल्यांकन कर लेना चाहिए।
2. **अंशधारियों और कम्पनी की आवश्यकता के बीच समतलता** (Balance between shareholder's and company's needs) : लाभांश नीति को अंशधारियों की लाभांश आशा और कम्पनी की वित्तीय आवश्यकताओं के बीच समतलता बैठानी पड़ेगी। अगर कम्पनी के पास कोई लाभवन्य विनियोग मौका है, तो ऐसे मौके का मूल्यांकन उचित प्रत्याय और मौके की लागत की तुलना कर लगाया जा सकता है । बकाया आय के विनियोग की मौका लागत का अर्थ है कि वह आय जो अंशधारी लाभांश को किसी समान खतरे वाली कम्पनी में लगा कर पाते और जो इस मौके के लिए उन्होनें छोड़ दी है ।
3. **लम्बी अवधि उद्देश्य** (Long term Perspective) : लाभांश नीति का उद्देश्य थोड़े समय के लिए शेष निर्णय लेना नहीं होना चाहिए बल्कि लम्बे समय के लिए लम्बी योजना बनानी चाहिए ।
4. कलिप्त व्यवसाय को कम करना (Reducing Speculative trading) : कम्पनी की लाभांश नीति का उद्देश्य उसके अंशों के व्यवसाय को कम करना भी होना चाहिए ताकि बाजार में अंशों को सम्मान मिल सके ।
5. **शीघ्र बदलावों से बचना** (Avoiding erratic & frequent changes) : लाभांश नीति को इस बात की मंजूरी नहीं दी जानी चाहिए कि लाभांश में शीघ्र बदलाव आए। अगर लाभांश का दर बढ़ता है तो अंशधारियों की आशाएं भी बढ़ती हैं । और अगर अगले वर्ष उसे कम कर दिया जाता है तो अंशधारियों के लिए यह सहना कठिन हो जाता है । इसका अर्थ यह है कि अगर लाभांश दर बढ़ाना है तो यह काम बहुत समझदारी पूर्व कम्पनी को भविष्य में होने वाले लाभों को देखते हुए करना चाहिए ।
6. **लाभांश न देने से बचना** (Avoiding Skipping dividend) : कम्पनी को तब तक लाभांश न देने का निर्णय नहीं लेना चाहिए जब तक कम्पनी की आय स्थिति गंभीर नहीं होती और तरलता स्थिति ऐसी नहीं होती कि कई और वित्तीय कठिनाईयां आ जाएं। लाभांश न मिलने की स्थिति उन अंशधारियों के लिए बहुत

कष्टदायक है जो आय के लिए अधिकतर लाभांश पर निर्भर करते हैं । इससे अंशों के बाजारी मूल्य में भी गिरावट आ सकती है ।

7. **अंशधारियों से बातचीत** (Communication to Shareholders) : एक बार जब कम्पनी ने लाभांश नीति बना ली तो यह आवश्यक हो जाता है कि अंशधारियों व अन्य विनियोक्ताओं को यह बता दे । इससे विनियोक्ताओं को यह निर्णय लेने में मदद हो जाएगी कि कम्पनी के अंशों में विनियोग करना उन्हें माफिक आता है या नहीं । अगर किसी भी स्थिति के कारण कम्पनी की सुगठित लाभांश नीति में बदलाव आता है तो यह भी अंशधारियों को जरूर बताना चाहिए।

12.3.2 लाभांश नीति के प्रकार

लाभांश नीति के निर्धारण के लिए ऐसा कोई सूत्र नहीं दिया जा सकता है जो प्रत्येक स्थिति में लागू होता हो, क्योंकि यह कम्पनी की परिस्थितियों एवं प्रबंधकों की नीतियों पर निर्भर करती है। ऐसी नीति जो अंशधारियों एवं कम्पनी दोनों के लिए लाभकारी सिद्ध हों, उसे ही सुदृढ़ व सुसंगत नीति कहा जा सकता है। सिद्धान्ततः लाभांश नीति के प्रकार निम्नलिखित हैं :–

(अ) कठोर लाभांश नीति (Conservative Dividend Policy) – इस नीति में प्रबंधक अर्जित लाभ के अधिकांश भाग को व्यवसाय में पुनर्विनियोजित करना चाहते हैं तथा अंशधारियों को लाभांश भुगतान कम से कम करना चाहते हैं। अतः वह नीति जिसमें लाभ भुगतान अनुपात (Dividend Payment Ratio) बहुत कम या कभी–कभी शून्य होता है, कठोर या अनुदार लाभांश नीति कहलाती है। इस नीति को अपनाने वाले प्रबंधक अंशधारियों की वर्तमान आशाओं के स्थान पर कम्पनी की वित्तीय सुदृढ़ता को अधिक महत्व देते हैं। यह नीति निम्न परिस्थितियों में ही अपनायी जाती है :–

(i) यदि कम्पनी नवस्थापित हो, जिसे भावी विकास हेतु अतिरिक्त पूँजी की आवश्यकता हों (ii) यदि वर्तमान में पूँजी बाजार से पूँजी प्राप्त करने में ऊँची लागत लगती हों (iii) अंशधारी वर्तमान में नकद लाभांश के स्थान पर भविष्य में बोनस अंश प्राप्त करने के इच्छुक हों (iv) वर्तमान में तरल साधनों की कमी हों।

(ब) **उदार लाभांश नीति (Liberal Dividend Policy)** – इस नीति में प्रबंधक अर्जित लाभ का अधिकांश भाग लाभांश के रूप में वितरित कर देते हैं अर्थात् लाभांश का लाभ अनुपात (Payments Ratio) उच्च होता है। लाभों का पुनर्विनियोजन उतना ही किया जाता है जितना अत्यन्त आवश्यक हो। उदार लाभांश नीति के पालन से भावी विकास व विस्तार हेतु आंतरिक साधनों की कमी आ जाती है तथा अंशों के मूल्य में सट्टे की प्रवृत्त बढ़ने से वित्तीय सुदृढ़ता को भी हानि पहुँचती है। कभी–कभी प्रबंधकों द्वारा अपने स्वार्थ की सिद्धि या प्रबंधकीय दक्षता को प्रदर्शित करने के लिए उच्च दर से लाभांश वितरण हेतु अनुचित तरीकों का प्रयोग किया जाता है। जिसके दुष्परिणाम कम्पनी को वहन करने पड़ते हैं।

(स) स्थिर लाभांश नीति (Stable Dividend Policy) – स्थिर लाभांश से आशय वर्ष–प्रतिवर्ष लाभांश भुगतान में एकरूपता होने से है, अर्थात् जब प्रबंधक व्यवसाय की आय में उतार–चढ़ाव होते हुए भी प्रति अंश लाभांश स्थिर बनाये रखने की नीति अपनाते हैं तो यह स्थिर लाभांश नीति कहलाती है। इस नीति में सदस्यों की वर्तमान अपेक्षाओं व कम्पनी की भावी आवश्यकताओं को समान महत्व दिया जाता है। अधिक लाभ वाले वर्षों में भी स्थिर दर से लाभांश वितरित कर

शेष राशि से कोषों का निर्माण कर लिया जाता है। जिससे प्रतिकूल परिस्थिति वाले वर्षों में लाभ कम होते हुए भी स्थिर लाभांश नीति का अनुसरण किया जा सके। किन्तु स्थिर लाभांश नीति से आशय यह नहीं है कि जीवन पर्यन्त एक ही दर से लाभांश दिया जायेगा। कम्पनी की आय के निरन्तर वृद्धि होने पर प्रबन्धक वर्तमान दर में वृद्धि कर सकते हैं। किन्तु इस नीति के बनाये रखने के लिए कम्पनी के स्वामित्व ढाँचे व प्रबंध में भी स्थायित्व आवश्यक है।

वैकल्पिक लाभांश नीतियां (Alternative Dividend policies) :

कई तरह की वैकल्पिक लाभांश नीतियों के बारे में समझदार वित्तीय प्रबन्धक सोच सकता है । निम्न तीन महत्वपूर्ण विकल्प हैं जिनके द्वारा लाभांश वितरण किया जा सकता है ।

1. **प्रति अंश स्थाई लाभांश नीति** (Stable Dividend per share policy)

कम्पनी को चाहे जितनी आय हो, इस नीति के अनुसार उसे हर वर्ष प्रति अंश स्थाई लाभांश देना होगा। प्रति अंश स्थाई लाभांश नीति में लाभांश का स्त्रोत एक समान रहता है। अगर आय में निरन्तर बढ़त या घटक होती जाए तो लाभांश के मूल्य में बढ़ोत्तरी या कटौती हो सकती है । प्रति अंश स्थाई नीति का उद्देश्य यह है कि कम्परनी को चाहे जितनी भी आय हो अंशधारियों को उनके विनियोग पर कम से कम दर पर प्रत्याय आवश्यक रूप से दिया जाए। इस नीति के चयन का प्रभाव यह होगा कि अदायगी अनुपात में बदलाव आएंगे। इस नीति के अनुसार जब आय का तल कम होगा तो अदायगी अनुपात अधिक होगा और विपरीत भी सही है। यह इसलिए होता है कि कम्पनी को कम चालू आय पर अनुपात में अधिक देना पड़ता है और अधिक चालू आय हो तो अनुपात में कम देना पड़ता है अगर प्रति अंश लाभांश स्थाई दर से देना हो तो ।

स्थाई DPS नीति में Payout Ratio और EPS

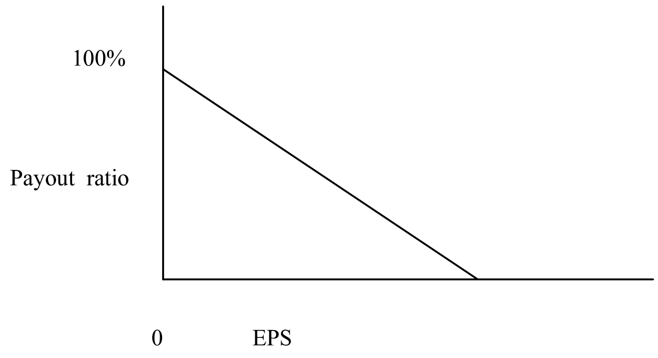

चित्र 12.1

प्रति अंश स्थाई लाभांश नीति में अदायगी अनुपात की रेंज एक से (जब सम्पूर्ण चालू आय के साथ एकत्रित आय भी लाभांश प्रति अंश के उद्देश्य को पूरा करने के लिए दे दी जाती है) शून्य तक (जहां सम्पूर्ण चालू आय बचा ली जाती है और पूर्व वर्षों के एकत्रित लाभों में से लाभांश दिया जाता है ।

प्रति अंश स्थाई लाभांश नीति के अनुसार प्रति अंश लाभांश तब बढ़ा दिया जाता है जब यह लगता है कि आय में निरन्तर बढ़त हो रही है। किसी भी अस्थाई बदलाव को प्रति अंश लाभांश को प्रभावित नहीं करने दिया जाता । उदाहरण 12.

2 में EPS (प्रति अंश आय) और DPS प्रति अंश लाभांश) में सम्बन्ध दर्शाया गया है ।

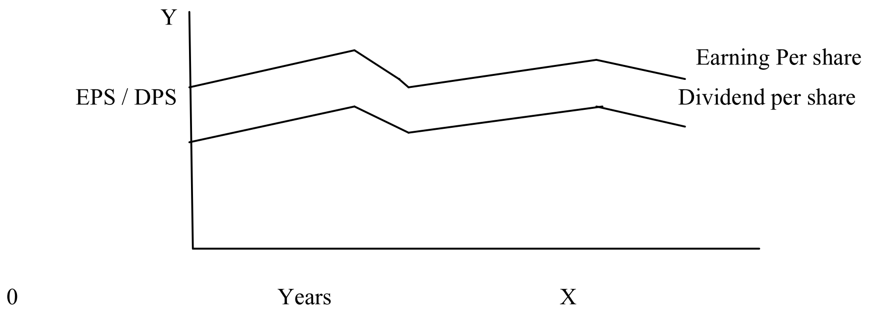

चित्र 12.2 EPS DPS under constant payout ratio policy

चित्र यह दर्शाता है कि नियमित अदायगी अनुपात नीति में जैसे EPS बढ़ता है वैसे DPS भी बढ़ता है । इसी तरह जब EPS गिरता है तो DPS भी कम हो जाता है । इस नीति में जब जब आय में बदलाव आता है वैसे लाभांश में भी बदलाव आता है, इसलिए विनियोक्ताओं के मन में अनिश्चितता नहीं रहती । इसलिए स्थाई भुगतान अनुपात बहुत कम अपनाया जाता है ।

2. **शेष लाभांश नीति** (Residual Dividend Policy) : इस नीति के अनुसार लाभांश नीति विनियोग नीति पर निर्भर करती है। कितना लाभांश वितरण किया जाए यह कम्पनी की विनियोग आवश्यकताओं पर निर्भर करेगा। कम्पनी लाभांश सिर्फ तब देगी जब उसके पास न विनियोगों में पैसा लगाने के उपरान्त पैसा बचेगा और कोई लाभांश नहीं देगी जब उसकी आय उसकी विनियोग आवश्यकताओं से कम होगी । इस पहुंच के अनुसार उन्नंति पथ पर अग्रसर कम्पनियां जिनकी वित्तीय आवश्यंकताएं बहुत अधिक होती हैं नाम मात्रया बिल्कुल भी लाभांश नहीं देगी लेकिन उन्नंत कम्पनियां लगभग सम्पूर्ण आय लाभांश के तौर पर दे देंगी । जब शेष लाभांश नीति अपनाई जाती है तब प्रति अंश लाभांश और अदायगी अनुपात बदलता रहता है क्योंकि उसकी आय और विनियोग आवश्यकताएं भी बदलती रहती हैं ।

शेष लाभांश नीति वर्षों तक बदलता हुआ लाभांश वितरण करती है । इस तरह की लाभांश नीति विनियोक्ताओं के मन से कम्पनी को खतरे के बारे में अनिश्चितता दूर नहीं करती। इसलिए निजी कम्पनियों के अलावा जहां अंशधारी प्रबन्ध् में सक्रिय भाग लेते हैं, यह नीति सुझावित नहीं की जाती है ।

3. **समतल शेष लाभांश नीति** (Smoothed Residual Dividend Policy) : ऊपर दी गई शेष लाभांश नीति इस वायदे पर आधारित है कि अंशधारी तब तक आय को कम्प नी के पास रखने को श्रेष्ठे मानते हैं और लाभांश लेने के इच्छुक नहीं होते जब तक ऐसे विनियोग मौके कम्पनी के पास उपलब्ध हैं जो अंशधारियों को समान खतरे के साथ दूसरे मौकों की तुलना में अधिक प्रत्याय देते हैं ।

हालांकि कई कारणों से अंशधारी बदलता लाभांश लेने के हक में नहीं होते । इसलिए शेष लाभांश नीति में बदलाव लाना वांछनीय है ताकि लाभांश अदायगी में कोई स्थापन आ सके । यह बदलाव समतल शेष लाभांश नीति द्वारा लाया जा सकता है । इस नीति के अनुसार लाभांशों में समय के साथ धीरे–धीरे बदलाव

लाया जाता है। लाभांश के तल को इस तरह बनाया जाता है कि योजना अवधि के दौरान लाभांश कुल आय – विनियोग हों ।

12.3.2 लाभांश नीति को प्रभावित करने वाले तत्व

लाभांश नीति का उद्देश्य यही होता है कि अंशधारियों की अधिक लाभांश आशा को पूरा किया जाए और बकाया आय द्वारा कम्पनी की विनियोग आवश्यकताओं को पूरा कर उसके कल्याण का भी ध्यान रखा जाए । इस कार्य के लिए यह निर्णय लेना आवश्यक हो जाता है कि कितना लाभ लाभांश के तौर पर विभाजित किया जाए और कितना व्यवसाय में रखा जाए । इस निर्णय को प्रभावित करने वाले कई तथ्य हैं। अब हम इन कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों की चर्चा करेंगें ।

1. **अंशधारियों का स्वार्थ** (Interest of shareholders) : लाभांश नीति को अपने अंशधारियों के स्वार्थ का ध्यान रखना चाहिए । छोटी कम्पनियां जिनके थोड़े से ही अंशधारी हैं उनके स्वार्थों को पहचानना कोई मुश्किल कार्य नहीं है । दूसरी तरफ विभाजित मलकियत वाली बड़ी कम्पनियों के अंशधारियों के स्वार्थ के बारे में जानकारी रखना कठिन कार्य है । इसलिए छोटी कम्पिनी की लाभांश नीति बनाना बड़ी कम्पनी की लाभांश नीति बनाने से आसान है ।

अंशधारी लाभांश या पूंजी लाभों के लिए पैसा लगाते हैं (अंशधारी जो अधिक लाभांश चाहते हैं उन्हें अच्छी लाभांश नीति द्वारा और जो पूंजी लाभ चाहते हैं उन्हे कम भुगतान अनुपात द्वारा संतुष्ट किया जा सकता है।) लाभांश और पूंजी लाभों में से किसी के लिए अधिक झुकाव अंशधारी की आर्थिक क्षमता और लाभांश और पूंजी लाभों पर भिन्नता के ऊपर निर्भर करता है । पूंजी लाभ पर लाभांश आय की तुलना में कम कर देना पड़ता है । एक धनी अंशधारी जो ऊँची कर बरैक्ट में है वह पूंजी लाभों को श्रेष्ठ मानेगा और वह अंशधारी जो कम कर बरैक्ट में है और जिसका लाभांश ही आय का मुख्य स्त्रोत है वह चालू लाभांश आय की ओर झुकाव दर्शाएगा।

अंशधारियों की चालू आय और पूंजी लाभों के लिए वरीयता आय के स्त्रोत और उम्र पर भी निर्भर करती है। वह अंशधारी जो युवा है और उनके पास लाभांश के अतिरिक्त और भी स्त्रोत हैं वह लाभांश से ज्याादा पूंजी लाभों को प्राथमिकता देते हैं। दूसरी तरफ सेवानिवृत और बूढ़े लोग अंशों में चालू आय के दृष्टिकोण से विनियोग करते हैं । यह लोग विनियोग के लिए उन कम्पनियों के अंशों का चयन करते हैं जो अधिक व चलायमान लाभांश देती हो ।

एक बार जिस लाभांश नीति का निर्णय हो जाता है उसे काफी समय तक अपनाना चाहिए क्योंनकि एक स्थाई लाभांश नीति की अनुपस्थिति में नए विनियोक्ता आकर्षित नहीं होंगे और कम्पनी की वित्तीय आवश्यकताएं पूरी नहीं होंगी ।

2. **विनियोग आवश्यकताएं** (Investment Needs) : कई कम्पनियॉ अपनी लाभांश नीति अपनी विनियोग आवश्यकताओं के आधार पर बनाती हैं । उन्नत कम्पनियां (जिनके पास काफी विनियोग मौके हैं) वह लाभों के प्रमुख भाग को पुनर्विनियोग के लिए व्यवसाय में ही रख लेती हैं । दूसरी तरफ वह कम्पनियां जिनके पास विनियोग मौके कम हैं वह लाभों का कम भाग रखती है जिसकी वजह से उनका भुगतान अनुपात अधिक होता है ।

3. **पूजी बाजार तक पहुँच** (Access to capital Market) : एक अन्य तथ्य जो कम्पनी की लाभांश रणनीति को मुख्य तौर से प्रभावित करता है वह यह है कि कम्पनी की पूंजी बाजार तक किस हद तक पहुंच है । एक स्थापित कम्पनी जिसके पास लाभ का अच्छा रिकार्ड है वह पूंजी बाजार में आसानी से पैसे उठा सकती है। इसलिए ऐसी कम्पनियां बड़ी आसानी से लाभांश भी दे सकती हैं और विनियोग आवश्यकताओं को भी पूरा कर सकती हैं । दूसरी तरफ वह कम्पनी जिसकी रोकड़ स्थिति कमजोर है और पूंजी बाजार तक पहुँच नहीं है वह अधिक लाभांश नहीं दे सकती ।

4. **प्रबन्ध के विचार** (Management Considerations) : प्रबन्ध का नजरिया लाभांश नीति को काफी हद तक प्रभावित करता है । अगर कम्पनी के प्रबन्ध की छवि अनुकूल है और वह बात मनवाने की स्थिति में है तो वह आय के मुख्य भाग को व्यवसाय में ही रखेगी । चाहे इस पहुंच से कम्पनी अपनी भविष्य में विनियोग आवश्यकताएं आसानी से पूरी कर सकती हैं पर अंशधारी लाभांश पाने के अपने विधिक हक से वंचित रह जाते हैं । दूसरी तरफ आजाद विचारों वाली संस्थाएं यह मानती हैं कि अंशधारियों को लाभांश तब तक स्थापित दर पर मिलता रहना चाहिए जब तक वह वित्तीय रूप से मजबूत है । इन दो सीमाओं के बीच लाभांश नीति में काफी बदलाव लाए जा सकते हैं ।

5. **विधिक और सम्बन्धक प्रतिबन्ध** (Legal and contractual restrictions): लाभांश नीति का निर्माण विधिक प्रतिबन्धों को देखते हुए करना चाहिए । कानून पूंजी में से लाभांश देने की अनुमति नहीं देता । लाभांश या तो चालू लाभों या पिछले लाभों में से दिया जा सकता है । कानून ने यह नियम श्रेष्ठ अंशधारियों और लेनदारों के हक को देखते हुए बनाया है क्योकि अगर सामान्य अशों पर लाभांश पूंजी में से दे दिया गया तो कम्पनी की तरलता के मौके पर श्रेष्ठे अंशधारियों और लेनदारों की बरीयता स्थिति बिगड़ जायेगी ।

ऋण समझौंतों और बाण्ड Indentures में अधिकतर ऐसे प्रावधान होते हैं जो इस बात पर जोर देते हैं कि लेनदारों और ऋण पत्रधारियों के Trustees की अनुमति के बिना लाभांश न दिया जाए । इसलिए ऋण पत्रधारियों द्वारा लगाए गए ऐसे प्रतिबन्ध लाभांश नीति को काफी प्रभावित करते हैं ।

6. **व्यंवसाय का स्वाभाव** (Nature of Business) : लाभांश नीति काफी हद तक कम्पनी के कार्यों द्वारा भी प्रभावित होती है । कम्पनी की व्यवस्यायिक कार्यवाईयां उसकी आय को प्रभावित करती हैं जो बदले में लाभांश नीति को ग्राहक वस्तुओं की इण्डेस्ट्रियों की मांग स्थाई रहती है, इसलिए उनकी आय में बदलाव कम आता है इसी तरह आम जनता के प्रयोग की चीजों वालों को भी स्थाई आय होती है । वह कम्पनियां जिनकी स्थाई आय है वह अधिक लाभांश दे सकती हैं । दूसरी तरफ वह कम्पनियां जिनकी आय में बदलाव आता रहता है वह ऐसे लाभांश दर बनाती हैं जिन्हें वह आसानी से पूरा कर सकती है ।

7. **अंशधारियों की Composition** (Composition of Shareholding) : कम्पनी में अंशधारियों की Composition भी लाभांश नीति को काफी हद तक प्रभावित करती है । एक छोटी कम्पनी में नियंत्रक बोर्ड के निजी उद्देश्य और अधिक अंशधारियों की आशा लाभांश नीति को निर्मित करती है। दूसरी तरफ बड़ी

कम्पनियों में लाभांश नीति का निर्माण उचित दायित्व और अधिक नियमित ढंग से होता है ।

8. **वित्तीय क्षमता और तरलता** (Financial Solvency & Liquidity) : वित्तीय स्थिरता और तरलता बनाए रखने की आवश्यकता भी कम्पनी भी लाभांश नीति को प्रभावित करती है। कम्पनी को इच्छा होती है कि आय को बकाया रख रिजर्व बनाए जाएं ताकि व्यवसायिक उतार चढ़ावों में उनका प्रयोग किया जा सके । वह रिजर्व बनाएंगें और भविष्य अनिश्चितताओं का सामना करने के लिए रोकड़ स्त्रोंतों को बचा कर रखेंगे ।

9. **कीमतों में बढ़ौतरी** (Inflation): कीमतों में बढ़त भी कम्पनी की लाभांश नीति को प्रभावित करती है । बढ़ी हुई कीमतों में मूल्यह्रास द्वारा एकत्रित पैसे खराब मशीनों और औजारों की प्रतिस्थांपना के लिए काफी नहीं होते । यह इसलिए होता है कि मूल्यह्रास प्रावधान पिछली लागत पर किया होता है जब बढ़ती कीमतों के जमाने में सम्पत्तियों की प्रतिस्थापना लागत बढ़ती है। इसलिए खराब सम्पत्तियों की प्रतिस्थापना के लिए कम्पनी को पैसों के लिए बकाया कोषों पर निर्भर करना पड़ता है । इससे कम्पनी का भुगतान अनुपात कम होगा । बढ़ती कीमतों के समय में जब मूल्य ह्रास पुरानी लागत पर दर्शाया जाता है तो लाभ अधिक दिखाए जाते हैं । अगर ऐसे लाभों के आधार पर लाभांश दे दिए जाएं तो कम्पनी तरल हो जाएगी क्योंकि इसका अर्थ लाभांश पूंजी में से दिए जाएंगे । इसलिए अच्छा प्रबन्ध बढ़ी कीमतों के जमाने में अधिक से अधिक आस व्यावसाय मे ही रखेगा ताकि कम्पनी की वित्तीय स्थिति बरकरार रखी जाए ।

10. **इण्डयस्ट्री में अन्य कम्पनियों की लाभांश नीतियां** (Dividend policies of other companies in the Industry) : प्रतियोगियों की लाभांश नीति द्वारा भी कम्पनी की लाभांश नीति प्रभावित होती है । यह इसलिए होता है कि कम्पनी अंश में विनियोक्ता के लिए प्रतियोगिता बनी रहे ।

ऊपर दिए गए तथ्य लाभांश नीति बनाने के लिए अलग–अलग नहीं देखे जाने चाहिए । इनका कम्पनी और उसके अंशधारियों के कल्याण पर सम्पूर्ण प्रभाव देखा जाना चाहिए ।

12.3.4 लाभांश नीति का विधिक पक्ष

भूमि के कानून के अनुसार लगाए गए प्रतिबन्धों के बीच ही लाभांश नीति को कार्यरत होना चाहिए । भारत में कम्पनी अधिनियम 1956 ही इस बात का निर्णय करता है कि कितना लाभांश विधिक रूप से घोषित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न मामलों में विधिक फैसले और सम्बन्धी प्रतिबन्धों पर भी उचित ध्यान देना पड़ता है। 'कम्पनी द्वारा लाभांश वितरण के लिए कम्पनी ऐक्ट 1956 के महत्वपूर्ण प्रावधान निम्नलिखित हैं :

कम्पनी (लाभों का रिजर्वों में स्थानान्तरण के नियम 1975 यह कहते हैं कि लाभ का कितना भाग रिजर्वों में स्थानान्तरित किया जाए यह बात उस वर्ष देने वाले लाभांश पर निर्भर करती है । लाभांश के विभिन्न दरों के लिए लाभ का वह भाग जो रिजर्वों में भेजना है वह निम्न प्रकार से है : –

1. कम से कम वर्ष लाभ का 2.5% अगर प्रस्तावित लाभांश देय पूंजी के 10% से अधिक है पर 12.5 से कम है ।

2. कम से कम वर्ष लाभ का 5% अगर प्रस्तावित लाभांश देय पूंजी के 12. 5% से अधिक है पर 15% से कम है ।

3. कम से कम वर्ष लाभ का 7.5% अगर प्रस्तावित लाभांश देय पूंजी के 15% से अधिक है पर 20% से कम है ।

4. कम से कम वर्ष लाभ का 10% अगर प्रस्तावित लाभांश देय पूंजी के 20% से अधिक है ।

अगर चालू वर्ष के लाभ पूरे नहीं पड़ते तो लाभांश पूर्व वर्षों के लाभ में से भी घोषित किया जा सकता है । कम्पनी (रिजर्वों में से लाभांश की घोषणा) नियम पूर्व लाभों में से लाभांश की घोषणा की इजाजत देते हैं । इस नियम के प्रावधान इस प्रकार हैं :–

(i) लाभांश का दर पिछले पांच वर्षों में घोषित लाभांश की औसत से अधिक नहीं होना चाहिए या देय पूंजी का 10% दोनों में से जो कम है ।

(ii) पूर्व लाभों में से ली गई राशि देय पूंजी और खुले रिजर्वों के 10% से अधिक नहीं होनी चाहिए और जो राशि यूं ली गई हो वह पहले चालू वर्ष की हानियों की पूर्ति हेतु प्रयोग होगी और फिर श्रेष्ठ और सामान्यः अंशों के लाभांश के लिए ।

(iii) इस राशि को लेने के बाद भी पूर्व लाभ देय पूंजी और कम्पनी के खुलें रिजर्वों के 15% से कम नहीं होने चाहिए ।

(iv) एक बार जब लाभांश घोषित कर दिया जाए तो वारण्ट 42 दिनों के भीतर अंशधारियों को भेज देने चाहिए । 42 दिन खत्म होने के 7 दिन के भीतर वह लाभांश जिसका भुगतान नहीं हो पाया उसे घोषित बैंक के अलग खाते में डाल देना चाहिए । अगर इस स्थानान्तरण के तीन साल तक लाभांश पर कोई दावा नहीं करता तो यह सरकार के सामान्य राजस्व में डाल दिया जाता है । वह अंशधारी जो समय पर लाभांश का दावा नहीं कर पाए । वह सरकार से इसका दावा कर सकते हैं ।

(v) उस वर्ष का लाभांश घोषित नहीं किया जा सकता जिसका खाता बन्द कर दिया हो ।

(vi) कम्पनी जिसने अंश किसी प्लांट के निर्माण के लिए जारी किये हैं उन्हें। पूंजी में से भी ब्याज देना पड़ेगा । चाहे उस वर्ष कोई लाभ न हुए हों (इसे लाभांश कहा जाएगा लेकिन इसके लिए कुछ प्रावधान हैं और केन्द्रीय सरकार की मंजूरी भी चाहिए ।

सुदृढ़ लाभांश नीति के आवश्यक तत्व (Essentials of Sound Dividend Policy)

लाभांश नीति द्वारा कम्पनी की साख प्रभावित होती है, अतः कम्पनी को लचीली लाभांश नीति के स्थान पर सुदृढ़ लाभांश नीति अपनानी चाहिए। सुदृढ़ लाभांश नीति के अन्तर्गत अनुकूलता एवं प्रतिकूलता दोनों स्थिति में स्थिरता रहती है। जिससे अंशधारियों में पर्याप्त विश्वास जमा रहता है। सामान्यतः एक सुदृढ़ लाभांश नीति में निम्नलिखित तत्व आवश्यक हैं :–

1) लाभांश का भुगतान नकद में हों
2) लाभांश दर में क्रमिक वृद्धि हों
3) लाभांश वितरण में स्थायित्व हों

4) लाभांश नीति कम्पनी की भावी नीति के अनुरूप हों
5) कम्पनी अधिनियम एवं सरकार प्रतिबंधों के अनुरूप हों।

12.4 लाभांश के सिद्धांत

12.4.1 वाल्टर्स मॉडल

लाभांश नीति के निर्धारण हेतु सन् 1963 में प्रो. जेम्स ई. वाल्टर द्वारा एक प्रमेय प्रस्तुत किया गया, जिसके अनुसार लाभांश नीति सदेव अंशों के मूल्य को प्रभावित करती है। वाल्टर के अनुसार "किसी संस्था की लाभांश नीति उसके द्वारा अर्जित आंतरिक प्रत्याय दर (Internal rate of Return) तथा पूंजी की लागत (Cost of Capital) के संबंध पर आधारित होती है।" इस प्रमेय के अनुसार लाभांश निर्णय एवं विनियोग निर्णय अन्तः संबंधित होते हैं अतः लाभांश भुगतान से पूर्व विनियोग अवसरों का मूल्यांकन आवश्यक है। प्रतिधारित अर्जनों के पुनर्विनियोजन की प्रत्याय दर को आंतरिक प्रत्याय दर (r) कहा जाता है एवं अंशधारियों की प्रत्याशा (यदि लाभांश वितरित किया जाये तो इसे अंशधारी विनियोजन कर जिस दर से आय अर्जित कर सकते हैं अर्थात् अवसर लागत) को पूंजी की लागत (Ke) माना जाता है। यदि विनियोग पर प्रत्याय दर (r) पूंजी लागत (Ke) से अधिक है तो संस्था को अपनी अर्जनों को प्रतिधारित करना चाहिये, इसके विपरीत होने पर अधिकतम लाभांश वितरित किया जा सकता है अर्थात संस्था अंशों के मूल्य को अधिकतम करने हेतु लाभांश नीति का अनुसरण निम्नवत कर सकती है।

यदि r>Ke, तो लाभों का 100: प्रतिधारण अर्थात् लाभांश भुगतान शून्य होगा।
यदि r=Ke, लाभांश नीति अंशों के मूल्य को प्रभावित नहीं करती है।
यदि r<Ke, प्रतिधारण नहीं कर 100: लाभांश का भुगतान कर देना चाहिये।

प्रोफेसर जेमस. इ. वाल्टिर ने अपने लाभांश मॉडल में यह कहा है, कि फर्म का लाभांश निर्णय एक उचित निर्णय है । फर्म की विनियोग नीति लाभांश नीति से अलग नहीं की जा सकती और दोनों आपस में जुड़ी हुई हैं । उचित लाभांश नीति का चयन फर्म के मूल्यल को प्रभावित करता है । मूल्य अधिकतम करने के उद्देश्यस की रोशनी में उचित लाभांश नीति बनाने में वाल्टंर का मॉडल फर्म के आंतरिक प्रत्याय दर r, और पूंजी की लागत k में सम्बन्धों की महत्ता दर्शाता है ।

वाल्टमर मॉडल की मान्यकताएं

वाल्टमर का मॉडल निम्न मान्यताओं पर आधारित है –

1. सभी वित्तीय सहायता बकाया कोषों से ली जाती है; यानि कि ऋण और नए अंश जारी नहीं किए जाते ।
2. फर्म की पूंजी की लागत और उसका आंतरिक प्रत्याय दर स्थाई है । इसका अर्थ यह हुआ कि अतिरिक्त विनियोग के साथ फर्म के व्व्सायिक खतरे में कोई बदलाव नहीं आता ।
3. सभी आय या तो एक दम विभाजित कर दी जाती हैं या रख ली जाती हैं।
4. मुख्य variable यानि EPS (प्रति अंश आय) और DPS (प्रति अंश लाभांश) में कोई बदलाव नहीं आता ।
5. फर्म की बहुत लम्बी न गिनी जाने वाली आयु है ।

वाल्टर ने उचित लाभांश निर्णय के लिए निम्नल हिसाब की इकाई बनाई है –

$$A = \frac{DPS}{K} + \frac{\frac{r}{k}(EPS - DPS)}{k} \quad \text{........(12.1)}$$

जहां P = बाजारी मूल्यी प्रति अंश
DPS = लाभांश प्रति अंश
EPS = आय प्रति अंश
r = आंतरिक प्रत्या य दर
K = पूंजी की लागत या पूंजीकरण दर

इकाई 12.1 यह दर्शाती है, कि बाजारी मूल्य प्रति अंश सभी लाभांशों और सभी पूंजी लाभों का जोड़ है । इकाई 12.1 में दाहिने भाग का पहला हिस्सा DPS / (k) स्थाई लाभांशों के अनगिनत स्त्रोत के वर्तमान मूल्य का प्रतिनिधित्व करता है । दूसरा भाग r⁄k (EPS&DS) / k पूंजी लाभों के वर्तमान मूल्य के अनगिनत स्त्रोत का प्रतिनिधित्व करता है । चूंकि दोनों भागों का Denominator k एक ही है, इसलिए इकाई 12.1 को इस प्रकार लिखा जा सकता है ।

$$P = DPS + r/k \frac{(EPS - DPS)}{k} \quad \text{........(12.2)}$$

लाभांश नीति के निर्णय का प्रभाव अंश के बाजारी मूल्य पर क्या पड़ता है, इस बात को पढ़ने के लिए हम इकाई 12.2 का प्रयोग करेंगे ।

उदाहरण 12.1 (Illustration 12.1)

फर्म के बारे में निम्न सूचना उपलब्ध है –

पूंजी करण दर (k) = 12%

आय प्रति अंश = 12 रू.

विनियोग के मान्य(दर (r)

(i) = 16 %
(ii) = 8 %
(iii) = 12 %

निम्न अदायगी अनुपातों को लेकर वाल्टर मॉडल का प्रयोग करते हुए लाभांश नीति का अंश के बाजारी मूल्य पर प्रभाव दर्शाइए : –

(i) 0% (ii) 50% (iii) 75% और (iv) 100%

उत्तर

विभिन्न अदायगी अनुपातों और विनियोग के विभिन्न प्रत्योय दरों पर फर्म के बाजारी अंशों की गणना तालिका 12.1 में की गई है ।

तालिका 12.1

लाभांश नीति और अंशों का मूल्य

(वाल्टरर मॉडल)

R = 16 %	r = 8 %	r = 12 %
R > k	r < k	r = k
अदायगी अनुपात – 0 %		
DPS = 0	DPS = 0	DPS = 0

$P = 0 + \frac{(.16/.12)(12-0)}{.12}$ $P = 0 + (.08/.12)(12-0)\frac{.12}{.12}$ $P = 0 + \frac{(.12/.12)(12-0)}{.12}$

= 133.33 रु. = 66.67 रु. = 100 रु.

अदायगी अनुपात 50 %

DPS = 6 रु. DPS = 6 रु. DPS = 6 रु.

$P = 6 + \frac{(.16/.12)(12-6)}{.12}$ $P = 6 + \frac{(0.08/.12)(12-6)}{.12}$ $P = 6 + \frac{(.12/.12)(12-6)}{.12}$

= 116.67 रु. = 83.33 रु. = 100 रु.

अदायगी अनुपात 75 %

$P = 9 + \frac{(.16/.12)(12-9)}{.12}$ $P = 9 + \frac{(0.08/.12)(12-9)}{.12}$ $P = 9 + \frac{(.12/.12)(12-9)}{.12}$

= 108.33 V. = 91.67 V. = 100 V.

अदायगी अनुपात 100 %

$P = 12 + \frac{(.16/.12)(12-12)}{.12}$ $P = 12 + \frac{(.08/.12)(12-12)}{.12}$ $P = 12 + \frac{(.12/.12)(12-12)}{.12}$

= 100 रु. = 100 रु. = 100 V.

तालिका 12.1 यह दर्शाता है, कि वाल्टर मॉडल के अनुसार उचित लाभांश नीति आंतरिक प्रत्याय दर और फर्म की पूंजी की लागत के सम्बन्ध पर निर्भर करती है । वाल्टंर मॉडल के उत्तम अदायगी अनुपात पर मुख्य बातें नीचे सारांश में दी गई है :–

बढ़ती फर्में (Growth Firms) r > k

बढ़ती फर्में वह होती हैं, जिनका आंतरिक प्रत्याय दर उनकी पूंजी की लागत से अधिक होता है । इन फर्मों के पास उचित विनियोग के मौके होते हैं, जो इनको अपनी पूंजी की लागत से अधिक प्रत्याय अर्जित करने में मदद करते हैं । फर्म की उन्नति के लिए सबसे अधिक उचित अदायगी अनुपात 0% है ।

तालिका 12.1 दर्शाता है, कि बढ़ती फर्म का बाजारी मूल्य् (133.33 रू.) तब अधिकतम है, जब अदायगी अनुपात 0% और तब न्यूनतम है (100 रू.) जब वह अपनी सारी आय विभाजित कर देती है । प्रति अंश बाजारी मूल्य तब तब बढ़ता है, जब जब अदायगी अनुपात कम होता है। इसलिए बढ़ती फर्म का अदायगी अनुपात 0% है ।

गिरती फर्में (Declining firms) (r < k)

गिरती फर्मों के पास अपने बकाया कोषों विनियोग करने के लिए लाभवन्य विनियोग मौके नहीं होते । अगर आय को दोबारा से विनियोगित कर दिया जाए तो आंतरिक प्रत्याय दर r पूंजी की लागत से कम होगा । इन फर्मों के लिए उचित अदायगी अनुपात 100 % है और इसी अदायगी अनुपात पर इनका प्रति अंश बाजारी मूल्य अधिकतम होता है । तालिका 12.1 दर्शाता है, कि गिरती फर्म का बाजारी मूल्य प्रति अंश 100 % अदायगी अनुपात पर अधिकतम (100 रू.) है और 0% अदायगी अनुपात पर न्यूनतम यानि (66.67 रू.) है । प्रति अंश बाजारी मूल्य अदायगी अनुपात के कम होने के साथ कम होता जाता है । इसलिए गिरती

फर्मों के लिए उचित अदायगी अनुपात 100 % यानि कि सम्पूर्ण आय लाभांश के तौर पर विभाजित कर दी जाए ।

सामान्य फर्म (r = k)

सामान्य फर्मों के पास अधिक पैसा देने वाले विनियोग मौके नहीं होते है। उनका आंतरिक प्रत्यायय दर r उनकी पूंजी की लागत k के बराबर होता है । इन फर्मों के लिए लाभांश नीति का उनके अंश के बाजारी मूल्यी पर कोई प्रभाव नहीं होता। तालिका 9.1 दर्शाता है, कि सामान्य फर्मों के अंश का बाजारी मूल्य (100 रू.) विभिन्न् अदायगी अनुपातों पर समान रहता है । इसलिए सामान्य फर्मों के लिए अलग से कोई उचित लाभांश नीति नहीं है । दूसरे शब्दों में सामान्यं फर्मों के लिए लाभांश निर्णय का कोई औचित्य नहीं है ।

सम्पन्न करते हुए यह कहा जा सकता है, कि बढ़ती फर्मों (r > k) और गिरती फर्मों (r < k) के मामले में वाल्टर मॉडल लाभांश निर्णय का अंशों के बाजारी मूल्य पर प्रभाव पड़ता है । बढती हुई फर्मों को कोई लाभांश नहीं देना चाहिए। बल्कि सम्पूर्ण पैसा दोबारा व्यवसाय में लगा देना चाहिए और गिरती फर्मों को सारी आय लाभांश के तौर पर वितरित कर देनी चाहिए और कोई भी पैसा अपने पास नहीं रखना चाहिए । लाभांश निर्णयों का सामान्य फर्मों के मामले में (r = k) कोई औचित्य नहीं है। इसलिए फर्म का लाभांश निर्णय विनियोग निर्णयों के उपलब्ध होने पर काफी निर्भर करता है ।

वाल्टर मॉडल की आलोचनाएं (Criticism of Walters Model)

वाल्टर प्रमेय अंश के मूल्य निर्धारण का केवल सैद्धान्तिक दृष्टिकोण ही प्रस्तुत करता है, जबकि बाजार में अंश का मूल्य लाभांश की दर एवं प्रतिधारित आय के अलावा अनेक अन्य तत्वों यथा कर नीति, सरकारी प्रतिबंध, तरलता स्थिति आदि से भी प्रभावित होता है, साथ ही मान्यताओं के कारण भी इस प्रमेय की आलोचना की गई है। प्रमुख आलोचनायें निम्नवत् हैंः–

1. **बाह्य वित्तीय स्त्रोतों की अवहेलना (Ignores External Financing):** अधिकांश संस्थाओं द्वारा अपनी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति ऋणों या नये निर्गमन द्वारा की जाती है, वास्तविकता से परे है।
2. **स्थिर पूंजी की लागत (Unstable cost of capital):** संस्था के जोखिम के स्वरूप में परिवर्तन के साथ पूँजी की लागत भी परिवर्तित होती रहती है। अतः पूँजी लागत के स्थिर होने की मान्यता भी अवास्तविक है।
3. **आंतरिक प्रत्याय दर की स्थिरता काल्पनिक (Stable internal rate of return is imaginary):** संस्था द्वारा अर्जित प्रत्याय दर अस्थिर होती है, क्योकि विनियोग में परिवर्तन से लाभों में परिवर्तन होता है, अतः स्थिर अर्जन दर एक काल्पनिक धारणा है।

12.4.2 गार्ड़न्स मॉडल

गाडर्नस मॉडल एक अन्य मॉडल है, जो यह मानता है, कि लाभांश निर्णय फर्म के मूल्यांकन में सक्रिय पात्र है ।

गाडनर्स मॉडल की मान्यताएं (Assumptions of Gordon's Model)

गाडर्नस मॉडल निम्न मान्यताओं पर आधारित है : –

1. फर्म सम्पूर्ण अंश फर्म है ।

2. कोई बाहरी वित्त नहीं है, यानि कि विनियोग कार्यों के लिए बकाया कोष एक मात्र स्त्रोत हैं ।
3. आंतरिक प्रत्यातय दर r और पूंजी की लागत k स्थाई है ।
4. बकाया अनुपात (Retention ratio) (कुल आय का वह हिस्सा जो व्यावसाय में रख लिया गया) एक बार निर्णित स्थाई रहता है । यानि कि उन्नति दर (g = br) भी स्थाई है ।
5. पूंजी की लागत k उन्नति दर g से अधिक है ।

गार्डनस लाभांश पूंजीकरण मॉडल (Gordon's dividend capitalization Model)

गार्डन का प्रमेय भी वाल्टर से मिलता जुलता है, अर्थात् गार्डन की विचारधारा भी थी कि अंशों के मूल्य को लाभांश नीति प्रभावित करती है। गार्डन के अनुसार भविष्य की अनिश्चितता के कारण लाभांश आय के एक रूपये का मूल्य पूंजी लागत के एक रूपये के मूल्य ये अधिक होता है। अनिश्चितता एवं बट्टा दर में समय व्यतीत होने के साथ वृद्धि होती है। विनियोजक इस अनिश्चितता से बचना चाहते हैं। अतः वे वर्तमान लाभांश को अधिक महत्व देते हैं। इस प्रमेय के अनुसार अंश का बाजार मूल्य अंश पर अंत समय तक प्राप्त होने वाले लाभांश के वर्तमान मूल्य के बराबर होता है।

लाभांश के अंश के बाजारी मूल्य पर प्रभाव को दर्शाने के लिए लाभांश पूंजीकरण मॉडल बनाया । इस मॉडल के अनुसार अंश का बाजारी मूल्य भविष्य में अंश को मिलने वाले लाभांश के अनगिनत स्त्रोतों के वर्तमान मूल्य के बराबर है । गाडर्न मॉडल को सरलता से नीचे बताया गया है ।

$$P = \frac{EPS\,(1-b)}{k-br} \quad ....(12.3)$$

जहां

P = प्रति अंश मूल्य

EPS = प्रति अंश आय

B = बकाया अनुपात (Retention Ratio)

1 – b = अदायगी अनुपात (Payout Ratio)

K = पूंजी की लागत / पूंजीकरण दर

Br = g = उन्नति दर r यानि सम्पूर्ण अंश फर्म का आंतरिक प्रत्याय दर

इकाई 12.3 यह दर्शाती है, कि आंशिक आय EPS, लाभांश नीति b, आंतरिक प्रत्याय दर r और फर्म की पूंजी की लागत k के आपसी सम्बन्धों का अंशों के मूल्य पर सीधा प्रभाव है। उदाहरण 12.2 में लाभांश नीति के सम्पूर्ण अंश फर्म के अंशों के मूल्य पर प्रभाव को दर्शाया गया है ।

उदाहरण 12.2 (Illustration 12.2)

A Ltd. के बारे में निम्नन सूचना उपलब्ध है ।

पूंजीकरण दर K = 10%

प्रति अंश आय = 10 रू.

मान्य विनियोग दर (R)

(i) 12 %

(ii) 8 %

(iii) 10 %

निम्न बकाया अनुपातों का प्रयोग करते हैं । गाडनर्स मॉडल के अनुसार अंश के बाजारी मूल्यों पर लाभांश नीति के प्रभाव दर्शाइए ।

(i) 0 %
(ii) 40 %
(iii) 60 %
(iv) 80 %

उत्तर (Solution) :

गार्डनस मॉडल के अनुसार विभिन्न अदायगी अनुपात लेकर अंशों के बाजारी मूल्यों की गणना तालिका 12.2 में की गई है ।

तालिका – 12.2

लाभांश नीति और अंशों के मूल्य

गाडर्नस मॉडल

R = 12 %	R = 8 %	R = 10 %
$r > k$	$r < k$	$r = k$
बकाया अनुपात = 0 %		
DPS = 10 रु .	DPS = 10 रु.	DPS = 10 रु.
$P = \frac{10\,(1-0)}{.10\ \ (0 \times .12)}$	$P = \frac{10\,(1-0)}{.10\ \ (0 \times .00)}$	$P = \frac{10\,(1-0)}{.10\ \ (0 \times .10)}$
=100 रु .	=100 रु.	=100 रु.
बकाया अनुपात = 40 %		
DPS = 6 रु .	DPS = 6 रु.	DPS = 6 रु.
$P = \frac{10\,(1-.4)}{.10-(.4 \times .12)}$	$P = \frac{10\,(1-.4)}{.10-(.4 \times .08)}$	$P = \frac{10\,(1-.4)}{.10-(.4 \times .1)}$
=115.38 रू .	=88.23 रू.	=100 रू.
बकाया अनुपात = 60 %		
DPS = 4 रु .	DPS = 4 रु.	DPS = 4 रु.
$P = \frac{10\,(1-.6)}{.10-(.6 \times .12)}$	$P = \frac{10\,(1-.6)}{.10-(.6 \times .08)}$	$P = \frac{10\,(1-.6)}{.10-(.6 \times .10)}$
=142.86 रु .	= 76.92 रु.	=100 रु.
बकाया अनुपात = 80 %		
DPS = 2 रु .	DPS = 2 रु.	DPS = 2 रु.
$P = \frac{10\,(1-.8)}{.10-(.8 \times .12)}$	$P = \frac{10\,(1-.8)}{.10-(.8 \times .08)}$	$P = \frac{10\,(1-.8)}{.10-(.8 \times .10)}$
= 500 रु .	= 55.56 रु.	=100 रु.

तालिका 12.2 यह दर्शाता है, कि फर्म के लाभांश निर्णय का उसके अंश के बाजारी मूल्य पर प्रभाव पड़ता है । $r < k$ की स्थिति में ज्यादा कोषों के साथ अंश के बाजारी मूल्य पर उल्टा प्रभाव पड़ता है । दूसरी तरफ $r > k$ की स्थिति में इसका अंश के बाजारी मूल्य पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है । जब $r = k$ होता है, तो लाभांश निर्णय अंश के मूल्य को प्रभावित नहीं करता । इस तरह यह देखा जा सकता है, कि गार्डनस मॉडल और वालटर्स मॉडल के नतीजे समान हैं । यह समानता उन मान्यताओं की समानता के कारण है, जो दोनों मॉडलों का आधार है।

गार्डनस मॉडल की आलोचनाएं (Criticism of Gordon's Model)

वाल्टर्स मॉडल की तरह गोर्डनस मॉडल की आलोचना भी उन मान्यताओं की तरह की जा सकती है, जिस पर यह आधारित है । यह मॉडल जिन मान्यताओं पर आधारित है, वह वास्तविक जिंदगी की परिस्थितियों में सही नहीं है ।

12.4.3 मोदिगिलानी और मिलर मॉडल

मोदिगिलानी और मिलर (MM) के अनुसार फर्म के लाभांश निर्णय का अंश मूल्यों पर कोई प्रभाव नहीं होता, इसलिए इसका कोई नतीजा नहीं है । वह यह बहस करते हैं, कि फर्म का मूल्य उसकी आय पर निर्भर करता है, जो कि विनियोग नीति का नतीजा है । अगर फर्म का विनियोग निर्णय दिया गया हो तो आय का लाभांशों और बकाया कोष में विभाजन फर्म के मूल्य को निश्चित करने के लिए कोई औचित्य नहीं रखता ।

MM विधि की मान्यताएं (Assumptions of MM Hypothesis)

MM लाभांश नीति निम्न मान्यताओं पर आधारित है ।

1. **उपयुक्ता पूंजी बाजार** (Perfect Capital Markets) जहां विनियोक्ता उच्च तरीके से पेश आते हैं । सूचना आसानी से उपलब्ध है और कार्य बिना किसी लागत के होते हैं । प्रतिभूतियों को अनगिनत तौर पर विभाजित किया जा सकता है, कोई भी विनियोक्ता इतना बड़ा नहीं है, जो फर्म के बाजारी मूल्य को प्रभावित कर सके ।
2. कर नहीं है । दूसरी तरह कहा जाए तो लाभांश और पूंजी लाभों पर कर दरों में कोई भिन्नता नहीं है ।
3. फर्म की विनियोग नीति स्थाई है । वह लाभांश नीति पर निर्भर नहीं करती ।
4. सभी विनियोक्ता फर्म के भविष्य विनियोगों और लाभों के बारे में निश्चित है। इसका अर्थ यह है कि विनियोक्ता भविष्य मूल्यों और लाभांशों के बारे में निश्चित रूप से कह सकते हैं ।

MM नीति का Proof (Proof of MM Hypothesis)

MM मॉडल के सहयोग से यह Proof दिया जा सकता है :–

1. अवधि के शुरू में अंश का बाजारी मूल्य MM के अनुसार अवधि के अंत में बाजारी मूल्य के वर्तमान मूल्य + वर्ष के लाभांश के बराबर होता है । सांकेतिक तौर पर –

$$P_0 \frac{P_1 + D_1}{(1 + K)} \qquad (12.4)$$

जहां

P_0 = एक अंश की प्राथमिक अवधि में बाजारी मूल्य

P_1 = अवधि के अंत में एक अंश का बाजारी मूल्य

D_1 = अवधि के अंत में लाभांश प्रति अंश

K = पूंजी की लागत

2. फर्म (V) की प्राथमिक अवधि में कुल बाजारी मूल्यं इकाई 12.4 के दोनों तरफ को कुल देय अंश n से गुणा कर लगाया जा सकता है ।

$$N = n P_0 = \frac{n P_1 + n D_1}{(1 + K)} \qquad (12.5)$$

3. अगर फर्म अंत में Δn नए अंश बेच दे । तो प्राथमिक अवाधि में फर्म के मूल्य को इस प्रकार लिखा जा सकता है :

$$V = \frac{nP_0 = nP_1 + nD_1 + \Delta nP_1 - \Delta nP_1}{(1+K)}$$

$$= n\,D_1 \frac{(n+\Delta n)P_1 \quad \Delta n\,P_1}{(1+K)} \qquad (12.6)$$

4. MM ने फर्म के लिए एक स्थाई वित्तीय कार्यक्रम माना। फर्म का विनियोग कार्यक्रम या तो बकाया कोषों या नये अंशों को जारी कर या दोनों द्वारा वित्त किया जा सकता है । इसलिए नए अंश जो जारी किए जाएंगे उनका मूल्य :

$$\Delta n\,P_1 = I - (X - {}_nD_1)$$

$$= I - X + {}_nD_1 \qquad (12.7)$$

जहां I = अवधि के दौरान कुल विनियोग

X = अवधि के दौरान कुल लाभ

इकाई 9.6 में ΔnP_1 मूल्य को प्रतिस्थापित कर उसे दोबारा ऐसे लिखा जा सकता है :

$$\Delta\,n\,P_1 = \frac{nD_1 + (n+\Delta n)P_1 - (I - X + {}_nD_1)}{1+K}$$

$$= \frac{nD_1 - (n+\Delta n)P_1 - 1 + X - {}_nD_1}{1+K}$$

$$= \frac{(n+\Delta n)P_1 \;\; -1 + X}{(1+K)} \qquad (12.8)$$

6. चूंकि लाभांश D इकाई 12.8 में नहीं है, तो यह नतीजा निकाला जा सकता है कि लाभांश अंशों के मूल्यों को प्रभावित नहीं करता ।

उदाहरण 12.3 (Illustration 12.3)

मधु डिजाइनरस लिमिटेड के चलायमान 50,000 अंश हैं जो 100 रूपए प्रति एक के हिसाब से बिक रहे हैं । फर्म चालू वर्ष के अन्त में 6 रूपए प्रति अंश लाभांश देने का विचार बना रही है। फर्म की पूंजी की लागत 12% है । वर्ष के अन्त में अंश का मूल्य क्या होगा अगर (i) लाभांश घोषित न किया जाए (ii) लाभांश घोषित किया जाता है ? मान लिजिए फर्म लाभांश दे रही है, शुद्ध लाभ 5,00,000 रू. है और इस अवधि के दौरान 10,00,000 रू. के विनियोग कर रही है । इन प्रश्नों के उत्तर के लिए MM मॉडल का प्रयोग कीजिए ।

उत्तर (Solution)

अंश का मूल्य(P_1वर्ष के अन्त में निम्न प्रकार से निश्चित किया गया है :

$$P_1 = \frac{P_1 + D_1}{1+Ke}$$

$$P_1 = P_0(1 + Ke) - D_1$$

P_1 का मूल्य जब लाभांश न दिया जा रहा हो

P_1 = 100 रू. (1 + .12)- 0 = 112 रू.

जब लाभांश दिया जाता है, तो P_1

P_1 = 100 रू.(1 + .12) − 6 रू.= 106 रू.

नये विनियोग को वित्त करने के लिए जारी किए जाने वाले नए अंश Δn निम्न प्रकार से निश्चित किए जा रहे हैं:

$\Delta nP_1 = 1 - (X - n\,D_1)$ रू. 106 Δn = 10,00,000 रू.

\- (5,00,000 रू. – 3,00,000 रू.)

= 8,00,000 रू.

$= \frac{8,00,000}{106}$ = 7547 रू.

आलोचनायें (Criticism)

1. **कर विभेदक** (Tax Differentiation): एम.एम. मान्यता में करों का न होना अवास्तविक है। अंशधारियों को लाभांश एवं पूँजीगत लाभों पर विभिन्न दरों से करों का भुगतान करना पड़ता है। सामान्यतया पूँजी लाभ पर कर की दर निर्धारित होती है, अतः लाभांश के भुगतान की अपेक्षा अर्जनों के प्रतिधारण की नीति को प्राथमिकता दी जाती है।

2. **निर्गमन लागतों की विद्यमानता** (Existence of Issue Costs): संस्था द्वारा नए अंशों अथवा ऋण–पत्रों के निर्गमन से वित्त व्यवस्था किये जाने पर निर्गमन व्यय, यथा–अभिगोपन कमीशन, दलाली आदि के रूप में करने पड़ते हैं। अतः आंतरिक वित्त पोषण की तुलना में बाह्य वित्त पोषण मंहगा पड़ता है। अतः लाभांशों के स्थान पर प्रतिधारित अर्जनें लाभदायक होती हैं।

3. **चालू आय की इच्छा** (Desire of Current Income): इस विचारधारा के अनुसार अंशधारी की सम्पदा वही रहती है, चाहे लाभांश भुगतान किया जाये अथवा नहीं, किन्तु जब लाभांश भुगतान नहीं किया जाता है तब चालू आय की इच्छा पूर्ति के लिए अंशधारी अपने अंशों का विक्रय करता है जिस पर दलाली आदि के रूप में व्यय करना पड़ता है। इसलिए भावी लाभों (पूंजीगत लाभ) की तुलना में चालू आय को अधिक पसंद किया जाता है।

4. **विविधिकरण** (Diversification): विनियोजक अपने धन का विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों में विनियोजन करना चाहते हैं। इसलिए वे संस्था द्वारा उसकी अर्जनों के वितरण को पसंद करेंगे ताकि प्राप्त लाभांश का विनियोजन दूसरी संस्थाओं में करके अधिक आय का अर्जन कर सकें।

5. **अनिश्चितता** (Uncertainty): भावी परिस्थितियों के सही पूर्वानुमान के अभाव में अनिश्चितता बनी रहती है। इससे अंशों के मूल्य पर अच्छा प्रभाव नहीं होता है।

6. **लाभांश संबंधी सूचना** (Dividend related information): लाभांश की घोषणा तथा भुगतान संबंधी सूचना संस्था की वित्तीय सुदृढ़ता तथा लाभदायकता के बारे में अवगत कराती है। लाभांश अनुपात में वृद्धि की संस्था की संभावित अर्जनों में स्थायी वृद्धि का संकेत देती है। इस प्रकार लाभांश नीति में परिवर्तन अंश के मूल्य को प्रभावित करता है।

इस प्रकार अंशधारी लाभांश एवं प्रतिधारण से उत्पन्न पूँजी लाभ में उदासीन नहीं रहते हैं। संस्था की लाभांश नीति निश्चित रूप से संस्था के मूल्य को प्रभावित करती है। मूलभूत मान्यताएँ केवल काल्पनिक है, इसलिए उपर्युक्त सिद्धान्त वर्तमान परिस्थितियों में अनुपयुक्त है।

12.5 बोनस अंश के रूप में लाभांश

कम्पनी के पास प्रारंभ में पर्याप्त मात्रा में तरलता का अभाव एवं अर्जित आय में से भावी विनियोग की आवश्यकता के मध्य कई बार कम्पनी लाभांश का वितरण नकद में नहीं करती है। भविष्य में लाभांश कोष में पर्याप्त उपलब्धता होने पर लाभांश नकद में नहीं दिया गया, लाभ के बदले अंश निर्गमन कर दिये जाते हैं उन्हें बोनस अंश कहा जाता है।

सामान्यतः निम्नलिखित परिस्थितियों में बोनस अंश निर्गमित किये जाते हैं :–

1. जब कम्पनी के पास लाभांश वितरण हेतु तरल साधनों का अभाव हो।
2. जब पूँजी की तुलना में संचय में अत्यधिक राशि जमा हो गयी हो, अर्थात् व्यवसाय में लगी हुई प्रभावशाली पूँजी व समस्त अंश पूँजी में काफी अंतर होने से पूंजी संरचना के विषय में सही व शुद्ध ज्ञान प्राप्त न हों सके।
3. जब अंशों का बाजार मूल्य अत्यधिक ऊँचा हो गया हो, जिसके कारण उनका क्रय–विक्रय सामान्य रूप से न हो रहा हो।
4. जब कम्पनी की उच्च लाभांश दर को सामान्य प्रत्याय दर के समकक्ष लाना हो ताकि मालिकों व श्रमिकों के मध्य संबंध अच्छे बने रहें।

बोनस अंश निर्गमन से लाभ (Advantages of Bonus Shares)

1. लाभ का वितरण होने के बावजूद कम्पनी की तरलता स्थिति पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है।
2. यदि अंशधारी चाहे तो बोनस अंश को बाजार में बेचकर नकद राशि प्राप्त कर सकता है।
3. लाभांश दर में प्रत्यक्षः वृद्धि नहीं होने से श्रमिक स्वामी संबंध अच्छे बने रहते हैं।
4. अंशधारियों को लाभांश की दर चाहे वही मिलें तो पूर्व में मिल रही थी किन्तु लाभांश की कुल रकम मूल विनियोग लागत के प्रतिशत के रूप में अधिक होती है अतः अंशधारी संतुष्ट रहते है।
5. कम्पनी की अभिदत्त अंश पूंजी व स्थायी सम्पत्तियों के अनुपात के अंतर को कम किया जा सकता है।
6. पूंजी संरचना सही होने से चिट्ठा अधिक संतुलित रूप प्रस्तुत करता है।
7. स्कंध लाभांश के रूप में अंश वितरित कर देने से पूंजी निर्गमन के विभिन्न व्यय नहीं करने पड़ते हैं।

बोनस निर्गमन से हानियाँ (Disadvantages of Bonus Shares)

1. पूँजीगत बोनस घोषित होने से कम्पनी के अंशों में सट्टे को बढ़ावा मिलता है।
2. यदि भविष्य में लाभ आशा के अनुरूप नहीं बढ़ते हैं तो कम्पनी के लिए लाभांश की विद्यमान दर को कायम रखना कठिन होने से अंशों के बाजार मूल्य में कमी आ सकती है।
3. बोनस निर्गमन के तुरन्त पश्चात् प्रति अंश मूल्य में अंशों की संख्या बढ़ने के कारण गिरता है।
4. यदि कम्पनी भविष्य में अपनी लाभांश की दर को कायम न रख सकी तो कम्पनी की प्रतिष्ठा गिर जायेगी।

बोनस अंश निर्गमन के प्रभाव (Effects of Issue of Bonus Shares) :

1. निर्गमित अंशों की संख्या में वृद्धि हो जाती है।
2. स्वामी पूँजी की राशि पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
3. प्रति अंश आय (Earning Per Share) बोनस अंश निर्गमन के अनुपात में गिर जाती है।

12.6 भारतीय कम्पनी अधिनियम में लाभांश वितरण सम्बन्धी प्रावधान

भारत में लाभांश की घोषणा एवं वितरण के लिए कम्पनीयों को अपने अन्तर्नियमों, कम्पनी अधिनियम–1956 की धारा 205 व 206 एवं सारणी 'अ' के नियमों का पालन करना जरूरी है। लाभांश की घोषणा करना संचालक मण्डल के निर्णय पर निर्भर करता है, अंशधारी संचालकों को लाभांश घोषित करने के लिए बाध्य नहीं कर सकते, किन्तु संचालक मण्डल द्वारा रिपोर्ट में दिये गये सुझाव के आधार पर कंपनी की साधारण सभा में एक बार लाभांश की घोषणा होने के बाद लाभांश का भुगतान करना अनिवार्य हो जाता है। लाभांश घोषणा के बाद यह कम्पनी के लिए ऋण के समान हो जाता है, जिसका भुगतान प्राप्त करने का अधिकार अंशधारियों को होता है। लाभांश के विषय में कम्पनी को अपने पार्षद सीमा नियमों एवं अन्तर्नियमों में की गई व्यवस्थाओं का पालन करना होता है।

धारा–405: इस धारा के अनुसार लाभांश का भुगतान केवल लाभों में से ही किया जा

सकता है, पूँजी में से नहीं। इस धारा में यह प्रावधान है कि कंपनी द्वारा किसी वर्ष **लाभंश की घोषणा एवं भुगतान :**

i. ह्रास की व्यवस्था करने एवं पिछले वर्षो के नुकसान को अपलिखित करने के बाद उस चालू लेखा वर्ष के लाभों से करना चाहिये।

ii. गत वर्षो के लाभों, अथवा

iii. जहां केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकार ने लाभांश की प्रत्याभूति दी हो और जनहित में हो तो इसके अधीन प्राप्त होने वाली राशि से लाभांश भुगतान हो सकता है।

धारा–205(2) में वास्तविक लाभ की परिभाषा दी गई है। इसमें वह लाभ सम्मिलित है जो ह्रास (Depreciation) के लिए व्यवस्था करने के बाद शेष रहते हैं। हालांकि पिछले वर्षो के अवितरित लाभ को इसमें सम्मिलित किया जा सकता है, यदि उसमें से ह्रास कोष के लिए व्यवस्था कर दी गई हो। इसी प्रकार न्यूनतम लाभांश की गारन्टी के लिये केन्द्रीय अथवा राज्य सरकार द्वारा प्रदान की गई धन राशि भी वास्तविक लाभों में सम्मिलित की जाती है। विशेष परिस्थिति को छोड़कर कम्पनी लाभांश केवल वास्तविक लाभों में से ही दे सकती है।

धारा–205(3) : इस धारा में वर्णित प्रावधानों के अनुसार लाभांश का भुगतान निम्न स्थितियों को छोड़कर नकद में किया जाना चाहियेः–

i. लाभों का पूँजीकरण करना।

ii. कम्पनी के संचय को पूर्णदत्त बोनस अंशो के निर्गमन हेतु प्रयुक्त करना।

iii. सदस्यों को पूर्व निर्गमित अंशो के अदत्त भाग का समायोजन करना।

धारा–206 : लाभांश का भुगतान निर्दिष्ट व्यक्तियों, यथा

i. रजिस्टर्ड अंशधारियों को या उनके बैंकर को।

ii. यदि अंश अधिपत्र जारी किया गया हो तो उस अधिपत्र के वाहक अथवा बैंकर को किया जा सकता है।

आयकर अधिनियम में उल्लेखित प्रावधानों के अनुसार कंपनी लाभांश पर आयकर उद्गम स्थान पर काटकर सरकार के पास जमा कराती है। यह कर कंपनी द्वारा लाभों पर दिये जाने वाले कर के अतिरिक्त है। कंपनी काटे गये आयकर का प्रमाण–पत्र अंशधारी को भेजती है। ताकि वह इस आय कर का समायोजन अपनी

आय में करवा सके। लाभांश घोषणा के पश्चात् यदि कुछ अंशधारी लाभांश की मांग नही करते है तो इसे न मांगा गया या न चुकाया गया लाभांश (Unclaimed Dividend) कहते हैं। ऐसे लाभांश को कम्पनी संशोधन अधिनियम–1974, जो 1 फरवरी, 1975 से लागू है, के प्रावधानों के अनुसार लाभांश घोषणा की तिथि से 42 दिन बाद, 7 दिन के अंदर एक
अनुसूचित बैंक में (Unpaid Dividend a/c of .... Co. Ltd. / Pvt. Ltd.) के नाम से खाता खोलकर जमा कराना चाहिये। तीन वर्ष तक भी अंशधारियों द्वारा लाभांश न मांगने पर यह राशि केन्द्रीय सरकार को जमा करानी चाहिए।

धारा–207: इस धारा के अनुसार सामान्यतः घोषणा की तिथि के बाद 42 दिन के अन्दर लाभांश का भुगतान कर दिया जाना चाहिये अन्यथा दोषी व्यक्तियों के लिए 7 दिन की सजा व आर्थिक दण्ड की व्यवस्था है। इस नियम के केवल निम्नलिखित
अपवाद हो सकते हैः–

i. किसी कानून अथवा अध्यादेश के कारण कम्पनी इन्हे चुकाने की स्थिति में नहीं हों।
ii. अंशधारी द्वारा लाभांश के भुगतान के विषय में कोई विशेष निर्देश दिये गये हो, जिनका पालन करना संभव न हो।
iii. लाभांश चुकाये जाने के संबंध में स्वत्व संबंधी विवाद हो।
iv. यदि ऐसे किसी कारणों से कम्पनी भुगतान न कर सकती हो, जो कम्पनी के नियन्त्रण से परे हो, और
v. सदस्य द्वारा कम्पनी को देय किसी भुगतान के लिए लाभांश की रकम जमा कर ली गई हो।

कम्पनी पूँजी में से लाभांश का वितरण नही कर सकती, क्योंकि इससे पूँजी की राशि में कमी होती है। कम्पनी अधिनियम की धारा–100 के अनुसार न्यायालय की आज्ञा के बिना पूँजी में कमी नही की जा सकती है। विशेष स्थति में पूँजी लाभों (Capital gains) में से लाभांश दिया जा सकता है, किन्तु ऐसा तभी किया जा सकता है जब धारा – 105 में वर्णित अग्रलिखित शर्ते पूरी होती होः–

i. कम्पनी के अन्तर्नियम में इस संदर्भ में प्रावधान हो।
ii. इन लाभों की राशि कम्पनी ने वसूल कर ली हो,
iii. पिछली पूँजीगत हानियां हो तो वे समायोजित कर ली गई हों,
iv. इनके भुगतान के बाद भी कम्पनी की ऋण चुकाने की क्षमता में कमी न हो, एवं
v. समस्त सम्पत्तियों के पुर्नमूल्यांकन के बाद भी ये लाभ शेष रहते हों।

कम्पनी के संचालक यदि जान–बूझकर हिसाब–किताब में गलत सूचनायें देकर अथवा सम्पत्तियों के मूल्यों को ऊँचा दिखाकर निकाले गये कल्पित या फर्जी लाभों (Fictitious Profits) में से लाभांश बांटते हैं, तो यह प्रथम दृष्टया अभियोग (Prima-facie offence) माना जाता है और वे इसके लिए स्वयं व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी माने जाते हैं। यदि कम्पनी के सदस्य यह जानते हुए भी कि पूँजी में से लाभांश दिया जा रहा है, इसमें भाग लेते हें तो इनसे यह रकम लौटाई जा सकती है। निम्नलिखित दशाओं में पूंजी में से लाभांश का वितरण माना जायेगा :–

क. स्थायी सम्पत्ति की बिक्री द्वारा प्राप्त राशि को यदि कम्पनी द्वारा लाभांश के रूप में बांट दिया गया हो।

ख. कुछ आयगत व्ययों को पूँजीगत मानकर दिखाये गये लाभ को बांट दिया गया हो, और

ग. हानि होने पर तथा पिछले वर्षों के अवितरित लाभ नहीं होने पर भी लाभांश बांट दिया गया हो।

लाभांश घोषित करने व उनके भुगतान का तरीका अन्तर्नियमों में स्पष्ट किया जाता है। कम्पनी अधिनियम के अनुरूप ही अन्तर्नियम तैयार किया जाता है, अतः इनका ध्यान रखना अनिवार्य है। कम्पनी के पार्षद सीमानियमों या अर्न्तनियमों में विभाजन योग्य लाभों की व्यवस्था की गई हो तो उनका ध्यान रखा जाना चाहिए।

लाभांश के वितरण पर प्रतिबन्ध (Restrictions of Dividend's Distribution)

कम्पनी (संशोधन) अधिनियम–1974 :

सन् 1974 में कम्पनी अधिनियम में किये गये संशोधन के अन्तर्गत लाभांश के सम्बन्ध में कम्पनी अधिनियम–1956 की व्यवस्थाओं में पर्याप्त संशोधन किये गये। लाभांश के विषय में ये व्यवस्थाएं 1 फरवरी, 1975 से लागू की गई। लाभांश के विषय में संशोधन मुख्यतः निम्न चार उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किये गये :

क. तरल स्थिति (Liquid position) असंतोषजनक होने पर कम्पनियों द्वारा लाभांश घोषित करने की प्रवृत्ति को हतोत्साहित करना।

ख. व्यवसाय की उन्नति के लिए आंतरिक साधनों के संचय को प्रोत्साहन देना,

ग. अंशधारियों को घोषित लाभांश के भुगतान को सुनिश्चित बनाना, तथा

घ. अयाचित लाभांशों **(Unclalimed dividends)** की जमा राशियों के दुरूपयोग को रोकना।

कम्पनी (संशोधन) अधिनियम–1974 में उपर्युक्त उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए इस संबंध में निम्नलिखित प्रावधान किये गये:–

1. कम्पनी द्वारा किसी वित्तीय वर्ष के लिए अधिनियम की व्यवस्थाओं के अनुरूप ह्रास (Depreciation) के लिए प्रावधान करने के बाद बचे लाभों में से कोई लाभांश तब तक घोषित नहीं किया जायेगा, जब तक कि कम्पनी द्वारा उस वर्ष के लाभों का एक निर्धारित भाग (जो कि 10: से अधिक नहीं होगा) संचित कोष में हस्तान्तरित नहीं कर दिया जाता है। साथ ही यह भी व्यवस्था की गई कि यदि कोई कम्पनी इस निर्धारित सीमा से अधिक भाग का हस्तान्तरण संचित कोष में करना चाहती है तो वह ऐसा केन्द्रीय सरकार द्वारा इसके लिए निर्धारित नियमों के अनुसार ही कर सकेगी।

2. विगत वर्ष अथवा विगत वर्षों के संचित लाभों में से लाभांश की घोषणा करने पर प्रतिबन्ध लगाया गया हो फिर भी यदि कोई कम्पनी ऐसे संचित कोषों में से लाभांश वितरण करना चाहती है, तो यह केवल उसी दशा में किया जा सकता है जबकि वह इस विषय में कम्पनी सरकार द्वारा निर्धारित नियमों का अनुपालन करें और इसके लिए सरकार की पूर्व अनुमति प्राप्त कर लें।

3. लाभांश की घोषणा के बाद 42 दिन की अवधि समाप्त हो जाने के 7 दिन के अंदर अशोधित लाभांश (Unpaid dividends) धनराशि को किसी अनुसूचित बैंक में विशेष खाता खोलकर अशोधित लाभांश खाता (Unpaid dividends Account) के नाम से हस्तान्तरित कर देना कम्पनी के प्रबन्धकों के लिए आवश्यक

होगा। इस संशोधित अधिनियम के लागू जो जाने के पहले घोषित लाभांश की अशोधित राशि यदि किसी कम्पनी में जमा थी, वह भी छः माह के अन्दर इस खाते में जमा करा देना, प्रबंधकों के लिए आवश्यक होगा। यदि कोई कम्पनी ऐसा नहीं करती है, तो वह 12% वार्षिक ब्याज इस राशि पर देने के लिए बाध्य होगी।

4. **अशोधित लाभांश खाते (Unpaid Dividend Account)** में जमा होने के बाद यदि तीन वर्ष तक की राशि अशोधित (Unpaid) अथवा अयाचित (unclaimed) रहती है तो इस राशि को केन्द्रीय सरकार के सामान्य राजस्व खाते (General Revenue Account) में हस्तान्तरित करना अनिवार्य होगा। इस हस्तान्तरण के साथ कम्पनी को एक विवरण भी सरकार को प्रस्तुत करना होगा, जिसमें इस प्रकार हस्तान्तरित की गई धन राशियों, उनके दावेदारों के नाम व पते तथा ऐसे दावेदारों को देय राशि आदि का पूर्ण विवरण होगा। इसके बाद ऐसे दावेदार लाभांश की देय राशि की वापसी (Refund) केन्द्रीय सरकार को आवेदन देकर ही प्राप्त कर सकेंगे। सरकार द्वारा उनके दावों पर विचार करके संतुष्ट होने पर उन्हें ऐसी राशि को राजस्व की वापसी (refund of revenue) की भांति अदा कर सकती है।

12.7 सारांश

व्यवसायिक संस्थान द्वारा अर्जित लाभों का प्रयोग एक महत्वपूर्ण निर्णय है । व्यवसाय द्वारा अर्जित लाभ या तो मालिकों में बांट दिए जाते हैं या व्यवसाय में दोबारा लगा दिए जाते हैं । कम्पनी के व्यवसाय में कितने लाभ लाभांश के तौर पर वितरित करने हैं, यह निर्णय नियंत्रक बोर्ड के निर्णय पर आधारित होता है । अंशधारी बोर्ड की इस ताकत में हस्तंक्षेप नहीं कर सकते, चाहे यह दर अंत में अंशधारियों द्वारा निश्चित किया जाता है लेकिन यह बोर्ड द्वारा सुझावित दर से अधिक नहीं हो सकता। मूल्यह्वास और कर आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद लाभों में से यह रोकड़ के रूप में लाभांश दिया जाता है । रोकड़ लाभांश रोकड़ में दिया जाता है। यह लाभांश अदा करने का सामान्य तरीका है। रोकड़ कम्पनी के शुद्ध मूल्य (Net worth) को कम करता है, इसलिए प्रबन्धो को सोच समझ कर योजना बनानी चाहिए। स्टॉक लाभांश कम्पनी के अतिरिक्त अंशों में दिया जाता है। यह अंश श्रेष्ठ अंश या सामान्यम अंश भी हो सकते हैं। सक्रिय लाभांश कम्पनी द्वारा अंशधारियों को अन्य) कम्पनी के अंशों या ऋृण पत्रों के रूप में दिया जाता है । यह प्रतिज्ञा पत्र (Promissory Note) के रूप में भी दिया जा सकता है । इसके अलावा मलकियत लाभांश रोकड़ के अलावा कम्पनी की सम्पत्ति के रूप में दिया जाता है।

उपयुक्त् लाभांश नीति बनाना प्रबन्ध् के लिए बड़ा सोच विचार का कार्य है क्योंकि इससे कम्पंनी की उन्नति और अंश के बाजारी मूल्य पर प्रभाव पड़ता है । एक अच्छी लाभांश नीति अंशधारियों के धन को बढ़ाने का उद्देश्य रखती है। इसे अंशधारियों और कम्पनी दोनों के स्वार्थों को ध्यान में रखते हुए बनाना चाहिए । लाभांश नीति के निर्धारण के लिए ऐसा कोई सूत्र नहीं दिया जा सकता है जो प्रत्येक स्थिति में लागू होता हो, क्योंकि यह कम्पनी की परिस्थितियों एवं प्रबंधकों की नीतियों पर निर्भर करती है। ऐसी नीति जो अंशधारियों एवं कम्पनी दोनों के लिए लाभकारी सिद्ध हों, उसे ही सुदृढ़ व सुसंगत नीति कहा जा सकता है। लाभांश नीति के निर्धारण हेतु सन् 1963 में प्रो. जेम्स ई. वाल्टर द्वारा एक प्रमेय

प्रस्तुत किया गया, जिसके अनुसार लाभांश नीति सदेव अंशों के मूल्य को प्रभावित करती है। गाडर्नस मॉडल एक अन्य मॉडल है, जो यह मानता है, कि लाभांश निर्णय फर्म के मूल्यांकन में सक्रिय पात्र है । मोदिगिलानी और मिलर (MM) के अनुसार फर्म के लाभांश निर्णय का अंश मूल्यों पर कोई प्रभाव नहीं होता, इसलिए इसका कोई नतीजा नहीं है । इस प्रकार भारत में लाभांश की घोषणा एवं वितरण के लिए कम्पनीयों को अपने अन्तर्नियमों, कम्पनी अधिनियम–1956 की धारा 205 व 206 एवं सारणी 'अ' के नियमों का पालन करना जरूरी है।

12.8 शब्दावली

लाभांश (Dividend) : लाभ का वह भाग जो अंशधारियों में बंटने के लिए नियत किया जाता है।

अधिमान अंश लाभांश (Preference Share Dividend) वह लाभांश जो अधिमान अंशधारियों को चुकाया जाता है।

समता अंश लाभांश (Equity Share Dividend) वह लाभांश जो समता अंशधारियों को चुकाया जाता है।

अन्तरिम लाभांश (Interim Dividend) दो वार्षिक सभाओं के मध्य संचालक मण्डल द्वारा घोषित लाभांश।

अंतिम लाभांश (Final Dividend) जो अंशधारियों को चुकाने के लिए साधारण सभा में घोषित किया जाता है।

नकद लाभांश (Cash Dividend) जिसका नकद में भुगतान किया जाता हो।

बोनस अंश (Bonus Share) लाभांश नकद भुगतान न कर अंश के रूप में दिया गया
हो तो ऐसे अंश बोनस अंश कहलाते हैं।

कठोर लाभांश नीति (Conservative Dividend Policy) जिसमें अंशधारियों को लाभांश कम वितरण कर अधिकांश भाग पुर्नविनियोजित किया जाता है।

उदार लाभांश नीति (Liberal Dividend Policy) अर्जित लाभों का अधिकांश भाग अंशधारियों को वितरित कर दिया जाता है।

स्थिर लाभांश नीति (Stable Dividend Policy) जिसमें प्रति वर्ष वितरित किये जाने वाले लाभांश में एक रूपता हो।

12.9 बोध प्रश्न

1. एकाकी व्यापार में लाभ पर पूर्ण अधिकार एकाकी स्वामी का होता है तथा साझेदारी व्यापार में लाभ आपस में तय किये गये .... में विभाजित कर लिया जाता है।
2. .... का अर्थ है कि कम्पनी के अंशधारियों को दिए जाने वाला पुरस्कार कहलाता है ।
3. स्टॉक लाभांश का आशय .... अंश जारी करना भी है ।
4. .... लाभांश कम्पनी द्वारा अंशधारियों को अन्य कम्पनी के अंशों या ऋृण पत्रों के रूप में दिया जाता है ।
5. .... अर्जनों का अंशधारियों को भुगतान एवं प्रतिधारित अर्जनों में विभाजन निश्चित करती है।

6. एक बार जब लाभांश घोषित कर दिया जाए तो वारण्ट .... दिनों के भीतर अंशधारियों को भेज देने चाहिए ।
7. .... लाभांश नीति में प्रबंधक अर्जित लाभ का अधिकांश भाग लाभांश के रूप में वितरित कर देते हैं।

12.10 बोध प्रश्न के उत्तर

1. अनुपात, 2. लाभांश, 3. बोनस, 4. सक्रिय, 5. लाभांश नीति, 6. 42 7. उदार

12.11 स्वपरख प्रश्न

1. लाभांश नीति के उद्देश्यों की चर्चा कीजिए । कम्पनी बढ़ती आय के साथ लाभांश धीरे धीरे क्यों बढ़ाती है ? प्रबन्ध अधिकतर तौर पर लाभांश बढ़ाने की बजाय उसकी कटौती की इच्छुक क्यो् होती है ?

   (Discuss the objectives of Dividend policy. Why does the Management raise the dividend slowly in response to raising earnings ? Why in management even more reluctant to cut dividends than to increase them ?)
2. व्यवसायिक निर्णयों में लाभांश नीति की महत्ता की चर्चा कीजिए । लाभांश नीति निर्णय फर्म के मूल्यो को कैसे प्रभावित करता है ?

   (Discuss the significance of dividend policy in business decision. How can dividend policy decision influence the value of firm?)
3. आपके हिसाब से सहकारी संस्थाओं में लाभांश नीति को कौन निश्चित करता है? बोनस अंश और अंश Splits का भी वर्णन किजिए ?

   (What do you think are the determinants of dividend policy of the corporate enterprises? Also explain the term bonus shares and share splits)
4. स्थाई लाभांश नीति क्या होती है ? कम्पनी को ऐसी नीति क्यों अपनानी चाहिए ?

   (What is stable dividend policy ? Why should a firm follow such a policy ?)
5. किस हद तक फर्में एक निश्चित स्थाई लाभांश नीति लम्बीी अवधि तक बनाने के लिए सूक्ष्म, हैं ? इन नीतियों को कौन से तथ्य् प्रभावित करते हैं ?

   (To what extent firms are able to establish a definite long-term dividend policy ? What factors would affect these policies?)
6. मोडीगिलानी और मिलर द्वारा लाभांश अनापयुक्त नीति के सहयोग में किन मान्यताओं और तर्कों का प्रयोग किया गया है ?

   (What assumptions and arguments are used by Modigilani and Millar in support of the irrelevance of dividends?)
7. आप इस तथ्य से कहां तक सहमत हैं, कि लाभांश अनापयुक्त हैं ?

   (How far do you agree with the proposition that dividends are irrelevant ?)

8. क्या लाभांश प्राथमिक या बचा हुआ निर्णय पात्र है ? लाभांशों के फर्म पर मूल्यांकन के प्रभाव के बारे में विभिन्न दृष्टिकोण बताइए ?
(Is dividend primary or residual decision variable? Bring out the different view points regarding the effect of dividends on valuation of firm.)
9. वाल्टर द्वारा दिए गए लाभांश मॉडल की आलोचनापूर्वक जांच कीजिए ?
(Critically examine dividend relevance model given by walter ?)
10. गोर्डन द्वारा दिया गया लाभांश मॉडल किन मान्यताओं पर आधारित है? क्या गोर्डनस मॉडल के अनुसार लाभांश नीति फर्म के मूल्य को प्रभावित करती है?
(What are the assumptions which underlie dividend model given by Gordon? Does dividend policy effect value of the firm under Gordon's model ?
11. लाभांश क्या है?
12. लाभांश नीति क्या होती है?
13. लाभांश कितने प्रकार से वितरित किया जा सकता है?
14. कठोर एवं उदार लाभांश नीति का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।
15. स्थिर लाभांश नीति के लाभ बताइये।
16. लाभांश नीति के प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
17. बोनस अंश क्या है ? बोनस अंश निर्गमन के प्रभावों की विवेचना कीजिए।
18. लाभांश नीति का अर्थ बताइये। लाभांश नीति को प्रभावित करने वाले प्रमुख तत्त्वों का वर्णन कीजिए।
19. लाभांश नीति में वाल्टर एवं गॉर्डन प्रमेय का वर्णन कीजिए।
20. मोदी ग्लियानी एवं मिलर प्रमेय का सूत्र दीजिए ।
21. भारतीय कम्पनी अधिनियम में लाभांश वितरण संबंधी प्रमुख प्रावधानों का वर्णन कीजिए।
22. लाभांश वितरण के संबंध में उल्लेखित प्रतिबन्धों का वर्णन कीजिए।
23. एक कम्पनी 10 रू. प्रति अंश अर्जित करती है, इसका 20% पर पूंजीकरण किया गया है और विनियोजन पर प्रत्याय दर 15% है। वाल्टर प्रतिमान का उपयोग करते हुए (i) अनुकूलतम भुगतान अनुपात तथा (ii) इस भुगतान पर प्रति अंश मूल्य ज्ञात कीजिए।
24. एक कम्पनी 5000000 रू. की समता पूंजी के साथ प्रारंभ की गयी थी अन्य सूचनाएं निम्न प्रकार हैं :–
कम्पनी की आय 500000 रू0
लाभांश भुगतान 400000 रू0
मूल्य आय अनुपात 12.5
वाल्टर सूत्र का प्रयोग करते हुए बताइये कि लाभांश भुगतान अनुपात अनुकूल है।
25. एक कम्पनी के संबंध में निम्न सूचनायें हैं :–
विनियोग पर प्रत्याय की दर r = (i) 20% (ii) 15% (iii) 20%
पूँजी लागत - (K) = 15%

प्रति अंश अर्जन (E) = 10 रू.

यदि लाभांश भुगतान (i) 100% (ii) 80% एवं (iii) 50% हो तो गॉर्डन प्रतिमान का उपयोग करते हुए कम्पनी के अंशों का मूल्य ज्ञात कीजिए।

26. एक कम्पनी की अंश पूंजी 5000000 रू. है अंश का निर्गमन मूल्य 10 रू. प्रति अंश है। बाजार में कम्पनी का अंश 100 रू. में बिक रहा है। कम्पनी 5 रू. प्रति अंश लाभांश प्रदान करने पर विचार कर रही है। पूँजीकरण की दर 10: है। वर्ष के अंत में कम्पनी के अंश का मूल्य ज्ञात कीजिए (i) यदि लाभांश घोषित किया जाता है (ii) यदि लाभांश घोषित नहीं किया जाता है।

12.12 सन्दर्भ पुस्तकें

1. ए के वशिष्ट, एन के साहनी, तमन्ना सहगल, वित्तीय प्रबन्ध, कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना ।
2. “Financial Management”- M.Y. Khan & P.K. Jain, Tata Mc Graw Hill.
3. ”वित्तीय बाजारों की कार्यप्रणाली”– प्रो0 वी0 पी0 अग्रवाल– साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
4. ”निगमीय लेखांकन”– सी0 एम0 जैन एवं ए0 के0 अग्रवाल– g Master g Educorp, मेरठ।
5. ”प्रबन्ध हेतु वित्तीय विश्लेषण”– डॉ0 ए0 के गर्ग– स्वाती प्रकाशन, बुलन्दशहर।
6. ”निगमीय लेखाविधि”– डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 राजकुमार– नवनीत प्रकाशन, नजीबाबाद।
7. उच्च वित्तीय प्रबन्ध : डा0 एस0पी0 गुप्ता व डा0 बी0 कुमार मिततल ।
8. Shrivastava R.M. : Financial Decision Making Text, Problems and Cases.
9. Arif Pasha : Management Accounting.
10. Arora M.N. : Cost and Management Accounting.
11. Ravi M. Kishore : Advance Management Accounting.
12. Prasanna Chandra : Financial Management.
13. Sahaf M.A. : Management Accounting : Principle's and Practices.

इकाई 13 दीर्घकालीन वित्त के साधन

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 दीर्घकालीन वित्त से आशय
13.3 दीर्घकालीन वित्त पूर्ति के प्रमुख स्रोत
13.4 दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता एवं महत्व
13.5 दीर्घकालीन वित्त को प्रभावित करने वाले तत्व
13.6 दीर्घकालीन वित्त प्रदान करने वाले प्रमुख संस्थान
13.7 दीर्घकालीन वित्त पूर्ति की समस्यायें
13.8 समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव
13.9 सारांश
13.10 शब्दावली
13.11 बोध प्रश्न
13.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
13.13 स्वपरख प्रश्न
13.14 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- दीर्घकालीन वित्त से आशय, आवश्यकता एवं इसके महत्व को समझ सकें।
- दीर्घकालीन वित्त के प्रमुख स्त्रोत, एवं इन्हें प्रमाणित करने वाले महत्व को बता सके।
- प्रमुख दीर्घकालीन वित्त प्रदाता संस्थानों की व्याख्या कर सकें।
- दीर्घकालीन वित्त पूर्ति की समस्यायें एवं समाधान के सुझावों का वर्णन कर सकें।

13.1 प्रस्तावना

वित्त वर्तमान आधुनिक अर्थव्यवस्था का जीवन में रक्त है। यह किसी भी अर्थव्यवस्था के सभी अनिवार्य अंगों –कृषि, उद्योग, यातायात, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सभी जन–उपयोगी सेवाओं आदि के लिये उसी प्रकार महत्वपूर्ण है जैसे मानव शरीर में रक्त। वर्तमान समय में कोई भी व्यवस्था, उद्योग, निगम अथवा कम्पनी अपने क्रियाकलापों को बिना वित्त के कुशलतापूर्वक संचालित नहीं कर सकती। बिना वित्त के कोई भी योजना चाहे वह कितनी भी श्रेष्ठ हो अर्थहीन एवं बेकार है क्योंकि बिना वित्त के उसे कार्यरूप नहीं दिया जा सकता।

13.2 दीर्घकालीन वित्त से आशय

वर्तमान युग औद्योगीकरण का युग है। औद्योगीकरण के इस व्यापक प्रचार के साथ–साथ ही दीर्घकालीन वित्त का महत्व एवं आवश्यकता भी उसी अनुपात में बढ़ी है। कुछ विद्वान उद्योग एवं व्यापार में 10 वर्ष से अधिक की वित्तीय आवश्यकताओं को दीर्घकालीन वित्त कहते हैं। परन्तु सामान्य स्वीकार्य अवधारणा एवं भारतीय योजना आयोग द्वारा निर्धारित अवधि के अनुसार भारत में उन सभी

वित्तीय परियोजनाओं को जिनके लिये पांच वर्ष या इससे अधिक अवधि का ऋण प्राप्त किया जा सकता है दीर्घकालीन वित्त कहा जाता है। प्रो0 ए0 एस0 डेविंग के अनुसार, "विद्यमान उद्योगो में सुधार, नवीनीकरण एवं विस्तार तथा नवीन उद्योगों की स्थापना से सम्बन्धित विभिन्न परियोजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता होती है।

दीर्घकालीन वित्त का उपयोग स्थायी अथवा अचल सम्पत्तियों जैसे – भूमि एंव भवन, संयत्र, मशीनरी, फर्नीचर एंव फिटिंग्स, ख्याति, ट्रेडमार्क एवं पेटेण्ट आदि का क्रय करने, प्रारम्भिक व्यय आदि का भुगतान करने, अतिरिक्त कार्यशील पूंजी के स्थायी भाग की व्यवस्था करने, व्यवसाय एवं संयत्र के नवीनीकरण करने, भविष्य में मशीनरी एवं संयंत्र के नवीनीकरण अथवा उनको प्रतिस्थापित करने अथवा विस्तार में होने वाले विभिन्न व्ययों आदि में किया जा सकता है। दीर्घकालीन वित्त में तरलता का गुण नहीं होता अर्थात् यह दीर्घकाल तक स्थायी रूप से व्यवसाय एवं उद्योग में विनियोजित रहती है आवश्यकता होने पर इसे जब चाहे निकाल नहीं सकते। यह दीर्घकालीन वित्त व्यवसाय अथवा उद्योगों में विभिन्न रूपों में विनियोग किया जा सकता है तथा आय अर्जन में सहयोग करने वाला स्थायी प्रकृति का वित्त होता है। इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी व्यवसाय, उद्योग एवं परियोजना आदि में दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता केवल स्थायी सम्पत्तियों के वित्तके लिए ही नही होती वरन् यह सभी प्रकार की सम्बन्धित दीर्घकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति भी करता है।

13.3 दीर्घकालीन वित्त पूर्ति के प्रमुख स्रोत

सामान्यतः स्थायी अथवा दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता निम्न कारणों से हो सकती है–

1 भूमि एवं भवन, संयंत्र एवं मशीन, फर्नीचर एवं फिटिंग आदि को क्रय करने के लिये ;

2 कार्यशील पूंजी के स्थायी भाग की व्यवस्था करने, व्यवसाय, उद्योग अथवा संयंत्र विस्तार करने के लिए, घिसी हुई अप्रचलित स्थायी सम्पत्तियों की प्रतिस्थापना एवं पुनरूद्वार के लिए, एवं

3 आधुनिकीकरण, शोध एवं अनुसंधान के लिए।

<u>दीर्घकालीन वित्तपूर्ति के प्रमुख स्रोत</u>

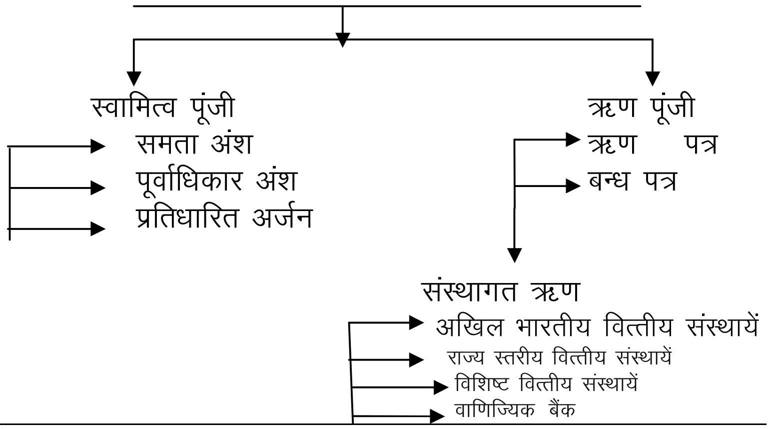

13.4 दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता एवं महत्व

1. व्यष्टि दृष्टिकोण (व्यावसायिक दृष्टि से)
- व्यवसाय प्रारम्भ करने के लिये
- स्थायी सम्पत्तियों के प्रबन्धन हेतु
- व्यवसाय विस्तार
- पुनर्गठन हेतु
- नवीनीकरण एवं आधुनिकीकरण

2. समिष्ट दृष्टिकोण (अर्थव्यवस्था की दृष्टि से)
- आर्थिक विकास की तीव्रता
- रोजगार सुविधाओं का विस्तार
- तकनीकी प्रगति
- मानवीय पूंजी का निर्माण
- अन्तर्राष्ट्रीय छवि में सुधार

1. समष्टि दृष्टिकोण

अ– **व्यवसाय प्रारम्भ करने के लिये–**

किसी भी व्यवसाय, उद्योग अथवा उपक्रम को प्रारम्भ करने के लिए करने के लिए दीर्घकालीन वित्त एक अनिवार्य आवश्यकता है। व्यवसाय की स्थापना के समय भवन, उपकरण, एवं अन्य प्रारम्भिक व्यय के लिए दीर्घकालीन वित्त अति आवश्यक है।

ब– **स्थायी/अचल सम्पत्तियों के प्रबन्धन हेतुः–**

प्रत्येक उपक्रम में स्थायी सम्पत्तियों जैसे मशीन, संयंत्र, फर्नीचर आदि को क्रय करने एवं उनके उचित रखरखाव के लिए दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता होती है। स्थायी सम्पत्तियों में विनियोजित राशि की प्रकृति स्थायी होती है। जिसकी पूर्ति दीर्घकालीन वित्त के माध्यम से ही सम्भव है।

स– **व्यवसाय विस्तारः–**

परिस्थितियों के अनुसार कालक्रम में प्रत्येक उपक्रम एवं संगठन को प्रतियोगिता के इस युग में विस्तार की आवश्यकता होती है और यह विस्तार दीर्घकालीन वित्त के बिना किसी भी प्रकार संभव नहीं है।

द– **पुनर्गठन हेतु :–**

किसी भी उपक्रम या संगठन के पुनर्गठन हेतु भी दीर्घकालीन वित्तकी आवश्यकता होती है। संगठन के पुनर्संगठन के समय एक ओर कृत्रिम सम्पत्तियों, अदृश्य सम्पत्तियों, लाभ हानि के डेबिट (ऋणी) शेष एवं अन्य सम्पत्तियों के पुनर्मूल्यांकन पर हानि को अपलिखित करना होता है वही दूसरी ओर मशीन उपकरणों के उच्चीकरण के लिए भी दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता होती है।

य– **नवीनीकरण एंव आधुनिकीकरण :–**

वर्तमान युग परिवर्तन का युग है। नित नए तकनीकी ज्ञान का प्रादुर्भाव, गलाकाट प्रतियोगिता आदि के कारण उद्योग–व्यवस्था में बने रहने के लिए प्रत्येक नवीनता एवं आधुनिकता को अंगीकार करना प्रत्येक संगठन की महती आवश्यकता है। बिना दीर्घकालीन वित्त के यह नवीनीकरण या आधुनिकीकरणनितांत असम्भव है।

2– समिष्ट दृष्टिकोण :–

(अ) आर्थिक विकास की तीव्रताः–

अधिक उत्पाद एवं राष्ट्रीय आय में वृद्वि यह आर्थिक विकास के दो मूलभूत पैमाने हैं जो कि पूंजी विस्तार एवं गहन पूंजी पर निर्भर करते हैं और इन दोनों ही क्रियाओं में दीर्घकालीन वित्त की अनिवार्य भूमिका है।

(ब) रोजगार सुविधाओं का विस्तार :–

रोजगार की सुविधाओं के लिए किसी भी अर्थव्यवस्था के उद्योगों और व्यवसायों में पूंजीगत साधनों की वृद्वि अति आवश्यक होती है और पूंजीगत साधनों की वृद्वि के लिए दीर्घकालीन वित्त अनिवार्य है।

(स) तकनीकी प्रगतिः–

किसी भी अर्थव्यवस्था में तकनीकी प्रोत्साहन में वित्त की अत्यन्त महत्पूर्ण भूमिका होती है। आर्थिक विकास के लिए प्रौद्योगिकी अर्थात तकनीक का समृद्ध एंव आधुनिकतम होना आदि आवश्यक है जबकि इसके लिए दीर्घकालीन वित्त एक अनिवार्य अवयव है।

(द) मानवीय पूंजी का निर्माण :–

वित्त से ही मानवीय पूंजी का विकास या निर्माण सम्मव है। स्वास्थ्य, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा, सामाजिक सेवाओं, समाज कल्याण आदि पर किये गए व्यय, अप्रत्यक्षत: मनुष्यों पर किया गया व्यय एवं विनियोग है अर्थात मानवीय पूंजी का निर्माण है। इस विनियोग एंव व्यय के लिए भी दीर्घकालीन वित्त आवश्यक है।

(य) अन्तर्राष्ट्रीय छवि में सुधार :–

पर्यात दीर्घकालीन वित्त की उपलब्धता किसी भी देश के उद्योग धन्धों एंव उपक्रमों के लिए जीवन रक्त कार्य करती है और उनकी प्रगति एवं विकास देश की अर्थव्यवस्था के विकास में सहायक होता है जिसका अंतिम परिणाम देश की अन्तराष्ट्रीय स्तर पर छवि सुधार होता है।

13.5 दीर्घकालीन वित्त को प्रभावित करने वाले तत्व

विभिन्न व्यवसाय उपक्रम एवं उद्योगों की स्थापना के समय अथवा विद्यमान उद्योगों के विकास एवं विस्तार के लिए दीर्घकालीन वित्त एक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक अवयव है। दीर्घकालीन वित्त की मात्रा किस उपक्रम में कितनी होनी चाहिए इसका कोई निश्चित मापदण्ड, आधार या सिद्धान्त नहीं है। यह व्यवसाय, उद्योग के आकार, क्षेत्र एवं परिस्थिति के अनुसार प्रभावित हो सकता है। दीर्घकालीन वित्त का प्रयोग किस मात्रा में किया जाना है यह अनेक कारणों से प्रभावित होकर भिन्न–भिन्न हो सकता है। संक्षेप में दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकता को प्रभावित करने वाले प्रमुख तत्व अथवा अवयव निम्नप्रकार है :–

1. व्यवसाय की प्रकृति एवं आकारः–

दीर्घकालीन वित्त की मात्रा का कम या अधिक होना किसी भी व्यवसाय उपक्रम एवं उद्योग के आकार पर निर्भर करता है। बड़ा आकार अधिक वित्त एवं छोटा आकार कम वित्त की आवश्यकता। इसके अतिरिक्त निर्माणी संस्थाओं तथा पूंजीगत वस्तुओं के निर्माणी उद्योगों में भी प्रकृति के अनुसार कम या अधिक

दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता हो सकती है। इसके अतिरिक्त जनोपयोगी सेवाओं में संलग्न विभिन्न संस्थानों जैसे रेल सेवा, जलपूर्ति, विद्युत पूर्ति, बस सेवा, आदि में भी अधिक दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता होती है।

2. **स्थायी सम्पत्तियों को क्रय करने की विधिः—**

यदि संस्थान द्वारा स्थायी सम्पत्तियों का क्रय नकद किया जाता है तो अधिक दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता होती है परन्तु यदि इस क्रय के लिए किश्त पद्धति या किराया क्रय पद्धति का प्रयोग किया जाता है तो अपेक्षाकृत कम वित्त की आवश्यकता होगी।

3. **स्थायी एवं चल सम्पत्तियों का अनुपातः—**

दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता को स्थायी सम्पत्तियों एवं चल सम्पत्तियों के मध्य निर्धारित अनुपात भी प्रभावित करता है। यह अनुपात उपक्रम या उद्योग की प्रकृति के आधार पर निर्धारित होता है और परिवर्तनीय होता है। यदि स्थायी सम्पत्तियों का अनुपात अधिक है तो दीर्घकालीन वित्त भी अधिक चाहिए और चल सम्पत्तियों का अनुपात अधिक है तो दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता भी कम होगी।

4. **मशीनों एवं तकनीक का उपयोगः—**

यदि उपक्रम, उद्योग या संस्थान में मानव श्रम आधारित क्रियाएं अधिक है तो कम दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता होगी, परन्तु यदि यंत्रीकरण, स्वचालन एवं तकनीकी प्रयोग अधिक है तो दीर्घकालीन वित्त का उपयोग भी अधिक मात्रा में होगा। श्रम आधारित संस्थानों में दीर्घकालीन वित्त की अपेक्षा कार्यशील पूंजी की आवश्यकता अधिक होती है।

5. **सरकारी नीति एवं वैधानिकतायें :—**

विभिन्न राज्य एवं केन्द्र सरकार की उद्योग सम्बन्धी नीतियां दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता को प्रभावित करती है। कुछ विशिष्ट क्षेत्रो एवं स्थान पर सरकार द्वारा सस्ती दरों पर जमीन, भवन, विद्युत आपूर्ति अथवा अनुवृत्ति का प्रावधान होता है ऐसी दशा मे अपेक्षाकृत कम दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता होती है।

13.6 दीर्घकालीन वित्त प्रदान करने वाले प्रमुख संस्थान

सामान्यत किसी औद्योगिक संस्थान की वित्तीय आवश्यकताओं को समयावधि के आधार पर विभाजित करना अथवा परिभाषित करना एक दुष्कर कार्य है लेकिन फिर भी सामान्य एवं स्वीकृत अवधारणाओं के आधार पर एक वर्ष तक की वित्तीय आवश्यकताओं को अल्पकालीन एक वर्ष से पांच वर्ष तक की वित्तीय आवश्यकताओं को मध्यकालीन एवं पांच वर्ष से अधिक की वित्तीय आवश्यकताओं को दीर्घकालीन वित्त कहा जाता है। दीर्घकालीन वित्त का प्रयोग उद्योग स्थापना, संरचना निर्माण अथवा आद्योगिक संस्थान की क्षमता विस्तार आदि के समय प्रयुक्त होता है। औद्योगिक क्षेत्र की दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हमारी सरकार स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से ही अत्यन्त सजग एवं जागरूक रही है तथा इस हेतु राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न संस्थानों एवं निगमों की स्थापना की गयी है जिनमें प्रमुख निम्नवत हैं :—

राष्ट्रीय स्तर पर दीर्घकालीन वित्त प्रदान करने वाले प्रमुख संस्थान :—

1. **भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI) :–**

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना 1जुलाई 1964 को रिजर्व बैंक की एक सहायक संस्था के रूप में की गयी थी। 1 सितम्बर 1964 से पुनर्वित निगम का विलय इसमें कर दिया गया तथा 16 फरवरी 1976 से यह बैंक पूर्णरूप से केन्द्रीय स्रकार के नियन्त्रण में आ गया है। औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य राष्ट्र के औद्योगीकरण का स्तर विकसित करना, उन्नत बनाना, अन्य वित्तीय संस्थाओं का समन्वय एवं औद्योगिक विकास से सम्बन्धित परियोजनाओं की स्थापना में सक्रिय भाग लेना है। इन मूलभूत उद्देश्यों की पूर्ति के साथ–साथ औद्योगिक वित्त की पूर्ति करना भी इसकी एक अनिवार्यता है क्योंकि औद्योगिक विकास के लिए यह भी एक प्रमुख एवं मूलभूत आवश्यकता है।

उददेश्य–

1. देश के औद्योगिक असन्तुलन को दूर करने के उद्देश्य से कुछ विशेष उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित करना जैसे–रासायनिक खाद, लौह मिश्रित धातुएं, विशेष इस्पात, पैट्रो–रसायन आदि
2. अन्य वित्तीय संस्थाओं का निरीक्षण, नियंत्रण एवं समन्वय करना तथा उन्हें सही दिशा में कार्यरत रहने की प्रेरणा देना।
3. औद्योगिक विकास की कमियों का पता लगाना एवं उन्हें दूर करने हेतु प्रयास करना।
4. प्राथमिक उद्योगों के विकास को प्रोत्सहित करना।
5. पिछड़े क्षेत्रों तथा प्राथमिकता प्राप्त उद्योगों के विकास हेतु सार्थक प्रयास करना तथा उनका नियोजन, प्रवर्तन एवं विकास करना।

कार्यः–

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक का कार्यक्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। बैंक को औद्योगिक विकास के लिए किसी भी प्रकार की वित्तीय एवं अन्य सहायता प्रदान करने की स्वतन्त्रता है। सहायता की कोई भी न्यूनतम या अधिकतम सीमा निर्धारित नहीं की गयी है। संक्षेप में हम विकास बैंक के प्रमुख कार्यो का वर्णन निम्न प्रकार कर सकते हैं :–

1. **ऋण प्रदान करना :–**

   यह बैंक सभी प्रकार की औद्योगिक इकाईयों को दीर्घकालीन ऋण प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त इसे औद्योगिक प्रतिष्ठानों द्वारा जारी किए जाने वाले ऋणपत्रों को भी क्रय करने का अधिकार प्राप्त है।

2. **ऋणों की गारंटी करना :–**

   यह औद्योगिक उपक्रमों के निर्यात के स्थगित भुगतानों अथवा उनके द्वारा पूंजी बाजार से लिए जाने वाले ऋणों की गारंटी प्रदान कर सकता है।

3. **पुनर्वित्त की सुविधा प्रदान करना :–**

   यह बैंक अनुसूचित तथा सहकारी बैंको द्वारा औद्योगिक उपक्रमों को 3 से 10 वर्षो के लिए दिए जाने वाले ऋणों तथा विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं द्वारा प्रदान किए जाने वाले 3 से 25 वर्षो तक के ऋणों के लिए पुनर्वित की सुविधायें प्रदान करता है।

4. **अंशों में प्रत्यक्ष अभिदान–**

विकास बैंक को औद्योगिक संस्थाओं द्वारा जारी किये गए स्कन्ध एवं अंशों मे प्रत्यक्ष अभिदान करने का भी अधिकार है। इस प्रकार के बैंक के लिए ऐसी व्यवस्था होना आवश्यक है क्योंकि इसके बिना उद्योगों के प्रवर्तन एवं विकास मे सक्रिय सहयोग एक जटिलता हो सकती है।

5. **अभिगोपन कार्य :–**

यह औद्योगिक इकाइयों द्वारा निर्गमित अंशों, बांडों तथा ऋणपत्रों का अभिगोपन कर सकता है। भारत में अभिगोपन कार्य करने वाली संस्थाओं के अभाव को देखते हुए यह कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है।

6. **विकास एवं गवेषणा सम्बन्धी कार्य :–**

औद्योगिक विकास बैंक विभिन्न औद्योगिक संस्थाओं के प्रवर्तन एवं विकास हेतु तकनीकी एवं प्रशासनिकपरामर्श देता है तथा विपणन, विनियोग, तकनीकीअनुसंधान एवं सर्वेक्षण आदि में परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप से परामर्श देता है एवं सहायता प्रदान करता है।

2. भारतीय औद्योगिक वित्त निगम :–

भारतीय औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना जुलाई 1948 को औद्योगिक वित्त निगम अधिनियम 1948 के अन्तर्गत वैधानिक निगम के रूप मे की गयी। 1 जुलाई 1993 को निगम की प्रकृति में परिवर्तन करके इसे एक कम्पनी का रूप प्रदान कर दिया गया है। इस प्रकार अब इसका नाम भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लिमिटिड हो गया है। निगम केवल ऐसी कम्पनियों या सहकारी समितियों को ऋण दे सकता है जिनका रजिस्ट्रेशन भारत में हुआ हो और वस्तुओं के निर्माण या प्रक्रिया, खनन, विद्युत शक्ति या अन्य किसी प्रकार की शक्ति के सृजन या वितरण, जहाजरानी एवं जहाज निर्माण, होटल उद्योगों एवं वस्तुओं के संरक्षण में संलग्न उद्योगों से सम्बन्धित है। निगम से वित्तीय सहायता केवल उसी दशा में प्राप्त की जा सकती है जब किसी उद्योग के लिए पूंजी निर्गमन के द्वारा धन प्राप्त करना सम्भव न हो अथवा बैंकों द्वारा दी गयी सहायता अपर्याप्त हो।

उद्देश्यः–

1. इस संस्था का प्रमुख उद्देश्य विभिन्न औद्योगिक संस्थानों को दीर्घकालीन एवं मध्यकालीन ऋण प्रदान करना है।
2. प्रारम्भ में यह निजी स्रोत की कम्पनियों तथा सरकारी इकाईयों को ही वित्तीय सहायता प्रदान करता था परन्तु अब यह सार्वजनिक क्षेत्र एवं संयुक्त क्षेत्र के औद्योगिक उपक्रमों को भी वित्तीय सहायता प्रदान करता है।
3. यह संस्था नवीन इकाईयों की स्थापना, पुरानी इकाईयों के आधुनिकीकरण एवं विस्तार के उद्देश्य के लिए भी सहायता प्रदान करती है।

कार्यः–

1. **ऋण एवं अग्रिम प्रदान करनाः–**

निगम द्वारा विभिन्न औद्योगिक संस्थानों को पच्चीस वर्षों की अवधि तक का दीर्घकालीन ऋण प्रदान किया जा सकता है साथ ही यह आवश्यक होने पर अग्रिम राशि भी प्रदान कर सकता है। आवश्यकता होने पर यह औद्योगिक प्रतिष्ठानों को विदेशी मुद्रा में भी ऋण उपलब्ध कराता है।

2. अंशों एवं ऋण पत्रों का निर्गमन एवं अभिगोपनः–

औद्योगिक वित्त निगम औद्योगिक कम्पनियों द्वारा जारी किये गये अंशों एवं ऋण पत्रों को क्रय कर सकता है तथा उनका अभिगोपन भी कर सकता है परन्तु यदि अभिगोपन के दौरान उसकी कुछ प्रतिभूतियां उसे स्वयं क्रय करनी पड़े तो उन्हें सात वर्षों के अन्दर विक्रय करने की बाध्यता रहती है।

3. ऋणों की गारण्टी करना :–

यह औद्योगिक संस्थाओं द्वारा पूंजी बाजार में लिये जाने वाले पच्चीस वर्ष की अवधि तक के ऋण की गारण्टी कर सकता है। इसके अतिरिक्त भारतीय आयातकों द्वारा विदेशी निर्माताओं से निलम्बित भुगतान के आधार पर आयात किये गये माल के मूल्य के भुगतान की गारण्टी दे सकता है।

3. भारतीय औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम :–

इस निगम की स्थापना 5 जनवरी 1955 को भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत एक लिमिटेड कम्पनी के रूप में की गयी। अन्य विशिष्ट निगमों के विपरीत इस निगम की एक प्रमुख विशेषता है कि इसका गठन पूर्णतः निजी क्षेत्र के लिए किया गया। मार्च 1955 में इसने अपना कार्य प्रारम्भ किया।

उद्देश्य :–

1. निजी क्षेत्र में विभिन्न औद्योगिक उपक्रमों के निर्माण, पुनर्निर्माण, विकास एवं आधुनिकीकरण में सहायता प्रदान करना।
2. निजी क्षेत्र के उपक्रमों में देश एवंविदेश के विभिन्न सूत्रों से निजी पूंजी के विनियोग को प्रोत्साहित करना।
3. औद्योगिक विनियोग के लिए निजी स्वामित्व को प्रोत्साहित करना तथा विनियोग बाजारों को विकसित करना।

कार्य :–

1. औद्योगिक संस्थाओं को 25 वर्ष में देय ऋण या अग्रिम प्रदान करना।
2. औद्योगिक संस्थानों द्वारा अनुसूचित बैंकों अथवा राज्य सहकारी बैंकों से लिए जाने वाले ऋणों की गारण्टी देना।
3. औद्योगिक कम्पनियों द्वारा जारी किये गये अंश, बांड या ऋण पत्र क्रय करना।
4. अंशों एवं ऋण पत्रों का अभिगोपन करना।
5. विदेशों से आयात की गयी अथवा भारतीय उत्पादकों से ही क्रय की जाने वाली मशीनों के स्थगित या निलम्बित भुगतान की गारन्टी प्रदान करना।
6. केन्द्रीय सरकार की अनुमति से विदेशी बैंकों या संस्थाओं से विदेशी मुद्रा में प्राप्त ऋण की गारन्टी प्रदान करना।
7. विश्व बैंक एवं केन्द्रीय सरकार के एजेन्ट के रूप में औद्योगिक इकाईयों को ऋण प्रदान करना।
8. औद्योगिक संस्थानों को विदेशी मुद्रा में ऋण प्रदान करना।

4. भारतीय लघु उद्योग निगम लि0 :–

इसकी स्थापनासन् 1955 में सार्वजनिक क्षेत्र की एक सरकारी कम्पनी के रूप में की गयी थी। निगम की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य आसान शर्तों एवं आसान किश्तों पर लघु औद्योगिक इकाईयों को संयत्र एवं मशीनरी के लिए दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध कराना है।

एक सूत्रीय पंजीकरण योजना :–

यह योजना इस निगम द्वारा 1976 से प्रारम्भ की गयी। इस योजना के अन्तर्गत पंजीकृत वास्तविक लघु उद्योग इकाईयों को, जो सरकारी विभागों में माल सप्लाई करने के इच्छुक हों तथा सरकारी विभाग की आवश्यकता एवं मानक के रूप माल उत्पादित करने की क्षमता भी रखती हों, राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम द्वारा सूचीबद्ध किया जाता है।

कार्य :–

1. लघु औद्योगिक इकाइयों को संयत्र एवं मशीन के लिए आसान शर्तों, किराया क्रय एवं किश्तों के आधार पर दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध कराना है।
2. कच्चे माल एवं अतिरिक्त पुर्जों की आपूर्ति।
3. लघु इकाइयों को उनके माल के विपणन तथा निर्यात में सहायता प्रदान करना।
4. लघु क्षेत्रों के कामगारों को प्रशिक्षण प्रदान करना।

राज्य स्तर पर दीर्घकालीन वित्त प्रदान करने वाले प्रमुख संस्थान

5. राज्य वित्त निगम :–

छोटे और मध्यम आकार की विभिन्न औद्योगिक इकाइयां जो भारतीय औद्योगिक वित्त निगम के सीमा क्षेत्र और कार्य क्षेत्र में नहीं आती है, को दीर्घकालीन वित्त प्रदान करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने 28 सितम्बर, 1951 को राज्य वित्त निगम अधिनियम पारित किया गया जिसके अन्तर्गत राज्य सरकारों को अपने अपने राज्यों में वित्त निगमों की स्थापना का अधिकार प्रदान किया गया। अधिकांश राज्यों द्वारा इस प्रकार के वित्त निगमों की स्थापना की जा चुकी है। मिश्रित पूंजी वाली कम्पनियों के अतिरिक्त निजी कम्पनियां, सांझेदारी संस्थान तथा एकाकी स्वामित्व भी इन निगमों का कार्यक्षेत्र हैं। राज्य वित्त निगम की अंश पूंजी में राज्य सरकार के अतिरिक्त रिजर्व बैंक, अनुसूचित बैंक, जीवन बीमा निगम आदि अन्य संस्थाओं की भागीदारी के अतिरिक्त 25 प्रतिशत अंशपूंजी का भाग सामान्य जनता को भी प्राप्त है।

उद्देश्य :–

राज्य वित्त निगमों की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य विभिन्न राज्यों की लघु एवं मध्यम आकार वाली औद्योगिक संस्थाओं को दीर्घकालीन वित्त या ऋण प्रदान करना है। इसमें प्रमुखतः निजी कम्पनियां एवं लघु उद्योग सम्मिलित होते हैं।

कार्य :–

1. ऋण प्रदान करना –

राज्य वित्त निगम एकल व्यवसायी एवं साझेदारी संस्था को 30 लाख रूपये तक का दीर्घकालीन ऋण प्रदान कर सकते हैं। जबकि कम्पनियों एवं सहकारी समितियों के लिए यह सीमा 60 लाख रूपये तक की है। यह निगम औद्योगिक संस्थान को 20 वर्ष की अवधि तक के दीर्घकालीन ऋण प्रदान कर सकते हैं परन्तु व्यवहार में यह अवधि 10 से 15 वर्ष के बीच ही होती है।

2. अंशों एवं ऋणपत्रों का क्रय :–

सन् 1985 में किये गये संशोधन के आधार पर यह निगम अंशों एवं ऋण पत्रों में भी अभिदान कर सकते हैं तथा आवश्यकता होने पर इन उपक्रमों के

विनिमय विपत्रों एवं प्रतिज्ञापत्रों को छूट पर भुनाने की सुविधा भी प्रदान कर सकते हैं।

3. **ऋणों के लिए गारण्टी प्रदान करना :–**

औद्योगिक संस्थाओं द्वारा अन्य वित्तीय संस्थाओं सेलिये जाने वाले ऋणों की गारण्टी भी राज्य वित्त निगम दे सकते हैं परन्तु इन ऋणों की अवधि 20 वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए।

4. **अंशों एवं ऋणों पत्रों का अभिगोपन :–**

यह निगम विभिन्न औद्योगिक संस्थानों द्वारा निर्गमित अंशों एवं ऋण पत्रों का अभिगोपन कर सकते हैं। यदि इस सम्बन्ध में निगम का कोई दायित्व उत्पन्न होता है और उसे अंश या ऋण पत्रों का क्रय करना आवश्यक हो जाता है तो निगम उन्हें क्रय कर सकता है परन्तु ऐसे अंशों या ऋण पत्रों को सात वर्ष में बाजार में विक्रय करने की बाध्यता रहेगी।

5. **अन्य कार्य :–**

यह निगम केन्द्रीय सरकार, औद्योगिक वित्त निगम, राज्य सरकार अथवा उनके द्वारा अधिकृत किसी भी संस्था के एजेन्ट केरूप में भी कार्य कर सकता हे। इसके अतिरिक्त औद्योगिक संस्थानों के विकास एवं अनुसंधान के कार्यों में भी यह निगम सहयोग दे सकते हैं। जैसे तकनीकी आर्थिक अध्ययन, नवीन उत्पादों की पहचान एवं उनका विकास, अनुसंधान एवं सर्वेक्षण आदि।

6. **राज्य औद्योगिक विकास निगम :–**

विभिन्न राज्यों में औद्योगिक वित्त निगमों की स्थापना से लघु एवं मध्यम आकार के औद्योगिक संस्थानों को दीर्घकालीन ऋण की उपलब्धता की समस्या से एक हद तक निजात मिल गयी, परन्तु एक ऐसे संस्थान की आवश्यकता अनुभव होने लगी जो कि इन उद्योगों के प्रवर्तन एवं विकास में सहयोगी हो जिससे इन उद्योगों के विकास की गति और अधिक तीव्रगामी हो सके। इसी परिकल्पना का मूर्त स्वरूप राज्य औद्योगिक विकास निगम है और इसकी स्थापना कुछ राज्यों में कम्पनी के रूप में तथा कुछ में परिनियमित निगमों के रूप में की गयी।

उद्देश्य :–

राज्य औद्योगिक विकास निगमों की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य राज्यों में मध्यम एवं लघु आकार के उद्योगों का प्रवर्तन, सुधार एवं विकास करना है। कुछ राज्यों में ये निगम औद्योगिक बस्तियों एवं औद्योगिक क्षेत्रों के प्रबन्ध की देख रेख भी करते हैं।

कार्य :–

1. परियोजनाओं के प्रवर्तन एवं योजनाओं को कार्यरूप में परणित करना तथा इस सम्बन्ध में सर्वेक्षण, अनुसंधान आदि क्रियाओं को पूर्ण करना या कराने में सहायक होना।
2. उद्यमियों को परियोजना अवधि में न केवल तकनीकी सहायता प्रदान करना वरन् कार्य को श्रेष्ठता से पूर्ण करने हेतु आवश्यक प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
3. राज्य के निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से वित्तीय सहायता प्रदान करना।

4. कुछ राज्यों में ये निगम औद्योगिक बस्तियों, औद्योगिक क्षेत्र की प्रबन्ध व्यवस्था, विद्युत व्यवस्था आदि कार्य का भी निरीक्षण एवं देख रेख करते हैं।

दीर्घकालीन वित्त प्रदान करने वाले प्रमुख विनियोगी संस्थान :–

7. भारतीय इकाई न्यास (यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया)

यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया की स्थापना 26 नवम्बर, 1963 को भारतीय संसद द्वारा पारित यूनिट ट्रस्ट अधिनियम के अन्तर्गत की गयी और इसने वास्तविक रूप से अपना कार्य 1 जुलाई, 1964 से प्रारम्भ किया। भारत जैसे विकासशील देश में जहां पूंजी निर्माण की गति कोतीव्र किए जाने की आवश्यकता है तथा बचतों के प्रवाह को उचित दिशा देने की आवश्यकता है वहां इस संस्थान की स्थापना ने जीवन संजीवनी के रूप में छोटी छोटी बचतों को उपयुक्त दिशा प्रदान की है।

उद्देश्य :–

न्यास का प्रमुख उद्देश्य छोटी छोटी बचतों को प्रोत्साहित करना तथा उन्हें एकत्रित करके विभिन्न उ़द्योगों में इसप्रकार विनियोजित करना है जिससे विनियाजित पूंजी पर कम से कम जोखिम पर अधिक से अधिक लाभ अर्जित किया जा सके। इस अर्जित लाभ को विनियोगकर्ताओं में विस्तृत आधार पर विभाजित कर दिया जाता है।

वित्तीय स्रोत :–

न्यास की पूंजी के दो भाग है – प्रारम्भिक पूंजी एवं यूनिट पूंजी। इसकी प्रारम्भिक पूंजी 5 करोड़ रूपये है जिसका आधा भाग रिजर्व बैंक ने क्रय किया है जिसे सन् 1976 में भारतीय औद्योगिक विकास बैंक को हस्तान्तरित कर दिया गया। शेष आधे भाग में जीवन बीमा निगम, स्टेट बैंक, अनुसूचित बैंकों एवं अन्य विनिर्दिष्ट वित्तीय संस्थाओं द्वारा विनियोग किया गया है।

यूनिटों में पूंजी विनियोग के लाभ :–

1. न्यूनतम एवं अधिकतम विनियोग की कोई सीमा न होने के कारण विनियोगकर्ता मात्र दस इकाईयां (यूनिट्स) लेने पर भी लाभ के सम्पूर्ण भाग में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर लेता है।
2. ट्रस्ट इनका विक्रय मूल्य तथा पुनर्खरीद मूल्य प्रतिदिन घोषित करता है। अतः अर्ह होने पर विनियोगकर्ता जब चाहे राशि प्राप्त कर सकता है।
3. यूनिटों से होने वाली आय, आयकर अधिनियम के अन्तर्गत निश्चित सीमा तक करमुक्त है। इनकी आय पर,स्रोत पर आयकर कटौती भी नहीं होती है।
4. जनसामान्य की छोटी बड़ी बचतों को उचित दिशा एवं गति प्रदान करके उनके लाभ पूर्ण विनियोजन में न्यास सहायक होता है जिससे देश में पूंजी निर्माण की गति में तीव्रता आती है। न्यास के माध्यम से छोटे एवं मध्यम आकार के बचत कर्ताओं को भी औद्योगिक प्रतिभूतियों में विनियोजन का सुअवसर प्राप्त हो जाता है।
5. इकाईयों के मूल्य के आधार पर इनको गिरवी रखकर बैंक एवं अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा ऋण प्राप्त किया जा सकता है।

6. सरकारी प्रतिभूतियों के अतिरिक्त न्यास अपनी पूंजी को औद्योगिक प्रतिभूतियों में भी विनियोजित करता है जिससे देश में औद्योगीकरण की गति को बढ़ावा मिलता है।
7. प्रबन्ध तंत्र में भारतीय रिजर्व बैंक, औद्योगिक विकास बैंक आदि के विशेषज्ञों की उपस्थिति से विनियोगों में विशिष्ट राय सदैव उपलब्ध रहने के कारण सुरक्षा एवं विश्वास सदैव बना रहता है।

8. भारतीय जीवन बीमा निगम :–

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश में कार्यरत विभिन्न कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण करके भारतीय जीवन बीमा निगम की स्थापना एक पृथक अध्यादेश जीवन बीमा अधिनियम 1956 के अन्तर्गत की गयी। इसने अपना कारोबार 1 सितम्बर 1956 से प्रारम्भ किया। इसका मुख्य कार्यालय मुम्बई में है। इसके अतिरिक्त विभिन्न महानगरों एवं नगरों में इसके 60 क्षेत्रीय कार्यालय, 160 मण्डल कार्यालय तथा 2000 से अधिक शाखा कार्यालय है। इस निगम के कार्यालय मॉरीशस, फिजी, ब्रिटेन, बर्मा, केन्या, नेपाल, श्रीलंका आदि देशों में भी हैं।

उद्देश्य :–

1. जीवन बीमा व्यवसाय को संचालित करना।
2. बचतों को बढ़ावा देना और सदस्य व्यक्ति को उसके जीवन के प्रति विभिन्न योजनाओं में सुरक्षा प्रदान करना।
3. जीवन बीमा कराने वालों से प्राप्त प्रीमियम की राशि का सुरक्षित एवं लाभकारी निवेश करना।
4. देश के सर्वागीण विकास में योगदान प्रदान करना।

कार्य :–

1. यह विभिन्न योजनाओं में व्यक्तिगत एवं समूह आधार पर जीवन बीमा पॉलिसी के विक्रय का कार्य करती है।
2. किसी बीमाधारक सदस्य व्यक्ति की आकस्मिक या दुर्घटना से मृत्यु होने पर सदस्यता एवं पॉलिसी की निर्धारित शर्तों के अनुसार आश्रितों को भुगतान करती है और आर्थिक सुरक्षा प्रदान करती है।
3. पॉलिसी सम्पूर्ण हो जाने पर भी जमा राशि का भुगतान नियत शर्तों के आधार पर सदस्य व्यक्ति को कर दिया जाता है।
4. यह विकास बैंक द्वारा निर्गमित अंशों एवं बांडों का अनुमोदन करती है।
5. भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा प्रीमियम की प्राप्त धनराशि को विभिन्न निगमों में विभिन्न प्रकार से विनियोजित किया जाता है जिससे विनियोग में लाभ एवं सुरक्षा दोनों बने रहें।
6. यह विभिन्न संयुक्त पूंजी कम्पनियों को ऋण भी प्रदान करता है तथा आवश्यकतानुसार ऋणों के प्रति गारंटी भी प्रदान करता है।

यद्यपि बीमा क्षेत्र में विभिन्न निजी कम्पनियों के पदार्पण से भारतीय जीवन बीमा निगम को भी कड़ी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ रहा है परन्तु अभी भी देश में सर्वाधिक व्यवसाय अर्जित कर यह प्रथम स्थान पर बना हुआ है।

9. सामान्य बीमा निगम :–

सामान्य बीमा निगम की स्थापना 22 दिसम्बर 1972 को एक सरकारी कम्पनी के रूप में की गयी। सामान्य बीमा निगम एक सूत्रधारी (धारक) कम्पनी के

रूप में कार्य करती है। इसकी चार सहायक हैं– नेशनल इंश्योरेंस कम्पनी लि0, दि न्यू इंडिया इंश्योरेंस कम्पनी लि0, दि ओरिएण्टल फायर एण्ड जनरल इंश्योरेन्स कम्पनी लि0 और दि यूनाइटेड इण्डिया इंश्योरेन्स कम्पनी।

जीवन बीमा के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार के बीमा जैसे वाहन, आवास, दुकान, सम्पत्ति आदि इनका कार्यक्षेत्र है। यह चारों सहायक कम्पनियां ही वास्ताविक रूप से बीमा क्षेत्र में कार्य करती है जबकि इनकी सूत्रधारी कम्पनी सामान्य बीमा निगम एक धारक कम्पनी की भांति इनका नियन्त्रण एवं समन्वय करती है। बीमा कराने वाले ग्राहकों से प्राप्त प्रीमियम की राशि को भी सामान्य बीमा निगम, जीवन बीमा निगम की भांति ही विभिन्न निगमों एवं सामाजिक योजनाओं में विनियोजित करता है तथा किसी दुर्घटना अथवा आकस्मिकता की दशा में अपने बीमा धारक ग्राहक को नियमानुसार क्षतिपूर्ति के भुगतान की व्यवस्था भी करता है।

दीर्घकालीन वित्त प्रदान करने वाले विशिष्ट संस्थान

10. आयात –निर्यात बैंक :–

भारत मे आयात –निर्यात बैक की स्थापना 1 जनवरी 1982 को की गयी तथा मार्च 1982 से विधिवत इसने अपना कार्य प्रारभ्भ का दिया इसका प्रधान कार्यलय मुम्बई में है।

उद्देश्य :–

आयात निर्यात बैक की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य भारत के विदेशी व्यापार का विकास एंव विस्तार करना है। इस विकास,सहायता एवं विस्तार के लिए वित्त व्यवस्था से सम्बन्धित सलाहकार सुविधाएं देना भी बैंक के प्रमुख उद्देश्य का ही भाग है।

कार्य :–

1. भारतीय निर्यातकों को मध्यकालीन प्रत्यक्ष वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना।
2. विदेशों में भारतीय विनियोजकों को आवश्यक वित्त सुविधायें उपलब्ध कराना।
3. भारतीय वस्तुओं के विदेशी आयातकर्ताओं को दीर्घकालीन ऋण एवं वित्त की सुविधा उपलब्ध कराना।
4. व्यापारिक अनुसूचित बैंकों को निर्यात बिलों की पुनर्कटौती प्रदान करना।
5. भारतीय निर्यातकों द्वारा विदेशों में परियोजनायें स्थापित करने के लिए वित्त की व्यवस्था करना।
6. विदेशों में निर्यातों के लिए गारण्टी प्रदान करना।
7. विदेशी सरकारों और विदेशी वित्तीय संस्थाओं को साख सुविधायें उपलब्ध कराना।
8. निर्यात उद्योगों के लिए मशीनरी, उपकरण एवं कच्चा माल क्रय करने के लिए वित्त की व्यवस्था करना।
9. भारतीय विदेशी व्यापार की समस्याओं का विश्लेषण करके अपने सुझावों से सरकार को नीति निर्धारण में सहयोग प्रदान करना।

11. आधार संरचना पट्टेदारी एवं वित्त सेवा लि0 :–

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय औद्योगिक विकास के लिए दीर्घकालीन वित्त प्रदान करने के लिए अनेकों संस्थाओं की स्थापना की गयी। आधार संरचना पट्टेदारी एवं वित्त सेवा लि0 भी दीर्घकालीन वित्त प्रदान करने के लिए बनाया गया निगम है। यह निगम 1998 में स्थापित किया गया तथा इसका प्रमुख उद्देश्य यन्त्रों की पट्टेदारी और आधार संरचना का विकास है।

इसकी स्थापना संयुक्त पूंजी कम्पनी के रूप में की गयी थी। विनियोग बैंकिंग के क्षेत्र में यह निगम व्यापारिक बैंकिंग का कार्य करता है और इसने अपने निगमीय ग्राहकों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विक्रय योग्य प्रतिभूतियों के विक्रय करने में मुख्य कार्यभाग अदा किया है।

दीर्घकालीन वित्त प्रदान करने वाले बैंकिंग संस्थान

12. भारतीय स्टेट बैंक :–

तीन प्रेसीडेंसी बैंकों को सन् 1921 में एकीकृत कर इम्पीरियल बैंक का निर्माण किया और 1 अप्रैल 1955 को इसका राष्ट्रीयकरण करके भारतीय स्टेट बैंक की स्थापना हुई। सन् 1959 में स्टेट बैंक (सहायक) अधिनियम पारित किया गया और 8 बैंक इसके सहायक बनाए गये। कालांतर में उनकी संख्या 7 रह गयी। वर्तमान में 2017 में इन सभी का विलय भारतीय स्टेट बैंक में ही कर दिया गया है।

भारतीय स्टेट बैंक यद्यपि सार्वजनिक क्षेत्र का ही एक बैंक है और अन्य सार्वजनिक बैंकों की भांति अन्य सभी क्रियाकलाप भी करता है। परन्तु फिर भी भारतीय स्टेट बैंक को एक विशिष्ट दर्जा प्राप्त है और वह अन्य बैंकों और रिजर्व बैंक के मध्य रिजर्व बैंक के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है।

उद्देश्य :–

1. व्यापारिक बैंकों एवं रिजर्व बैंक के बीच प्रतिनिधि स्वरूप क्रियाएं।
2. ग्रामीण साख व्यवस्था में सरकार की सक्रिय भागीदारी में सहयोग प्रदान करना।
3. सहकारी संस्थाओं को धन हस्तान्तरण की सुविधा प्रदान करना।
4. अन्य उद्योगों के अतिरिक्त लघु एवं ग्रामीण उद्योगों को वित्तीय सहायता प्रदान करना।
5. समाशोधन गृह का संचालन करना।

कार्य :–

1. रिजर्व बैंक के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करना।
2. व्यापारिक बैंक के रूप में किये जाने वाले सभी कार्यों को निष्पादित करना।
3. ग्रामीण एवं कृषि क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार करना।
4. प्रतिभूतियों के अभिगोपन का कार्य करना।
5. सहकारी संस्थाओं के माध्यम से ग्रामीण तथा कृषि साख की व्यवस्था करने का कार्य।
6. समाशोधन गृह का संचालन एवं व्यवस्था करना।
7. रिजर्व बैंक अथवा केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्देशित कोई भी अन्य कार्य।

13. राष्ट्रीयकृत बैंक :–

19 जुलाई, 1969 को 14 प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया जबकि 15 अप्रैल 1980 को 6 अन्य बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया जबकि अब एक राष्ट्रीकृत बैंक के दूसरे में विलय के पश्चात सार्वजनिक क्षेत्र में स्टेट बैंक के अतिरिक्त 19 बैंक और शेष रह गये हैं। यह 19 राष्ट्रीयकृत बैंक शत प्रतिशत भारत सरकार के स्वामित्व में हैं।

उद्देश्य :–

1. विभिन्न क्षेत्रों जैसे व्यापारिक, कृषि, उद्योग आदि क्षेत्रों को अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन ऋण प्रदान करना।
2. विभिन्न क्षेत्रों से जमा राशि स्वीकार कर उन पर ब्याज प्रदान करना जिससे सामान्य बचत की आदत में वृद्धि हो।
3. राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास में योगदान।
4. केन्द्र सरकार, रिजर्व बैंक के निर्देशानुसार अन्य राष्ट्रहित का कोई भी कार्य करना।

कार्य :–

1. जनता द्वारा विभिन्न खातों के अन्तर्गत जमा राशि स्वीकार करना और उन पर ब्याज का भुगतान निर्धारित दरों से करना।
2. अल्पकालीन, मध्यकालीन एवं दीर्घकालीन ऋण समाज के विभिन्न वर्गों को प्रदान करना।
3. बैंक अपने ग्राहकों के लिए उनकी आवश्यकतानुसार तथा निर्धारित शर्तों के अनुसार एजेंट के रूप में भी कार्य करता है तथा उनकी ओर से संग्रह एवं भुगतान का कार्य भी करता है।
4. यह विदेशी विनिमय का कार्य भी करते हैं जो विदेशी व्यापार में सहायक होता है।
5. नकद साख, अधिविकर्ष, सरकारी प्रतिभूतियों में विनियोग, साख निर्माण, धन हस्तान्तरण, बहुमूल्य वस्तुओं की सुरक्षा हेतु लॉकर की सुविधा आदि कार्य भी व्यापारिक बैंक निष्पादित करते हैं।

14. निजी बैंक :–

वित्तीय सुधारों पर स्थापित नरसिंहमन समिति के सुझावों के आधार पर केन्दीय सरकार ने विभिन्न निजी बैंकों को लाइसेंस प्रदान किये। वर्तमान में राष्ट्रीयकृत एवं पूर्व में कार्यरत कुछ निजी बैंकों के अतिरिक्त अनेकों निजी क्षेत्र के बैंक राष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत हैं। यह बैंक भी रिजर्व बैंक के निर्देश एवं प्रतिबन्धों के अन्तर्गत वह सभी कार्य करते हैं जो कि अन्य व्यापारिक बैंकों के द्वारा किये जाते हैं।

यहां यह उल्लेखनीय है कि व्यापारिक बैंकों का प्रमुख कार्य छोटी, मध्यम व बड़ी बचतों को प्रोत्साहन तथा आम जनता को उनके विभिन्न कार्यों के लिए ऋण प्रदान किया जाना होता है। अतः विभिन्न विद्वान इन्हें उद्योगों के लिए दीर्घकालीन वित्त प्रदान करने वाली शीर्ष संस्थाओं में सम्मिलित नहीं मानते हैं। परन्तु वर्तमान समय में स्टेट बैंक, राष्ट्रीयकृत बैंकों एवं निजी बैंकों द्वारा विभिन्न छोटे बड़े उद्योगों को पर्याप्त मात्रा में दीर्घकालीन वित्त एवं ऋण उपलब्ध कराया हुआ है और उद्योगों को दीर्घकालीन वित्त प्रदान करने में इनकी महत्वपूर्ण भागीदारी है। इस सत्य को भी नकारा नहीं जा सकता।

13.7 दीर्घकालीन वित्त पूर्ति की समस्यायें

दीर्घकालीन वित्त पूर्ति की समस्याओं का वर्णन निम्न हैः

1. **दीर्घकालीन वित्त की राशि का निर्धारण :–**

दीर्घकालीन वित्त पूर्ति की प्रमुख समस्या दीर्घकालीन वित्त की आवश्यक राशि का निर्धारण करना है। उपक्रम को किस वर्ग में कितने वित्त की वास्तविक आवश्यकता है अर्थात स्थायी सम्पत्तियों एवं अवसंरचना निर्माण के लिए कितने दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता होगी यह वास्तविक अनुमान लगाना एक दुष्कर कार्य है।

2. **दीर्घकालीन वित्त के साधन :–**

दीर्घकालीन वित्त की धनराशि निर्धारित होने के पश्चात् एक प्रमुख समस्या यह भी होती है कि वांछित दीर्घकालीन वित्त को कौन–कौन से स्रोतों से एकत्रित किया जाये एवं उनके मध्य क्या अनुपात निर्धारित किया जाए।

3. **संतुलित पूंजी ढांचे की समस्या :–**

उपक्रम समता अंश पूंजी, पूर्वाधिकार अंश पूंजी, ऋणपत्र, संचय कोष एवं अन्य स्रोतों से प्राप्त दीर्घकालीन वित्त मे आदर्श समायोजन नहीं कर पाते हैं जिसके कारण अनेकों समस्यायें उत्पन्न होती हैं।

4. **कम बचत एवं संचय प्रवृत्ति :–**

भारत में अधिकांश जनता ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है तथा गरीबी की रेखा से नीचे भी एक बड़ा वर्ग है। अतः एक ओर जहां आम जनता बचत कम ही कर पाती है और दूसरी ओर जो लोग बचत करते हैं अथवा करने में सक्षम हैं वह संचय एवं व्यक्तिगत विनियोगों में रूचि रखते हैं। अतः ऐसी बचतें पूंजी का स्वरूप नहीं ले पाती, भारतीय पूंजी को इसीलिए शर्मीली पूंजी कहा जाता है।

5. **करारोपण की नीति :–**

अधिकांश जनमानस स्पष्ट करनीति के अभाव अथवा जानकारी के अभाव में विभिन्न परियोजनाओं में अपना धन विनियोजित करने से परहेज करते है। कर के भय के कारण लोग अपनी बचतों को सोने, चांदी, जमीन, मकान आदि में विनियोजित करना अधिक श्रेष्ठ मानते हैं।

6. **जोखिम आय एवं नियन्त्रण में समन्वय की समस्या :–**

हेस्टिंग्स लियन के अनुसार, "औद्योगिक वित्त प्रबन्धन की वास्तविक समस्या जोखिम, आय तथा नियन्त्रण इन तीनों तत्वों में समन्वय की समस्या है।" दीर्घकालीन वित्त व्यवस्था करते समय यह विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि नवीन वित्त पूर्ति का वर्तमान विनियोगकर्त्ताओं (समता अंशधारी, पूर्वाधिकार अंशधारी, ऋणपत्रधारी आदि) की आय, जोखिम तथा नियंत्रण पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

13.8 समस्याओं के समाधन हेतु सुझाव

समस्याओं के समाधन हेतु सुझाव निम्न हैः

1. **दीर्घकालीन वित्त की राशिका उचित आकलन**

किस क्षेत्र एंव कार्य के लिए कितने दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता होगी इसका अनुमान लगाने लिए उचित पूंजी बजटन नीति का अनुपालन किया जाना चाहिए।

2. वित्त के साधनों का उचित अनुमान–

पूंजी जुटाने के विभिन्न स्रोतों जैसे समता अंश, पूर्वाधिकार अंश, ऋण–पत्र एंव बाह्य संस्थाओं से लिया जाने वाला दीर्घकालीन वित्त इन सभी में उचित संयोजन उपक्रम की सफलता के लिए अनिवार्य है। इस हेतु विशेषज्ञों की राय ली जानी चाहिए एवं इनके मध्य उचित अनुपात संयोजन निर्धारित किया जाना चाहिए।

3. बचत प्रवृत्ति को प्रोत्साहन एवं संचय के उचित विनियोजन की प्रेरणा

यद्यपि अब सरकार इस ओर काफी सजग हुई है परन्तु अभी इस क्षेत्र में बहुत कार्य किए जाने की आवश्यकता है। विभिन्न सरकारी योजनायें लालफीता शाही का शिकार होने के कारण तथा प्रचार के अभाव में आम जनता तक नहीं पहुंच पातीं। विभिन्न योजनाओं को आमजन तक पहुंचाने की आवश्यकता है जिससे छोटी–छोटी बचतों को पूंजी के रूप में परिवर्तित किया जा सके और उनका लाभ उद्योगों और राष्ट्र को हो सके।

4. उचित एवं स्पष्ट कर नीति की आवश्यकता

यदि कर नीति स्पष्ट एवं प्रोत्साहनयुक्त होगी तो लोग विनियोग करने मेंभयभीत नहीं होंगे। इसके अतिरिक्त शासन की नीतियों में विनियोगों पर छूट प्रदान की जाये जिससे लोग लाभकारी सरकारी योजनाओं में अधिकतम विनियोग के लिये प्रेरित हो।

भारत में दीर्घकालीन वित्त का संयोजन एक समस्या रही हैं जिसके अभाव में औद्योगिकरण की गति अवरूद्ध होती है। वर्तमान में अनेकों सरकारी संस्थाए इस ओर कार्य कर रही है परन्तु औद्योगीकरण की गति को ओर अधिक तीव्रता प्रदान करने के लिए अभी इस क्षेत्र में विभिन्न स्तरों पर ओर अधिक प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। सरकारी नीतियों को सरल बनाना इस दिशा में एक सार्थक प्रयास हो सकता है। विभिन्न सरकारी योजनाओं का प्रचार एवं प्रसार किया जाना चाहिए जिससे पात्र लोगों तक वह पहुंच सकें तथा उन्हें इनका लाभ भी प्राप्त हो सके। विभिन्न दीर्घकालीन वित्त प्रदान करने वाली संस्थाएं सम्बन्धित उद्योगों से सम्पर्क स्थापित कर शासकीय योजनाओं का विस्तृत ज्ञान उन्हें प्रदान कर उनकी दीर्घकालीन वित्त सम्बन्धी समस्याओं के समाधान में सक्रिय एवं सार्थक योगदान प्रदान कर सकती हैं।

13.9 सारांश

वर्तमान समय में कोई भी व्यवस्था, उद्योग, निगम अथवा कम्पनी अपने क्रियाकलापों को बिना वित्त के कुशलतापूर्वक संचालित नहीं कर सकती। बिना वित्त के कोई भी योजना चाहे वह कितनी भी श्रेष्ठ हो अर्थहीन एवं बेकार है क्योंकि बिना वित्त के उसे कार्यरूप नहीं दिया जा सकता। दीर्घकालीन वित्त का उपयोग स्थायी अथवा अचल सम्पत्तियों जैसे – भूमि एंव भवन, संयत्र, मशीनरी, फर्नीचर एंव फिटिंग्स, ख्याति, ट्रेडमार्क एवं पेटेण्ट आदि का क्रय करने, प्रारम्भिक

व्यय आदि का भुगतान करने, अतिरिक्त कार्यशील पूंजी के स्थायी भाग की व्यवस्था करने, व्यवसाय एवं संयंत्र के नवीनीकरण करने, भविष्य में मशीनरी एवं संयंत्र के नवीनीकरण अथवा उनको प्रतिस्थापित करने अथवा विस्तार में होने वाले विभिन्न व्ययों आदि में किया जा सकता है।

दीर्घकालीन वित्त की मात्रा किस उपक्रम में कितनी होनी चाहिए इसका कोई निश्चित मापदण्ड, आधार या सिद्धान्त नहीं है। यह व्यवसाय, उद्योग के आकार, क्षेत्र एवं परिस्थिति के अनुसार प्रभावित हो सकता है। औद्योगिक क्षेत्र की दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हमारी सरकार स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से ही अत्यन्त सजग एवं जागरूक रही है तथा इस हेतु राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न संस्थानों एवं निगमों की स्थापना की गयी है।

13.10 शब्दावली

अर्थहीन– बेकार

औद्योगीकरण– उद्योगों के क्षेत्र में विकास की दर का तीव्र होना।

कार्यशील पूंजी–दिन प्रतिदिन व्यवसाय एवं उद्योगों के संचालन में प्रयुक्त होने वाली राशि (कुल चल सम्पति–कुल चल दायित्व)

पुर्नसंगठन–उद्योग में परिवर्तनों,तकनीकों के अथवा अप्रचलन के कारण अप्रचलित मशीनरी आदि को बदला जाना।

पट्टेदारी–किसी भूमि, भवन, खान आदि को क्रय करने के स्थान पर निर्धारित अवधि के लिये निर्धारित शर्तों एवं भुगतान पर वैधानिक रूप से प्राप्त करना।

किराया क्रय पद्धतिः– किस्तों के आधार पर विक्रय परन्तु इसमें स्वामित्व का हस्तान्तरण अन्तिम किस्त के भुगतान के पश्चात् ही हस्तान्तरण होता है।

न्यास–ट्रस्ट

सूत्रधारी कम्पनी– यदि कोई कम्पनी दूसरी कम्पनी के 50% से अधिक अंश क्रय कर लेती है तो सूत्रधारी कम्पनी कहलाती है।

समाशोधन गृह– अपने पारस्परिक लेन–देनों के निस्तारण के लिए क्षेत्र के सभी बैंक स्टेट बैंकके निर्देश पर जहां प्रतिदिन एकत्र होते है।

संचय प्रवृत्ति– जमा करने की आदत।

13.11 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानो की पूर्ति कीजिये–

(1). ....वर्ष से अधिक की वित्तीय आवश्यकताको दीर्घकालीन वित्त कहते हैं।

(2). दीर्घकालीन वित्त का उपयोग....................सम्पत्तियों के क्रय करने के लिए किया जाता है।

(3). औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना.......................को की गयी।

(4). भारतीय इकाई न्यास (UTI) का प्रमुख उददेश्य..................को बढ़ावा देना है।

निम्नलिखित कथनों में से कौन सा कथन सत्य ओर कौन सा असत्य हैं –

1. 5 वर्ष से अधिक की वित्तीय आवश्यकता को दीर्घकालीन वित्त कहते है।
2. दीर्घकालीन वित्त के स्रोतों को दो प्रमुख वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है।

3. अंशपूंजी दीर्घकालीन वित्त का एक भाग है।
4. उद्योगों के आधुनिकीकरण के लिए दीर्घकालीन वित्त का प्रयोग नही होता।
5. भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक दीर्घकालीन वित्त प्रदान नहीं करता।
6. सामान्य बीमा निगम धारक कम्पनी के रूप में कार्य करता है।
7. राज्य औद्योगिक विकास निगम लघु एवं मध्यम आकर के उद्योगों को दीर्घकालीन वित्त प्रदान करता है।
8. यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया उद्योगों को दीर्घकालीन वित्त प्रदान करता है।
9. भारतीय औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम निजी क्षेत्र को दीर्घकालीन वित्त प्रदान करता है।

बहुविकल्पीय प्रश्न –

1. दीर्घकालीन वित्त कितने वर्ष से अधिक अवधि का होता है।
   (अ) 4 वर्ष (ब) 5 वर्ष (स) 3 वर्ष (द) 1 वर्ष
2. दीर्घकालीन वित्त के प्रमुख स्रोत–
   (अ) समता अंश (ब) पूर्वाधिकार अंश (स) ऋणपत्र (द) ब तथा स
3. कौन दीर्घकालीन वित्त का स्रोत नहीं है–
   (अ) बन्ध पत्र (ब) अंश पूंजी (स) ऋणपत्र (द) सम्पत्तियों का विक्रय
4. किसके लिए दीर्घकालीन ऋण प्रयुक्त नहीं होता–
   (अ) स्थायी सम्पत्ति का क्रय (ब) व्यवसाय विस्तार
   (स) कच्चे माल का क्रय (द) उद्योगों का आधुनिकीकरण

13.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

रिक्त स्थानों के उत्तर –

(1). 5 वर्ष (2) स्थायी (3) जुलाई1964 (4) पूंजी निर्माण

सत्य/असत्य का उत्तर :–

1.सत्य	2. सत्य	3.सत्य	4. असत्य	5. असत्य
6. सत्य	7. सत्य	8. असत्य	9. सत्य	

बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तरः–

1. (ब) 2. (द) 3. (द) 4. (स)

13.13 स्वपरख प्रश्न

1. दीर्घकालीन वित्त से क्या आशय है? दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता एवं महत्व को समझाइए।
2. दीर्घकालीन वित्त के प्रमुख स्रोतों का वर्णन कीजिए तथा दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता को प्रभावित करने वाले तत्वों को भी बताइए।
3. दीर्घकालीन वित्त प्रदाता के रूप में भारत में कौन–कौन सी वित्तीय संस्थाए संलग्न हैं? क्या ये संस्थायें अपने उद्‌देश्य की पूर्ति में सफल हुई हैं?
4. दीर्घकालीन वित्त पूर्ति में आने वाली विभिन्न समस्याओं का वर्णन करते हुए उन समस्याओं के समाधान हेतु अपने सुझाव भी प्रस्तुत कीजिए।
5. भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के उद्‌देश्य एवं कार्यों का वर्णन कीजिए।

6. दीर्घकालीन वित्त की पूर्ति में कौन कौन से विनियोगी संस्थान संलग्न हैं? संक्षेप में वर्णन कीजिए।

13.14 सन्दर्भ पुस्तकें

7. "Financial Management"- M.Y. Khan & P.K. Jain, Tata Mc Graw Hill.
8. "वित्तीय बाजारों की कार्यप्रणाली"– प्रो0 वी0 पी0 अग्रवाल– साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
9. "निगमीय लेखांकन"– सी0 एम0 जैन एवं ए0 के0 अग्रवाल– g Master g Educorp, मेरठ।
10. "प्रबन्ध हेतु वित्तीय विश्लेषण"– डॉ0 ए0 के गर्ग– स्वाती प्रकाशन, बुलन्दशहर।
11. "निगमीय लेखाविधि"– डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 राजकुमार– नवनीत प्रकाशन, नजीबाबाद।
12. https://efinancemenagement.com
13. www.academia.edu
14. www.ICSI.edu > portals
15. "Corporate Restcucturing"- Ranjan Das & Udayan Kumar Basu – Tata Mc Graw – Hill education, New Delhi.
16. www.izito.co.in
17. www.risk-academy.ru
18. "Derivative Markets in India : Trading, Pricing and Risk-Management" – Alok Dixit, S.S. Yadav & P.K. Jain – Tata Mc Graw-Hill, New Delhi.

इकाई 14 पट्टा वित्त पोषण

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 पट्टा वित्त पोषण से आशय
14.3 प्रमुख तत्व या विशेषताएं
14.4 पट्टा वित्त पोषण के प्रकार
14.5 पट्टा निर्धारण में सावधनियां
14.6 पट्टा वित्त पोषण के लाभ
14.7 पट्टा वित्त पोषण के सीमाएं
14.8 पट्टे का वित्तीय मूल्यांकन करने की विधियां
14.9 पट्टा वित्त पोषण एवं किराया क्रय पद्धति
14.10 सारांश
14.11 शब्दावली
14.12 बोध प्रश्न
14.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
14.14 स्वपरख प्रश्न
14.15 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- पट्टा वित्त पोषण से आशय, विशेषतायें, लाभ, एवं इसकी सीमाओं को समझ सकें।
- पट्टे का वित्तीय मूल्यांकन करने की पद्धतियों का वर्णन कर सकें।
- पट्टा वित्त पोषण एवं किराया क्रय पद्धति में अंतर स्पष्ट कर सकें।

14.1 प्रस्तावना

पट्टे पर यदि कोई सम्पत्ति दी जाती है तो उसमें मुख्यतः दो पक्षकार होते हैं एक तो सम्पत्ति का मालिक जिसे भूस्वामी कहा जाता है और दूसरा पट्टेदार जो सम्पत्ति को पट्टे पर प्राप्त करता हैं। पट्टेदार पट्टे की राशि का भुगतान करता है तथा भूस्वामी उस राशि को प्राप्त करता है। पट्टे अथवा सम्पत्ति की गुणवत्ता के आधार पर भू–स्वामी सम्पत्ति को पट्टे पर प्रदान करने के लिए पट्टेदार से नजराना या एकमुश्त प्रीमियम राशि भी लेते हैं।

14.2 पट्टा वित्त पोषण से आशय

पट्टा वित्त पोषण का अध्ययन करने से पूर्व पट्टा शब्द की परिभाषा जानना एवं समझना अत्यन्त आवश्यक है। सामान्य जन पट्टे और किराये को समानार्थी मानते हैं जबकि दोनों में तकनीकी दृष्टि से अन्तर हैं। किराये में वस्तु या सेवा किराये पर लेने वाला व्यक्ति वस्तु या सेवा के प्रयोग के बदले में निश्चित किराया राशि का भुगतान करता है बदले में उसे वस्तु के प्रयोग अथवा सेवायें प्राप्त करने का अधिकार मात्र ही हस्तान्तरित होता है न कि वस्तु का स्वामित्व। जैसे– भवन किराये पर लिये जाने पर किरायेदार भवन का उपयोग तो कर सकता है परन्तु भवन के स्वरूप में परिवर्तन या निर्माण कार्य नहीं कर सकता,

इसी प्रकार टैक्सी में बैठकर जाने वाला व्यक्ति टैक्सी की सेवायें किराया देकर मात्र गन्तव्य पर पहुंचने के लिए ही कर सकता है।

पट्टे की अवधि में निर्धारित दर एवं निर्धारित शर्तों के अनुसार स्थायी अथवा उत्पादन के अनुसार भुगतान सुनिश्चित किया जाता है। पट्टेदार एवं भू–स्वामी के मध्य एक अनुबन्ध पट्टे के सम्बन्ध में किया जाता है तथा प्रयोग के साथ परिवर्तन के अधिकार भी पट्टेदार को प्राप्त हो जाते हैं निर्धारित अवधि में वस्तु का स्वामित्व भी पट्टेदार के पास ही रहता है। कुछ विद्वानों ने इसे परिभाषित करते हुए कहा है कि पट्टे की अवधि में भू–स्वामी एवं उसकी पट्टे पर दी गयी सम्पत्ति के मध्य तलाक की स्थिति होती है। पट्टेदार पट्टे की अवधि समाप्त होने पर (नवीनीकरण का प्रावधान न होने की दशा में) सम्पत्ति भू–स्वामी को वापिस कर देता है और भू–स्वामी का स्वामित्व पुर्नजीवित हो जाता है। सामान्यतः पट्टे का प्रयोग खानों, भट्टों की जमीन, खेती की जमीन आदि के सम्बन्ध में किया जाता है। यहां यह भी महत्वपूर्ण है आधुनिक अवधारणाओं में किराया क्रय पद्धति को भी पट्टा वित्त पोषण में सम्मिलित किया जाता है क्योंकि उसमें भी वस्तु के प्रयोग का अधिकार क्रेता को रहता है और अन्तिम किस्त की राशि भुगतान होने के पश्चात ही विक्रेता स्वामित्व क्रेता को हस्तान्तरित करता है। संक्षेप पट्टा वित्त, वित्त पोषण की एक ऐसी विधि है जिसमें अनुबन्ध में दी गयी निर्धारित शर्तों के अनुसार एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को सम्पत्ति स्वामित्व सहित प्रयोग का अधिकार निर्धारित अवधि के लिए प्रदान कर वित्तीय सहायता प्रदान करता है और बदले में निर्धारित अधिकार शुल्क प्राप्त करता है। पट्टे की अवधि में प्रयोग एवं स्वामित्व के अधिकार पट्टेदार के पास ही रहते हैं तथा भू–स्वामी पट्टे पर दी गयी सम्पत्ति का नाममात्र का ही स्वामी होता है।

14.3 प्रमुख तत्व या विशेषतायें

पट्टा वित्त पोषण से सम्बन्धित प्रमुख विशेषतायें अथवा तत्व निम्न प्रकार है :–

1. पट्टे के पक्षकार :–

किसी भी पट्टे के अनुबन्ध में कम से कम दो पक्षकार भू स्वामी एवं पट्टेदार का होना अनिवार्य है। यह पक्षकार एकल व्यवसायी, सांझेदारी संस्था, संयुक्त पूंजी कम्पनी, कोई निगम अथवा अन्य कोई वित्तीय संस्था के रूप में हो सकते हैं। कभी कभी संयुक्त भू स्वामी या संयुक्त पट्टेदार भी हो सकते हैं। सामान्यतः जहां पट्टे की राशि अधिक होती है वहां अधिक भू स्वामी या अधिक पट्टेदार होते हैं। वर्तमान समय में पट्टा वित्त पोषण प्रक्रिया में अत्यधिक धनराशि संलग्न रहने के कारण कुछ पट्टा ब्रोकर (एजेंट) भी मध्यस्थता करने लगे हैं। भारत में कार्य कर रहे विभिन्न विदेशी बैंक मर्चेंट बैंकिंग के रूप में इस प्रकार की सेवायें प्रदान करते हैं। पट्टे पर कार्य एवं राशि के अत्यधिक होने पर होने पर पट्टेदार अपने अन्तर्गत उपपट्टे की व्यवस्था भी कर सकता हैं।

2. संलग्न सम्पत्ति :–

पट्टेदार अपने लिए उपयुक्त जिस सम्पत्ति को पट्टे पर लेता है वह पट्टे में संलग्न सम्पत्ति कही जाती है। यह सम्पत्ति वाहन, प्लांट एवं मशीन, जमीन, भवन, फैक्टरी, हवाई जहाज आदि कुछ भी हो सकती है।

3. स्वामित्व :–

पट्टे की अविध में यद्यपि मूल स्वामित्व भू स्वामी का ही होता है परन्तु पट्टे की अवधि में वह पट्टे पर दी गयी सम्पत्ति का नाममात्र का ही स्वामी रह जाता है और उस सम्पत्ति के सब प्रकार से परिवर्तन एवं प्रयोग के अधिकार पट्टेदार को हस्तान्तरित हो जाते हैं। पट्टे की अवधि समाप्ति के पश्चात ही पुनः उसका हस्तान्तरण भू–स्वामी को संभव होता है।

4. पट्टे की अवधि :–

प्रत्येक पट्टे के लिए निर्धारित अनुबन्ध में एक निश्चित अवधि सुनिश्चित होती है। सामान्यतः जब तक पट्टे पर कार्य संचालित रहता है वही पट्टे की अवधि भी होती है। पारस्परिक सहमति के आधार पर यह अवधि भू स्वामी एवं पट्टेदार के मध्य पूर्व में ही निर्धारित हो जाती है। पट्टे की अवधि समाप्त होने पर अनुबन्ध समाप्त हो जाता है परन्तु यदि निर्धारित शर्तों के अनुसार नवीनीकरण की व्यवस्था भी है तो पट्टास्वामी एवं पट्टेदार पट्टे के अनुबन्ध का नवीनीकरण भी कर सकते हैं।

5. पट्टे की राशि :–

पट्टा स्वामी द्वारा अपनी सम्पत्ति के प्रयोग के बदले में अनुबन्ध में निर्धारित शर्तों के अनुसार जो धनराशि पट्टेदार से नियमित रूप से प्राप्त की जाती है वह पट्टा शुल्क, अधिकार शुल्क या पट्टा राशि कही जाती है।

6. पट्टा अनुबन्ध समाप्ति :–

- पट्टे की निर्धारित अवधि अथवा कार्य समाप्त होने पर
- पट्टे के दौरान पारस्परिक सहमति से
- पट्टा स्वामी द्वारा सम्पत्ति के विक्रय करने पर (यह विक्रय पट्टेदार को अथवा अन्य किसी तृतीय पक्ष को किया जा सकता है)

उपरोक्त कृत्य के लिए पट्टा स्वामी एवं पट्टेदार की पूर्व या वर्तमान पारस्परिक सहमति होना आवश्यक है।

14.4 पट्टा वित्त पोषण के प्रकार

पट्टा वित्त पोषण को विभिन्न विद्वानों ने अपने अपने मतानुसार वर्गीकृत किया है परन्तु सामान्य एवं सर्वस्वीकार्य मतानुसार पट्टा वित्त पोषण को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. वित्तीय पट्टा :–

अन्तर्राष्ट्रीय लेखांकन परिषद के मानक 17 के अनुसार, ''वित्तीय पट्टे में पट्टा मालिक पट्टा सम्पत्ति से सम्बन्धित सभी जोखिम, लाभ, हानि, आकस्मिकतायें आदि सभी पट्टेदार को हस्तांतरित कर देता है। इसमें अनुबंधानुसार पट्टेदार द्वारा अधिकार शुल्क या पट्टा शुल्क का नियमित भुगतान पट्टा स्वामी को किया जाना भी सम्मिलित होता है।''

सामान्यतः वित्तीय पट्टे में पट्टा सम्पत्ति से सम्बद्ध सभी अधिकार पट्टा स्वामी द्वारा पट्टेदार को हस्तांतरित कर दिये जाते हैं और वह केवल नाम के लिए ही सम्पत्ति का स्वामी रह जाता है। सम्पत्ति के अन्य किसी भी क्रियाकलाप से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। इस प्रकार के पट्टे का प्रयोग सामान्यतः

पानी के जहाज, हवाई जहाज, रेलवे वैगन, भूमि एवं भवन, भारी मशीनरी, डीजल चालित वृहद संयंत्रों आदि के लिए किया जाता है।
वित्तीय पट्टे के सम्बन्ध में निम्न तथ्य महत्वपूर्ण है :—

- यदि पट्टेदार द्वारा किन्हीं परिस्थितियों के कारण पट्टा रद्द किया जाता है तो इस सम्बन्ध में पट्टा स्वामी को होने वाली सभी हानियों की क्षतिपूर्ति पट्टेदार को करनी होगी।
- पट्टे के दौरान बाजार में होने वाले आकस्मिक उतार चढ़ावों अथवा अन्य किसी भी कारण से पट्टा सम्पत्ति के सम्बन्ध में होने वाले किसी लाभ हानि से पट्टा स्वामी का कोई सम्बन्ध नहीं होगा, वह पट्टेदार द्वारा ही वहनीय होंगे।
- पट्टा स्वामी एवं पट्टेदार की पारस्परिक सहमति से पट्टा अवधि समाप्त होने पर पट्टा अनुबन्ध को द्वितीयक रूप से जारी रखा जा सकता है। ऐसी स्थिति में पट्टेदार बाजार दरों के समकक्ष भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगा।
- यदि पट्टे के दौरान पारस्परिक सहमति होती है तो पट्टा स्वामी एवं पट्टेदार यदि चाहे तो पूर्वनिर्धारित शर्तों में परिवर्तन कर सकते हैं। परिवर्तित शर्तों के आधार पर दोनों को एक नवीन अनुबन्ध पर अपनी स्वीकृति प्रदान करनी होगी।
- यदि पट्टेदार पट्टे के दौरान पट्टा स्वामी को नियत समय या नियत दर पर भुगतान करने में सफल नहीं होता है अथवा अनुबन्ध की अन्य किसी शर्त का अनुपालन नहीं करता है तो इस सम्बन्ध में पट्टा स्वामी को निर्धारित शर्तों के अनुसार क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार होगा अन्यथा की स्थिति में उसे यह भी अधिकार होगा कि वह पट्टा अनुबन्ध को समय से पूर्व स्थगित अथवा समाप्त कर दे।
- वित्तीय पट्टों में सामान्यतः पट्टे की अवधि पट्टे या सम्पत्ति का सम्पूर्ण निर्धारित जीवनकाल होती है। इस प्रकार के पट्टों को प्राथमिक पट्टा अवधि एवं द्वितीयक पट्टा अवधि में विभाजित किया जाता है। प्राथमिक अवधि का निर्धारण इस प्रकार किया जाता है जिसमें पट्टा स्वामी को सम्पत्ति या पट्टे की कीमत वापिस प्राप्त होनी सम्भावित होती है। इस अवधि में सामान्यतः पट्टे का स्थगन सम्भव नहीं होता है और यदि होना भी है तो अत्यधिक क्षतिपूर्ति करनी होती है। इस अवधि के पश्चात द्वितीयक पट्टा अवधि का अनुबन्ध किया जाता है जो प्राथमिक अवधि की तुलना में कम दरों पर निर्धारित होता है।

2. <u>परिचालन या सेवा पट्टा :—</u>

अन्तर्राष्ट्रीय मानक परिषद के मानक 17 एवं भारतीय लेखांकन परिषद के मानक 19 के अनुसार, ''परिचालन पट्टा वह है जो वित्तीय पट्टा नहीं है। इसमें वित्तीय पट्टे के भांति पट्टे की सम्पत्ति से सम्बद्ध सभी जोखिम, आकस्मिकता की दशा के लाभ हानि आदि सभी अधिकार हस्तान्तरित नहीं किये जाते हैं तथा प्राथमिक पट्टा अवधि में पट्टा सम्पत्ति का मूल्य भी प्राप्त होना अनिवार्य नहीं होता है। परिचालन पट्टे में पट्टा स्वामी पट्टा सम्पत्ति की देखभाल, मरम्मत,

सलाहकार सेवायें आदि कार्य से अपने को सम्बद्ध रखता है।'' इसी कारण से संचालन पट्टों को सेवा पट्टा भी कहा जाता है। इस प्रकार के पट्टों में पट्टा स्वामी को जो निर्धारित भुगतान पट्टेदार द्वारा किया जाता है उसमें पट्टा स्वामी द्वारा प्रदान की जाने वाली विभिन्न सेवाओं का मूल्य जुड़ा हुआ रहता है। इस प्रकार के परिचालन पट्टों का प्रयोग सामान्यतः कम्प्यूटर्स, कार्यालय उपकरणों, आटोमोबाइल्स क्षेत्र, टेलीफोन सुविधा आदि में किया जाता है। परिचालन पट्टों के सम्बन्ध में निम्न बिन्दु तथ्यपूर्ण हैं :–

- परिचालन पट्टे वित्तीय पट्टों की तुलना में अपेक्षाकृत कम अवधि के होते हैं। इनके साथ पट्टे की सम्पत्ति का मूल्य पूर्ण रूप से वसूल होने की शर्त भी नहीं होती। कुछ दशाओं में यह अवधि के आधार पर दैनिक, साप्ताहिक अथवा मासिक भी हो सकते हैं।
- दोनों पक्षकार पट्टा स्वामी एवं पट्टेदार सुगमता से इस प्रकार के अनुबन्ध को रद्द कर सकते हैं। इसके लिए अधिक क्षतिपूर्ति भुगतान या औपचारिकताअओं की आवश्यकता नहीं होती।
- पट्टे की अवधि अपेक्षाकृत कम होने के कारण पट्टे की सम्पत्ति का सम्पूर्ण मूल्य वसूल होने की सम्भावना नहीं होती।
- पट्टा स्वामी पट्टे पर दी गयी सम्पत्ति का सम्पूर्ण मूल्य प्राप्त करने के लिए एक पट्टेदार पर आश्रित नहीं रहता है। इसके अतिरिक्त अप्रचलन से हानि के लिए भी पट्टा स्वामी को मानसिक रूप से तैयार होना होता है क्योंकि इस प्रकार के पट्टे के अनुबन्ध कभी भी रद्द किये जा सकते हैं।
- पट्टा स्वामी के दायित्वों में पट्टे की सम्पत्ति या उपकरण की मरम्मत, बीमा, सहायक आदि का व्यय सम्मिलित रहते हैं।

परिचालन पट्टों के उदाहरण निम्नवत् है :–

- मोबाइल क्रेन परिचालक सहित।
- चार्टर प्लेन या चार्टर पानी के जहाज (तेल, परिचालन एवं सहायक स्टाफ एवं सुविधाओं सहित)
- कम्प्यूटर उसके परिचालक सहित।
- टैक्सी या मालवाहक वाहन किराये पर लेना, इसमें ड्राइवर की सेवायें, मरम्मत, तेल, सहायक आदि सम्मिलित रहते हैं।

परिचालन पट्टे को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :–

द्विपक्षीय पट्टा :–

इस प्रकार के परिचालन पट्टों में दो पक्षकार, व्यक्ति या संस्था रहते हैं और सामान्यतः इनका उपयोग विभिन्न उपकरणों के लिए किया जाता है। प्रथम पट्टे पर दिये जाने वाले उपकरण का स्वामी यानि कि पट्टा स्वामी एवं द्वितीय पट्टेदार अर्थात उपकरण का उपयोग करने वाला, इसमें पट्टा स्वामी पट्टे की मरम्मत तथा आवश्यक होने पर मूल संयंत्र के अपग्रेडेशन की व्यवस्था भी करता है। इसके अतिरिक्त आवश्यकता होने पर मूल संयत्र के दूसरे उचित संयंत्र से प्रतिस्थापन की व्यवस्था भी करता है।

तृपक्षीय पक्ष :–

इस प्रकार के परिचालन पट्टों में तीन पक्षकार, व्यक्ति या संस्था रहते हैं– उपकरण प्रदाता, पट्टेदार एवं पट्टा स्वामी। यह बिक्री में सहायता हेतु तृतीय पक्षकार द्वारा पट्टास्वामी एवं पट्टेदार के मध्य सामन्जस्य स्थापित किए जाने वाले पट्टे हैं। इसमें तृतीय पक्षकार निर्धारित शुल्क लेकर पट्टेदार को उपकरण स्वामी का संदर्भ प्रदान करता है। कुछ अन्य परिस्थितियों में यह तृतीय पक्षकार पट्टे के अनुबन्ध की शर्तें आदि निर्धारित कराने से लेकर अन्य सभी आवश्यक औपचारिकताएं निभाने का दायित्व भी पूर्ण करते हैं। ऐसी व्यवस्था सामान्यतः तब होती है जब पट्टेदार के प्रति शंका की स्थिति में पट्टा स्वामी तृतीय पक्षकार की गारंटी की आवश्यकता महसूस करता है।

3. घरेलू पट्टे :–

जब पट्टे में संलग्न सभी पक्षकार एक ही देश के निवासी होते हैं अर्थात पट्टा स्वामी, पट्टेदार एवं पट्टे में संलग्न अन्य कोई पक्षकार। ऐसे पट्टे घरेलू पट्टे या स्थानीय पट्टे कहे जाते हैं।

4. अन्तर्राष्ट्रीय पट्टे :–

जब पट्टे में संलग्न विभिन्न पक्षकार पृथक पृथक देश में निवास करते हों जैसे पट्टेदार, पट्टा स्वामी या तृतीय पक्षकार अलग अलग देशों में निवास करते हों तो ऐसे पट्टों को अन्तर्राष्ट्रीय पट्टा कहा जाता है। यह पट्टे दो प्रकार के हो सकते हैं :–

आयात पट्टा :– इस प्रकार के पट्टा अनुबन्धों में पट्टा स्वामी एवं पट्टेदार एक ही देश में निवास करते हैं परन्तु पट्टे की सम्पत्ति या उपकरण विक्रय करने वाली कम्पनी किसी अन्य देश की होती है। पट्टे के अनुबन्ध के लिए पट्टा स्वामी पहले वह उपकरण आयात के माध्यम से प्राप्त करता है और उसके पश्चात पट्टेदार को पट्टे पर प्रदान करता है।

सीमापार पट्टा :– जब पट्टेदार एवं पट्टा स्वामी दोनों पृथक पृथक देश के निवासी होते हैं तो उनके पारस्परिक पट्टे के अनुबन्ध इस श्रेणी में आते हैं यहां पर उपकरण प्रदाता कम्पनी किस देश की है इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

यहां यह ध्यान रखने योग्य बात है कि अन्तर्राष्ट्रीय पट्टों के सम्बन्ध में अपेक्षाकृत अधिक सावधानी एवं सजगता की आवश्यकता होती है क्योंकि घरेलू पट्टों की तुलना में इनमें निम्न जोखिम संलग्न रहते हैं :–

- दूसरे देश के राजनीतिक एवं आर्थिक कारक पट्टे को प्रभावित कर सकते हैं।
- दूसरे देश का आर्थिक पर्यावरण एवं करनीति पट्टे को प्रभावित कर सकती है।
- विदेशी मुद्रा में भुगतान के कारण दूसरे देश की मुद्रा नीति एवं विदेशी विनिमय दर से भी पट्टा प्रभावित हो सकता है।

अतः यह स्पष्ट है कि घरेलू पट्टों की तुलना में अन्तर्राष्ट्रीय पट्टों में अधिक जोखिम रहता है।

14.5 पट्टा निर्धारण में सावधनियां

पट्टे पर सम्पत्ति लेने की प्रक्रिया किसी भी संस्थान के विनियोग एवं लाभ से जुड़ी होने के कारण अति संवेदनशील हो जाती है। इसके अतिरिक्त बीच में पट्टा रद्द करने की दशा में भारी आर्थिक हानि हो सकती है। अतः इस प्रकार के निर्णय लेने में बहुत अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है। पट्टा परियोजना का भली भांति मूल्यांकन कर लिया जाना चाहिये जिससे अनुबन्ध के पश्चात हानि की सम्भावना न हो। इस सम्बन्ध में किसी भी औद्योगिक संस्थान को पट्टे पर सम्पत्ति का अनुबन्ध करने से पूर्व निम्न सावधानियां रखनी चाहिए –

1. **पट्टा परियोजना का आकलन –**

सर्वप्रथम अपनी आवश्यकताओं का मूल्यांकन किया जाना चाहिए और उसी आधार पर पट्टा परियोजना का चयन एवं आकलन किया जाना चाहिए। प्रारम्भिक चरण में ही यदि पट्टे की उपयुक्तता का आकलन उचित प्रकार कर लिया जाये तो भविष्य में हानि की सम्भावना से बचा जा सकता है।

2. **पट्टा परियोजना निर्धारण–**

विभिन्न पट्टा प्रस्तावों का तकनीकी, आर्थिक एवं व्यावहारिक मूल्यांकन करके यह देख लिया जाना चाहिये कि कौन सी पट्टा परियोजना हमारे सर्वाधिक अनुकूल है। इस प्रकार वैज्ञानिक आधार पर परियोजना का चयन संस्थान को भावी हानि की शंकाओं से बचा सकता हैं।

3. **पट्टा परियोजना मूल्यांकन –**

विभिन्न आधार पर मंथन करने के पश्चात परियोजना का निर्धारण कर लिया जाता है। इसके पश्चात इसके वित्तीय आकलन के लिये विशेषज्ञों की राय अवश्य ली जानी चाहिए। ये विशेषज्ञ तकनीकी आधार पर पट्टे की सम्पत्ति की संस्थान के लिए उपयोगिता के आधार पर, पट्टे की सम्पत्ति के जीवनकाल के आधार पर, पट्टे की सम्पत्ति से होने वाले आर्थिक लाभ के आधार पर, विभिन्न प्रकार से पड़ताल कर संस्थान को उचित परामर्श प्रदान करते है।

4. **पट्टा परियोजना का क्रियान्वयन–**

पट्टा परियोजना के मूल्यांकन से यदि उच्च प्रबन्ध सन्तुष्ट हो जाता है तथा अगला चरण इस पट्टा परियोजना के क्रियान्वयन का होता है। इस सम्बन्ध में पट्टे पर ली जाने वाली सम्पत्ति के लिए अनुबन्ध तैयार करना, अनुबन्ध की शर्तों को पट्टा स्वामी की सहमति से अंतिम रूप दिया जाना एवं इस सम्बन्ध में अन्य आवश्यक औपचारिकताएं आदि सम्मिलित होता है।

5. **पट्टा परियोजना का उचित संचालन–**

किसी भी परियोजना की सफलता उसके उचित एवं विशिष्ट संचालन पर निर्भर करती है यदि संचालन दोषपूर्ण होगा तो किसी भी परियोजना से सफलता एवं लाभ की आशा करना व्यर्थ है। अतः प्रारम्भ से ही दक्ष लोगों को परियोजना संचालन का कार्यभार सौंपना चाहिए जिससे पट्टे पर ली गयी सम्पत्ति का अधिकतम उपयोग संभव हो सके और अधिकतम लाभ भी कमाया जा सके।

14.6 पट्टा वित्त पोषण के लाभ

पट्टा वित्त पोषण प्रक्रिया किसी भी देश के आर्थिक एवं औद्योगिक विकास की गति को तीव्रता प्रदान करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

संक्षेप में पट्टा वित्त पोषण से होने वाले लाभों का वर्णन निम्न प्रकार किया जा सकता है :–

पट्टेदार की दृष्टि से –

1. **पूंजी सम्पत्ति पर सुगम वित्त :–**

पट्टा वित्त पोषण के माध्यम से बिना भारी पूंजी विनियोजन के कोई भी औद्योगिक संस्थान भूमि, भवन, मशीनरी, उपकरण आदि प्राप्त कर सकता है और इसके लिए उसे किसी एकमुश्त भुगतान की आवश्यकता भी नहीं होती। संस्थान न्यूनतम वित्त के माध्यम से विशाल एवं वृहद अवसंरचना का लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

2. **अतिरिक्त वित्त का माध्यम :–**

किसी भी संस्थान के लिए पट्टा वित्त पोषण एक ऐसी व्यवस्था है जिसका उपयोग करके कोई भी औद्योगिक संस्थान आवश्यकतानुसार बिना भारी विनियोजन के अतिरिक्त वित्त प्राप्त कर सकता है तथा कार्यशील पूंजी की मात्रा को संतुलित रख सकता है।

3. **मितव्ययी :–**

अन्य किसी भी माध्यम से वित्त या पूंजी एकत्र करने की तुलना में पट्टा वित्त पोषण व्यवस्था मितव्ययी एवं कम खर्चीली है।

4. **प्रवर्तकों का स्वामित्व अपरिवर्तनीय :–**

पट्टा वित्त पोषण का एक प्रमुख लाभ यह भी है कि इस प्रक्रिया में प्रवर्तकों का स्वामित्व एवं नियन्त्रण अप्रभावित रहता है। अन्य किसी भी क्रिया जैसे पूंजी निर्गमन आदि से वित्त जुटाने में प्रवर्तकों के अधिकार के प्रभावित होने का जोखिम बना रहता है।

5. **औपचारिकताओं का अभाव :–**

अन्य किसी माध्यम से पूंजी या वित्त एकत्रण में अंशधारियों की लाभ दर का प्रभावित होना, बोर्ड या अन्य समितियों की संस्तुति, प्रवर्तकों की सहमति आदि विभिन्न औपचारिकतायें एवं जोखिम रहते हैं परन्तु पट्टा वित्त पोषण के माध्यम से वित्त जुटाना अपेक्षाकृत आसान है और इसमें बहुत तकनीकियां एवं औपचारिकतायें भी नहीं है।

6. **लोचपूर्णता :–**

पट्टे पर वित्त प्राप्त करने का इच्छुक व्यक्ति या संस्थान अपने उपलब्ध संसाधनों या उपलब्ध रोकड़ के आधार कम या अधिक शुल्क वाले पट्टे का चयन कर सकता है। जितनी भुगतान क्षमता हो उसी के आधार पर पट्टा वित्त पोषण प्राप्त किया जा सकता है।

7. **सरलता :–**

पट्टे पर वित्त पोषण एक अत्यन्त सरल प्रक्रिया है इसमें मात्र एक अनुबन्ध पट्टा स्वामी एवं पट्टेदार के मध्य रहता है। अन्य किसी वैधानिकता या कागजी कार्यवाही की कोई आवश्यकता नहीं होती है। इसके अतिरिक्त वित्त को शीघ्रता से प्राप्त किया जा सकता है किसी भी प्रकार का प्रक्रिया विलम्ब नहीं होता है।

8. **करारोपण के लाभ :–**

पट्टा वित्त पोषण में किसी भी प्रकार का भारी विनियोजन नहीं होता। न ही सम्पत्ति का वास्तविक क्रय विक्रय होता है। ऐसी स्थिति में विभिन्न सरकारी कर नीतियों से भी पट्टेदार को सुरक्षा प्राप्त होती है। वहीं दूसरी ओर अधिकार शुल्क या पट्टा शुल्क भुगतान उसके व्ययों में सम्मिलित होकर उसके कर योग्य लाभ को कम करता है।

9. **अप्रचलन अथवा ह्रास से मुक्ति :–**

मूल स्वामित्व पट्टा स्वामी के पास होने के कारण पट्टेदार को ह्रास अथवा अप्रचलन का न तो पुस्तकों में लेखा करना होता है और न ही इस प्रकार की आशंकाओं से उसे कोई जोखिम अनुभव होता है।

पट्टा स्वामी की दृष्टि सेः–

10. **पूर्ण सुरक्षा :–**

पट्टे की सम्पत्ति पर मूल स्वामित्व के बने रहने के कारण पट्टा स्वामी सदैव पूर्ण सुरक्षा अनुभव करता है। वह यदि कभी भी पट्टे को अपना हित विरोधी अनुभव करे तो सम्पत्ति को पुनः अपने अधिकार में लेकर पट्टे का अनुबन्ध समाप्त कर सकता है।

11. **कर लाभ :–**

पट्टा स्वामी को एक सबसे बड़ा लाभ यह भी है कि वास्तविक रूप से सम्पत्ति या उपकरण का प्रयोग न करने के बाद भी वह अपने खातों में वार्षिक ह्रास का लाभ प्राप्त कर सकता है जिससे उसके कुल कर दायित्व में कमी होती है।

12. **उच्चतम लाभदायकता :–**

वर्तमान प्रतियोगी युग में पट्टा स्वामी अधिकतम पट्टा शुल्क या अधिकार शुल्क बिना किसी अतिरिक्त श्रम के प्राप्त कर सकता है। वास्तव में उसके द्वारा दी जाने वाली ब्याज दर से पट्टे पर प्राप्त राशि कहीं अधिक होती है।

13. **प्रतियोगिता का लाभ :–**

अधिक विनियोजन एवं अप्रचलन का भय आदि अनेकानेक कारणों से वर्तमान औद्योगिक जगत में पट्टा वित्त पोषण की व्यवस्था अत्यन्त लोकप्रिय हो रही है। ऐसी स्थिति में पट्टा स्वामी अपने विनियोजन पर अधिकाधिक लाभार्जन की स्थिति में रहता है।

14.7 पट्टा वित्त पोषण की सीमायें

पट्टा वित्त पोषण की सीमायें निम्न हैः

1. **सम्पत्ति का प्रतिबंधित प्रयोग :–**

मूल स्वामित्व पट्टा स्वामी के पास रहने के कारण पट्टेदार द्वारा सम्पत्ति के निर्बाध प्रयोग में समस्या रहती है। विशेषतः उपकरणों के पट्टे पर प्रयोग में विभिन्न शर्तों एवं प्रतिबन्धों के रहते पट्टेदार उसमें अपने कार्य के स्वभावानुसार अथवा आवश्यकतानुसार परिवर्तन नहीं कर पाता है।

2. **वित्तीय पट्टे रद्द करने में आर्थिक हानि :–**

वित्तीय पट्टे सामान्यतः दीर्घ अवधि के होते है और प्राथमिक पट्टा अनुबन्ध को रद्द करना सुगम भी नहीं होता है। ऐसी स्थिति में यदि पट्टेदार

पट्टा लेने के बाद यह अनुभव करता है कि सम्पत्ति उसके अनुकूल नहीं है अथवा अधिक लाभदायक नहीं है तो ऐसी दशा में उसे यदि पट्टा रद्द करना हो तो भारी आर्थिक हानि का सामना करना पड़ता है।

3. **अपलिखित मूल्य का पट्टेदार को प्राप्त न होना :-**

वित्तीय पट्टों में सम्पत्ति को सम्पूर्ण जीवनकाल तक सामान्यतः पट्टेदार प्रयोग करता है परन्तु अन्त में मूल स्वामित्व पट्टा स्वामी का ही रहता है। ऐसी स्थिति में अविशिष्ट मूल्य का लाभ पट्टा स्वामी को प्राप्त होता है न कि पट्टेदार को। पट्टेदार पट्टे के दौरान किए गए रख रखाव या लाभकारी परिवर्तन का कोई लाभ नहीं उठा पाता है।

4. **अनुबंध की शर्तें न पूर्ण होने की दशा में :-**

यदि पट्टेदार वित्तीय पट्टे में पट्टे के दौरान अनुबन्ध की कोई भी शर्त किसी भी समय पूरी नहीं कर पाता तो भू स्वामी पट्टा रद्द करके सम्पत्ति का स्वामित्व वापिस ले सकता है और ऐसी दशा में क्षतिपूर्ति भी पट्टेदार को ही करनी होती है। वहीं दूसरी ओर परिचालन पट्टों में कभी भी रद्द करने की शर्त के कारण भी पट्टा स्वामी सदैव सशंकित रह कर कार्य करता है।

5. **दोहरा कर :-**

पट्टे पर सम्पत्ति का प्रचलन अत्याधिक बढ़ जाने के कारण हमारे देश में अनेकों राज्यों ने अब पट्टे की सम्पत्ति पर पट्टा स्वामी द्वारा कर के भुगतान की व्यवस्था कर दी है जिससे दोहरे करारोपण की समस्या हो जाती है। एक बार पट्टा स्वामी द्वारा सम्पत्ति के क्रय के समय तथा दोबारा पट्टेदार द्वारा सम्पत्ति को पट्टे पर लेते समय कर चुकाना पड़ता है।

14.8 पट्टे का वित्तीय मूल्यांकन करने की विधियां

परिचालन पट्टे सामान्यतः अल्पावधि के होते हैं। अतः उनके द्वारा होने वाले लाभ या हानि का मूल्यांकन अपेक्षाकृत सुगम होता है, इसके अतिरिक्त परिचालन पट्टों में विनियोजित की जाने वाली राशि की मात्रा भी बहुत बड़ी नहीं होती है परन्तु वित्तीय पट्टे सामान्यतः स्थिर या स्थायी सम्पत्तियों में धन विनियोजित करते हैं तथा इनमें अत्याधिक धनराशि का विनियोजन संलग्न होता है। इसके अतिरिक्त वित्तीय पट्टे की सम्पत्ति का प्रयोग व्यवसाय या संस्थान के लाभ हानि को भी वृहद रूप से प्रभावित करने की क्षमता रखता है अतः इनका विशिष्ट तकनीकी आधार पर मूल्यांकन अति आवश्यक हो जाता है। पट्टे की सम्पत्ति पर किए गए धन विनियोजन से होने वाले लाभ की अथवा धन वापसी की संभावनाओं का अध्ययन निम्न विधियों द्वारा किया जा सकता है :-

1. **प्रत्यावर्तन अवधि विधि :-**

प्रत्यावर्तन अवधि उस समय को कहा जाता है जिसके अन्दर पट्टे पर ली गयी सम्पत्ति पर किए गए विनियोग की राशि व्यवसाय या संस्थान द्वारा पुनः वसूल कर ली जाएगी। यह विधि वस्तुतः एक इस प्रकार किए गये पूंजी विनियोग तथा दूसरी ओर उससे प्राप्त होने सम्भावित लाभ के मध्य समय के रूप में सम्बन्ध स्थापित करती है। सामान्यतः यह एक सर्व स्वीकार्य सत्य है कि किसी पूंजी विनियोग की प्रत्यावर्तन अवधि जितनी अधिक होगी पूंजी विनियोग में निहित जोखिम उतना ही अधिक बढ़ जायेगा। इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि

दीर्घकाल में उत्पादन तकनीक, मांग की प्रकृति तथा उपभोक्ता की रूचियों आदि में परिवर्तन होने की आशंकायें एंव पट्टे पर ली जाने वाली सम्पत्ति की उपयोगिता में कमी, अप्रचलन की संभावना, आधुनिक तकनीक का प्रदुर्भाव आदि संभावनायें हो सकती है। अतः अति दीर्घकालीन पट्टे पर विनियोजन से प्रबन्धक बचने का प्रयास करते हैं।

प्रत्यावर्तन अवधि ज्ञात करने के लिए शुद्ध विनियोग की राशि और उसके प्रयोग के माध्यम से प्राप्त होने वाली शुद्ध वार्षिक बचत का सही और उचित अनुमान लगाना होता है। यह शुद्ध वार्षिक आय या बचत उस नकद प्रवाह के बराबर होती है जो उस सम्पत्ति के उपयोग या प्रयोग के कारण उस व्यवसाय या संस्थान को प्राप्त होता है। इसे ज्ञात करने के लिए उस सम्पत्ति से होने वाले कर रहित शुद्ध लाभ की राशि में ह्रास के लिए किया गया प्रावधान जोड़ दिया जाता है। यहां यह ध्यान रखने योग्य बात है कि पट्टे की सम्पत्ति का मूल स्वामित्व पट्टा स्वामी के पास होने के कारण पट्टेदार अपने खातों में ह्रास राशि का लाभ प्राप्त नहीं कर सकता। परन्तु पट्टे की सम्पत्ति का वास्तविक उपयोग उसके द्वारा किया जाता है तथा सम्पत्ति ह्रासित भी होती है। अतः लाभ गणनाओं में वह ह्रास राशि का उपयोग करता है अन्यथा उचित गणना सम्भव नहीं होगी। प्रत्यावर्तन अवधि के आधार पर गणना निम्न प्रकार से की जाती है :–

$$\text{प्रत्यावर्तन अवधि} = \frac{\text{शुद्ध विनियोग}}{\text{वार्षिक शुद्ध लाभ}}$$

यहां पर –

वार्षिक शुद्ध लाभ = वार्षिक शुद्ध लाभ + पट्टे पर सम्पत्ति पर आगणित वार्षिक ह्रास की राशि

नोट – यहां यह भी ध्यान रखने योग्य बात है कि सम्पत्ति का मूल स्वामित्व पट्टा स्वामी का ही होता है तथा पट्टे की सम्पत्ति के अविशिष्ट या निस्तारण मूल्य को वो ही प्राप्त करता है। अतः उपरोक्त गणनाओं में वह सदैव शून्य माना जाएगा।

व्यवहारिक प्रश्न संख्या 1

किसी संस्थान को एक मशीन पट्टे पर लेनी है और उसके समक्ष मशीन 'अ' तथा मशीन 'ब' दो प्रस्ताव विचाराधीन हैं। दोनों ही मशीनों की लागत ₹ 2,00,000 है तथा जीवनकाल 10 वर्ष है। 'अ' मशीन से शुद्ध लाभ ₹ 30,000 तथा 'ब' मशीन से ₹ 20,000 प्रतिवर्ष प्राप्त होने का अनुमान है। प्रत्यावर्तन अवधि ज्ञात कीजिए जबकि प्रतिवर्ष ₹ 20,000 ह्रास राशि का अनुमान है। यह भी स्पष्ट कीजिए कि संस्थान को कौन सी मशीन पट्टे पर प्राप्त करना अधिक लाभकारी होगा?

समाधान / हल –

$$\text{प्रत्यावर्तन अवधि} = \frac{\text{शुद्ध विनियोग}}{\text{वार्षिक शुद्ध लाभ (ह्रास सहित)}}$$

'अ' मशीन का मूल्यांकन

$$\frac{2,00,000}{30,000 + 20,000} = 4 \text{ वर्ष}$$

'ब' मशीन का मूल्यांकन

$$\frac{2,00,000}{20,000 + 20,000} = 5 \text{ वर्ष}$$

निष्कर्ष – उपरोक्त गणना से स्पष्ट है कि संस्थान के लिए प्रथम अर्थात 'अ' मशीन को ही पट्टे पर प्राप्त करना उचित एवं श्रेयस्कर रहेगा क्योंकि मशीन 'अ' पर विनियोजित पूंजी 4 वर्ष में वापिस प्राप्त कर लेगी जबकि मशीन 'ब' पर यह विनियोजन वापसी अवधि 5 वर्ष होगी अर्थात एक वर्ष का समय अधिक लगेगा।

प्रत्यावर्तन अवधि के गुण –

1. जिन संस्थाओं में उत्पादन तकनीक अथवा उत्पादन मांग प्रकृति में अधिक परिवर्तन संभावित होते हैं वहां यह विधि सर्वात्तम मानी जाती है।
2. प्रत्यावर्तन अवधि विधि पट्टे पर ली जाने वाली मशीनों या सम्पत्ति के अप्रचलनों से होने वाली सम्भावित हानि से उत्पन्न होने वाले जोखिमों में कमी कर देती है।
3. इस विधि के माध्यम से पट्टे पर ली जाने वाली सम्पत्तियों के विभिन्न विकल्पों में से सर्वोत्तम का चुनाव किया जा सकता है।
4. जिन संस्थानों की तरल स्थिति मजबूत न हो उनके लिए भी यह विधि श्रेष्ठ मानी जाती है।

प्रत्यावर्तन अवधि के दोष –

1. यह विधि निवेशित पूंजी की पुनः प्राप्ति अवधि का ही माप करती है, पूंजी पर प्राप्त होने वाले प्रतिफल की दर का नहीं।
2. इसमें प्रत्यावर्तन अवधि के बाद विनियोग की लाभदायकता को ध्यान में नहीं रखा जाता।
3. यह विधि प्रत्येक परिस्थिति या प्रत्येक संस्थान के लिये सर्वोत्तम नहीं है।
4. पट्टे पर ली गयी सम्पत्ति का अनुमानित जीवनकाल कम एवं अधिक हो सकता है। अतः अनुमान के निष्कर्षों की सत्यता संदिग्ध हो जाती है।

प्रत्यावर्तन अवधि के बाद की लाभदायकता –

प्रत्यावर्तन अवधि विधि में प्रत्यावर्तन अवधि के पश्चात होने वाले लाभ की गणना नहीं की जाती। अनेकों बार परियोजनाओं की गणना प्रत्यावर्तन अवधि के आधार पर करने पर बराबर आती है। अतः परियोजना का चयन प्रत्यावर्तन अवधि के पश्चात होने वाली बचतों को ध्यान में रखकर प्रत्यावर्तन अवधि के बाद की लाभदायकता ज्ञात की जाती है। यदि विभिन्न परियोजनाओं की लागत में पर्याप्त अन्तर है तो तुलना के लिए अदायगी अवधि के बाद लाभदायकता सूचकांक की गणना भी की जा सकती है।

प्रत्यावर्तन अवधि के बाद की लाभदायकता

= वार्षिक रोकड़ प्रवाह × (सम्पत्ति का जीवनकाल – प्रत्यावर्तन अवधि)

$$\text{लाभदायकता सूचकांक} = \frac{\text{प्रत्यावर्तन पश्चात लाभ अवधि}}{\text{शुद्ध विनियोग}} \times 100$$

<u>व्यवहारिक प्रश्न संख्या 2</u>

नीचे दी गयी सूचनाओं के आधार पर प्रत्यावर्तन अवधि के आधार पर कम्पनी प्रबन्ध कौन सी मशीन का चयन करेगा ? दोनों के सम्बन्ध में निम्नलिखित सूचनायें उपलब्ध है –

	मशीन 'अ' ₹	**मशीन 'ब' ₹**
मशीन की लागत	2,50,000	5,00,000
अनुमानित जीवन (वर्षों में)	4	5
रख रखाव की वार्षिक लागत	13,000	21,000
पर्यवेक्षण की वार्षिक लागत	22,500	31,000
अप्रत्यक्ष सामग्री की वार्षिक लागत	12,000	16,000
मजदूरी में अनुमानित वार्षिक बचत प्रति मजदूरी	1,300	1,300
मजदूरों की संख्या (जो अनावश्यक हो जाएगी)	75	100
अन्य वार्षिक बचत	20,000	25,000

हल/समाधान

(अ) अनुमानित वार्षिक कुल बचतें –

	मशीन 'अ'	**मशीन 'ब'**
मजदूरी	97,500	1,30,000
अन्य	20,000	25,000
	1,17,500	**1,55,000**

(ब) अतिरिक्त वार्षिक लागतें –

	मशीन 'अ'	**मशीन 'ब'**
पर्यवेक्षण	22,500	31,000
रख रखाव	13,000	21,000
अप्रत्यक्ष सामग्री	12,000	16,000
	47,500	**68,000**

(स) कुल वार्षिक बचत 70,000 87,500
(अ – ब)

(द) प्रत्यावर्तन अवधि $= \dfrac{\text{वार्षिक कुल विनियोग}}{\text{वार्षिक कुल बचत}}$

$$\text{मशीन 'अ'} = \frac{2,50,0000}{70,000} = 3.57 \text{ वर्ष}$$

$$\text{मशीन 'ब'} = \frac{5,00,0000}{87,000} = 5.75 \text{ वर्ष}$$

स्पष्ट है कि विनियोग वापसी मशीन 'अ' द्वारा मात्र 3.57 वर्ष में हो जायेगा जबकि मशीन 'ब' की यह अवधि इससे काफी अधिक है। अतः प्रबन्ध तन्त्र मशीन 'अ' का चयन ही प्रस्तावित करेगा।

व्यावहारिक प्रश्न संख्या 3

किसी कम्पनी का प्रबन्ध तन्त्र एक मशीन पट्टे पर लेने का विचार कर रहा है मशीन पर रू 2,50,000 का विनियोग प्रस्तावित है। इस मशीन के सम्बन्ध में क्रमिक रूप से पांच वर्ष का रोकड़ प्रवाह निम्न प्रकार अनुमानित है –

वर्ष	नकद प्रवाह ₹
1	60,000
2	70,000
3	60,000
4	90,000
5	50,000

उपरोक्त सूचनाओं के आधार पर निम्न की गणना कीजिए।

(अ) प्रत्यावर्तन अवधि, (ब) प्रत्यावर्तन के पश्चात अवधि या प्रत्यावर्तनेत्तर अवधि तथा (स) प्रत्यावर्तनेत्तर लाभ की राशि।

<u>हल / समाधान</u>

वर्ष	रोकड़ प्रवाह ₹	संचयी रोकड़ प्रवाह ₹
1	60,000	60,000
2	70,000	1,30,000
3	60,000	1,90,000
4	90,000	2,80,000
5	50,000	3,30,000

(अ) प्रत्यावर्तन अवधि = 3 वर्ष + $\left(\frac{60,000}{90,000} \times 12\right)$

= 3 वर्ष 8 माह

(ब) प्रत्यावर्त्तनेत्तर अवधि = कुल जीवन काल – प्रत्यावर्तन अवधि

(प्रत्यावर्तन अवधि के पश्चात की अवधि)

= 5 वर्ष – 3.8 माह

= 1.4 वर्ष और 1 वर्ष और 4 माह

(स) प्रत्यावर्तनेत्तर राशि =

चतुर्थ वर्ष = 90,000 – 60,000 = 30,000

पंचम वर्ष = = 50,000

कुल राशि रू0 80,000

2. निवेश पर प्रत्याय की औसत दर –

किसी भी सम्पत्ति या परियोजना को पट्टे पर लेने के लिए यह विधि तुलनात्मक रूप से श्रेष्ठ है। सरल शब्दों में यह आय एवं निवेश का पारस्परिक अनुपात है। इस रीति को लेखांकन रीति या वित्तीय विवरण नीति या विनियोग पर प्रत्याय रीति या औसत प्रत्याय दर रीति भी कहते हैं। कुछ विद्वानों ने इस रीति को विनियोग पर असमायोजित प्रत्याय विधि भी कहा है। इस रीति के माध्यम से परियोजनाओं का तुलनात्मक अध्ययन एवं विवेचन भी संभव है। इस रीति में औसत निवेश की राशि का प्रयोग अधिक माना जाता है। इसमें यह मान्यता स्वीकार होती है कि प्रतिवर्ष निवेश की राशि में कुछ कमी हो जाती है। औसत

निवेश की राशि की गणना निवेश की राशि को दो से भाग देकर की जाती है। निवेश से प्राप्त होने वाली औसत वार्षिक आय आयकर घटाने से पूर्व की या आयकर घटाने से पश्चात की आय ली जा सकती है। परन्तु पट्टे पर सम्पत्ति पर निवेश की गणना करने में ह्रास को ध्यान में नहीं रखा जाता है क्योंकि सम्पत्ति का मूल स्वामित्व पट्टा स्वामी के पास रहता है और औपचारिक दृष्टि से वही खातों में ह्रास प्रदर्शित करके उसका लाभ प्राप्त कर सकता है। सामान्यतः इस विधि में विद्वान आयकर पश्चात की आय को लेना ही श्रेयस्कर मानते हैं। इसकी गणना के लिए निम्न सूत्रों के आधार पर दी जाती है –

(अ) औसत प्रत्याय दर $= \frac{\text{कर पश्चात औसत वार्षिक आय}}{\text{औसत विनियोग}} \times 100$

(ब) यदि वार्षिक रोकड़ अन्तर्वाह (प्रवाह) दिये हों तो निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है –

$$\text{औसत प्रत्याय दर} = \frac{\text{औसत वार्षिक रोकड़ प्रवाह}}{\text{औसत विनियोग}} \times 100$$

नोट –

(i) औसत वार्षिक रोकड़ प्रवाह की गणना से आशय विभिन्न वर्षों की दी गयी शुद्ध आय या बचतों को कार्यविधि के वर्षों से भाग देकर आयी राशि से होता है।

(ii) औसत विनियोग की राशि की गणना प्रारम्भिक निवेश की राशि को दो से भाग करके की जाती है।

(iii) यदि प्रश्न में प्रारम्भिक विनियोग का प्रयोग होता है तो उसे विनियोग पर प्रत्याय दर कहा जाता है जबकि यदि गणना औसत विनियोग के आधार पर की गयी है तो इसे औसत प्रत्याय दर कहा जाता है।

(iv) ह्रास एवं अविशिष्ट मूल्य को ध्यान में नहीं रखा जाता।

प्रत्याय दर विधि के गुण –

1. इस रीति के माध्यम से लाभदायकता दर की गणना किया जाना सम्भव होता है।
2. इस विधि में समस्त वर्षों की शुद्ध आय को दृष्टिगत रखे जाने के कारण दीर्घकालीन परियोजनाओं के लिए यह श्रेष्ठ विधि है।
3. जिन कम्पनियों या संस्थानों में उत्पादन की मांग में अथवा स्वरूप में तीव्र परिवर्तन नहीं होते हैं तथा प्रतिवर्ष आय में भी अनावश्यक एवं तीव्र उतार चढ़ाव नहीं होते हैं। वह प्रत्यावर्तन अवधि की तुलना में प्रत्याय दर विधि के प्रयोग को बेहतर मानते हैं।

प्रत्याय दर विधि के दोष –

1. इस विधि का सबसे प्रमुख दोष यह है कि इसमें समय कारक को ध्यान में नहीं रखा जाता और उसकी पूर्ण उपेक्षा की जाती है।
2. भविष्य में प्राप्त होने वाली आय राशियों के वर्तमान मूल्य की पूर्णतः उपेक्षा की जाती है।
3. यह विधि प्रत्यावर्तन विधि की तुलना में अधिक जटिल मानी जाती है।

व्यवहारिक प्रश्न सं0 1

एक कम्पनी का प्रबन्ध तन्त्र एक परियोजना को पट्टे पर लेने का विचार कर रहा है परियोजना की लागत रू0 2,40,000 है। कर से पूर्व अनुमानित आय प्रथम वर्ष से पांच वर्ष तक क्रमशः ₹ 10,000, ₹ 28,000, ₹ 26,000, ₹ 30,000 एवं ₹ 34,000 है। कर की दर अनुमानित 50% होगी। विनियोग औसत प्रत्याय की दर की गणना कीजिए।

हल/समाधान –

$$\text{औसत आय} = \frac{10{,}000 + 28{,}000 + 26000 + 30{,}000 + 34{,}000}{5}$$

= 25,600 – आयकर @ 50% (12,800) = 12,800

(अ) विनियोग पर प्रत्याय दर (प्रारम्भिक विनियोग राशि के आधार पर)

$$\frac{12{,}800}{2{,}40{,}000} \times 100 = 5.33\%$$

(ब) औसत प्रत्याय दर (औसत विनियोग राशि के आधार पर)

$$\frac{12{,}800}{1{,}20{,}000} \times 100 = 10.67\%$$

$$(\text{औसत विनियोग राशि} = \frac{2{,}40{,}000}{2} = 1{,}20{,}000)$$

व्यवहारिक प्रश्न सं0 2

एक कम्पनी के समक्ष पट्टे पर लेने के लिए दो परियोजनायें विचाराधीन हैं जिनके विवरण निम्न प्रकार हैं। आप विनियोग पर प्रत्यय दर का प्रयोग करते हुए अपनी संस्तुति दीजिये कि किस योजना को प्राथमिकता दी जानी चाहिए?

	परियोजना 'अ'	**परियोजना 'ब'**
लागत	रू0 50,000	रू0 50,000
आर्थिक जीवन वर्षों में	8 वर्ष	12 वर्ष
कर पश्चात आय		
वर्ष	रू0	रू0
1	25,000	5,000
2	20,000	10,000
3	15,000	15,000
4	5,000	20,000
5	0	25,000
6	0	30,000
कुल	65,000	1,05,000

हल/समाधान

$$\text{औसत आय परियोजना 'अ'} = \frac{65{,}000}{8} = ₹\ 8{,}125$$

$$\text{औसत आय परियोजना 'ब'} = \frac{1{,}05{,}000}{12} = ₹\ 8{,}750$$

$$\frac{50{,}000}{2}$$

औसत विनियोग परियोजना 'अ' = ——— = ₹ 25,000

औसत विनियोग परियोजना 'ब' = $\frac{50,000}{2}$ = ₹ 25,000

औसत विनियोग प्रत्याय दर

परियोजना 'अ' = $\frac{8,125}{25,000}$ = 32.5%

परियोजना 'ब' = $\frac{8,750}{25,000}$ = 35%

निष्कर्ष –

स्पष्ट है कि परियोजना 'ब' पर औसत विनियोग प्रत्याय दर अधिक होने के कारण उसी पर विनियोग की संस्तुति की जानी चाहिए।

3. विनियोग पर प्रत्याय की समय समायोजित दर विधि–

इस विधि में विनियोग पर प्रत्याय के मूल्यांकन के लिए निम्न दो विधियां प्रचलित हैं –

1. वर्तमान मूल्य विधि –

इस विधि का प्रयोग तब किया जाता है जब प्रबन्धक पट्टे पर ली गयी सम्पत्ति या परियोजना के सम्बन्ध में एक न्यूनतम दर प्राप्त करने का निर्णय करते हैं।

इस विधि में प्रत्येक परियोजना की सभी रोकड़ प्रवाहों का वर्तमान मूल्य ज्ञात करके उनका योग किया जाता है, उसमें से विनियोग की लागत घटाकर शुद्ध वर्तमान मूल्य निकाला जाता है। रोकड़ प्रवाहों वर्तमान मूल्य विनियोग की लागत से जितना अधिक होगा, वह विनियोग उतना ही उत्तम एवं श्रेष्ठ माना जाएगा। यह गणना निम्न सूत्र के आधार पर की जाती है –

वर्तमान मूल्य = कुल रोकड़ प्रवाह × वर्तमान मूल्य बिन्दु (तालिका आधार पर)

शुद्ध वर्तमान मूल्य = वर्तमान मूल्य – कुल विनियोग राशि

नोट –

1. यदि परियोजनाओं की लागत भिन्न–भिन्न है तो प्राथमिकता के अनुसार लाभदायकता निर्देशांक की गणना कर ली जाती है। यह गणना निम्न प्रकार की जाती है –

   $$\text{लाभदायकता निर्देशांक} = \frac{\text{शुद्ध वर्तमान मूल्य}}{\text{शुद्ध विनियोग राशि}}$$

2. यदि लाभदायकता निर्देशांक की गणना संस्थान प्रतिशत में करना चाहता है तो उपरोक्त सूत्र में 100 से गुणा कर दी जायेगी।
3. वर्तमान मूल्य कारक की गणना वर्तमान मूल्य कारक कटौती दर को ध्यान में रखते हुए वार्षिक सारणी के आधार पर या (ब्याज/छूट दर) वर्ष संख्या के सूत्र की सहायता से ज्ञात कर लेते हैं।

वर्तमान मूल्य विधि के गुण –

1. इस विधि में होने वाले नकद प्रवाहों के समय मूल्य को ध्यान में रखा जाता है।

2. इसके अन्तर्गत परियोजना या सम्पत्ति के समस्त जीवनकाल में होने वाले नकद रोकड़ प्रवाहों को सम्मिलित किया जाता है।
3. यह विधि अपेक्षाकृत अधिक वैज्ञानिक है।
4. यह विधि पट्टा स्वामी एवं पट्टेदार दोनों के हितों के उपयुक्त है।

वर्तमान मूल्य विधि के दोष –

1. इसकी गणना अत्यन्त जटिल है।
2. यदि संस्था का विनियोज्य कोष सीमित हो तथा परियोजना या मशीन का जीवनकाल असमान हो, वहां इसके परिणाम भ्रम उत्पन्न कर सकते हैं।
3. इसकी गणना के लिए गणितीय ज्ञान एवं विशेषता की आवश्यकता होती है।
4. इसमें यह मान्यता रहती है कि संस्था की पूंजी लागत दर ज्ञात है परन्तु यथार्थ में यह अव्यवहारिक है।

<u>व्यवहारिक प्रश्न संख्या 1</u>

एक कम्पनी एक परियोजना को पट्टे पर लेना चाहती है। इस परियोजना की लागत रू0 4,00,000 है तथा इसके 5 वर्ष चलने की सम्भावना है। पूंजी की लागत 15% है। वार्षिक रोकड़ प्रवाह निम्न प्रकार सम्भावित है। परियोजना का शुद्ध वर्तमान मूल्य तथा शुद्ध मूल्य सूचकांक निम्न सूचनाओं के आधार पर ज्ञात कीजिए –

वर्ष	**वार्षिक रोकड़ प्रवाह ₹**
प्रथम	1,00,000
द्वितीय	1,00,000
तृतीय	1,50,000
चतुर्थ	1,50,000
पंचम	2,00,000

15% पर वर्तमान मूल्य कारक –

वर्ष	1	2	3	4	5
कारक मूल्य	0.870	0.756	0.658	0.572	0.497

हल / समाधान

वर्ष	**वार्षिक रोकड़ प्रवाह**	**वर्तमान मूल्य कारक @ 15%**	**वर्तमान मूल्य**
प्रथम	1,00,000	0.870	87,000
द्वितीय	1,00,000	0.756	75,600
तृतीय	1,50,000	0.658	98,700
चतुर्थ	1,50,000	0.572	85,800
पंचम	2,00,000	0.497	99,400
		कुल वर्तमान मूल्य	**4,46,500**

शुद्ध वर्तमान मूल्य = कुल वर्तमान मूल्य – विनियोजित राशि

= 4,46,500 – 4,00,000 = रू0 46,500

46,500

4,00,000

शुद्ध वर्तमान मूल्य निर्देशांक = ———— × 100 = 11.625%

<u>व्यवहारिक प्रश्न संख्या 2</u>

एक औद्योगिक संस्थान एक मशीन पट्टे पर लेने के लिए विचार कर रहा है उसके समक्ष मशीन 'अ' तथा मशीन 'ब' दो प्रस्ताव विचाराधीन हैं। दोनों ही मशीने रू0 1,50,000 की लागत पर उपलब्ध हैं। 8% बट्टा या छूट की दर का प्रयोग किया जाना है। कर के बाद अर्जन का अनुमान निम्न प्रकार है –

रोकड़ प्रवाह

वर्ष	मशीन 'अ' ₹	मशीन 'ब' ₹
1	37,500	25,000
2	50,000	62,500
3	50,000	50,000
4	37,500	50,000
5	25,0000	12,500

निर्णय कीजिए कि कौन सी मशीन को पट्टे पर लिया जाना उचित होगा? 8% बट्टा/छूट कारक निम्न प्रकार है –

वर्ष	1	2	3	4	5
कारक मूल्य	0.926	0.857	0.794	0.735	0.681

<u>हल/समाधान</u>

वर्तमान मूल्य की गणना

वर्ष	बट्टा कारक 8%	मशीन 'अ' के रोकड़ प्रवाह ₹	वर्तमान मूल्य ₹	मशीन 'ब' के रोकड़ प्रवाह ₹	वर्तमान मूल्य ₹
1	0.926	37,500	34,725	25,000	23,150
2	0.857	50,000	42,850	62,500	53,563
3	0.794	50,000	39,700	50,000	39,700
4	0.735	37,500	27,563	50,000	36,750
5	0.681	25,000	17,025	12,500	8,513
	कुल योग	**2,00,000**	**1,61,863**	**2,00,000**	**1,61,676**

शुद्ध वर्तमान मूल्य –

मशीन 'अ' = 1,61,863 – 1,50,000 = 11,863

मशीन 'ब' = 1,61,676 – 1,50,000 = 11,676

निष्कर्ष –

शुद्ध वर्तमान मूल्य के आधार पर मशीन 'अ' को पट्टे पर प्राप्त करना अधिक लाभदायक होगा।

2. प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि –

इस विधि में गणना का आधार किसी विचाराधीन परियोजना से सम्बद्ध प्रारम्भिक पूंजी निवेश की मात्रा तथा उससे होने वाले लाभ पर आधारित होती है। यह पूंजी निवेश की परियोजना की अपनी दर है अतः इसे प्रत्याय की आन्तरिक

दर कहा जाता है। यह वह दर है जिस पर किसी परियोजना से आने वाले वर्षों में होने वाले लाभों का वर्तमान मूल्य परियोजना की मूल लागत के बराबर हो जाता है। अन्य शब्दों में, यह वह दर है जो कि भावी नकद प्रवाहों के वर्तमान मूल्य को परियोजना के प्रारम्भिक पूंजी निवेश के स्तर के बराबर ले आती है।

आन्तरिक प्रत्याय दर की गणना विधि –

यह गणना निम्न दो प्रकार से की जाती है –

1. **जब रोकड़ प्रवाह प्रतिवर्ष समान हो** – यदि वार्षिक रोकड़ प्रवाह प्रतिवर्ष समान हो तथा परियोजना का अवशेष मूल्य शून्य हो तो आन्तरिक प्रत्याय कर की गणना निम्न प्रकार की जा सकती है।

(अ) वर्तमान मूल्य कारक की गणना –

$$\text{वर्तमान मूल्य कारक} = \frac{\text{शुद्ध विनियोग राशि}}{\text{वार्षिक रोकड़ प्रवाह}}$$

(ब) प्रत्याय दर की गणना –

$$\text{प्रत्याय दर} = \text{प्रथम दर} + \frac{\text{प्रथम मूल्य} - \text{मूल्य}}{\text{प्रथम मूल्य} - \text{द्वितीय}} \text{(द्वितीय दर – प्रथम दर)}$$

यहां पर –

प्रत्याय दर = इस दर की गणना की जाती है।

प्रथम दर = निम्नतम प्रत्याय दर

द्वितीय दर = उच्चतम प्रत्याय दर

प्रथम मूल्य = वर्तमान मूल्य कारक पर निम्नतम प्रत्याय दर

द्वितीय मूल्य = वर्तमान मूल्य कारक पर उच्चतम प्रत्याय दर

मूल्य = वर्तमान मूल्य कारक

(स) वर्तमान मूल्य कारक को संचयी वर्तमान मूल्य सारणी में कार्यशील वर्षों की पंक्ति में खोजा जाता है। यदि वह कारक नहीं मिल पाता है तो निकटतम दो कारकों को छांटकर इन कारकों के ऊपर दी गयी दरों को प्रत्याय दर के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है।

(द) अशुद्धि एवं सुधार विधि के माध्यम से ज्ञात की गयी प्रत्याय दर का सत्यापन किया जाता है। इसके अन्तर्गत किसी एक प्रत्याय दर पर परियोजना के कुल रोकड़ प्रवाहों का वर्तमान मूल्य ज्ञात किया जाता है और उनका योग कर लिया जाता है। यदि यह योग परियोजना की लागत से कम है तो अगली जांच पहले से नीची प्रत्याय दर पर की जाती है। इसके विपरीत यदि यह योग परियोजना लागत से अधिक है, अगली जांच पहले से उच्च दर पर किया जाता है। जिस दर पर यह योग परियोजना की लागत के बराबर होता है वही दर उचित प्रत्याय दर मानी जाती है। यदि किसी भी दर पर यह योग परियोजना की लागत के बराबर नहीं हो पाता तो पूर्व में (ब) प्रत्याय दर की गण्ना में दिए गए सूत्र के आधार पर उचित प्रत्याय दर की गणना की जाती है। रोकड़ प्रवाह असमान होने की दशा में कुछ वित्त विद्वान उपरोक्त सूत्र के स्थान पर निम्न सूत्र का प्रयोग भी करते हैं –

$$\text{आन्तरिक प्रत्याय दर} \quad \frac{\text{आगणित वर्तमान कारक – रोकड़ प्रवाह का वर्तमान मूल्य}}{\text{आगणित वर्तमान मूल्यों का अन्तर}} \times \text{दर का}$$

2. **जब रोकड़ अन्तर्वाह असमान हो** – यदि परियोजना के जीवनकाल के दौरान विभिन्न वर्षों में प्राप्त होने वाले रोकड़ अन्तर्वाह की रकम असमान हो तो ऐसी दशा में उपरोक्त वर्णित तकनीक के आधार पर प्रत्याय की आन्तरिक दर का निर्धारण उचित नहीं हो सकता। ऐसी दशा में प्रत्याय दर के परिकलन हेतु भूल एवं सुधार विधि का प्रयोग किया जाता है। इस विधि के प्रयोग हेतु निम्न प्रक्रिया अपनायी जाती है –

(अ) **औसत वार्षिक रोकड़ अन्तर्वाह की गणना** – सर्वप्रथम परियोजना से प्राप्त होने वाले सम्पूर्ण रोकड़ अन्तर्वाहों का औसत निम्न प्रकार ज्ञात किया जाता है –

$$\text{औसत वार्षिक अन्तर्वाह} = \frac{\text{कुल रोकड़ प्रवाह}}{\text{परियोजना की कार्यशील अवधि}}$$

(ब) **वर्तमान मूल्य कारक की गणना** – परियोजना की लागत में औसत रोकड़ अन्तर्वाह का भाग देकर वर्तमान मूल्य कारक निम्न प्रकार ज्ञात किया जाता है –

$$\text{वर्तमान मूल्य कारक} = \frac{\text{कुल परियोजना लागत}}{\text{औसत वार्षिक रोकड़ अन्तर्वाह}}$$

नोट – उपरोक्त वर्तमान मूल्य कारक को वर्तमान मूल्य वार्षिक सारणी में परियोजना के कार्यशील जीवन के वर्षों की अवधि अनुसार खोजा जाता है और यदि यह कारक नहीं मिल पाता है तो इसके दो अधिकतम निकट वर्तमान मूल्य कारकों को छांटकर उस आधार पर गणना की जाती है।

गुण –

1. इस पद्धति के अन्तर्गत मुद्रा के समय मूल्य को ध्यान में रखा जाता है।
2. इस पद्धति के अन्तर्गत परियोजना के सम्पूर्ण जीवनकाल की आय को दृष्टिगत रखा जाता है।
3. रोकड़ अन्तर्वाहों के समान या असमान होने का इस पद्धति के प्रयोग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

दोष –

1. यह पद्धति परम्परागत विधियों की तुलना में गणना की दृष्टि से जटिल है।
2. असमान जीवनकाल एवं असमान विनियोग वाली परियोजनाओं की तुलना करने में इस पद्धति के परिणाम संतोषजनक नहीं होते हैं।
3. अपेक्षित या प्रत्याशित दर के निर्धारण की प्रक्रिया में विभिन्न कठिनाईयां आती हैं।

4. **अपरिहार्यता विधि –**

यह विधि परियोजना मूल्यांकन की परम्परागत विधियों में से एक है। अनेक अवसर पर पूंजीगत व्ययों के निर्णय पूर्व निश्चित योजना के आधार पर न लिए जाकर उस परियोजना की प्राथमिकता एवं अपरिहार्यता के आधार पर किये जाते हैं अर्थात कार्य संचालन बाधित होने की आशंका के चलते कुछ पूंजीगत सम्पत्तियों एवं परियोजना के सम्बन्ध में विनियोग सम्बन्धी निर्णय तात्कालिक रूप

से लिये जाने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार कई बार बहुत अधिक विनियोग आकस्मिक रूप से न करने के लिए पट्टे पर सम्पत्ति अपरिहार्यता के आधार पर लेनी पड़ती है तथा समयाभाव में ऐसी सम्पत्ति या परियोजना में विनियोग निर्णय तकनीकी आधार के स्थान पर अपरिहार्यता के आधार पर किये जाते हैं।

गुण एवं दोष –

जहां सरलता इस विधि का सबसे बड़ा गुण है वहीं अधिक विनियोजन या दीर्घकालीन विनियोजन के लिए इसे आधार नहीं बनाया जा सकता। इस विधि के आधार पर तात्कालिक रूप से लिये गये निर्णय संयोगवश श्रेष्ठ परिणाम भी दे सकते हैं परन्तु तार्किक, तकनीकी एवं वैज्ञानिक विश्लेषण का अभाव होने के कारण इनके विपरीत परिणाम होने या अनार्थिक होने की सम्भावना भी रहती है।

14.9 पट्टा वित्त पोषण एवं किराया क्रय पद्धति

1. किराया क्रय पद्धति –

किराया क्रय पद्धति का प्रयोग सामान्यतः वाणिज्यिक वाहन जैसे टैक्सी, ट्रक आदि के लिये ही किया जाता रहा है। परन्तु पिछले कुछ वर्षों में इसका उपयोग विभिन्न संस्थानों द्वारा भारी संयन्त्रों को क्रय करने में भी किया जाने लगा है। इस प्रकार किराया क्रय पद्धति का उपयोग औद्योगिक जगत में पट्टा वित्त पोषण के एक विकल्प के रूप में किया जाने लगा है। संक्षेप में किराया क्रय पद्धति एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें क्रेता ब्याज सहित किश्तों का भुगतान करता है तथा अनुबन्ध के प्रथम दिन से ही उसे वस्तु या सम्पत्ति का सम्पूर्ण प्रयोग अधिकार प्राप्त हो जाता है। ऐसे भुगतान की अन्तिम किस्त के भुगतान तक स्वामित्व विक्रेता के पास रहता है जबकि अन्तिम किस्त का भुगतान होने के पश्चात विक्रेता वस्तु या सम्पत्ति का पूर्ण स्वामित्व किराया क्रय क्रेता को हस्तान्तरित कर देता है।

2. किराया क्रय पद्धति की विशेषतायें –

1. अनुबन्ध के प्रथम दिन ही विक्रेता सम्पत्ति क्रेता के सुपुर्द कर देता है और उसे प्रयोग का अधिकार प्राप्त हो जाता है।
2. निश्चित अवधि तक निर्धारित दर से किस्तों का भुगतान क्रेता द्वारा विक्रेता को किया जाता है।
3. भुगतान में कोई विघ्न होने अथवा क्रेता द्वारा किस्त का भुगतान न कर पाने की दशा में विक्रेता को सम्पत्ति वापिस ले जाने का अधिकार होता है।
4. निर्धारित शर्तों के अनुसार क्रेता भी सामान वापसी के लिए स्वतन्त्र होता है और उसके पश्चात किस्त भुगतान की कोई आवश्यकता नहीं होती।
5. अन्तिम किस्त के भुगतान के पश्चात् सम्पत्ति का स्वामित्व विक्रेता द्वारा क्रेता को हस्तान्तरित कर दिया जाता है।
6. सामान्यतः क्रय के समय नकद भुगतान के रूप में कुछ प्रतिशत राशि क्रेता द्वारा विक्रेता को दी जाती है परन्तु यह अनिवार्य नहीं है।
7. किराया क्रय विक्रेता निर्धारित दर पर ब्याज की राशि जोड़कर किस्त प्राप्त करता है।

3. पट्टा वित्त पोषण बनाम किराया क्रय पद्धति –

1. **स्वामित्व की दृष्टि से –**

पट्टे पर सम्पत्ति के लिए जाने पर पट्टे की सम्पत्ति का स्वामित्व पट्टे का कार्यकाल समाप्त होने के पश्चात भी पट्टा स्वामी का ही रहता है। किसी भी दशा में वह पट्टेदार को हस्तान्तरित नहीं होता, परन्तु किराया क्रय पद्धति में अन्तिम किस्त के भुगतान तक ही सम्पत्ति का स्वामित्व विक्रेता के पास रहता है उसके पश्चात क्रेता को हस्तान्तरित कर दिया जाता है।

2. **विनियोग की दृष्टि से –**

विनियोग की दृष्टि से पट्टे की सम्पत्ति में बहुत अधिक विनियोजन रहता है जैसे हवाई जहाज, पानी के जहाज, सम्पूर्ण संयत्र आदि जबकि तुलनात्मक रूप से किराया क्रय पद्धति में अपेक्षाकृत कम विनियोग होता है जैसे – मशीनरी, जनरेटर, कम्प्यूटर, वाहन आदि।

3. **वित्त की सीमा की दृष्टि से –**

पट्टा वित्त पोषण में पट्टा स्वामी पट्टेदार को शत प्रतिशत वित्त की सुविधा प्रदान करता है और किसी अग्रिम या आंशिक भुगतान की प्रारम्भ में दिये जाने की आवश्यकता या अनिवार्यता नहीं होती जबकि किराया क्रय खरीद में विक्रेता प्रारम्भ में एक निश्चित नकद राशि प्राप्त कर लेता है और शेष राशि की किस्तें प्राप्त करना सुनिश्चित करता है।

4. **रख रखाव की दृष्टि से –**

किराया क्रय पद्धति में सम्पत्ति की मरम्मत, देखभाल एवं रख रखाव का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व किराया क्रय क्रेता का होता है जबकि परिचालन पट्टे की दशा में यह उत्तरदायित्व पट्टा स्वामी के द्वारा वहन किया जाता है।

14.10 सारांश

पट्टे पर सम्पत्ति का लेना एवं देना मूलत संस्था या व्यक्ति द्वारा अधिकाधिक पूंजीगत विनियोजन से बचाव की एक प्रमुख विधि है। यद्यपि पट्टे पर सम्पत्ति में सम्पत्ति का मूल स्वामित्व पट्टा स्वामी का ही रहता है परन्तु यह स्वामित्व नाममात्र का ही होता है और निर्धारित शुल्क या अधिकार शुल्क का भुगतान भू–स्वामी को करने के पश्चात उस सम्पत्ति के प्रयोग के समस्त अधिकार पट्टेदार को प्राप्त हो जाते हैं। संक्षेप में पट्टा, वित्त पोषण की ऐसी विधि है जिसमें पट्टेदार को सम्पत्ति की लागत का विनियोग नहीं करना होता। इसमें पट्टा स्वामी एवं पट्टेदार के मध्य के एक अनुबन्ध होता है और इस अनुबन्ध में दी गयी निर्धारित शर्तों के अनुसार एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को सम्पत्ति स्वामित्व सहित (मूल स्वामित्व को छोड़कर) प्रयोग का अधिकार निर्धारित अवधि के लिए प्रदान कर वित्तीय सहायता प्रदान करता है और बदले में किराये के रूप में पट्टा शुल्क या अधिकार शुल्क प्राप्त करता है। पट्टे का प्रयोग खानों, भट्टों की जमीन, खेती की जमीन, भारी सयन्त्रों आदि के लिए किया जाता है। पट्टा अन्तर्राष्ट्रीय पट्टा आदि भी पट्टे के ही विभिन्न स्वरूप है। वित्तीय पट्टा अथवा परिचालन पट्टे के रूप में हो सकता है। इसके अतिरिक्त घरेलू पट्टा, सीमापार पट्टा, अर्न्तराष्ट्रीय पट्टा आदि भी पट्टे के ही विभिन्न स्वरूप हैं।

पट्टा वित्त पोषण के अन्तर्गत पट्टे पर ली जाने वाली सम्पत्तियों का वित्तीय एवं आर्थिक मूल्यांकन पट्टेदार द्वारा लाभ–हानि का अनुमान लगाने के लिए किया जाता है। इस मूल्यांकन के लिए विभिन्न विधियां प्रचलित हैं जिनमें

प्रमुखतः प्रत्यावर्तन अवधि विधि, निवेश पर प्रत्याय की औसत दर विधि, वर्तमान मूल्य विधि, आन्तरिक प्रत्याय दर विधि, अपरिहार्यता विधि आदि प्रमुख हैं। वर्तमान समय में किराया क्रय पद्धति को भी पट्टा वित्त पोषण के विकल्प के रूप में प्रयोग किया जाने लगा है।

14.11 शब्दावली

पोषण– सहायता या देखरेख

भू–स्वामी :– पट्टे की सम्पत्ति का स्वामी

पट्टेदार :– पट्टे की सम्पत्ति प्राप्त करता है एवं निर्धारित शुल्क का भुगतान पट्टे के स्वामी को करता है।

नजराना– जब किसी कार्य के संचालन से पूर्व जो एकमुश्त राशि स्वामी द्वारा प्राप्त की जाती है (व्यवसायिक जगत में इसे पगड़ी के नाम से भी जानते हैं।)

पट्टा ब्रोकर– पट्टा स्वामी एवं पट्टेदार के बीच का तीसरा पक्षकार जो दोनों के बीच मध्यस्थता करता है।

अनुबन्ध– ऐसा ठहराव जो राजनियम द्वारा लागू कराया जा सके।

मानक– किसी भी क्षेत्र या कार्य के लिए निर्धारित मानदण्ड या मापदण्ड।

द्विपक्षीय– जहां दो पक्षकार होते हैं।

तृपक्षीय– जहां तीन पक्षकार होते हैं।

14.12 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

1. परिचालन पट्टों को पट्टे के दौरान सुगमता से..................................किया जा सकता है।
2. वित्तीय पट्टो को पट्टे के दोरान सुगमता से ....किया जा सकता है।
3. पट्टे की अवधि दीर्घकालीन होती है .... पट्टे की दशा में।
4. पट्टे की अवधि अल्पकाल होती है .... पट्टे की दशा में।
5. पट्टेदार के दृष्टिकोण से पट्टा की क्रिया...........................के अन्तर्गत आती है।

निम्नलिखित कथनो में से कौन सा कथन सत्य और कौन सा असत्य है –

1. वित्तीय पट्टे दीर्घकालीन अवधि के होते हैं।
2. परिचालन पट्टे अल्पकालीन अवधि के होते हैं।
3. किराया क्रय अनुबन्ध में अन्तिम किस्त के भुगतान के पश्चात सम्पत्ति का स्वामित्व किराया क्रय क्रेता (पट्टेदार) को हस्तान्तरित हो जाता है।
4. वित्तीय पट्टों की दशा में पट्टास्वामी पट्टेदार को हस्तान्तरित रूप से सम्पत्ति का स्वामित्व किराया क्रय क्रेता (पट्टेदार) को हस्तान्तरित हो जाता है।
5. तृपक्षीय पट्टे में तीन पक्षकारों का होना अनिवार्य नही है।
6. पट्टे के दौरान होने वाले सभी जोखिमों एवं हानियों का उत्तरदायित्व पट्टे स्वामी का होता है।
7. पट्टे के दौरान होने वाले लाभ–हानि या जोखिम का उत्तरदायित्व पट्टेदार का होता है।

8. द्विपक्षीय पट्‌टो में तीन पक्षकार होते है।
9. ह्रास का लाभ पट्‌टा स्वामी के अतिरिक्त पट्‌टेदार द्वारा भी अपने खातों में प्रदर्शित किया जाता है।
10. अविशिष्ट मूल्य का लाभ पट्‌टास्वामी को प्राप्त होता है।

<u>बहुविकल्पीय प्रश्न–</u>

1. वित्तीय पट्‌टों को अवधि के आधार पर किस वर्ग में रखेंगे?
   (अ) अल्पकालीन (ब) मध्यकालीन (स) दीर्घकालीन
   (द) इनमें से कोई नहीं
2. परिचालन पट्‌टे की अवधि कैसी होती है?
   (अ) अल्पकालीन (ब) मध्यकालीन (स) दीर्घकालीन
   (द) इनमें से कोई नहीं
3. किराया क्रय पद्धति में अन्तिम भुगतान के बाद स्वामित्व किसे हस्तान्तरित होता है?
   (अ) किराया क्रय क्रेता (ब) किराया क्रय विक्रेता (स) मध्यम
   (द) इनमें से कोई नहीं
4. द्विपक्षीय पट्‌टे मे कितने पक्षकार होते है?
   (अ) 1 (ब) 2 (स) 3 (द) 5
5. तृपक्षीय पट्‌टे में कितने पक्षकार होते है?
   (अ) 1 (ब) 2 (स) 3 (द) 5

14.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

रिक्त स्थानों के उत्तर –

1. निरस्त
2. निरस्त नहीं
3. वित्तीय
4. परिचालन
5. पूंजी बजटन

<u>सत्य/असत्य के उत्तर–</u>

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. असत्य 5. असत्य 6. असत्य 7. सत्य 8. असत्य 9. असत्य 10. सत्य

<u>बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर–</u>

1. (स) 2. (अ) 3. (अ) 4. (ब) 5. (स)

14.12 स्वपरख प्रश्न

1. पट्‌टा वित्त से क्या आशय है? इसके प्रमुख तत्व अथवा विशेषतायें बताइये।
2. वित्तीय पट्‌टे एवं परिचालन पट्‌टे पर एक विस्तृत आलेख प्रस्तुत कीजिये।
3. पट्‌टे के विभिन्न प्रकारों का गुण–दोष सहित वर्णन कीजिये।
4. पट्‌टा का वित्तीय मूल्यांकन करने के लिये कौन–कौन सी विधियां प्रयोग की जाती है? किसी एक का विस्तृत विवरण प्रस्तुत कीजिये।

5. किराया क्रय पद्धति से आप क्या समझते है? इसकी प्रमुख विशेषतायें बताइये।
6. पट्टा वित्त पोषण के लाभ एवं महत्व पर प्रकाश डालते हुए इसकी सीमायें भी बताइये।
7. पट्टा वित्त पोषण को समझाइये। पट्टा निर्धारण करते समय क्या–क्या सावधानियां रखी जानी चाहिए?

14.15 सन्दर्भ पुस्तकें

1. “Financial Management”- M.Y. Khan & P.K. Jain, Tata Mc Graw Hill.
2. ″वित्तीय बाजारों की कार्यप्रणाली″– प्रो0 वी0 पी0 अग्रवाल– साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
3. ″निगमीय लेखांकन″– सी0 एम0 जैन एवं ए0 के0 अग्रवाल– g Master g Educorp, मेरठ।
4. ″प्रबन्ध हेतु वित्तीय विश्लेषण″– डॉ0 ए0 के गर्ग– स्वाती प्रकाशन, बुलन्दशहर।
5. ″निगमीय लेखाविधि″– डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 राजकुमार– नवनीत प्रकाशन, नजीबाबाद।
6. https://efinancemenagement.com
7. www.academia.edu
8. www.ICSI.edu > portals
9. “Corporate Restcucturing”- Ranjan Das & Udayan Kumar Basu – Tata Mc Graw – Hill education, New Delhi
10. www.izito.co.in
11. www.risk-academy.ru
12. “Derivative Markets in India : Trading, Pricing and Risk-Management” – Alok Dixit, S.S. Yadav & P.K. Jain – Tata Mc Graw-Hill, New Delhi.

इकाई – 15 जोखिम या उद्यम पूंजी वित्त पोषण

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्यम पूंजी के तत्व एवं प्रमुख तथ्य
15.3 उद्यम पूंजी – भारतीय परिदृश्य
15.4 सेबी वैकल्पिक विनियोग विनियमन अधिनियम (उद्यम पूंजी निधि) – 2012
15.5 उद्यम पूंजी विनियोग प्रक्रिया
15.6 उद्यम पूंजी मूल्यांकन की विधियां
15.7 उद्यम पूंजी के प्रकार या स्वरूप
15.8 विनियोग पश्चात पोषण एवं अनुरक्षण
15.9 विनियोग पश्चात पोषण या अनुरक्षण की विधियां
15.10 उद्यम पूंजी विनियोजन का संगठनात्मक ढांचा
15.11 वैकल्पिक विनियोग विनियमन अधिनियम (उद्यम पूंजी निधि–2012) का उद्यम पूंजी पर नियन्त्रण
15.12 भारत में उद्यमपूंजी विनियोग प्रक्रिया में संलग्न संस्थान
15.13 सारांश
15.14 शब्दावली
15.15 बोध प्रश्न
15.16 बोध प्रश्नों के उत्तर
15.17 स्वपरख प्रश्न
15.18 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- उद्यम पूंजी से आशय, तत्व, भारतीय परिदृश्य को स्पष्ट कर सकें।
- सेबी अधिनियम 2012, उद्यम पूंजी विनियोग प्रक्रिया, उद्यम पूंजी मूल्यांकन की विधियां, उद्यम पूंजी के प्रकार की व्याख्या कर सकें।
- विनियोग पश्चात् पोषण एवं अनुरक्षण, विधियां उद्यम पूंजी पर नियन्त्रण के अधिनियम का वर्णन कर सकें।

15.1 प्रस्तावना

उद्यम (जोखिम) पूंजी की विचारधारा का प्रादुर्भाव यूनाइटेड स्टेट्स (अमेरिका) तथा यूनाइटेड किंग्डम में हुआ माना जाता है। धीरे–धीरे इसका विस्तार विश्व के सभी विकसित एवं विकासशील देशों में अत्यन्त तीव्र गति से हुआ है। जोखिम पूंजी एक नवीन, उन्नत एवं परिष्कृत अवधारणा एवं विचारधारा है जो विवेकशील, धैर्यवान एवं जोखिम उठाने में सक्षम, विनियोग में समर्थ व्यक्तियों अथवा संस्थाओं को दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन लाभ अर्जित करने के अवसर प्रदान करती है। इसके माध्यम से विनियोग में सक्षम व्यक्ति अथवा संस्था लघु एवं मध्यम आकार के उद्योगों में दीर्घकालीन विनियोग के अवसर भविष्य की लाभ की सम्भावना के आधार पर खोजते हैं तथा विभिन्न बिन्दुओं पर आकलन के आधार पर लाभार्जन के अवसर दिखायी देने पर अपना धन विनियोजित करते हैं। विभिन्न

विकसित एवं विकासशील देशों में जोखिम पूंजी के आधार पर वित्त विनियोजन की अवधारणा का प्रचार प्रसार अत्यन्त तीव्रता से हुआ है तथा विभिन्न विनियोजक इस ओर आकृष्ट हुए हैं। विनियोजक न केवल इस ओर आकर्षित हुए है वरन् लाभार्जन में भी सफल हुए हैं, यही कारण है कि इस ओर विनियोजकों का आकर्षण एवं रूझान बढ़ रहा है और विनियोग अवसरों की दृष्टि से यह अत्यन्त व्यापक क्षेत्र सिद्ध हो रहा है। इस प्रकार के वित्त विनियोजन से पूर्व विनियोजनकर्ता विभिन्न तथ्यों का तकनीकी एवं वैज्ञानिक आधार पर विश्लेषण करता है तथा लाभ की संभावनाओं का भी आकलन करता है और सभी प्रकार से पूर्णतः संतुष्ट होने पर अपना धन या पूंजी विनियोजित करता है। सामान्यतः यह विनियोजन समता अंशों के रूप में होता है जिससे विनियोगकर्ता को कम्पनी के स्वामित्व का अवसर भी प्राप्त होता है। बड़े आकार के उद्योगों में यद्यपि दीर्घकालीन वित्त निवेश करना अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित होता है परन्तु वहाँ अपेक्षाकृत रूप से लाभ कि दर भी कम रहती है। लघु एवं मध्यम आकार के उद्योगों में दीर्घकालीन विनियोजन में अपेक्षाकृत अधिक जोखिम रहने के कारण इस विनियोग को जोखिम पूंजी के नाम से जाना जाता है। संक्षेप में, जोखिम पूंजी का आशय लघु एवं मध्यम आकार के ऐसे नवीन उद्योगों में विनियोग से है जो वित्त अल्पता के कारण तीव्र गति से विकास नहीं कर पा रहे हैं। यह विनियोग समता अंश, ऋण के रूप में वित्त, परिवर्तनीय ऋण आदि के रूप में विनियोजित किया जा सकता है। यह ऐसा नवीन एवं अतिरिक्त वित्त विनियोग है जो संस्था की प्रगति को तीव्रता प्रदान करता है और उसकी लार्भाजन संभावनाओं में वृद्धि एवं सशक्तता लाता है। इस प्रकार के विनियोगों में जहां एक ओर लाभ की दर विनियोगकर्ता की दृष्टि से काफी अधिक होती है वहीं परियोजना एवं पूर्वानुमान के विफल होने पर भारी हानि की भी संभावना रहती है। भारत में यह विचारधारा 90 के दशक के मध्य औद्योगिक जगत में प्रवेशित हुई है।

15.2 उद्यम जोखिम पूंजी के तत्व या प्रमुख बातें

जोखिम पूंजी में अनेकों तत्व समायोजित होते हैं उनमें से प्रमुख तत्वों का विवरण निम्न प्रकार है :–

1. लाभ एवं स्वामित्व में भागीदारी :–

एक ओर जोखिम पूंजी का विनियोजन किसी भी संस्था के भविष्य के लाभों में भागीदारी के लिए किया जाता है वहीं दूसरी ओर समता अंश पूंजी या अन्य माध्यम से विनियोजक स्वामित्व का भी भागीदार हो जाता है।

2. लघु एवं मध्यम आकार के उद्योगों में विनियोजन :–

सामान्यतः जोखिम पूंजी का विनियोजन लघु एवं मध्यम प्रकार के उद्योगों में दीर्घकालीन वित्त प्रदान करने के रूप में होता है। विनियोजनकर्ता उन उद्योगों का चयन करता है जहां विनियोग करने से उसे लाभ की अधिक सम्भावनाएं दृष्टिगत होती है।

3. सलाहकार सेवायें :–

जोखिम पूंजी विनियोजनकर्ता आवश्यक एवं सहमति होने पर उद्यम कौशल, विशिष्ट सलाहकार सेवायें आदि भी वित्त के साथ संस्थान को उपलब्ध

कराता है तथा उत्पादन वृद्धि के लिए कौशल योजनाएं एवं रणनीति बनाने में भी सहायता प्रदान करता है।

4. मध्यस्थ की भूमिका :–

वर्तमान समय में जोखिम पूंजी उपलब्ध कराने के लिए विभिन्न संस्थान मध्यस्थ के रूप में भूमिका भी निभा रहे हैं। यह संस्थान ऐसे लघु एवं मध्यम आकार के उद्योग जिन्हें वित्त की आवश्यकता है एवं वे विनियोजक जो ऐसे संस्थानों में जोखिम पूंजी विनियोजन करना चाहते हैं के मध्यम मध्यस्थ के रूप में कार्य करते हैं और दोनों ही पक्षकारों को उद्देश्य एवं लक्ष्य प्राप्ति में सहायता करते हैं।

5. मूल पूंजी के अतिरिक्त :–

सामान्यतः जोखिम पूंजी अतिरिक्त निजी वित्त के रूप में प्राप्त या अर्जित की जाती है तथा किसी भी संस्थान द्वारा मूल रूप से प्राप्त की गयी चुकता पूंजी से अलग रहती है। इस पर प्राप्त लाभ जोखिम पूंजी विनियोजनकर्ता जोखिम उठाने के फलस्वरूप अर्जित करता है।

15.3 उद्यम पूंजी – भारतीय परिदृश्य

भारतीय वित्त संरचना

वित्तीय संस्थान	वित्तीय साधन	वित्तीय बाजार	वित्तीय सेवायें	नियन्त्रक संस्थायें
बैंकिंग संस्थान	पूंजी बाजार प्रपत्र	मुद्रा बाजार	ऋण पात्रता निर्धारण सेवायें	रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया
		पूंजी बाजार	उद्यम पूंजी	बीमा विनियामक एवं विकास प्राधिकरण (IRDA)
गैर बैंकिंग संस्थान	मुद्रा बाजार प्रपत्र	विदेशी विनिमय बाजार	मर्चेंट बैंकिंग	भारतीय प्रतिभूमि एवं विनियोग विनियमन अधिनियम (SEBI)

सन् 1988 से आई0सी0आई0सी0आई0 ने उद्यम पूंजी प्रदान करने का कार्य यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया के साथ संयुक्त रूप से किया है। भारत में वर्तमान समय में अनेकों भारतीय विनियोगकर्ताओं के अतिरिक्त अनेकों अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान भी भारतीय बाजार में कार्यरत है जो कि विभिन्न संस्थाओं को आवश्यकतानुसार उद्यम पूंजी उपलब्ध करा रहे हैं। वर्तमान समय में भारत में उद्यम पूंजी क्षेत्र एक व्यापक बाजार के रूप में विकसित हो चुका है जहां अधिक जोखिम होने के बाद भी लाभ के अतिरेक एवं भविष्य की लाभ संभावनाओं के कारण विनियोजकों की संख्या दिन–प्रतिदिन बढ़ रही है।

भारत में जोखिम पूंजी के प्रादुर्भाव का काल 90 का दशक रहा है। वर्तमान समय में में लघु एवं मध्यम उद्योगों में दीर्घकालीन विनियोगकर्ताओं के मध्य प्रतियोगिता की सी स्थिति उत्पन्न होने लगी है। इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि यद्यपि इस प्रकार के विनियोजन अपेक्षाकृत अधिक जोखिमपूर्ण होते हैं परन्तु लाभ की संभावनायें भी उतनी ही प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं। इसके अतिरिक्त लाभ की मात्रा के अधिक होने की संभावना के चलते विनियोगकर्ता अधिक जोखिम उठाने के लिए भी तत्पर रहते हैं। भारत में जब प्रकार के विनियोजनों में वृद्धि हुई तो विभिन्न संस्थान मध्यस्थों के रूप मे भी क्रियाशील हो

गये तथा अनेक वित्तीय संस्थानों ने इस क्षेत्र में प्रवेश करना प्रारम्भ कर दिया। ऐसी स्थिति में अन्य अनेक क्षेत्रों की भांति सरकार ने औपचारिक रूप से इस क्षेत्र में दखल की आवश्यकता अनुभव की और सन् 2000 में भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (उद्यम पूंजी निधि) विनियमन अधिनियम 1996, एवं भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (उद्यम पूंजी निधि) विनियमन 2000 लागू किये गये। इसके पश्चात सन् 2004 एवं सन् 2006 में इन अधिनियमों में परिस्थितिनुसार अनेकों सामयिक परिवर्तन किये गये। सन् 2012 में भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (उद्यम पूंजी निधि विनियोजक) विनियमन अधिनियम लागू कर वैकल्पिक व्यवस्था दी गयी और इसके द्वारा पूर्व के अधिनियमों को प्रतिस्थापित कर दिया गया।

भारतीय संदर्भ में उद्यम पूंजी उन लघु एवं मध्यम आकार वाले उद्योगों के लिए अतिमहत्वपूर्ण वित्त पोषण का स्रोत है, जिनके पास निधियां जुटाने के बहुत ही कम मार्ग एवं अवसर हैं। यद्यपि ऐसे व्यवसाय एवं उद्योगों के पास भविष्य में लाभार्जन की अपार एवं विशाल संभावनाएं एवं क्षमता होती है और अपने आपको बड़े उद्यम के रूप में स्थापित करने की क्षमता भी होती है। परन्तु पर्याप्त संसाधनों एवं वित्त के अभाव में वह विकास नहीं कर पाते हैं। यहां यह भी अतिमहत्वपूर्ण तथ्य है कि इन उद्योगों में विनियोजन के अधिक जोखिम को देखते हुए आम निवेशक भी अपना धन अथवा निधि इनमें विनियोजित नहीं करना चाहता है। ऐसे उद्योगों की क्षमताओं, व्यापार कौशल एवं सम्भावनाओं को वित्तीय सहायता प्रदान करने और जोखिम उठाने की परिकल्पना ही मूल रूप से उद्यम पूंजी है, उद्यम पूंजी की वचनबद्धता है या अंश सहभागिता है जो इस प्रकार के उद्योगों की क्षमताओं का आकलन कर उन्हें विकास एवं विस्तार के पर्याप्त अवसर प्रदान करती है।

उद्यमी पूंजीपति विभिन्न व्यावसायिक क्षेत्रों से आते हैं। वे परियोजना की सावधानी पूर्वक जांच करने के बाद इन फार्मों के लिए निधियां (जो उद्यम पूंजी निधि के रूप में जाना जाता है) प्रदान करते हैं। उनका मुख्य लक्ष्य अपने निवेशों पर अधिक प्रतिफल प्राप्त करना है परन्तु उनकी अभिकल्पनाएं पारम्परिक उधारदाताओं से बिल्कुल भिन्न होती हैं। वे कम्पनी के प्रबन्धन में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं तथा विशेषज्ञता की सेवा और अच्छे बैंकर, प्रौद्योगिकियों, योजनाकर्ता एवं प्रबन्धक की अच्छी गुणवत्तापूर्ण सेवा देते हैं। इस प्रकार से उद्यम पूंजीपति और उद्यमी साक्षरशः सांझेदार के रूप में कार्य करते हैं।

उद्यम पूंजी विभिन्न अवस्थाओं के वित्त पोषण को मान्यता देता है :–

आरम्भिक अवस्था का वित्त पोषण :–

यह प्रथम अवस्था का वित्त पोषण है जब उद्योग उत्पादन शुरू करता है और अपने उत्पाद को बेचने के लिए इसे अतिरिक्त निधि की आवश्यकता होती है। इनमें बीज/उद्यमी की अभिकल्पना, विचारों की सहायता करने के लिए आरम्भिक वित्तीय सहायता निहित है। यह पूंजी उत्पाद विकास, अनुसंधान और विकास और आरम्भिक विपणन के लिए दी जाती है।

विस्तार के लिए वित्त पोषण :–

यह कार्यशील पूंजी और व्यापार विस्तार के लिए द्वितीय अवस्था का वित्त पोषण है। इसमें सार्वजनिक निर्गम सुगम बनाने के लिए विकास वित्त पोषण शामिल है।

अधिप्राप्ति/ खरीद वित्त पोषणः–

तृतीय अवस्था में निम्नलिखित शामिल होते हैः–

1. और अधिक वृद्धि के लिए दूसरे फर्म को प्राप्त करने के निमित्त अधिग्रहण वित्त पोषण।
2. प्रबंधन खरीद वित्त पोषण ताकि कार्यचालन समूहों/निवेशकों को मौजूदा उत्पाद या व्यापार का अधिग्रहण करने में समर्थ बनाया जा सके।
3. रूग्ण एवं बीमार उद्यमों को पुनर्जीवित एवं लाभकारी बनाने के लिए सम्पूर्ण कायाकल्प के लिए वित्त उपलब्ध कराना।

भारत में उद्यम पूंजी निधि (वीसीएफ) को निम्नलिखित समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है :–

1. वे जिनका संवर्धन राज्य सरकार नियंत्रित विकास वित्तपोषण संस्थाओं द्वारा किया जाता है, उदाहरण के लिए – आईसीआईसीआई वेंचर फंड्स लि0, आईएफसीआई वेंचर पूंजी फंड्स लिमिटेड (आईवीसीएफ) एसआईडीबीआई वेंचर पूंजी लिमिटेड (एसवीसीएल)।
2. वे जिनका संवर्धन राज्य सरकार नियंत्रित विकास वित्तपोषण संस्थाओं द्वारा किया जाता है, उदाहरण के लिए – गुजरात वेंचर फाइनेंस लिमिटेड (जीवीएफएल), केरल वेंचर कैपीटल फंड प्रा0लि0, पंजाब इन्फोटिक वेंचर फंड हैदराबाद इन्फार्मेशन टैक्नोलॉजी वेंचर एंटरप्राइजेज लिमिटेड (एचआईटीवीईएल)।
3. जिनका संवर्धन सार्वजनिक बैंकों द्वारा किया जाता है, उदाहरण के लिए – कैनबैंक वेंचर कैपीटल मार्केट्स लिमिटेडड एसबीआई कैपीटल मार्केट्स लिमिटेड, आईएल एंड एफएस ट्रस्ट कंपनी लिमिटेड।
4. इन्फिनिटी वेंचर इंडिया फंड जिनकी स्थापना विदेशी उद्यम पूंजी निधि के रूप में की गई है, उदाहरण के लिए – वाल्डेन इंटरनेशनल इन्वेस्टमेंट ग्रुप, सी एफ इंडिया इन्वेस्टमेंट एंड ग्रोथ फंड, बीटीएस इंडिया प्राइवेट इक्विटी फंड लिमिटेड।

ये सभी उद्यम पूंजी निधियां भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) द्वारा अभिशासित होती हैं। सेबी देशी और विदेशी दोनों प्रकार की उद्यम पूंजी निधियों के पंजीकरण और विनियमन हेतु नोडल एजेंसी हैं। तद्नुसार इसने निम्नलिखित विनियमन बनाए हैं अर्थात, भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (उद्यम पूंजी निधि) विनियमन 1996 और भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (विदेशी उद्यम पूंजी निवेशक) विनियमन 2000। ये विनियमन भारत में और इसके बाहर दोनों में उद्यम पूंजी निधियों की स्थापना के लिए व्यापक दिशा निर्देश और प्रक्रियाएं मुहैया कराते हैं, उनका प्रबन्धन मूल संरचना, संरचना तथा फंड के आकार और निवेश मानदंड प्रदान करते हैं। अब ये निर्देश वैकल्पिक अधिनियम 2012 के आधार पर लागू होते हैं।

15.4 सेबी वैकल्पिक विनियोग विनियमन अधिनियम (उद्यम पूंजी निधि) 2012

इस अधिनियम में प्रमुख संशोधनों के साथ सरकार द्वारा विनियोगकर्ताओं को प्रोत्साहित करने तथा विनियोगकर्ताओं के हितों की सुरक्षा हेतु अनेकों नवीन

प्रावधान किये हैं। सेबी द्वारा अपने प्रावधानों के माध्यम से विनियोग प्राप्त करने वाली संस्था तथा विनियोजक संस्था दोनों की ही सुरक्षा एवं हित को ध्यान में रखकर इस अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों की संरचना की गयी है। इसके आधीन उद्यम पूंजी विनियोजन प्रक्रिया को तीन भागों में विभाजित किया गया है – प्रथम प्रारम्भिक अवस्था, द्वितीय अवस्था एवं तृतीय अवस्था। प्रत्येक निवेशक को सेबी से एक पंजीकरण प्रमाण पत्र प्राप्त करना होता है जिसके अनुसार विनियोगी संस्था एवं विनियोग प्राप्तकर्ता संस्थान को विनियोग प्रक्रिया में सेबी द्वारा जारी सभी नियमों एवं उपनियमों का अनुपालन करना अनिवार्य होता है। प्रथम अवस्था में उस श्रेणी के उद्योगों को सम्मिलित किया जाता है जिनकी प्राथमिक पूंजी उनके क्रियाकलापों जैसे – विपणन, मूल ढांचा विकास आदि कार्यों के लिए अल्प रह जाती है और विकास की गति को तीव्र एवं स्थायित्व के लिए उन्हें और अतिरिक्त पूंजी निवेश की आवश्यकता होती है, यहां यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि उद्यम (जोखिम) पूंजी निधि विनियोजन छोटे एवं मध्यम आकार के उद्योगों में प्राथमिक पूंजी के अतिरिक्त अन्य विनियोजित पूंजी से है। इस क्षेत्र में उद्यम पूंजी के विनियोजन से न केवल औद्योगिक विकास की गति तीव्र हुई है वरन् यह विनियोजन राष्ट्रीय विकास में भी योगदान करता है। इस प्रकार के विनियोजनों को ''वैकल्पिक उद्यम पूंजी'' के नाम से भी जाना जाता है तथा विनियोजित किया जाता है। भारत सरकार ने इसके प्रोत्साहन हेतु आयकर अधिनियम में भी ऐसे प्रावधानों पर कुछ छूट देने का प्रावधान हुआ है।

1. **पंजीकरण प्रक्रिया –**

प्रत्येक विनियोगकर्ता को सेबी के नियमानुसार निर्धारित प्रपत्र भरकर आवेदन करना होता है। उद्यम पूंजी के रूप में विनियोजित की जाने वाली निधि के आधार पर यह पंजीकरण योजना के अन्त तक लागू रहता है। यदि योजना में अथवा निधि में परिवर्तन किया जाना है तो पंजीकरण का भी नवीनीकरण कराना होता है।

2. **अर्हता मापदण्ड –**

पंजीकरण से पूर्व सेबी विनियोग कर्ता एवं विनियोग प्राप्तकर्ता दोनों के प्रपत्रों की अपने स्तर से जांच एवं विश्लेषण करता है तथा पूर्ण सन्तुष्टि के पश्चात ही प्रमाण पत्र निर्गत करता है। विनियोगकर्ता सांझेदारी, संयुक्त पूंजी कम्पनी, निगम, ट्रस्ट या अन्य कोई संस्था हो सकते हैं तद्नुसार ही उन्हें अपनी अर्हता प्रमाणित करनी होती है उदाहरण के लिए संयुक्त पूंजी कम्पनी की दशा में कम्पनी के अन्तर्नियमों में उद्यम पूंजी में व्यवहार करने के लिए स्पष्ट प्रावधान का होना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त विनियोग का समय, उद्देश्य, पेशेवर योग्यतायें आदि के सम्बन्ध में भी विस्तृत ब्यौरा सेबी के समक्ष प्रस्तुत करना होता है।

3. **पंजीकरण प्रमाण पत्र निर्गमन –**

सभी प्रकार से संतुष्ट होने पर पंजीकरण शुल्क ₹ 50,000 जमा करने के पश्चात सेबी द्वारा पंजीकरण प्रमाण पत्र निर्गत कर दिया जाता है। पंजीकरण में यह निहित रहता है कि विनियोगकर्ता एवं विनियोग प्राप्त करने वाला संस्थान सेबी को सूच्य कार्यों के लिए अतिरिक्त अन्य कोई गतिविधि नहीं कर सकते, दोनों ही पक्षकारों को गतिविधि के संचालन में सेबी द्वारा जारी की गयी सभी नियमावलियों,

नियमों, उपनियमों आदि का पूर्ण अनुपालन करना होता है। किसी भी प्रकार के मूलभूत परिवर्तन हेतु सेबी की पूर्व अनुमति अनिवार्य होगी। इस प्रकार सभी दृष्टियों से आकलन एवं विश्लेषण के पश्चात पूर्णतः सन्तुष्ट होने पर सेबी द्वारा उद्यम पूंजी के क्षेत्र में प्रवेशित होने के लिए पंजीकरण प्रमाण पत्र निर्गत कर दिया जाता है।

4. **सामयिक आकलन –**

सेबी द्वारा परियोजना काल में भी समय–समय पर ऐसे विनियोगों का आकलन एवं विश्लेषण किया जाता है। कार्य प्रगति, उत्पन्न जोखिम, वैधानिक प्रक्रियाओं आदि के सम्बन्ध में सेबी के समक्ष प्रगति आख्या प्रस्तुत की जानी होती है। इसके अतिरिक्त यदि प्रबन्ध स्तर पर भी कोई मूलभूत परिवर्तन किया जाना है तो इसके सम्बन्ध में भी सेबी को सूचित करना होता है।

5. **पंजीकरण का निरस्तीकरण –**

यदि परियोजना के दौरान सेबी यह अनुभव करता है कि संस्थान द्वारा नियमों, परिनियमों के अनुपालन में कमी रह गयी है अथवा उनका किसी भी प्रकार से उल्लंघन किया जा रहा है अथवा वह आवश्यक सूचनाओं की आपूर्ति सेबी को नहीं कर रहा है अथवा सामयिक रूप से सेबी को प्रस्तुत करने वाले दस्तावेज अथवा प्रतिवेदन प्रस्तुत नहीं कर रहा है तो सेबी ऐसी दशा में संस्थान को चेतावनी एवं विधिवत् रूप से सूचित करता है। यदि इसके पश्चात भी सुधार नहीं होता है तो सेबी ऐसे विनियोग पंजीकरण को समय से पूर्व ही निरस्त कर सकता है।

15.5 उद्यम पूंजी विनियोग प्रक्रिया

उद्यम या जोखिम पूंजी में लाभ के सुअवसर दिखायी देने के कारण विभिन्न सरकारी एवं निजी संस्थान इस प्रकार के विनियोगों के लिए प्रेरित हुए हैं, परन्तु उद्यम पूंजी के माध्यम से लाभार्जन में जोखिम की मात्रा भी उतनी ही अधिक रहती है। जरा सी भी त्रुटि विनियोगकर्ता को लाभ के स्थान पर भारी आर्थिक हानि भी पहुंचा सकती है। अतः यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि उद्यम पूंजी विनियोजन में अतिरिक्त सावधानी प्रारम्भिक स्तर से रखी जाये। इस प्रकार के विनियोजनों में पर्याप्त जोखिम होने के कारण ही उद्यम पूंजी को जोखिम पूंजी भी कहा जाता है। उद्यम पूंजी के विनियोजन में विनियोगकर्ता को ही अतिरिक्त सावधानी की आवश्यकता नहीं है, वरन् विनियोग प्राप्त करने वाले संस्थान को भी सजग रहना चाहिए तथा विनियोगी संस्थान के भूतकाल, आर्थिक स्थिति हस्तक्षेप आदि का पूर्व में ही आकलन कर लेना चाहिए। विनियोग प्रक्रिया को प्रारम्भ से ही यदि वैज्ञानिक एवं तकनीकी आधार पर मूल्यांकित कर लिया जाये और सम्बन्धित कमियों को दूर कर लिया जाए तो भविष्य में होने वाली आर्थिक हानियों से बचाव किया जा सकता है। यद्यपि उद्यम पूंजी के क्षेत्र में विनियोजनों के सम्बन्ध में सेबी द्वारा भी विभिन्न नियमों एवं उपनियमों के आधार पर नियन्त्रण का प्रयास किया जाता है परन्तु अपने विनियोग की सुरक्षा जहां विनियोगकर्ता का दायित्व है वहीं दूसरी ओर प्राप्त विनियोग का श्रेष्ठतम् उपयोग विनियोग प्राप्त करने वाले संस्थान का कर्तव्य एवं दायित्व है।

1. **परियोजना मूल्यांकन :–**

उद्यम पूंजी निवेश के सम्बन्ध में सर्वाधिक प्रमुख एवं प्राथमिक कार्य परियोजना मूल्यांकन है। इस सम्बन्ध में दोनों ही पक्षकार विनियोगी संस्थान तथा विनियोग प्राप्तकर्ता संस्थान दोनों को अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता होती है। इस प्रवर्तन कार्य में जरा सी त्रुटि होने पर उद्यम पूंजी विनियोजन का उद्देश्य भ्रमित या नष्ट हो सकता है तथा दोनों ही पक्षकरों को भारी हानि का सामना करना पड़ सकता है। अतः यह अत्यन्त आवश्यक एवं अनिवार्य है कि दोनों ही पक्षकार (विनियोगकर्ता एवं विनियोग प्राप्तकर्ता) अत्यन्त सजगता एवं सावधानी से अपने लिए मूल्यांकन करें कि परियोजना उनके मापदण्डों के अनुरूप खरी उतरती है अथवा नहीं। सभी प्रकार से सन्तुष्ट होने जाने के उपरान्त ही विनियोग प्राप्त करना अथवा निधि विनियोजन सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

विनियोग प्राप्तकर्ता की दृष्टि से –

जिस संस्थान को उद्यम पूंजी की आवश्यकता है उसे सर्वप्रथम यह आकलन करना चाहिए कि उसे कितनी अतिरिक्त निधि की आवश्यकता है जिससे उनका कार्य सुचारू ढंग से चल सके। इसके अतिरिक्त इस विनियोग के लिए वित्तीय संस्थान का चयन भी अत्यन्त सावधानी से किया जाना चाहिए। विनियोगी संस्थान का पूर्व अनुभव, पूर्व विनियोजन आदि के सम्बन्ध में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर उनका विश्लेषण कया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त विनियोगी संस्थान की विनियोजन क्षमता एवं आर्थिक मूल्यांकन की भी आवश्यकता होती है। इस कार्य के लिए बड़ा विनियोजन होने की स्थिति में मध्यस्थों अथवा विशेषज्ञों की सहायता भी प्राप्त की जा सकती है। यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि आवश्यकता पड़ने पर विनियोगी संस्थान अन्य प्रकार की सेवाएं जैसे विशेषज्ञ सलाहकार सेवायें उपलबध कराने में सक्षम है अथवा नहीं।

विनियोगी संस्थान की दृष्टि से –

जिस संस्थान को उद्यम एवं जोखिम पूंजी का विनियोजन करना है उसके लिए पात्र एवं उपयुक्त संस्थान का चयन निश्चय ही दुरूह कार्य हे। निर्णय में हुई छोटी सी त्रुटि भी भविष्य में गम्भीर एवं हानिकारक परिणामों का पर्याय हो सकती है। वर्तमान में इस कार्य में अनेकों विशेषज्ञ सेवायें प्रदान करने वाले संस्थान एवं मध्यस्थ उपलब्ध हैं जो विनियोगकर्ता को उनकी अपेक्षाओं के अनुरूप संस्थान का चयन करने में अपनी विशेषज्ञता का लाभ प्रदान करते हैं। सर्वप्रथम जिस संस्थान में निधि विनियोजित की जानी है। उसके सम्पूर्ण व्यावसायिक प्रस्ताव का गहन अध्ययन एवं विश्लेषण अनिवार्य होता है। संस्थान के पास उपलब्ध वर्तमान अवसंरचना एवं संसाधन क्या है तथा भविष्य में लाभ एवं उत्पादन में वृद्धि के लिए किस मात्रा में निधि विनियोग आवश्यक होगा यह अनुमान लगाना भी एक प्रमुख कार्य है। यदि संस्थान पूर्व से ही कार्यरत है तो उसकी पुरानी लाभ दर, बाजर में ख्याति, पुराने लेखे आदि भविष्य की सम्भावनाओं का आकलन करने के लिए प्रमुख बिन्दु सिद्ध हो सकते हैं। प्रथम स्तर, द्वितीय स्तर अथवा अन्तिम स्तर पर वित्त विनियोजन की आवश्यकता है इस आधार पर भी निधि विनियोजन की नीति प्रभावित होती है। संस्थान की विचार धारा, विकास दर, सम्पत्ति की आवश्यकता, कम्पनी का पूर्व उत्पादन एवं भविष्य में उत्पादन का अनुमान, बाजार में उत्पादन की मांग, प्रयोग की जाने वाली तकनीक, विक्रय नीति, जोखिम की मात्रा, स्वामित्व में हस्तक्षेप की मात्रा आदि सभी तथ्यों की दृष्टि से प्रस्ताव की सार्थकता का

आकलन विनियोगकर्ता द्वारा किया जाना चाहिए और इसके पश्चात ही उद्यम पूंजी विनियोजन की प्रक्रिया को सम्पादित एवं निष्पादित किया जाना चाहिए।

2. **वित्तीय आकलन :–**

जिस संस्थान को उद्यम पूंजी निधि प्रदान की जानी है उसके वित्तीय लेखें का निरीक्षण एवं वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाना अनिवार्य है जिससे निधि आवश्यकताओं का उचित एवं वैज्ञानिक आधार पर अनुमान लगाया जा सके। इस प्रकार वित्तीय विश्लेषण एवं परिणामों के लिए कुछ सर्वसम्मत विधियां प्रचलित है उनमें से अपनी दृष्टि के अनुसार सर्वोत्तम विधि का प्रयोग कर निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। बिना वित्तीय आकलन एवं विश्लेषण के यदि उद्यम पूंजी विनियोजन के निर्णय परिस्थितिजन्य आधार पर लिये जाते हैं तो वह विनियोगकर्ता के लिए अधिक जोखिम भरे सिद्ध हो सकते हैं। इस सम्बन्ध में विनियोगकर्ता के लिए यह भी श्रेष्स्कर होगा कि वह वित्तीय विशेषज्ञों की आवश्यक राय इस सम्बन्ध में प्राप्त कर ले।

15.6 उद्यम पूंजी मूल्यांकन की विधियां

उद्यम (जोखिम) पूंजी विनियोगकर्ता संस्थान यह ज्ञात करना चाहता है कि उसको विनियोजित पूंजी पर कितना लाभ प्राप्त होगा। इसके अतिरिक्त वह यह भी सुनिश्चित करना चाहता है कि जिस अनुपात में निधि विनियोजन किया जाय, उसी अनुपात में उसे स्वामित्व में भी भागीदारी प्राप्त हो। इस प्रकार के आकलन एवं विश्लेषण के लिए प्रमुखतः निम्न तीन वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग प्रचलित है:–

1. **परम्परागत उद्यम पूंजी निधि मूल्यांकन विधि :–**

परम्परागत विधि के आधार पर निधि विनियोजन का मूल्यांकन में मुख्यतः दो बिन्दुओं के आधार पर किया जाता है – प्रथमतः प्रारम्भिक समय एवं निधि विनियोजन की राशि एवं द्वितीयतः समापन समय एवं निधि विनियोजन से उस समय पर प्राप्त होने वाला प्रतिफल। इस विधि में विनियोजक परियोजना के अन्त में कुल प्राप्त होने वाले प्रतिफल की गणना कर लेता है और परियोजना के प्रारम्भ में विनियोजित राशि के आधार पर तुलना करके कुल बचत या निधि वापसी की राशि ज्ञात कर लेता है। इस विधि में निम्न बिन्दुओं के आधार पर गणना की जाती है –

1. वार्षिक लाभ या प्रतिफल गणना के लिए अनुमानित विकास दर के आधार पर प्रारम्भिक विनियोग पर क्रमिक एवं संचयी गणना कुल विनियोग काल के आधार पर कर ली जाती है और इसी आधार पर कुल विनियोजित अवधि के अनुसार वार्षिक लाभ दर की गणना कर ली जाती है।
2. परियोजना समाप्ति पर कुल प्राप्त लाभ की अनुमानित राशि भविष्य की प्राप्तियों के अनुमान पर ज्ञात कर ली जाती है तथा कर की दर के आधार पर कर पश्चात लाभ की कुल राशि एवं लाभ की अनुमानित दर ज्ञात कर ली जाती है।
3. विनियोगकर्ता अपने द्वारा विनियोजित निधि का मूल्यांकन परियोजना की समाप्ति पर अनुमानित लाभ राशि अनुपात के आधार पर परकलित कर लेता है। परियोजना के अंत में अनुमानित लाभ की तुलना विनियोजित

निधि के तत्कालीन मूल्य से करके लाभ के आधिक्य अथवा कमी की गणना करता है।

4. विनियोजित निधि की तुलना उस संस्थान की कुल विनियोजित राशि से कर आनुपातिक स्वामित्व की अपेक्षा भी करता है उदाहरणार्थ– यदि जिस संस्थान को उद्यम पूंजी की आवश्यकता है उसकी विनियोजित पूंजी राशि 50 लाख रूपये है तथाा उसे 20 लाख रूपये की उद्यम पूंजी की आवश्यकता है तो ऐसी दशा में उद्यम पूंजी विनियोजनकर्ता 2/5 स्वामित्व (40%) में भागीदारी करेगा।

<u>परम्परागत विधि के गुण एवं दोष –</u>

यह विधि प्रयोग में अत्यन्त सरल है। विनियोजित निधि की प्रारम्भिक लागत एवं परियोजना समाप्ति के मध्य की अवधि में लाभार्जन की दर के आधार पर विनियोजित निधि का अन्तिम मूल्य ज्ञात करना अत्यन्त सरल एवं सीधी प्रक्रिया है जिसमें किसी भी प्रकार की तकनीक अथवा विशेषज्ञता की आवश्यकता नहीं होती है। यह विधि सरल होने के साथ मितव्ययी भी है।

परम्परागत विधि का सबसे बड़ा दोष यह है कि उद्यम पूंजी के आरम्भिक एवं अन्त के मूल्य के अतिरिक्त अन्य किसी कारक को ध्यान में नहीं रखा जाता। विनियोजित उद्यम पूंजी को परियोजना के दौरान अनेकों कारक लाभदायकता को सकारात्मक एवं नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकते हैं जैसे बाजार की दशा, सरकारी नीतियां, संस्थान की विक्रय नीति एवं विक्रय कौशल के सम्बन्ध में अपनायी जाने वाली रणनीतियां, तकनीक आदि। परम्परागत मूल्यांकन विधि में इन सभी कारकों की पूर्णतः उपेक्षा की जाती है जिसके कारण परिणाम भ्रामक भी हो सकते हैं।

2. <u>शिकागो विधि :–</u>

यह विधि परम्परागत विधि की कमियों को दृष्टिगत रखते हुए स्थापित हुई इस विधि में परियोजना के कार्यकाल के दौरान होने वाली घटनाओं एवं सम्भावनाओं को प्रायिकता के आधार पर गणितीय रूप से क्रमानुसार निर्धारित एवं मूल्यांकित कर लिया जाता है। इस विधि के अनुसार विनियोजित उद्यम पूंजी की गणना में निम्न बिन्दुओं को दृष्टिगत रखा जाता है –

1. सफलता, जीवंतता, विफलता, विकल्प आदि को प्राथमिकता के आधार पर मूल्यांकित कर गणितीय पद्धति के अनुसार मूल्य प्रदान किया जाता है।
2. एक अनुमानित छूट दर निर्धारित कर ली जाती है (यह कोषों या निधि के ह्रासित वर्तमान मूल्य पर आधारित होती है।) इसकी गणना करने में विनियोजन में संलग्न जोखिम को भी ध्यान में रखा जाता है।
3. इस अनुमानित छूट दरों की गणितीय पद्धति वाले मूल्यों से गुणा करके उद्यम पूंजी को मूल्यांकित किया जाता है।

<u>शिकागो विधि के गुण एवं दोष –</u>

यह विधि परम्परागत विधि की कमियों को दूर करती है। इसमें उन अनेकों बिन्दुओं को अंगीकार किया गया है जिनकी परम्परागत विधि में उपेक्षा की गयी थी। इसके अतिरिक्त सम्बन्धित विकल्पों को ध्यान में रखने के कारण इसकी विश्वसनीयता अधिक हो जाती है। यह अत्यन्त वैज्ञानिक एवं तथ्यपूर्ण बिन्दुओं पर आधारित पद्धति है।

इस विधि में जिन बिन्दुओं, सफलता, विफलता आदि का प्रयोग किया गया है और उन्हें गणितीय मूल्य प्रदान किए जाते हैं व्यवहार में यह आकलन अत्यन्त जटिल एवं दुष्कर कार्य है। इसी प्रकार अनुमानित छूट दर का अनुमान भी सही–सही लगा पाना एक कठिन कार्य है। यह एक अन्तन्त जटिल एवं सत्यता से परे काल्पनिक आधारों वाली विधि है जिसके मूल्यों का सही आकलन व्यावहारिक रूप से संभव नहीं लगता। इसके अतिरिक्त इन सभी मूल्यांकनों एवं गणनाओं के लिए विशेषज्ञता की आवश्यकता होती है जो कि परम्परागत विधि के मितव्ययता के गुण को समाप्त कर देती है।

3. आय गुणनफल विधि :–

इस विधि में विनियोजित निधि का मूल्यांकन परियोजना काल के लाभ की दर के आधार पर प्रारम्भिक विनियोजन से विनियोजन के अन्तिम मूल्य को ध्यान में रखते हुए उन सभी कारकों को भी दृष्टिगत रखते हुए जो लाभदायकता को परियोजनाकाल में प्रभावित कर सकते हैं, किया जाता है। इसके अतिरिक्त इस मूल्यांकन में कर की दरों को भी समावेशित कर लिया जाता है। इस विधि के आधार पर गणना निम्न सूत्र के आधार पर की जाती है –

$$M = \frac{V}{R} = \frac{(1+r)^n (a)(p)}{(1+d)^n}$$

यहां पर –

V = विनियोजित उद्यम पूंजी की वर्तमान लागत

R = वार्षिक आय सीमा

r = आय की वार्षिक अनुमानित दर

n = परियोजना काल की अवधि (प्रथम विनियोजन तिथि से परियोजनाकाल समाप्त होने की तिथि का अंतराल)

a = परियोजना काल की समाप्ति पर अनुमानित कर पश्चात की लाभ दर (अनुमानित लाभ)

p = परियोजना काल समाप्ति पर अनुमानित मूल्य/आय अनुपात

d = छूट की दर जो कि संलग्न जोखिम आदि कारकों के आधार पर अनुमानित की जाती है

M = आय गुणनफल रीति द्वारा उद्यम पूंजी का मूल्यांकन

यह विधि विदेशों में काफी प्रचलित है परन्तु भारत जैसे देश में अनिश्चितताओं एवं जोखिम की मात्रा के चलते इस विधि का प्रयोग बहुत कम देखने को मिलता है।

भारत में प्रचलित पद्धति :–

भारत में उद्यम पूंजी को समय समय पर मूल्यांकित करने के लिए निम्न विधियों का प्रयोग सामान्यतः किया जाता है –

4. लागत पद्धति :–

यह पद्धति उद्यमपूंजी का मूल्यांकन करने की सरलतम पद्धति है। इसके अनुसार उद्यमपूंजी की ऐतिहासिक लागत के आधार पर पूंजी की विनियोजन तिथि पर पूंजी की लागत एवं पूंजी निष्कासन की तिथि को पूंजी की लागत के आधार पर गणना की जाती हे। यद्यपि यह पद्धति गणना की दृष्टि से अत्यन्त सुगम एवं

सरल है परन्तु उद्यम पूंजी विनियोगकर्ता इससे सन्तुष्ट नहीं होते क्योंकि यह अन्य कारकों पर ध्यान नहीं देती जबकि जोखिम पूंजी परियोजना काल में विभिन्न अन्य कारणों एवं कारकों से भी प्रभावित होती है।

5. **उचित बाजार मूल्य विधि :–**

यह विधि सर्वसम्मत एवं प्रचलित विधि है। इस विधि में उद्यम पूंजी को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों को दृष्टिगत रखते हुए उद्यम पूंजी के उचित बाजार मूल्य की गणना की जाती है। इसमें संस्थान में परियोजना के लिये प्रयुक्त तकनीक, प्रयुक्त सम्पत्तियां, कार्यशील पूंजी की दशा आदि सभी बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए उद्यम पूंजी के उचित बाजार मूल्य का वास्तविक मूल्य परगणित किया जाता है।

यहां पर मूल्यांकन के समय यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि यदि अंश पूंजी के रूप में उद्यम पूंजी निधि विनियोजित की गयी है तो अंश स्कन्ध विपणि बाजार में सूचीकृत हैं अथवा नहीं। सामान्यतः असूचीकृत अंशों में विनियोग संस्था की स्थापना या विनियोग की प्रारम्भिक दशाओं में ही किया जाता है।

15.7 उद्यम पूंजी के प्रकार या स्वरूप

उद्यम पूंजी को विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न स्वरूपों में किसी भी संस्थान में विनियोजित किया जाता है। यह विनियोगकर्ता एवं विनियोग प्राप्त करने वाली संस्था के पारस्परिक अनुबन्ध एवं सहमति पर निर्भर करता है कि किस रूप में विनियोग करना एवं स्वीकार करना चाहते हैं। वर्तमान में इस प्रकार का विनियोजन विभिन्न रूपों में प्रचलित है जिनमें प्रमुख वित्तीय प्रपत्र निम्न प्रकार हैः–

1. **अंशो के रूप में :–**

समता अंशों के रूप में भी यह उद्यम पूंजी विनियोजन अनेक रूपों में हो सकता है। सामान्य समता अंश, मतदान (वोटिंग) अधिकार रहित समता अंशों में विनियोजन, ऐसे पूर्वाधिकार अंशों में विनियोजन जिनको निर्धारित दर से लाभांश प्राप्त करने के पश्चात समता अंशधारियों के साथ भी निर्धारित दर से लाभांश प्राप्त करने का अधिकार रहे, परिवर्तनतीय एवं शोधनीय पूर्वाधिकार अंश आदि किसी भी रूप में उद्यम पूंजी का विनियोजन परिस्थिति एवं आवश्यकतानुसार विनियोगकर्ता कर सकता है।

2. **ऋण प्रपत्र –**

यदि विनियोग प्राप्त करने वाले संस्थान को यह लगता है कि उद्यम पूंजी विनियोजित करने वाला संस्थान अंश पूंजी में विनियोग कर स्वामित्व में अधिकार एवं हस्तक्षेप प्राप्त कर लेगा तो ऐसी दशा में उद्यम पूंजी प्राप्त करने के लिए विभिन्न ऋण प्रपत्रों जैसे– परिवर्तनीय एवं अपरिवर्तनीय ऋण पत्र, बांड्स, आय प्रपत्र पारम्परिक ऋण आदि का प्रयोग कर उद्यम पूंजी प्राप्त की जा सकती है।

3. **सशर्त ऋण –**

यह उद्यम पूंजी वित्त का वह स्वरूप है जिसमें ऋण वापसी पूर्व निर्धारित नहीं होती है। इस प्रकार के विनियोगकर्ता विक्रय एवं लाभ का एक निश्चित प्रतिशत ऋण के मूलधन एवं ब्याज के रूप में वापिस प्राप्त करते हैं। लाभ राशि का प्रतिशत दी गयी ऋण राशि के अनुपात में निर्धारित कर लिया जाता है।

विक्रय पर वह अधिकार शुल्क के रूप में राशि वसूल करते हैं अर्थात यदि विक्रय राशि अधिक ही हुई तो उस पर अन्यथा पूर्व निर्धारित धनराशि ऋण लेने वाली संस्था भुगतान स्वरूप उद्यम पूंजी विनियोग कर्ता को प्रदान करती है। अन्य शब्दों में यह सशर्त ऋण उद्यम पूंजी विनियोगकर्ता अर्द्ध समता अंश पूंजी के रूप में विनियोजित करता है।

15.8 विनियोग पश्चात पोषण अथवा अनुरक्षण

परम्परागत विनियोग जो कि समता अंशों, पूर्वाधिकार अंशों, ऋण पत्रों, बांड या वित्तीय संस्थान के माध्यम से किये जाते हैं, में विनियोगकर्ता मात्र प्राप्त होने वाले प्रतिफल से सम्बन्ध रखते हैं। उनके द्वारा प्रबन्धतंत्र अथवा संस्था द्वारा लिए जाने संस्थागत एवं व्यावसायिक निर्णयों में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाता और न ही उनका इनसे कोई सरोकार होता है। उद्यम पूंजी विनियोग इस दृष्टि से परम्परागत उद्योगों से पूर्णतः पृथक प्रकृति के होते है। इस प्रकार के उद्यम पूंजी विनियोग में विनियोग प्राप्तकर्त्ता एवं विनियोग कर्त्ता पारस्परिक रूप से एक अनुबन्ध हस्ताक्षर करते है। जिसे 'विनियोग पोषण प्रक्रिया' के नाम से जाना जाता है। इसके अतिरिक्त जोखिम पूंजीकर्त्ता संस्थान के समस्त प्रबन्धकीय निर्णयों में व्यापक साझेदारी करता है। इस विनियोग पश्चात् पोषण अथवा अनुरक्षण में निम्न बिन्दु सम्मिलित रहते है।

1 विनियोग करने के पश्चात् विनियोगकर्त्ता विनियोग प्राप्त करने वाले संस्थान को आवश्यकतानुसार न केवल सहयोग करेगा वरन् आवश्यक होने पर अपनी अथवा विशेषज्ञों की राय भी उपलब्ध कराने की व्यवस्था करेगा।

2 पारस्परिक संयुक्त सम्बन्धों को विकसित करना जिसके अनुसार व्यवसाय/उद्योग संचालन में अथवा अन्य किसी भी प्रकार की बाधाओं को सामना करने की रणनीति तैयार करना।

3 अपने द्वारा उद्यम पूंजी में विनियोजित राशि की सुरक्षा हेतु आवश्यक कार्य। परम्परागत विनियोगकर्त्ता इस सम्बन्ध में विनियोग प्राप्त करने वाले संस्थान की मात्र वित्तनीति के प्रति ही जागरूक रहता है परन्तु उद्यम पूंजी विनियोगकर्त्ता संस्थान की परियोजना, संयंत्र, संचालन, आदि क्रियाओं की न केवल जानकारी रखता है वरन् दोनों के हित में इनमें हस्तक्षेप एवं सहयोग भी करता है।

15.9 विनियोग पश्चात् पोषण एवं अनुरक्षण की विधियां

उद्यम पूंजी विनियोगकर्त्ता अपने द्वारा विनियोजित निधि की सुरक्षा हेतू अत्यन्त सजग रहतें है तथा जिस संस्थान में विनियोग किया गया है उसकी संचालन एवं प्रबन्ध सम्बन्धी क्रियाओं से अपने आप को जोड़कर रखते है तथा आवश्यकता होने पर विशेषज्ञों राय की सुविधायें भी उपलब्ध कराते हैं। वह वित्तीय योजना, परियोजना विकास, संयत्र, स्थिति आदि के सम्बन्ध में सजगता रखते है। इन क्रियाओं के लिए प्रत्येक उद्यम पूंजीकर्त्ता अपनी आवश्यकताओं एवं परिस्थिति के अनुसार विभिन्न पद्धतियों को अपना सकते है। इस सम्बन्ध में निम्न विधियां प्रचलित हैं–

1. <u>क्रियाशील पद्धति–</u>

इस पद्धति में उद्यम पूंजी विनियोगकर्त्ता द्वारा जिस संस्थान में विनियोग किया गया है उसके सभी सम्बन्धित क्रियाकलापों में सक्रिय भागीदारी करता है। वह संचालक मंडल में भी अपनी विनियोजित राशि के आधार पर भागीदारी रखता है। वह संस्थान की दीर्घकालीन वित्तीय योजनाओं, व्यावसायिक योजनाओं, तकनीक विकास, विपणन रणनीति, परियोजना विकास एवं अनुरक्षण आदि के सम्बन्ध में यदि उपलब्ध है तो अपने संस्थान से अथवा वाह्य विशेषज्ञों से आवश्यक राय उपलब्ध कराना सुनिश्चित करता है। इस प्रकार की पद्धति का उपयोग सामान्यतः तब उद्यमपूंजी विनियोगकर्त्ता द्वारा प्रचलन में है जब यह विनियोग प्रारम्भिक दशाओं में अर्थात् संस्थान या परियोजना के प्रारम्भिक अवस्था में विनियोजित किया जाता है।

2. **निष्क्रिय या क्रियाशून्य पद्धति –**

सामान्यतः इस पद्धति का प्रयोग दो परिस्थितियों में किया गया है–प्रथम जहॉ उद्यम पूंजी विनियोगकर्त्ता, संयुक्त अथवा समूह विनियोग करते है ऐसी स्थिति में कुछ विनियोगकर्त्ता क्रियाशील पद्धति के अनुसार कार्य करते है तथा शेष निष्क्रिय रहते हैं। द्वितीयतः ऐसे संस्थानों में विनियोग के बाद यह क्रिया प्रचलित है जिनकी प्रारम्भिक जोखिम एवं प्रतियोगिता की दशा समाप्त हो चुकी है तथा संस्थान विकासशील अवस्था में संतोषजनक ढंग से कार्य एवं प्रगति कर रहा है। इस पद्धति में विनियोगकर्त्ता का हस्तक्षेप का अधिकार तो होता है परन्तु कार्यप्रगति से सन्तुष्ट होने के कारण वह प्रबन्धकीय एवं संचालकीय क्रियाओं में हस्तक्षेप अथवा प्रतिभाग की आवश्यकता अनुभव नहीं करता।

3. **नियन्त्रित विधि :–**

यह पद्धति क्रियाशील पद्धति एवं निष्क्रिय पद्धति का मिलाजुला स्वरूप या मध्य मार्ग है। इसके अनुसार उद्यमपूंजी विनियोगकर्त्ता केवल तब हस्तक्षेप करता है जब विनियोग प्राप्त करने वाला संस्थान इसकी आवश्यकता अनुभव करे। आवश्यकता होने पर विनियोग प्राप्तकर्त्ता संस्थान उद्यमपूंजी विनियोगकर्त्ता से सम्पर्क कर वस्तुस्थिति से अवगत कराता है तथा राय की अपेक्षा करता है, ऐसी स्थिति में विनियोगकर्त्ता आन्तरिक अथवा वाह्य स्रोतों से आवश्यक विशेषज्ञ सहायता उपलब्ध कराता है।

4. **अन्य विधियां :–**

इन उपरोक्त विधियों के अतिरिक्त कुछ अन्य सामान्य विधियां हैं जिनके द्वारा उद्यम पूंजी विनियोगकर्त्ता विनियोग पश्चात् अनुरक्षण क्रियाओं को क्रियान्वित करता है यह सामान्य पद्धतियां निम्न प्रकार हैं –

1. **व्यक्तिगत चर्चा में अथवा विचार विमर्श :–**

   यह एक सामान्य प्रयोग की जाने वाली विधि है इसमें विनियोगकर्ता विनियोग प्राप्त करने वाली संस्थान के सम्पर्क में बना रहता है तथा संस्था की पद्धतियों और योजनाओं के सम्बन्ध में गहन विचार –विमर्श करके अपनी आवश्यक राय एवं सुझाव उपलब्ध कराता रहता है।

2. **संयंत्र अथवा परियोजना निरीक्षणः–**

   इस विधि में उद्यम पूंजी विनियोगकर्त्ता स्वयं अथवा उसका प्रतिनिधि परियोजना अथवा संयंत्र के स्थान पर स्वयं पहुॅचकर वस्तुस्थिति का अवलोकन करते है तथा कार्यप्रगति का मूल्यांकन करतें हैं। वह यह भी सुनिश्चित करते

हैं कार्य कर रहे व्यक्ति सक्षम एवं योग्यता प्राप्त है। इसके अतिरिक्त परियोजना के उत्पादन, वित्त, सेविवर्गीय, मानवसंसाधन, विपणननितियों आदि का भी स्थल निरीक्षण के आधार पर मूल्यांकन एवं विश्लेषण करते हैं।

3. **प्रतिपुष्टि (फीडबैक) प्राप्त करनाः–**

इस विधि में उद्यमपूंजी विनियोगकर्त्ता विनियोग प्राप्त करने वाले संस्थान में नामित अपने संचालकों से विकास एवं प्रगति के सम्बन्ध में संज्ञान प्राप्त करता है। ऐसी स्थिति में यह अत्यन्त आवश्यक है कि उद्यमपूंजी विनियोगकर्त्ता जिस भी व्यक्ति को संचालक के रूप में नामित करें वह पूर्णतः योग्य, निपुण सम्बन्धित क्षेत्र का विशेषज्ञ ज्ञान रखने वाला व्यक्ति हो। उसे तत्सम्बन्धी राजनियमों, वित्तीय प्रबन्ध एवं सरकारी नीतियों का यथोचित ज्ञान होना आवश्यक है।

4. **आवधिक या सामयिक प्रतिवेदनः–**

इस विधि में उद्यम पूंजी विनियोगकर्त्ता प्रत्येक निश्चित अवधि के उपरान्त परियोजना (जिसमें उद्यम पूंजी निधि विनियोजित है) प्रतिवेदन देखता है उसका विश्लेषण करता है तथा परियोजना को प्रगति एवं विकास का मूल्यांकन करता है और उसी आधार पर भविष्य के निर्देश, योजना एवं रणनीति निर्धारित करता है।

5. **पोर्टफोलियो आकलनः–**

इस विधि में उद्यम पूंजी विनियोगकर्त्ता द्वारा समय–समय पर सम्पूर्ण विनियोजित उद्यमपूंजी का आकलन एवं मूल्यांकन विभिन्न आधारों पर किया जाता है जिससे विनियोजित पूंजी की उस समय की स्थिति का ज्ञान प्राप्त किया जा सके। यह मूल्यांकन विनियोग के प्रकार विनियोग की मात्रा विनियोग प्राप्त करने वाले संस्थान में परियोजना की स्थिति (प्रारम्भिक, विकासशील अथवा अन्तिम) आदि को दृष्टि में रखकर किया जाता है।

15.10 उद्यम पूंजी विनियोजन का संगठनात्मक ढांचा

उद्यमपूंजी विनियोजन भी अन्य व्यवसाओं की भांति लाभ की अवधारणा को दृष्टि में रखकर किया जाता है। इस प्रकार के विनियोजन के माध्यम से भी विनियोगकर्त्ता अथवा विनियोगकर्त्ताओं का समूह यह अपेक्षा करते हैं कि भविष्य में यह दीर्घकालीन वित्त विनियोजन उन्हें एवं अन्य भागीदारों को लाभ प्रदान करेगाा। प्रमुखतः इस प्रकार के विनियोजनों की दृष्टि से संगठनात्मक ढांचा निर्माण करते समय निम्न बिन्दुओं को दृष्टिगत रखा जाता है–

1. विनियोगकर्त्ताओं का दायित्व सीमित रहता है।
2. निधि विनियोजन की प्रक्रिया को सरलतम बनाने के प्रयास किये जाते हैं।
3. दोहरे करारोपण से बचाव हेतु विनियोजन प्रक्रिया में कर की दृष्टि से पारदर्शिता रखना।
4. प्रक्रिया की संरचना इस प्रकार निर्धारित करना जिससे विनियोगकर्त्ताओं को अधिकाधिक लाभ कम कर देय योग्यता के साथ हो सके।

संगठनात्मक ढांचे के स्वरूप :–

उद्यमपूंजी विनियोगकर्त्ता का स्वरूप किसी भी अधिनियम, राजनियम अथवा परिनियमावली द्वारा परिभाषित नहीं है। कोई व्यक्ति, संस्था, निगम जो कि उद्यमपूंजी के रूप में विनियोग करने की इच्छा रखते हैं और विनियोग करने में

सक्षम हैं, निधि विनियोजित करते हैं। सामान्य रूप में निम्न स्वरूपों में उद्यमपूंजी निधि विनियोजन किया जाता है–

1. **सीमित साझेदारी :–**

सामान्यतः साझेदारी संगठन की मूल विशेषता साझेदारों का असीमित दायित्व होती है। परन्तु उद्यमपूंजी विनियोजन के उद्देश्य से इच्छुक विनियोगकर्त्ताओं को सीमित दायित्व के साथ मात्र उद्यमपूंजी परियोजना के लिए सम्मिलित किया जाता हैं। सीमित दायित्व होने के कारण या विनियोजक कुल विनियोग निधि का 90% से भी अधिक भाग अंशदान के रूप में प्रदान करते हैं। यह विनियोगकर्त्ता मात्र मात्र धनराशि विनियोजन उद्यमपूंजी के रूप में करते हैं संस्था के अन्य व्यवसाय अथवा संचालनीय क्रियाओं से उनका कोई वास्ता नहीं रहता है। सामान्य साझेदार ऐसे उद्यमपूंजी विनियोजन में अतिअल्प निधि विनियोजित करते हैं। कर्मचारियों का वेतन एवं भत्ते, प्रशासनिक व्यय एवं उद्यमपूंजी विनियोजन से सम्बन्धित सभी व्यय जो कि सामान्यतः शुद्ध विनियोजित निधि का 2 या 3 प्रतिशत होते हैं उन्हें सामान्य साझेदार वार्षिक प्रबन्धकीय शुल्क के रूप में वहन करते हैं।

यह स्वरूप विदेशों में सबसे अधिक प्रचलन में है। उद्यमपूंजी विनियोजन के इस स्वरूप में विनियोगकर्त्ताओं को सबसे बड़ा लाभ कराधान से बचत का है।

2. **विनियोग कम्पनी :–**

उद्यमपूंजी विनियोजन के उद्देश्य से पृथक विनियोगी कम्पनी का निर्माण भी एक प्रचलित स्वरूप हैं। विनियोग निधि राशि के अधिक होने पर यह स्वरूप लाभकारी होता है। परन्तु इसका एक बहुत बड़ा दोष दोहरे करारोपण का है क्योंकि जहाँ एक ओर विनियोगकर्त्ताओं को अपनी आय पर कर भुगतान करना होता है वहीं दूसरी ओर कम्पनी को भी अपनी आय पर कर देना होता है।

3. **अन्य स्वरूप :–**

सेबी द्वारा प्रदत्त दिशा–निर्देशों के अनुसार कोई भी ट्रस्ट, सोसायटी आदि भी किसी सामाजिक कल्याण प्रसार, सामाजिक समस्या के समाधान, अन्य किसी सामाजिक उद्देश्य से सामाजिक उद्यमपूंजी विनियोजन कर सकती हैं। यह विनियोग निधि पूर्व में विनियोजित धनराशि के अतिरिक्त होगी।

15.11 वैकल्पिक विनियोग विनियमन (उद्यम पूंजी निधि) अधिनियम 2012 का उद्यम पूंजी पर नियन्त्रण

सन् 2012 में भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड उद्यम पूंजी निधि विनियोजक विनियमन अधिनियम के रूप में सन् 1996 एवं सन् 2000 के लागू प्रावधानों को संशोधित रूप प्रदान कर एक वैकिल्पक व्यवस्था लागू की गयी। इसके अर्न्तगत उद्यमपूंजी के क्षेत्र में अपना धन विनियोजित करने वाली संस्थाओं, संयुक्त पूंजी कम्पनियों, निगमों आदि की सुरक्षा एवं नियन्त्रण के लिए विभिन्न प्रावधान लागू किये गयें हैं। जिनमें विनियोग की प्रारम्भिक अवस्था से लेकर परियोजना पूर्ण होने तक सेबी अपना निर्देश जारी रखता है। इसके अतिरिक्त समय–समय पर परियोजना काल में भी वह प्रगति आख्या की समीक्षा करता है। सर्वप्रथम सेबी द्वारा इस प्रकार का विनियोग करने वालों के लिए आवश्यक अहर्तायें निर्धारित की है। यह अहर्ता बिन्दु निम्नलिखित हैं –

1. संस्थान के पार्षद अन्तर्नियमों में अथवा आन्तरिक नियमावली के अनुसार उद्यमपूंजी विनियोग की स्वीकृति होना आवश्यक है।
2. उद्यमपूंजी विनियोगकर्त्ता इस प्रकार के विनियोग को करने के उद्देश्य से जनता में कोई अंश आदि निर्गमित नहीं कर सकते हैं।
3. साझेदारी संस्था की दशा उनके करारनामे में उद्यमपूंजी विनियोजन का प्रावधान अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त सीमित साझेदारी अधिनियम के अन्तर्गत ऐसा करारनामा पंजीकृत कराना भी अनिवार्य है।
4. यदि निगम अथवा अन्य संस्थान उद्यमपूंजी के रूप में विनियोग करना चाहते है तो आवश्यकतानुसार राज्य सरकार अथवा केन्द्र सरकार को सूचना अथवा सहमति अनिवार्य है।
5. विनियोग करने वाले संस्थान की विनियोगी टीम में अनुभवी विशिष्ट योग्यता प्राप्त व्यक्तियों के एक प्रबन्धक स्तर का व्यक्ति कम से कम 5 वर्ष का अनुभव प्राप्त अवश्य होना चाहिए।
6. पंजीकरण के समय, विनियोग का उद्देश्य, संसाधनों की वर्तमान दशा, विनियोगकर्त्ताओं का विवरण, विनियोग रीति एवं रणनीति आदि सभी का स्पष्ट विवरण दिया जाना अनिवार्य है।
7. सेबी द्वारा विभिन्न अलग–अलग श्रेणियों एवं परिस्थितियों के अनुसार उद्यमपूंजी के माध्यम से विनियाजित की जाने वाली निधि की न्यूनतम एवं अधिकतम सीमायें भी निर्धारित की हुई है।
8. सेबी द्वारा यह भी निर्धारित किया गया है कि किन परिस्थितियों में स्कन्ध विपणि में अधिसूचित अंशों में ही विनियोग किया जा सकता है अथवा किन श्रेणियों में गैर अधिसूचित अंशों में भी विनियोग किया जाना संभव है।
9. सेबी द्वारा यह एक वचन पत्र विनियोगकर्त्ता एवं विनियोग प्राप्तकर्त्ता से घोषित कराया जाता है कि दोनों द्वारा ही सम्बन्धित विनियोग से सम्बन्धित सभी तथ्यों को घोषित करेंगे तथा इस सम्बन्ध में सभी नीति एवं बिन्दुओं को स्पष्ट कर दिया जाएगा। यदि किसी के साथ किसी विवाद या वाद की स्थिति है तो उसे भी पूर्व में ही स्पष्ट किया जाना अनिवार्य है।
10. दोनों ही पक्षकार उद्यमपूंजी के अनुबन्ध के प्रारम्भ से अन्त तक नियमों, परिनियमों एवं तथ्यों के सम्बन्ध में पूर्ण पारदर्शिता रखेगें। इसके अतिरिक्त परियोजना के दौरान प्रगति आख्या पूर्ण स्पष्टता एवं पारदर्शिता के साथ सेबी को भी निर्धारित प्रारूप पर प्रदान करेंगे।
11. निर्धारित प्रारूपों पर समय–समय पर सेबी द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार विभिन्न प्रतिवेदन (रिर्पोट) सेबी को प्रस्तुत किये जाने होते है। इसके अनुसार समस्त लेखे एवं रिकार्डो को रखने में भी सेबी द्वारा जारी दिशा –निर्देश का अनुपालन अनिवार्य है।
12. सेबी किसी भी प्रकार की अन्य सूचना अथवा शिकायत की दशा में अपना कोई प्रतिनिधि अथवा प्रतिनिधिमंडल परियोजना के निरीक्षण, लेखो–अभिलेखों के निरीक्षण एवं वस्तुस्थिति के भौतिक सत्यापन के लिये नियुक्त कर सकता है। यह प्रतिनिधि अथवा प्रतिनिधिमंडल यह भी

सुनिश्चित करेगा कि विनियोग प्राप्तकर्त्ता द्वारा सेबी द्वारा जारी सभी दिशा–निर्देशों का समुचित ढंग से अनुपालन हो रहा है अथवा नहीं। वह अपना अन्तिम प्रतिवेदन सेबी को प्रस्तुत करेंगे तथा तद्नुसार सेबी द्वारा आगामी कार्यवाही सुनिश्चित की जाएगी।

13. यदि सेबी द्वारा यह अनुभव किया जाता है कि दी गयी सूचनायें सत्य नहीं है अथवा परियोजना के दौरान लेखों का रख रखाव उचित प्रकार से नहीं किसा जा रहा है अथवा परियोजना संचालन में सेबी द्वारा निर्गत एंव प्रदत्त दिशा–निर्देश का समुचित अनुपालन नहीं हो रहा है जो ऐसी दशा में सेबी द्वारा उधम पूंजी विनियोजन का यह अनुबन्ध रद्द, निरस्त या स्थगित किये जाने का भी प्रावधान है।

14. सेबी द्वारा किसी भी परिस्थियों में यदि उधम पूंजी अनुबन्धन का निरस्तीकरण अथवा स्थगन किया जाता है तो ऐसी दशा में पक्षकारों को सूचित करने के अतिरिक्त सेबी द्वारा इस सूचना का सार्वजनिक प्रकाशन दो अखबारों में भी किया जाता हैं। यदि किसी पक्षकार को इस सम्बन्ध आपत्ति था। शिकायत हो तो वह स्कन्ध विपणि न्यायाधिकरण में सुनवायी हेतु अपील कर सकता है।

15.12 भारत में उद्यमपूंजी विनियोग प्रक्रिया में संलग्न संस्थान

भारत में उद्यमपूंजी की विचारधारा के प्रवेश के प्रथमकाल में आई0सी0आई0सी0आई ने भारतीय इकाई न्यास (यूनिट ट्रस्ट ऑफ इन्डिया) के साथ मिलकर इस क्षेत्र में विनियोग की पहल की थी। धीरे–धीरे लाभ के सुअवसर देखकर अन्य संस्थानों ने भी उद्यम पूंजी विनियोजन के क्षेत्र में विनियोग प्रारम्भ कर दिया। उद्यम पूंजी विचारधारा के प्रचार–प्रसार के साथ ही विनियोजकों की संख्या में भी वृद्धि होती गयी। वर्तमान समय में अनेकों राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान भारत में उद्यम पूंजी क्षेत्र में कार्यरत हैं। वह अपने–अपने क्षेत्रानुसार एवं विनियोग प्राप्तकर्ताओं की आवश्यकतानुसार लाभ के अवसरों के दृष्टिगत अपनी निधि विनियोजित करते हैं। वर्तमान समय में यह एक सामान्य बाजार न रहकर विशेषज्ञतायुक्त बाजार में परिवर्तित हो गया। विनियोगकर्ता क्षेत्र विशेष में ही अपनी निधि विनियोगकर्ता क्षेत्र विशेष में ही अपनी निधि विनियोजित करते हैं, कुछ विनियोगकर्ता निश्चित क्षेत्र के आधार पर कार्य करते हैं वहीं कुछ विनियोगकर्ता उत्पादन में अपनी विशेषज्ञता के आधार पर उद्यम पूंजी में निधि विनियोजन करते हैं।

भारत में उद्यम पूंजी नियोजन संरचना –

भारत में उद्यम पूंजी निधि को निम्नलिखित समूहों में वर्गीकृत किए जा सकते हैं –

1. केन्द्र सरकार के नियन्त्रण वाली विकास संस्थाओं द्वारा प्रवर्तित जैसे –
   - सिडबी वेंचर कैपिटल लिमिटेड (एसवीसीएल)
   - आईएफसीआई वेंचर कैपिटल फंड्स लिमिटेड (आईवीसीएफ)
   - गुजरात वेंचर फाइनेन्स लिमिटेड (जीवीएफएल)
   - केरल वेंचर कैपिटल फंड प्रा0 लि0
   - पंजाब इन्फोटेक वेंचर फंड

- हैदराबाद इन्फार्मेशन टैक्नोलॉजी वेंचर एंटरप्राइजेज लिमिटेड

2. सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों द्वारा प्रवर्तित जैसे –
   - कैनबैंक वेंचर कैपिटल निधि
   - एसबीआई कैपिटल मार्केट्स लिमिटेड
3. प्राइवेट सेक्टर की कम्पनियों द्वारा प्रवर्तित, जैसे –
   - आईएलएण्ड एफएस ट्रस्ट कंपनी लिमिटेड
   - इन्फिनिटी वेंचर इंडिया फंड
4. विदेश–स्थित वेंचर कैपिटल निधियाँ, जैसे –
   - वेडेन इंटरनेशनल इन्वेस्टमेंट ग्रुप
   - एसईएएफ इंडिया इन्वेस्टमेंट एंड ग्रोथ फंड
   - बीटीएस इंडिया प्राइवेट फंड लिमिटेड

15.13 सारांश

उद्यम या जोखिमपूंजी के माध्यम से वित्त प्रदान करने की कल्पना मूलतः लघु एवं मध्यम आकार के उद्योगों को सशक्त बनाना है। इसके माध्यम से विनियोग में सक्षम संस्थायें लघु एवं मध्यम आकार के उद्योगों में दीर्घकालीन विनियोजन करके लाभार्जन करते हैं। यह विनियोग ऐसी संस्थाओं को प्रदान किया जाता है जिनकी परियोजना अत्यन्त सशक्त है तथा उनमें विकास एवं भविष्य की आपार सम्भावनायें है परन्तु वित्त के अभाव में उनका विकास मार्ग अवरूद्ध हो रहा है। यह विनियोग समता एवं पूर्वाधिकार अंश, ऋण पत्र, परम्परागत ऋण, परिवर्तनीय ऋण आदि किसी भी प्रकार प्रदान किया जा सकता है।

उद्यमपूंजी विनियोगकर्त्ता प्रबन्धकीय गतिविधियों में भी प्रतिभाग करता है तथा आवश्यकता होने पर विनियोग प्राप्त करने वाले संस्थान को तकनीक, विशेषज्ञ राय, एवं सलाहकार सुविधाएं भी अपने स्रोतों या वाह्य स्रोतो से प्रदान करता है। भारत में उद्यमपूंजी विनियोजन की क्रियाओं पर नियन्त्रण रखने के लिए सेबी द्वारा उद्यमपूंजी निधि विनियमन 2000 लागू किया गया है। सेबी द्वारा इस नियम के अन्तर्गत उद्यमपूंजी प्राप्त करने वाले संस्था एवं विनियोगकर्त्ता दोनों के लिए ही विभिन्न दिशा–निर्देश जारी किये गये हैं जिनका अनुपालन सुनिश्चित किया जाना अनिवार्य है अन्यथा विभिन्न नियमों के तहत नियमों का उल्लंघन करने वाले पर यथोचित कार्यवाही की भी व्यवस्था है। यह उद्यमपूंजी विनियोग व्यवसाय की प्रारिम्भक, मध्यकालीन अथवा परियोजना समाप्ति किसी भी समय किया जा सकता है। सामाजिक बुराईयों को दूर करने, सामाजिक कल्याण के अन्य किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ट्रस्ट, सोसायटी आदि भी इस प्रकार का उद्यमपूंजी विनियोजन कर सकती है।

15.14 शब्दावली

दीर्घकालीन ऋण – 5 वर्ष से अधिक अवधि के लिए प्रदान किया गया ऋण।

विनियोजक – उद्यमपूंजी निधि विनियोग करने वाला।

मध्यस्थ – निश्चित धनराशि के बदले दो व्यक्ति अथवा संस्थाओं के मध्य सम्बन्ध स्थापित कराने वाला (एजेन्ट/दलाल)।

रूग्ण या बीमार उद्योग – पुरानी तकनीक, अप्रचलन अथवा अन्य कारणों से निरन्तर हानि प्रदान करने वाली संस्था या उद्योग।
विपणन – विक्रय एवं अनुसंधान की प्रक्रिया ।
मापदण्ड – किसी भी बात के लिये निर्धारित नियम या पैमाना।
निरस्तीकरण – किसी भी चीज का रद्द या समाप्त किया जाना
विशेषज्ञ – किसी विशेष या विशिष्ट विद्या में निपुण।
दुरूह – कठिन, मुश्किल।
ख्याति – बाजार में साख या उधार प्राप्त करने की क्षमता।
गणितीय – गणित या संख्याओं पर आधारित।
समता अंश – किसी भी कम्पनी की अंश पूंजी में साधारण प्रतिभाग। कुल लाभांश दर से लाभांश प्राप्ति का अधिकार।
पूर्वाधिकार अंश – इन्हें अर्न्तनियमों में कोई अन्य प्रावधान न होने पर निश्चित दर से लाभांश का भुगतान समता अशंधारियों से पूर्व पाने का अधिकार होता है।
ऋण पत्र – इनके बदले में संस्था ऋण प्राप्त करती है तथा इन्हें निर्धारित दर से ब्याज राशि का भुगतान किया जाता है।

15.15 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

6. उद्यमपूंजी विनियोग..................................उद्योगों में किया जाता है।
7. उद्यमपूंजी विनियोगकर्त्ता ....में भागीदारी करता है।
8. उद्यमपूंजी विनियोगकर्त्ता .... भी प्रदान करता है।
9. उद्यमपूंजी पर नियंत्रण हेतु सेबी द्वारा सन्.......................... में प्रथम अधिनियम बनाया गया।
10. वर्तमान में उद्यमपूंजी नियंत्रण के लिए लागू वैकल्पिक अधिनियम.................. ...में लागू किया गया।

निम्नलिखित कथनो में से कौन सा कथन सत्य और कौन सा असत्य है –

11. उद्यमपूंजी विनियोग वृह्गद आकार के उद्योगों में किया जाता हैं।
12. प्रत्येक उद्यमपूंजी विनियोगकर्त्ता का सेबी के नियमानुसार पंजीकरण अनिवार्य हैं।
13. उद्यमपूंजी विनियोगकर्त्ता स्वामित्व में भागीदारी नहीं कर सकता है।
14. उद्यमपूंजी पर नियंत्रण एवं नियमन के लिए 2012 का वैकल्पिक अधिनियम लागू है।
15. आवश्यकता होने पर उद्यमपूंजी विनियोगकर्त्ता सलाहकार या विशेषज्ञ सुविधाएं प्रदान कर सकता है।
16. उद्यमपूंजी प्राप्त करने वाले तथा विनियोग करने वाले दोनों ही पक्षकारों को सेबी के नियमों का पालन करना अनिवार्य है।

15.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

रिक्त स्थानों के उत्तर –

6. लघु एवं मध्यम आकार के
7. लाभ एवं स्वामित्व
8. सलाहकार सेवायें/ विशेषज्ञ सेवायें

9. 1996

10. 2012

<u>सत्य/असत्य के उत्तर–</u>

2. असत्य 2.सत्य 3.असत्य 4.सत्य 5.सत्य 6.सत्य

15.17 स्वपरख प्रश्न

1. जोखिम पूंजी या उद्यम पूंजी से आप क्या समझते है? इसके प्रमुख तत्वों का वर्णन कीजिए।
2. उद्यम पूंजी पर भारतीय संदर्भ में एक आलेख लिखिये। उद्यम पूंजी मूल्यांकन की भारत में प्रचलित विधियों का वर्णन कीजिए।
3. सेबी द्वारा लागू वैकल्पिक विनियमन (उद्यम पूंजी निधि) अधिनियम 2012 के प्रमुख प्रावधानों का वर्णन कीजिए।
4. उद्यम पूंजी विनियोग प्रक्रिया को समझाते हुए उद्यम पूंजी के प्रकार या स्वरूपों का वर्णन कीजिए।
5. उद्यम पूंजी के सन्दर्भ में विनियोग पश्चात् पोषण या अनुरक्षण से आप क्या समझते है? इसकी विधियां भी बताइए।

15.18 सन्दर्भ पुस्तकें

1. "Financial Management"- M.Y. Khan & P.K. Jain, Tata Mc Graw Hill
2. "वित्तीय बाजारों की कार्यप्रणाली"– प्रो0 वी0 पी0 अग्रवाल– साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा
3. "निगमीय लेखांकन"– सी0 एम0 जैन एवं ए0 के0 अग्रवाल– g Master g Educorp, मेरठ
4. "प्रबन्ध हेतु वित्तीय विश्लेषण"– डॉ0 ए0 के गर्ग– स्वाती प्रकाशन, बुलन्दशहर
5. "निगमीय लेखाविधि"– डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 राजकुमार– नवनीत प्रकाशन, नजीबाबाद
6. https://efinancemenagement.com
7. www.academia.edu
8. www.ICSI.edu > portals
9. "Corporate Restcucturing"- Ranjan Das & Udayan Kumar Basu – Tata Mc Graw – Hill education, New Delhi
10. www.izito.co.in
11. www.risk-academy.ru
12. "Derivative Markets in India : Trading, Pricing and Risk-Management" – Alok Dixit, S.S. Yadav & P.K. Jain – Tata Mc Graw-Hill, New Delhi

इकाई 16 वित्तीय पुनर्गठन

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना
16.2 निगमीय वित्तीय संरचना
16.3 निगमीय पुनर्गठन
16.4 वित्तीय पुनर्गठन से आशय
16.5 वित्तीय पुनर्गठन की आवश्यकता एवं उद्देश्य
16.6 वित्तीय पुनर्गठन की प्रक्रिया
16.7 वित्तीय पुनर्गठन के प्रकार
16.8 वित्तीय पुनर्गठन के परिणाम
16.9 सारांश
16.10 शब्दावली
16.11 बोध प्रश्न
16.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
16.13 स्वपरख प्रश्न
16.14 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- निगमीय वित्तीय संरचना की व्याख्या कर सकें।
- वित्तीय पुनर्गठन से आशय, आवश्यकता, एवं इसके उद्देश्यों को समझ सकें।
- वित्तीय पुनर्गठन की प्रक्रिया, प्रकार एवं परिणाम की व्याख्या कर सकें।

16.1 प्रस्तावना

किसी भी संस्थान की वित्तीय संरचना का आशय उस संस्थान के वित्तीय संसाधनों एवं उनकी प्राप्त करने की विधियों से लगाया जाता है। वित्त किसी भी संस्थान की आत्मा है। बिना वित्त के कोई भी संस्थान चाहे वह व्यावसायिक उद्देश्य से स्थापित किया गया हो अथवा सार्वजनिक या सामाजिक उद्देश्य से, स्थापित या जीवंत नहीं रह सकता। विभिन्न संस्थान विभिन्न उद्देश्यों को दृष्टिगत रखकर स्थापित किए जाते हैं, परन्तु व्यावसायिक दृष्टिकोण से स्थापित किये गये सभी संस्थानों का मूल उद्देश्य लाभार्जन या लाभ कमाना होता है यद्यपि गौण उद्देश्यों में उनके सामाजिक या समाज कल्याण के उद्देश्यों की चर्चा की जा सकती है।

16.2 निगमीय वित्तीय संरचना

कोई भी निगमीय संस्थान अपनी पूंजी एवं अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वित्त संसाधन एकत्र करने के लिए अनेकों माध्यमों का प्रयोग कर सकता है– जैसे पूर्वाधिकार अंश, समता अंश, ऋण पत्र, बांड, परम्परागत ऋण, वित्तीय संस्थानों का सहयोग, जोखिम पूंजी आदि। इन विधियों का चयन संस्थान की आवश्यकता, आन्तरिक संरचना, उत्पाद की प्रकृति, व्यवसाय का आकार आदि के आधार पर सुनिश्चित किया जा सकता है। यदि संस्थान लाभ एवं प्रगति की

स्थिति में आ जाता है तो उसे विस्तार दिये जाने की आवश्यकता के लिए अतिरिक्त वित्त एवं परिवर्तन की आवश्यकता हो सकती है, वहीं दूसरी ओर निरन्तर हानि, बाजार में गिरावट आदि कारणों से भी वित्तीय संरचना परिवर्तित की जा सकती है। संस्थान की वित्तीय संरचना की सुदृढ़ता किसी भी संस्थान की सफलता का मूल आधार होती है। अन्य सभी अवयवों का संगठन किए जाने के लिए भी वित्तीय संरचना ही प्रमुख आधार होती है। अतः यह आवश्यक है कि किसी भी संस्थान की वित्तीय संरचना प्रारम्भिक चरण से ही इस प्रकार निर्मित की जाय कि सर्वश्रेष्ठ परिणाम प्राप्त हो सके। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि विभिन्न अवसरों पर किसी भी संस्थान की ख्याति का मूल्यांकन किए जाने के लिए भी संस्थान के वित्तीय अवयव ही महत्वपूर्ण माने जाते हैं। वर्तमान समय की गलाकाट प्रतियोगिता के युग में वित्तीय सुदृढ़ता के बिना कोई भी संस्थान अपने उत्पादों का प्रचार प्रसार या बिक्री करने में सक्षम नहीं हो सकता।

16.3 निगमीय पुनर्गठन

निगमीय पुनर्गठन से आशय किसी भी संस्थान की आधारभूत संरचना में परिवर्तन किये जाने से है। यह परिवर्तन व्यवसाय विस्तार, प्रतियोगिता को समाप्त करना, बाजार में गिरावट, राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय नियमों में परिवर्तन, निरन्तर हानि आदि विभिन्न कारणों से किये जा सकते हैं। कम्पनी की आधारभूत संरचना में प्रमुख एवं आवश्यक परिवर्तन किए जाने को निगमीय पुनर्गठन कहा जा सकता है। इसके अन्तर्गत कम्पनी के मूल उद्देश्यों में भी परिवर्तन किया जाना संभव होता है। यह निगमीय पुनर्गठन विलय, एकीकरण, वित्तीय संरचना में परिवर्तन, आन्तरिक पुनर्निर्माण, बाह्य पुनर्निर्माण, वैधानिक एवं कर संरचना में परिवर्तन आदि विभिन्न प्रकार से किया जा सकता है। कम्पनी अधिनियम की धारा 5, 6 एवं 7 में इस प्रकार के पुनर्गठन के उद्देश्य एवं प्रक्रिया का वर्णन किया गया है तथा परिस्थितियों का आकलन भी किया गया है जिनमें निगमीय पुनर्गठन किया जा सकता है। कम्पनी का पुनर्विलय अथवा कम्पनी के क्रय के माध्यम से भी कम्पनी का पुनर्गठन किया जा सकता है। किसी भी संस्था का पुनर्गठन एक असामान्य घटना है एवं अपरिहार्य परिस्थितियों में ही संभव है। इससे पूर्व संस्था का पूर्ण एवं प्रत्येक स्तर पर आकलन किया जाना अनिवार्य होता है। यदि आवश्यक हो तो इस सम्बन्ध में विशेषज्ञों की राय भी ली जा सकती है। यदि पुनर्गठन आवश्यक ही हो तो पुनर्गठन का कौन सा स्वरूप संस्थान के लिए सर्वोत्तम होगा यह आकलन एवं मूल्यांकन करने के पश्चात ही पुनर्गठन की प्रक्रिया निष्पादित की जानी चाहिए। कभी कभी जब किन्ही संस्थानों में बाजार में अत्यधिक प्रतियोगिता हो तब भी इसे समाप्त करने के लिए पुनर्गठन की क्रिया पारस्परिक सहमति के आधार पर हो सकती है। पुनर्गठन का कोई भी स्वरूप अपनाया जाय उसमें वित्तीय आकलन एवं वित्तीय संरचना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। निगमीय पुनर्गठन में कम्पनी की सम्पूर्ण संरचना में आमूल चूल परिवर्तन किये जाते हैं।

16.4 वित्तीय पुनर्गठन से आशय

किसी भी संस्थान के वित्त संसाधनों में मूलभूत एवं आधारभूत परिवर्तन किया जाना ही उसका वित्तीय पुनर्गठन कहलाता है। कोई भी संस्थान, अंशों के निर्गमन, ऋणपत्रों के निर्गमन, बांड या अन्य वित्तीय प्रपत्रों के निर्गमन, विभिन्न

वित्तीय संस्थानों जैसे वित्तीय निगम या सरकारी अथवा निजी बैंक से ऋण, अन्य परम्परागत ऋण आदि के माध्यम से अपने वित्तीय संसाधन एकत्र करता है। वित्त की आवश्यकता को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है – एक स्थायी सम्पत्तियों अथवा अवसंरचना निर्माण के लिए प्राप्त किया जाने वाला दीर्घ कालीन वित्त एवं दूसरे कार्यशील पूंजी एवं सामान्य प्रयोग में आने वाली निधि के लिए प्राप्त किया जाने वाला अल्पकालीन वित्त। किसी भी संस्थान के वित्तीय पुनर्गठन के लिए उसके दीर्घकालीन वित्त में आधारभूत एवं मूलभूत परिवर्तन आवश्यकतानुसार किए जा सकते हैं। इसमें वित्तीय संसाधनों में कमी, जोखिम पूंजी प्राप्त करना, फैक्टरिंग सेवायें, पूंजी के स्वरूप में परिवर्तन, वित्त ढांचे की पुनः संरचना, अन्य वित्तीय तकनीकों का प्रयोग आदि सम्मिलित किया जा सकता है। ऋणों एवं लेनदारों को भुगतान की जाने वाली राशियों में कमी, ऋणपत्रों की संख्या अथवा राशि में कटौती, अदृश्य एवं कृत्रिम सम्पत्तियों को कम या समाप्त किया जाना आदि भी वित्तीय पुनर्गठन के प्रमुख अवयव हैं। वित्तीय पुनर्गठन किये जाने के लिए कम्पनी अधिनियम, केन्द्र सरकार, राज्य सरकार, रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया, सेबी आदि द्वारा जारी दिशा निर्देशों का पालन एवं अनुपालन सुनिश्चित किया जाना अनिवार्य है। पृथक पृथक संगठन अपने स्वभावानुसार अलग संस्था के नियंत्रण में रहते हैं, उसी के अनुसार निर्देशों का अनुपालन भी सुनिश्चित करते हैं। वित्तीय पुनर्गठन में विभिन्न वैधानिकताओं की आवश्यकता होती है। उन सभी पक्षकारों की सहमति जिनके हित वित्तीय पुनर्गठन से प्रभावित होंगे, आवश्यकता होती है – जैसे अंशधारी, लेनदार, ऋणपत्रधारी आदि। इसके अतिरिक्त आवश्यक होने पर वित्तीय पुनर्गठन से पूर्व न्यायालय की अनुमति भी आवश्यक होती है। संक्षेप में वित्त संरचना में आधारभूत परिवर्तन ही किसी संस्थान का वित्तीय पुनर्गठन कहलाता है।

16.5 वित्तीय पुनर्गठन की आवश्यकता एवं उद्देश्य

किसी भी संस्थान के पुनर्गठन के लिए एकीकरण, संविलयन, अधिग्रहण आदि तकनीकों का प्रयोग भी किया जाता है जो कि जटिल प्रक्रिया है। इससे पूर्व संस्थान यदि वित्तीय पुनर्गठन से अपनी समस्याओं का निराकरण कर सके तो वह श्रेष्ठ माना जाता है। वित्तीय पुनर्गठन किसी भी संगठन की एक आन्तरिक प्रक्रिया है जिसमें कम्पनी के वित्तीय ढांचे, तुलनपत्र एवं आर्थिक चिट्ठे में मूलभूत परिवर्तन कर कम्पनी के वित्तीय दोषों को दूर कर ख्याति को प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है। जब किसी संस्थान की वित्तीय या आर्थिक स्थिति विभिन्न कारणों से डांवाडोल हो जाती है तथा बाजार में साख गिरने लगती है तो वित्तीय पुनर्गठन के माध्यम से गिरती हुई साख को बचाने तथा आर्थिक ढांचे को सुदृढ़ बनाने के प्रयास किये जाते हैं। वित्तीय पुनर्गठन की आवश्यकता निम्न कारणों से होती है –

1. निरन्तर हानि –

जब किन्ही कारणों से किसी संस्थान में निरन्तर हानि होने लगती है और हानियों की राशि अति विशाल हो जाती है, कई बार यह राशि पूंजी या विनियोजन के बराबर या उससे अधिक भी हो सकती है ऐसी स्थिति में वित्तीय

पुनर्गठन कम्पनी को समापन से बचाने के लिए प्रमुख विधि के रूप में अपनाया जाता है।

2. **साख की क्षति होने –**

अनेक बार किसी विशेष घटना या दुर्घटना के कारण, हानि होने के कारण, राजनैतिक परिवर्तन के कारण, आर्थिक नीतियों के कारण, बाजार में संस्थान की ख्याति गिर जाती है अथवा शून्य हो जाती है तो वित्तीय पुनर्गठन के माध्यम से इसे बचाने या पुनः निर्माण का प्रयास किया जाता है।

3. **सरकारी नीतियों में परिवर्तन –**

अनेकों बार केन्द्र सरकार अथवा राज्य सरकार की नीतियों के परिणामस्वरूप किसी स्थान विशेष, उत्पाद विशेष, उद्योग विशेष पर नकारात्मक प्रभाव हो जाते हैं जिसके कारण उद्योग को वर्तमान स्वरूप में चलाना संभव नहीं रह जाता। ऐसी दशा में भी वित्तीय पुनर्गठन एकमात्र विकल्प रह जाता है जिसके माध्यम से संस्थान के अस्तित्व की सुरक्षा की जा सकती है।

4. **पक्षकारों के हितों की सुरक्षा –**

निरन्तर हानि या विशाल हानि के कारण विभिन्न पक्षकारों जैसे अंशधारी, ऋणपत्रधारी, लेनदार, अन्य विनियोजक आदि को संस्थान को समापन में ले जाना एकमात्र विकल्प दिखायी देता है। ऐसी स्थिति में प्रवर्तक एवं संचालक वित्तीय पुनर्गठन के माध्यम से इन पक्षकारों को उनके हितों की एक सीमा तक सुरक्षा एवं भविष्य में बेहतर परिणाम देने का आश्वासन देते हैं।

5. **ख्याति के नष्ट होने की दशा –**

विभिन्न कारणों अथवा किसी घोटाले या धोखाधड़ी के कारण या कई बार कराधान की प्रक्रिया में फंसकर संस्थान की ख्याति बाजार में पूर्णतः नष्ट हो जाती है ऐसी दशा में वित्तीय पुनर्गठन ख्याति स्थापना का सर्वश्रेष्ठ विकल्प होता है।

वित्तीय पुनर्गठन का प्रमुख उद्देश्य आर्थिक ढांचे की विसंगतियों को दूर कर आर्थिक चिट्ठे में अपेक्षित सुधार करना होता है। इसके लिए विभिन्न पक्षकारों जैसे अंशधारी, ऋणपत्रधारी, लेनदार, बांड स्वामी, विनियोजकों आदि को त्याग करना होता है। संस्थान के विशाल हानि भंडारों, अदृश्य एवं कृत्रिम सम्पत्तियों आदि को अपलिखित एवं समाप्त किया जाता है तथा वित्तीय ढांचे को संतुलित करने का प्रयास किया जाता है। विभिन्न पक्षकारों को आश्वस्त किया जाता है कि इस वित्तीय पुनर्गठन के परिणामस्वरूप संस्थान भविष्य में बेहतर परिणाम दे सकेगा और लाभ अर्जित कर खोई हुई ख्याति को पुनः अर्जित कर सकेगा। इस सबके मिश्रित परिणामों के फलस्वरूप सभी पक्षकारों के हितों की सुरक्षा भी संभव हो सकेगी, यह विश्वास ही पक्षकारों को त्याग करने की प्रेरणा देता है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि वित्तीय पुनर्गठन के लिए सम्बन्धित सभी पक्षकारों की सहमति एवं हितों का त्याग किया जाना आवश्यक है। कम्पनी को समापन में जाते देख सामान्यतः पक्षकार वित्तीय पुनर्गठन को बेहतर विकल्प के रूप में स्वीकार करते हैं। इसके अतिरिक्त वित्तीय पुनर्गठन आन्तरिक प्रक्रिया होने के कारण एकीकरण, संविलयन, अधिग्रहण आदि की तुलना में अपेक्षाकृत सुगम, अल्प वैधानिकताओं तथा कम तकनीक वाली प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया जाता है।

16.6 वित्तीय पुनर्गठन की प्रक्रिया

वित्तीय पुनर्गठन के माध्यम से संस्थान के वर्तमान दोषपूर्ण वित्तीय ढांचे में सुधार कर वित्तीय स्थिति एवं आर्थिक चिट्ठे में सार्थक परिवर्तन किये जाते हैं जिससे भविष्य में हितकर एवं लाभकारी परिणाम प्राप्त कियो जा सकें। वित्तीय पुनर्गठन में निम्न प्रक्रिया अपनायी जाती है –

1. वैधानिकताओं का अनुपालन :–

वित्तीय पुनर्गठन से पूर्व निर्धारित वैधानिक औपचारिकताओं का पूर्ण किया जाना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में सभी सम्बन्धित नियमों एवं अधिनियमों के दिशा निर्देश (जो भी लागू हों) का अनुपालन सुनिश्चित किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त यदि आवश्यक हो तो न्यायालय की सहमति भी प्राप्त की जानी चाहिए।

2. पक्षकारों की सहमति :–

वित्तीय पुनर्गठन में सर्वाधिक त्याग समता अंशधारियों को करना होता है। इसके अतिरिक्त लेनदार, ऋणपत्रधारी तथा अन्य पक्षकारों को भी अपना हित त्याग करना होता है उनकी सहमति लिया जाना अत्यन्त आवश्यक है। कई बार ऋण राशि के भुगतान से बचने के लिए उसे विनियोग प्रपत्रों में परिवर्तित कर दिया जाता है इसके लिए भी सहमति प्राप्त किया जाना आवश्यक होता है तथा सम्बन्धित औपचारिकताओं को पूर्ण किया जाना आवश्यक होता है।

3 वित्तीय एवं आर्थिक स्थिति का उचित एवं वास्तविक मूल्यांकनः–

किस भी संस्थान का वित्तीय पुनर्गठन करने से पूर्व उसकी देनदारियों, लेनदारियों या अन्य वित्तीय आकलन उचित प्रकार से कर लिये जाने चाहिए। वर्तमान तरल स्थिति एवं भावी तरल स्थिति का मूल्यांकन, अदृश्य एवं कृत्रिम सम्पत्तियों का मूल्यांकन, स्थायी सम्पत्तियों का पुनर्मूल्यांकन कर वास्तविक मूल्य का आकलन अनेक ऐसे बिन्दु हैं जिन पर पूर्व में ही विधिवत विचार एवं मंथन आवश्यक है।

4. विशेषज्ञों की राय :–

वित्तीय पुनर्गठन किसी भी संगठन या संस्था के लिए एक अत्यन्त गम्भीर एवं संवेदनशील घटना है। यदि आवश्यक हो तो इसकी सफलता एवं भविष्य के बेहतर परिणामों के लिए आन्तरिक एवं बाह्य विशेषज्ञों से परामर्श लिया जा सकता है।

5. हानि एवं अमूर्त सम्पत्तियों का अपलेखन :–

विभिन्न पक्षकारों द्वारा किये गये त्याग एवं सम्पत्तियों के अधिक मूल्यांकन से एकत्र हुई धनराशि से अमूर्त या अदृश्य सम्पत्तियों, कृत्रित सम्पत्तियों एवं एकत्रित हानि राशि को पूर्ण रूप से या आनुपातिक रूप से कम कर दिया जाता है जिससे संस्थान का वित्तीय ढांचा सुदृढ हो सके तथा तरलता की स्थिति में सुधार हो सके।

16.7 वित्तीय पुनर्गठन के प्रकार

वित्तीय पुनर्गठन के अनेकों स्वरूप हैं। यह संस्थान की आर्थिक स्थिति, वित्तीय ढांचे एवं परिस्थितियों पर निर्भर करता है कि वह किस स्वरूप को अपने लिए सर्वश्रेष्ठ मानकर अंगीकार करता है अथवा परिवर्तन के किस स्वरूप के लिए

सभी पक्षकारों की पारस्परिक सहमति होती है। संक्षेप में हम वित्तीय पुनर्गठन को प्रमुखतः निम्न स्वरूपों में विभाजित कर सकते हैं –

1. आन्तरिक वित्तीय पुनर्गठन या पुनर्निर्माण :–

आन्तरिक वित्तीय पुनर्गठन में सम्पत्तियों का पुनर्मूल्यांकन किया जाता है और उनके वास्तविक एवं वर्तमान मूल्य आर्थिक चिट्ठे में प्रदर्शित किये जाते हैं। इस प्रक्रिया में विभिन्न पक्षकार अपने अपने आंशिक हित त्याग के लिए सहमत होते हैं। प्रमुख त्याग समता अंशधारियों द्वारा किया जाता है और अन्य पक्षकार भी सहयोग हेतु आंशिक या आनुपातिक हित त्याग के लिए तैयार होते हैं। इस प्रकार से एकत्र धनराशि से एकत्रित हानि, अमूर्त या अदृश्य सम्पत्तियों के अधिमूल्य एवं कृत्रिम सम्पत्तियों को पूर्ण या आंशिक रूप से अपलिखित किया जाता है। इन नवीन परिवर्तनों के साथ समस्त वैधानिकतायें पूर्ण करते हुए एक सुदृढ़ आर्थिक चिट्ठे का पुनर्निर्माण किया जाता है। इस प्रक्रिया से संस्था की आर्थिक एवं वित्तीय स्थिति पुनः सुदृढ़ हो जाती है और बाजार में उसकी साख का भी नवनिर्माण होता है। इस प्रक्रिया से संस्थान अपनी पूर्व स्थिति से उबर कर भविष्य में बेहतर परिणाम देने एवं लाभार्जन का प्रयास करने में सक्षम हो जाता है, पक्षकारों की हितों की सुरक्षा भी होती है और संस्थान समापन प्रक्रिया से भी बच जाता है। किसी भी कम्पनी या संस्थान के वित्तीय आन्तरिक पुनर्निर्माण के प्रमुखतः दो प्रमुख कारण होते हैं –

1. जब कम्पनी की पूंजी अति पूंजीकृत हो गयी हो।
2. जब सम्पत्तियों को आवश्यकता से अधिक मूल्य पर प्रदर्शित किया गया हो।

वित्तीय आन्तरिक पुनर्निर्माण में न तो कम्पनी का समापन होता है न ही किसी अन्य कम्पनी या संस्था का निर्माण या विलय एवं अधिग्रहण। इसके अन्तर्गत कम्पनी के आन्तरिक स्वरूप में परिवर्तन किया जाता है। वित्तीय आन्तरिक पुनर्निर्माण के लिए निम्न प्रक्रिया अपनायी जा सकती है –

1. अंश पूंजी में परिवर्तन –

सामान्यतः अंशपूंजी में परिवर्तन संस्थान का आन्तरिक निर्णय है परन्तु यदि कम्पनी पहले से ही निर्गमित अंशों पर न चुकायी गयी राशि को रद्द करना चाहती है तो इसके लिये न्यायालय की स्वीकृति प्राप्त किया जाना आवश्यक होता है। कम्पनी अधिनियम की धारा 94 के अनुसार अपने पार्षद अन्तर्नियमों द्वारा अधिकृत होने पर कोई भी कम्पनी अपने पूंजी वाक्य में निर्धारित प्रक्रिया का अनुपालन करके निम्न प्रकार अपनी अंश पूंजी में परिवर्तन कर सकती है –

(i) कम्पनी द्वारा अपनी अधिकृत पूंजी एवं निर्गमित पूंजी के अन्तर को पूर्ण या आंशिक रूप से निर्गत कर अंशपूंजी में वृद्धि की जा सकती है।

(ii) कम अंकित मूल्य वाले अंशों को अधिक मूल्य वाले अंशों में परिवर्तित किया जा सकता है। यह अंशों का एकीकरण कहलाता है।

(iii) जब कम्पनी द्वारा अधिक अंकित मूल्य वाले अंशों को कम अंकित मूल्य में परिवर्तित किया जाता है इसे अंशों का उपविभाजन कहा जाता है।

(iv) कम्पनी अपने पूर्ण चुकता अंशों को स्टॉक परिवर्तित कर सकती है और आवश्यकता होने पर अपने स्टॉक को पुनः पूर्णतः चुकता अंशों में पुनः परिवर्तित कर सकती है।

(v) कम्पनी अपनी अनिर्गमित पूंजी को रद्द करके अपनी अंश पूंजी में कमी कर सकती है। इसके लिये न तो किसी अतिरिक्त लेखे की आवश्यकता होती है और न ही न्यायालय की किसी स्वीकृति की। कम्पनी मात्र एक विशेष प्रस्ताव पारित कर इस क्रिया को पूरा कर सकती है।

(vi) कम्पनी अधिनियम की धारा 99 के अनुसार, एक कम्पनी विशेष प्रस्ताव द्वारा यह भी सुनिश्चित कर सकती है कि निर्गमित अंशों पर अयाचित राशि को केवल कम्पनी के समापन पर ही मांगा जा सकता है अंश पूंजी के इस भाग को संचित पूंजी कहा जाता है।

2. अंश पूंजी में कमी –

साधारणतः अंशपूंजी में कमी आन्तरिक वित्तीय पुनर्निर्माण का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पहलू है। अंशपूंजी मे कमी का मुख्य कारण व्यापारिक हानियों के अपलेखन, कृत्रिम या बनावटी सम्पत्तियों के अपलेखन, सम्पत्तियों के चिट्ठे में उचित मूल्य पर प्रदर्शन, सदस्यों के अयाचित दायित्व को समाप्त या कम करने के लिए आदि के लिये होता है। अंश पूंजी में कमी कम्पनी अधिनियम की धारा 100 से 105 तक वर्णित है जो निम्न प्रकार है –

(i) कम्पनी के पार्षद अन्तर्नियमों में अंशपूंजी में कमी के लिए स्पष्ट प्रावधान होना आवश्यक है।

(ii) कम्पनी द्वारा पूंजी में कमी के लिये एक विशेष प्रस्ताव पारित किया जाना आवश्यक है।

(iii) विशेष प्रस्ताव का पुष्टिकरण न्यायालय द्वारा कराया जाना भी आवश्यक है।

(iv) इस विशेष प्रस्ताव तथा न्यायालय से हुई पुष्टिकरण आदेश की प्रतिलिपियां कम्पनी रजिस्ट्रार कार्यालय में जमा की जानी चाहिए।

3. अंशधारियों के अधिकार में परिवर्तन –

यदि पूंजी में कमी से विभिन्न वर्गों के अंशों के अधिकारों में परिवर्तन आता है तो प्रभावित वर्ग के अंशधारियों को एक पृथक सभा में सम्बन्धित अंशों के कम से कम 3/4 अंशों के धारकों की सहमति प्रस्ताव द्वारा उनसे लिखित रूप में लेना अनिवार्य है। इस सहमति लिये जाने के 21 दिन के अन्तर्गत सम्बन्धित वर्ग के कम से कम 10% अंशों के धारक न्यायालय से ऐसे परिवर्तन को रद्द करने के लिए आवेदन कर सकते हैं तथा जब तक न्यायालय परिवर्तन की पुष्टि नहीं कर देता तब तक परिवर्तन अप्रभावी रहता है।

अंश पूंजी में कमी के प्रकार –

(i) अंशधारियों द्वारा धारित अंशों पर अयाचित राशि का दायित्व कम करना या समाप्त करना।

(ii) अतिरिक्त चुकता पूंजी का भुगतान करना।

(iii) चुकता पूंजी को रद्द करना।

<u>व्यवहारिक प्रश्न सं0 1</u>

निम्नलिखित आर्थिक चिट्ठा अ ब स लि0 का 31 मार्च, 2017 को समाप्त होने वाले वित्तीय वर्ष का है –

(रू0 लाखों में)

दायित्व	रकम	सम्पत्तियां	रकम

समता अंश पूंजी (5,00,000 अंश)	500	भूमि एवं भवन	180
13% पूर्वाधिकार अंश (रू0 100 प्रत्येक)	100	संयंत्र एवं मशीन	220
12.5% ऋण पत्र	200	फर्नीचर	30
अदेय ऋणपत्रों का ब्याज	25	रहतिया	120
बैंक ऋण	75	देनदार	50
व्यापारिक लेनदार	300	बैंक	5
		प्रारम्भिक व्यय	10
		ऋण पत्र निर्गमन लागत	5
		लाभ–हानि खाता	580
	1200		1200

अ ब स कम्पनी निरन्तर भारी हानि का सामना कर रही है और उसकी वित्तीय स्थिति संतोषजनक नहीं कही जा सकती। इन विपरीत परिस्थितियों का सामना करने के लिए तथा भविष्य में लाभार्जन की आशा में संस्थान निम्न बिन्दुओं के साथ आन्तरिक पुनर्निर्माण की योजना लागू करना चाहता है –

1. समता अंशों का मूल्य घटा कर 25 रू0 प्रति अंश पूर्ण चुकता कर दिया जाये।
2. पूर्वाधिकार अंशों को 50 रू0 प्रति अंश पूर्ण चुकता के रूप में 11% के लाभांश दर में परिवर्तित किया जाय।
3. ऋणपत्रधारी अपने अपने अदेय ब्याज का त्याग करने को सहमत हैं।
4. लेनदार अपनी ऋणराशि का 25% त्याग करने को तैयार हैं।
5. बैंक ऋण के भुगतान हेतु रू0 25 प्रार्थना पत्र पर देय के साथ 5,00,000 नये समता अंशों के निर्गमन का निश्चय किया गया, वर्तमान अंशधारी इन अंशों का आबंटन स्वीकार करने को तैयार हैं। शेष बची धनराशि के प्रयोग से कार्यशील पूंजी में वृद्धि करना सुनिश्चित हुआ।
6. भूमि एवं भवन का पुनर्मूल्यांकन रू0 300 लाख हुआ जबकि संयंत्र एवं मशीन का अपलिखित मूल्य रू0 175 लाख निश्चित हुआ। रू0 5 लाख का प्रावधान अशोध्य ऋणों के लिए देनदारों में से कम करना है।

आप यह मानते हुए कि पुनर्गठन की योजना स्वीकार कर ली गयी है, नवीन आर्थिक चिट्ठे का निर्माण कीजिए। सम्पत्ति एवं दायित्वों पर पुनर्गठन का प्रभाव भी प्रदर्शित कीजिए।

हल/समाधान –

पुनर्गठन के पश्चात अ ब स लि0 का आर्थिक चिट्ठा

(रू0 लाखों में)

दायित्व	रकम (रू0)	सम्पत्तियां		रकम (रू0)
समता अंश पूंजी (125+125)	250	भूमि एवं भवन		300
11% पूर्वाधिकार अंश	50	संयंत्र एवं मशीन		175
10% ऋण पत्र	200	फर्नीचर		30
लेनदार	225	रहतिया		120
		देनदार	50	
		– प्रावधान	5	45
		बैंक		55

	725		725

(प्रारम्भिक शेष रू0 5 लाख + समता अंशों का नव निर्गमन रू0 125 लाख) – बैंक ऋण का भुगतान रू0 75 लाख = रू0 55 लाख वर्तमान शेष

वित्तीय पुर्नगठन का प्रभाव

अ ब स लि0 को लाभ	रूपये
(i) दायित्वों में कमी –	
समता अंश पूंजी में कमी (5,00,000 × 75)	375
पूर्वाधिकार अंश पूंजी में कमी (1,00,000 × 50)	50
ऋणपत्रों के अदेय ब्याज का त्याग	25
लेनदारों द्वारा राशि त्याग (300 लाख × 0:25)	75
	525
(ii) भूमि एवं भवन के मूल्यांकन पर लाभ (300 – 180)	120
अपलेखन के लिए उपलब्ध कुल राशि	645
(iii) उपरोक्त राशि का हानि, कृत्रिम सम्पत्तियों एवं अधिमूल्य सम्पत्तियों के लिए प्रयोग – लाभ हानि खाता अपलेखन	580
ऋणपत्र निर्गमन लागत	5
प्रारम्भिक व्यय	10
अशोध्य देनदारों हेतु प्रावधान	5
संयंत्र एवं मशीन अपलेखन (220 – 175)	45
	645

व्यवहारिक प्रश्न सं0 2

निम्नांकित चिट्ठा अणिमा संचित लि0 का है –

विवरण	रकम (रू0)
अंशधारी कोष	
(i) अंश पूंजी	
4000 8% पूर्वाधिकार अंश @ 10/- प्रत्येक	40,000
3000 समता अंश @ 10/- प्रत्येक	3,00,000
संचय एवं कोष	
लाभ हानि खाता	(80,000)
अंशों के निर्गमन पर छूट	(35,000)
(ii) स्थायी दायित्व	
8% ऋणपत्र @ 100/- प्रत्येक	1,00,000
(iii) चल दायित्व	
विविध लेनदार	60,000
	3,85,000
परिसम्पत्तियां	
(i) स्थायी सम्पत्तियां	
भूमि एवं भवन	1,60,000
	80,000

मशीनरी	95,000
फर्नीचर	
(ii) चल सम्पत्तियां	50,000
विविध देनदार	3,85,000

कम्पनी की निरन्तर हानि एवं असफलता के कारण वित्तीय आन्तरिक पुनर्निर्माण हेतु निम्न योजना स्वीकार की गयी है –

(i) पूर्वाधिकार अंशों की संख्या वही रही परन्तु प्रति अंश राशि घटाकर रू0 6 कर दी गयी।

(ii) समता अंशों की संख्या वही रही परन्तु प्रति अंश राशि रू0 6 से कम कर दी गयी।

(iii) ऋणपत्रों पर ब्याज दर बढ़ाकर 11% करनी है। ऋणपत्रधारी अपने रू0 100 वाले वर्तमान ऋणपत्रों का समर्पण कर बदले में रू0 75 प्रति वाले नवीन ऋणपत्र स्वीकार कर लेते हैं।

(iv) त्याग, समर्पण एवं कटौती से प्राप्त हुई धनराशि का प्रयोग अंशों के निर्गमन पर कटौती एवं लाभ हानि खाते की राशियों को पूर्ण रूप से अपलिखित करने के लिए किया जायेगा तथा भवन रू0 60,000, मशीनरी रू0 30,000, फर्नीचर रू0 6,000 एवं शेष राशि से देनदारों को अपलिखित किया जायेगा। इन व्यवहारों के आधार पर वित्तीय पुनर्गठन योजना लागू किये जाने के पश्चात का नवीन चिट्ठा प्रस्तुत कीजिए।

हल/समाधान –

प्रावधानों का प्रभाव	**रूपये**
4000 8% पूर्वाधिकार अंश @ 4/- प्रत्येक	16,000
30,000 समता अंश @ 6/- प्रत्येक	1,80,000
	1,96,000
11% ऋण पत्र @ 25/- प्रत्येक	25,000
अपलेखन के लिए उपलब्ध कुल राशि	2,21,000
अपलेखन राशि का प्रयोग	
लाभ हानि खाता	80,000
ऋण पत्रों पर छूट राशि	35,000
भवन अपलेखन	60,000
मशीनरी अपलखन	30,000
फर्नीचर अपलेखन	6,000
	2,11,000
शेष राशि देनदार अपलेखन	10,000
	2,21,000

वित्तीय पुनर्गठन के पश्चात अणिमा संचित लि0 का आर्थिक चिट्ठा

विवरण	रकम (रू0)
अंशधारी कोष	

(i) 4000, 8% पूर्वाधिकार अंश @ 6/- प्रत्येक	24,000
(ii) 30,000 समता अंश @ 4/- प्रत्येक	1,20,000
दीर्घकालीन ऋण	
11% ऋण पत्र @ 75/- प्रत्येक	75,000
चल दायित्व	
विविध लेनदार	60,000
	2,79,000
परिसम्पत्तियां	
स्थायी	
भूमि एवं भवन	1,00,000
मशीनरी	50,000
फर्नीचर	89,000
चल	
विविध देनदार	40,000
	2,79,000

आन्तरिक वित्तीय पुनर्गठन में व्यावहारिक प्रश्नों में जर्नल लेखे करने को भी कहा जा सकता है। पूंजी में कटौती की राशि, स्थायी सम्पत्तियों में कमी एवं अन्य पक्षकारों के समर्पण एवं त्याग से जो राशि एकत्र होती है उसे पूंजी की कमी खाते में हस्तांतरित करने का लेखा किया जाता है तथा तत्पश्चात् योजनानुसार इस एकत्र राशि से विभिन्न कृत्रिम सम्पत्तियों, हानियों या अन्य राशियां अपलिखित करने के लेखे कर लिये जाते हैं। यदि कोई नवीन अंश या ऋण पत्र निर्गमित किये गये हैं तो उनका लेखा पृथक से किया जाता है।

व्यवहारिक प्रश्न सं0 3

एक कम्पनी के वित्तीय पुनर्निर्माण का निश्चय किया गया एवं निम्न शर्तें स्वीकार की गयी। अंशधारियों को अपने विद्यमान अंशों (जो रू0 10 वाले 50,000 अंश हैं) के प्रतिफल में निम्न प्राप्त करना है –

(i) अपने विद्यमान अंशों के 2/5 भाग के बराबर पूर्णदत्त समता अंश।

(ii) उपरोक्त नये समता अंशो के 1/5 भाग तक 5 पूर्णदत्त पूर्वाधिकार अंश।

(iii) रू0 60,000 6% द्वितीय ऋण पत्र

रू0 50,000 के प्रथम ऋणपत्रों का निर्गमन एवं आवंटन किया गया जिसके लिए भुगतान नकद प्राप्त हुआ। ख्याति जो रू0 3,00,000 की थी रू0 1,50,000 तक अपलिखित कर दी गयी। संयंत्र एवं मशीनरी जो रू0 1,00,000 के थे घटाकर रू0 75,000 कर दिये गये। फ्रीहोल्ड भवन जो रू0 1,50,000 का था अपलिखित कर रू0 1,25,000 कर दिये गये। उपरोक्त स्वीकृत योजना के व्यवहारों के आधार पर कम्पनी की पुस्तकों में जर्नल के आवश्यक लेखे कीजिए।

हल/समाधान –

वर्तमान समता अंशधारिता	= 50,000 × 10	= रू0 5,00,000
(i) नवीन समता अंश	= 5,00,000 × 2/5	= रू0 2,00,000
(ii) 5 पूर्वाधिकार अंश	= 2,00,000 × 1/5	= रू0 40,000
(iii) 6 द्वितीय ऋण पत्र		= रू0 60,000
कुल प्राप्त प्रतिफल		= रू0 3,00,000

पूंजी कमी खाते में हस्तान्तरित राशि

5,00,000 – 3,00,000 = रू0 2,00,000

जर्नल लेखे

अंश पूंजी खाता ऋणी	5,00,000	
समता अंश पूंजी खाता		2,00,000
5% पूर्वाधिकार अंश खाता		40,000
6% द्वितीय ऋण पत्र खाता		60,000
पूंजी में कमी का खाता		2,00,000
(वर्तमान अंशों को दिया गया प्रतिफल एवं कमी)		
बैंक खाता ऋणी	50,000	
5% प्रथम ऋण पत्र खाता		50,000
(5% प्रथम ऋणपत्रों का नकदी में निर्गमन)		
पूंजी में कमी का खाता ऋणी	2,00,000	
ख्याति खाता		1,50,000
संयंत्र एवं मशीनरी खाता		25,000
फ्रीहोल्ड भवन खाता		25,000
(पूंजी में कमी की राशि से सम्पत्तियों का अपलेखन)		

व्यवहारिक प्रश्न सं0 4

विवेक लि0 की अंश पूंजी में निम्नलिखित सम्मिलित था –

(i) 10,000, 6% पूर्वाधिकार अंश, प्रत्येक 100 का ; और

(ii) 50,000 समता अंश, प्रत्येक 10 रू0 का।

अंश पूर्णदत्त थे तथा वर्ष के अन्त तक रू0 20,000 के प्रारम्भिक व्ययों के अतिरिक्त रू0 3,50,000 की हानि एकत्र हो चुकी थी। यह भी ज्ञात हुआ कि स्थायी सम्पत्तियों जो पुस्तकों में रू0 14,00,000 प्रदर्शित थी रू0 4,00,000 से अधिक मूल्यांकित थी।

अधिमूल्यन को हटाने एवं प्रारम्भिक व्ययों को अपलिखित करने के उद्देश्य से एक वित्तीय आन्तरिक पुनर्निर्माण की योजना बनाकर न्यायालय से स्वीकृति प्राप्त की गयी। इस योजना में 6% पूर्वाधिकार अंशों को रू0 60 वाले 7. 5% पूर्वाधिकार अंशों में बदला गया और समता अंशों को रू0 2 में परिवर्तित किय ागया। पूर्वाधिकार अंशों का तीन वर्ष का अदत्त लाभांश भी रद्द किया गया। योजना लागू करने के लिए जर्नल प्रविष्टियां कीजिए।

हल/समाधान –

6 पूर्वाधिकार अंश पूंजी खाता ऋणी	10,00,000	
7.5% पूर्वाधिकार अंश पूंजी खाता		6,00,000
पूंजी की कमी का खाता		4,00,000

(पूर्वाधिकार अंश पूंजी के मूल्य में कमी)		
समता अंश पूंजी खाता ऋणी पूंजी की कमी का खाता (समता अंश पूंजी में कमी की गयी)	4,00,000	 4,00,000
पूंजी की कमी का खाता ऋणी लाभ हानि खाता प्रारम्भिक व्यय खाता स्थायी सम्पत्ति खाता (हानि, सम्पत्ति आदि का अपलेखन)	7,70,000	 3,50,000 20,000 4,00,00
पूंजी की कमी का खाता ऋणी पूंजी संचय खाता (कमी खाते का शेष पूंजी संचय में हस्तान्तरण)	30,000	 30,000

नोट – इस उदाहरण से स्पष्ट है कि यदि पूंजी की कमी के खाते में हानि, अदृश्य एवं कृत्रिम सम्पत्तियों एवं सम्पत्तियों के निर्धारित अपलेखन के बाद कोई राशि शेष बचती है तो उसे पूंजी संचय खाते में हस्तान्तरित कर दिया जायेगा।

2. बाह्य वित्तीय पुनर्गठन या पुनर्निर्माण –

जब एक विद्यमान कम्पनी आर्थिक कठिनाईयों के कारण, कई वर्षों से हो रही निरन्तर हानि के कारण अथवा अन्य किसी कारण से अपना समापन करती है और इसे लेने के लिए दूसरी नयी कम्पनी का निर्माण करती है तो इसे कम्पनी का बाह्यय पुनर्निर्माण कहा जाता है। क्रय करने वाली कम्पनी अधिकतर नयी स्थापित कम्पनी ही होती है जो विशेषतया इसी कार्य के लिए निर्मित की जाती है। इसके अंशधारी लगभग वही रहते हैं जो पुरानी कम्पनी के थे। बाह्य पुनर्निर्माण का प्रमुख उद्देश्य कम्पनी की वित्तीय एवं आर्थिक स्थिति में सुधार कर सुदृढ़ बनाना, नवीन पूंजी प्राप्त करना, बाजार में खोई हुई साख पुनः प्राप्त करना तथा कम्पनी को नवीन वित्तीय स्फूर्ति एवं नवजीवन प्रदान करना है।

लेखांकन प्रमाप 14 एकीकरण से सम्बन्धित व्यवहारों के लेखांकन से सम्बन्धित है, परन्तु क्योंकि बाह्य पनर्निर्माण के अन्तर्गत भी एक कम्पनी का समापन होता है तथा उसके सम्पत्तियों एवं दायित्वों को एक दूसरी कम्पनी को हस्तान्तरित कर दिया जाता है जो इसी उद्देश्य के लिए स्थापित की जाती है, अतः वाह्य पुननिर्माण से सम्बन्धित व्यवहार भी क्रय के आधार पर एकीकरण के समान ही होते हैं। अतः बाह्य पुनर्निर्माण से सम्बन्धित व्यवहारों का लेखा करने के लिए भी वही विधि अपनायी जाती है जो लेखांकन प्रमाप 14 के अन्तर्गत क्रय की प्रकृति के एकीकरण से सम्बन्धित व्यवहारों के लेखांकन में अपनायी जाती है।

बाह्य पुनर्निर्माण के उद्देश्य –

1. आर्थिक एवं वित्तीय स्थिति में सुधार –

कई वर्षों तक निरन्तर हानि का सामना कर रही कम्पनी जिसके चिट्ठे का संतुलन बिगड़ जाये, बाजार में साख कम हो जाय, तो ऐसी स्थिति में बाह्य पुनर्निर्माण के माध्यम से नवीन कम्पनी का निर्माण कर साख का नये सिरे से

सृजन करने, लाभ अर्जन की संभावनाओं को तलाशने एवं वित्तीय स्थिति को सुदृढ़ करने के प्रयास किये जाते हैं।

2. कम्पनी के उद्देश्यों का विस्तार या परिवर्तन –

यदि कम्पनी अपने उद्देश्यों का विस्तार या परिवर्तन कतिपय कारणों से करना चाहती है परन्तु वांछित उद्देश्य विद्यमान कम्पनी के पार्षद सीमानियम के अन्तर्गत नहीं आते हैं तो ऐसी दशा में विद्यमान कम्पनी को समाप्त कर एक नवीन कम्पनी वांछित उद्देश्यों के साथ गठित कर ली जाती है।

3. पंजीकृत कार्यालय का प्रदेश परिवर्तन –

जब कोई कम्पनी अपने पंजीकृत कार्यालय को परिवर्तित करके एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश मे ले जाना चाहती है अथवा एक विदेशी कम्पनी को भारतीय कम्पनी में बदलना हो तो बाह्य पुनर्निर्माण सर्वश्रेष्ठ विधि है।

4. कार्यशील पूंजी में वृद्धि करने के लिए –

जब किसी कम्पनी पर कार्यशील पूंजी की कमी हो जाती है और इसे पूरा करने का प्रबन्ध वह कम्पनी किसी भी प्रकार नहीं कर सकती है, तब वह बाह्य पुनर्निर्माण की योजना स्वीकार कर अपने व्यापार को एक नव स्थापित कम्पनी को विक्रय कर कार्यशील पूंजी में वृद्धि की व्यवस्थायें कर लेती है।

व्यवहारिक प्रश्न सं0 1

31 मार्च 2017 को एस लिमिटेड का ऐच्छिक समापन होता है। इसकी सम्पत्तियां निम्न प्रकार हैं –

स्थायी सम्पत्तियां रू0 1,80,000, चालू सम्पत्तियां रू0 20,000। इसके दायित्व रू0 40,000 है तथा इसकी प्रदत्त पूंजी रू0 2,00,000 है। सम्पत्तियां एक नयी कम्पनी को 1,44,000 में विक्रय की गयी जो 10 रू0 वाले 12,500 अंश प्रत्येक रू0 8 दत्त, के निर्गमन द्वारा तथा शेष नकद भुगतान करके चुकाया जायेगा। दायित्वों का भुगतान कर दिया जायेगा। रू0 4,000 समापन व्यय हुए। एस0 लिमिटेड की पुस्तकों में आवश्यक जर्नल प्रविष्टियां कीजिए।

हल/समाधान –

पुनर्निर्माण से पूर्व एस0 लि0 का आर्थिक चिट्ठा

दायित्व	रकम (रू0)	सम्पत्तियां	रकम (रू0)
चुकता पूंजी	2,00,000	स्थायी सम्पत्तियां	1,80,000
दायित्व	40,000	चल सम्पत्तियां	20,000
		लाभ हानि खाता	40,000
		(शेष बची राशि)	
	2,40,000		**2,40,000**

एस0लिमिटेड की पुस्तकों में जर्नल लेखे

1.	वसूली खाता ऋणी	2,00,000	
	स्थायी सम्पत्ति खाता		1,80,0000
	चालू सम्पत्ति खाता		20,000
	(सम्पत्तियों को वसूली खाते में हस्तान्तरित किया)		
2.	नवनिर्मित कम्पनी ऋणी	1,44,000	
	वसूली खाता		1,44,000

	(विक्रय मूल्य का देय होना)		
3.	नवनिर्मित कं0 के नये अंश खाता ऋणी रोकड़ खाता ऋणी नवनिर्मित कं0 का खाता (नवनिर्मित कं0 को विक्रय मूल्य हस्तान्तरण)	1,00,000 44,000	 1,44,000
4.	दायित्व खाता ऋणी रोकड़ खाता (दायित्वों को नकद भुगतान)	40,000	 40,000
5.	वसूली खाता ऋणी रोकड़ खाता (समापन व्ययों का भुगतान)	4,000	 4,000
6.	अंशपूंजी खाता ऋणी अंशधारियों का खाता (अंशधारियों को अंशपूंजी हस्तान्तरण)	2,00,000	 2,00,000
7.	अंशधारियों का खाता लाभ हानि खाता वसूली खाता (वसूली हानि एवं व्यापारिक हानि का अंशधारियों को हस्तान्तरण)	1,00,000	 40,000 60,000
8.	अंशधारियों का खाता नवनिर्मित कम्पनी के अंश खाता (कम्पनी के अंशधारियों को नवनिर्मित कं0 के अंशों का हस्तान्तरण)	1,00,000	 1,00,000

<u>विक्रय मूल्य की गणना –</u>

12500 अंश प्रत्येक 8 रू0	= 1,00,000
दायित्वों का नकद भुगतान	= 40,000
समापन व्यय	= 4,000
कुल योग	**= 1,44,000**

<u>व्यवहारिक प्रश्न सं0 2</u>

हर्ष लिमिटेड वित्तीय कठिनाईयों के दौर से गुजर रही है। मंदी, साख में गिरावट आदि के कारण उसे निरन्तर हानि हो रही है। उसका 31 मार्च 2017 का चिट्ठा निम्न प्रकार है –

विवरण	रकम (रू0)
अंशपूंजी एवं दायित्व	
(i) अंशधारी कोष –	
(अ) अंशपूंजी (40000 अंश प्रत्येक 10 रू0)	4,00,000
(ब) संचित कोष – लाभ हानि खाता (हानि)	(80,000)
व्यापारिक लेनदार	1,20,000
	4,40,000

सम्पत्तियां –	
(i) स्थायी सम्पत्तियां	
(अ) दृश्य सम्पत्तियां – भूमि एवं भवन	1,60,000
(ब) अदृश्य सम्पत्तियां – ख्याति	1,00,000
(ii) चल सम्पत्तियां	
(अ) रहतियां	1,20,000
(ब) देनदार	58,000
(स) रोकड़/बैंक	2,000
	4,40,000

अंशधारियों, लेनदारों एवं अन्य पक्षकारों को सहमति से बाह्य पुनर्निर्माण का निश्चय किया गया तथा निम्न प्रस्ताव स्वीकार किये गये –

1. हर्ष लिमिटेड का समापन किया जाय तथा एक नयी कम्पनी हिमानी लिमिटेड की स्थापना 10 रू0 वाले 50,000 अंशों के साथ की जाय।
2. हर्ष लि0 के व्यवसाय को हिमानी लि0 ने क्रय किया। 2,00,000 रू0 के क्रय मूल्य का भुगतान 10 रू0 वाले 40,000 अंश, 5 रू0 दत्त के निर्गमन द्वारा किया गया।
3. अंशों पर शेष 5 रू0 का भुगतान अंशधारी नकद करेंगे।
4. समापन व्यय 2000 रू0 तथा निर्माण व्यय 5000 रू0 हिमानी लि0 द्वारा चुकाये गये। दोनों कम्पनियों की पुस्ताकें में जर्नल लेखे कीजिए तथा हिमानी लि0 का चिट्ठा बनाइये।

हल/समाधान –

हर्ष लि0 की पुस्तकों में जर्नल लेखे

वसूली खाता	ऋणी	4,40,000	
ख्याति खाता			1,00,000
भूमि एवं भवन खाता			1,60,000
रहतियां खाता			1,20,000
देनदार खाता			58,000
बैंक रोकड़ खाता			2,000
(सम्पत्तियों का वसूली खातो में स्तान्तरण)			
लेनदार खाता	ऋणी	1,20,000	
वसूली खाता			1,20,000
(लेनदारों का वसूली खाते में हस्तान्तरण)			
हिमानी लि0	ऋणी	2,00,000	
वसूली खाता			2,00,000
(विक्रय मूल्य का दत्त होना)			
हिमानी लि0 में अंश खाता	ऋणी	2,00,000	
हिमानी लि0			2,00,000
(अंशों में नयी कं0 द्वारा विक्रय मूल्य की प्राप्ति)			
अंशपूंजी खाता	ऋणी	4,00,000	
अंशधारी खाता			4,00,000
(अंशधारियों को अंशपूंजी का हस्तान्तरण)			

अंशधारी खाता ऋणी		2,00,000	
लाभ–हानि खाता	हानि		80,000
वसूली खाता			1,20,000
(हानि का अंशधारियों को हस्तान्तरण)			
अंशधारी खाता	ऋणी	2,00,000	
हिमानी लि0 में अंश			2,00,000
(आंशिक दत्त अंशों का अंशधारियों को हस्तान्तरण)			

हिमानी लि0 की पुस्तकों में जर्नल लेखे

व्यवसाय क्रय खाता	ऋणी	2,00,000	
हर्ष लि0 के निस्तारक का खाता			2,00,000
(क्रय मूल्य का अदेय होना)			
भूमि व भवन खाता	ऋणी	1,60,000	
रहतियां खाता	ऋणी	1,20,000	
देनदार खाता	ऋणी	58,000	
रोकड़ खाता	ऋणी	2,000	
लेनदार खाता			1,20,000
व्यवसाय क्रय खाता			2,00,000
पूंजी संचय खाता			20,000
(व्यवसाय का क्रय एवं शेष राशि का पूंजी संचय में हस्तान्तरण)			
हर्ष लि0 के निस्तारक का खाता	ऋणी	2,00,000	
अंश पूंजी खाता			2,00,000
(क्रय मूल्य का आंशिक दत्त अंशों में भुगतान)			
बैंक/रोकड़ खाता	ऋणी	2,00,000	
अंश पूंजी खाता			2,00,000
(आवंटन पर अंशों से शेष प्राप्ति)			
ख्याति खाता	ऋणी	2,000	
बैंक खाता			2,000
(समापन व्ययों का ख्याति से भुगतान)			
प्रारम्भिक व्यय खाता	ऋणी	5,000	
बैंक खाता			5,000
(प्रारम्भिक व्ययों का भुगतान)			
पूंजी संचय खाता	ऋणी	7,000	
ख्याति खाता			2,000
प्रारम्भिक व्यय खाता			5,000
(सामान्य संचय से अपलेखन)			

नोट – यदि नयी कम्पनी द्वारा पुरानी कम्पनी के समापन व्यय चुकाये गये हों तो उन्हें नयी कम्पनी ख्याति खाते में डेबिट करनी है। यदि व्यवसाय क्रय पर पूंजी लाभ हो तो ख्याति को पूंजी लाभ से अपलिखित कर दिया जाता है। प्रारम्भिक व्यय को पूंजी संचय से अपलिखित किया जाना चाहिए।

16.8 वित्तीय पुनर्गठन के परिणाम

किसी भी संस्था के वित्तीय ढांचे में मूलभूत, आधारभूत एवं आमूलचूल परिवर्तन को ही वित्तीय पुनर्गठन कहा जाता है, संस्था के अवसंरचनात्मक विस्तार, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय नियमों, अधिनियमों में, परिवर्तन, निरन्तर हानि, बाजार में अनियमित या आकस्मिक उच्चावचन, उत्पाद के क्षेत्र की व्यापकता आदि अनेकों ऐसे कारण हो सकते हैं जिससे किसी संस्था को वित्तीय पुनर्गठन की आवश्यकता अनुभव होने लगे। वह आन्तरिक पुनर्निर्माण या बाह्य पुनर्निर्माण के माध्यम से अपने वित्तीय ढांचे में ऐच्छिक परिवर्तन कर सकती है। इस प्रकार किसी संस्थान द्वारा वित्तीय पुनर्गठन के निम्न परिणाम होते हैं :-

1. **पूंजी पुनर्गठन के परिणाम :-**

कम्पनी वित्तीय पुनर्गठन के माध्यम से अपनी पूंजी संरचना में ऐच्छिक परिवर्तन करती है। यह परिवर्तन विद्यमान अंशधारकों के अंश मूल्य में कटौती उनका स्वरूप परिवर्तन, उनको रद्द करना आदि क्रियाओं द्वारा किया जाता है, इसी प्रकार ऋणपत्रधारियों आदि के भी मूल्य, स्वरूप में परिवर्तन संभव है। आवश्यक हो तो नवीन निर्गमन भी किये जा सकते हैं।

2. **ख्याति का निर्माण :-**

आन्तरिक एवं बाह्य पुनर्निमाण दोनों ही विधियों में ख्याति की दशा में सुधार होता है तथा संस्था के पास अपनी ख्याति या साख को बाजार में नवीन दशाओं के आधार पर पुनर्स्थापित करने का अवसर होता है।

3. **चिट्ठे में अनावश्यक मदों को अपलिखित करना :-**

अदृश्य सम्पत्ति एवं कृत्रिम सम्पत्ति जिनके कारण संस्था की वित्तीय स्थिति के पुनर्गठन की आवश्यकता हुई, उन्हें पुनर्गठन की क्रिया में या तो अपलिखित किया जा सकता है अथवा नयी कम्पनी के निर्माण की दशा में छोड़ दिया जाता है जिससे आर्थिक चिट्ठे में संस्था की वित्तीय स्थिति सुदृढ़ हो जाती है।

16.9 सारांश

इस इकाई में सर्वप्रथम किसी भी निगमीय संरचना के वित्तीय ढांचे के विषय में बताया गया है। वित्त के बिना किसी भी संस्थान या कम्पनी की कोई भी क्रिया सफल संचालित नहीं हो सकती है। अतः वित्त एकत्रण के लिए पूर्वाधिकार अंश, समता अंश, ऋणपत्र, बांड, ऋण आदि संसाधनों का प्रयोग किया जा सकता है।

किसी भी संस्था या कम्पनी का पुनर्गठन एकीकरण, विलयन, अधिग्रहण आदि के माध्यम से सम्भव है जबकि वित्त अवसंरचना में मूलभूत परिवर्तन के लिए आन्तरिक पुनर्निर्माण या बाह्य पुनर्निर्माण सर्वमान्य विधि है। कोई भी कम्पनी अपने वित्तीय दोषों को दूर करने के लिए अथवा बाजार में गिरती हुई साख या ख्याति में सुधार के उद्देश्य से वित्तीय पुनर्गठन करती है। आन्तरिक पुनर्निर्माण में कम्पनी का अस्तित्व बना रहता है परन्तु आन्तरिक वित्तीय ढांचे में आवश्यक परिवर्तन किये जाते हैं जबकि बाह्य पुनर्निर्माण में विद्यमान कम्पनी को समाप्त करके एक नवीन कम्पनी जो इसी उद्देश्य के लिए स्थापित की जाती है, को

विक्रय कर दिया जाता है। प्रत्येक स्थिति में सभी सम्बन्धित पक्षकारों की सहमति प्राप्त करना तथा कम्पनी अधिनियम, केन्द्र सरकार, राज्य सरकार, रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, सेबी आदि जारी दिशा निर्देशों का अनुपालन भी सुनिश्चित करना होता है।

16.10 शब्दावली

पूर्वाधिकार अंश – इन्हें समता अंशों से पूर्व निश्चित प्रतिशत से लाभांश प्राप्ति का अधिकार होता है।

आकलन – गणना करना, अनुमान लगाना

कार्यशील पूंजी – व्यवसाय में दैनिक प्रयोग की राशि

सूत्र रूप में = कुल चल सम्पत्ति – कुल चल दायित्व

रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया – भारत का केन्द्रीय बैंक – प्रमुख कार्य = नोट निर्गमन, मौद्रिक एवं साख नीति नियंत्रण

साख या ख्याति – किसी की उधार प्राप्त करने की क्षमता।

अदृश्य या अमूर्त सम्पत्ति – वह सम्पत्ति जिनका भौतिक आकार नहीं होता और दिखायी नहीं देती। जैसे ख्याति, पेटेंट आदि।

कृत्रिम सम्पत्ति – सम्पत्ति पक्ष में प्रदर्शित वह मदें जो वास्तव में सम्पत्ति नहीं है, इनका क्रय–विक्रय भी संभव नहीं है। जैसे – प्रारम्भिक/स्थगित व्यय, अंशों एवं ऋणपत्रों के निर्गमन पर छूट।

ऋण पत्र – ऋण प्राप्त करने के लिए जारी किये जाने वाले वित्तीय प्रपत्र। इन पर निर्धारित दर से ब्याज देय होता है।

अधिमूल्य – बढ़ा हुआ या अधिक मूल्य।

अधिकृत पूंजी – कम्पनी के जीवनकाल में निर्गत की जाने वाली कुल पूंजी। पार्षद सीमानियम के पूंजी वाक्य में परिवर्तन के बिना इस सीमा से अधिक पूंजी निर्गमित नहीं की जा सकती।

अशोध्य ऋण – ऐसे ऋण जिनकी वापसी की आशा या संभावना समाप्त हो जाती है।

फ्रीहोल्ड – जिन पर कोई प्रभार न हो अर्थात कहीं पर भी गिरवी न हों।

16.11 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

11. जब एक या अधिक समापन हों और नवीन संस्था का निर्माण न हो तो यह ....कहलाता है।
12. जब एक कम्पनी स्वयं को समाप्त कर दूसरी नवीन कम्पनी का निर्माण करे तो इसे ....कहते हैं।
13. लेखांकन प्रमाप .... के अनुसार एकीकरण में संविलियन भी सम्मिलित है।
14. पुनर्गठन की योजना में अंशधारियों द्वारा त्याग की राशि........................... खाते में हस्तांतरित की जाती है।
15. पूंजी में कमी लाने के लिए.........................की अनुमति आवश्यक की अनुमति आवश्यक होती है।

16. जब दो या अधिक कम्पनियां मिलकर एक नयी कम्पनी बनाकर कार्य करती हैं तो इसे .... कहा जाता है।

निम्नलिखित कथनो में से कौन सा कथन सत्य और कौन सा असत्य है –

17. आन्तरिक पुनर्निर्माण में बहुधा पूंजी में कमी आती है।
18. आन्तरिक पुनर्निर्माण में एक कम्पनी का समापन और एक कम्पनी का निर्माण होता है।
19. पूंजी कमी खाते में उपलब्ध राशि का प्रयोग हानियों, कृत्रिम सम्पतितयों, सम्पत्तियों के अपलेखन के लिए होता है।
20. लेखांकन की दृष्टि से आन्तरिक पुनर्निर्माण एवं बाह्य पुनर्निर्माण में काई अन्तर नहीं है।
21. बाह्य पुनर्निर्माण का अर्थ पूंजी में कमी है।
22. विलय दो प्रकार का होता है – एकीकरण एवं संविलियन।
23. एकीकरण का दूसरा नाम आन्तरिक पुनर्निर्माण है।
24. आन्तरिक पुनर्निर्माण में कृत्रिम सम्पत्ति एवं हानियों को अपलिखित नहीं किया जाता।

बहुविकल्पीय प्रश्न–

6. जब एक नयी कम्पनी की रचना के लिए दो या अधिक कम्पनियों का समापन किया जाता है तो इसे कहा जाता है –
   (अ) एकीकरण (ब) अवशोषण (स) पुनर्निर्माण (द) इनमें से कोई नहीं
7. संविलयन का अर्थ है –
   (अ) एक कम्पनी द्वारा दूसरी कम्पनी का क्रय
   (ब) विद्यमान कम्पनी द्वारा वित्तीय सुधार
   (स) दो कम्पनी समाप्त होकर नई कम्पनी बनाना
   (द) एक विद्यमान कम्पनी का अन्य कम्पनियों का अपने में मिलाना।
8. आन्तरिक पुनर्निर्माण में अंशधारियों द्वारा त्याग या समर्पित राशि कौन से खाते में हस्तान्तरित होती है ?
   (अ) पूंजीकरण खाते (ब) संचय खाते में
   (स) पूंजी में कमी का खाता (द) इनमें से कोई नहीं
9. पूंजी कमी खाते का प्रयोग होता है –
   (अ) सम्पत्तियों के अपलेखन में (ब) पिछली हानियों के अपलेखन में
   (स) अ तथा ब दोनों में (द) अ या ब किसी एक में
10. आन्तरिक पुनर्निर्माण के अन्तर्गत –
   (अ) एक कम्पनी का समापन होता है
   (ब) एक नवीन कम्पनी का निर्माण होता है
   (स) विद्यमान कम्पनी आर्थिक स्थिति सुधार के लिए वित्तीय सुधार करती है
   (द) इनमें से कोई नहीं

16.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

रिक्त स्थानों के उत्तर –

11. संविलयन
12. बाह्य पुनर्निर्माण

13. 14
14. पूंजी कमी खाता
15. समर्थ न्यायालय
16. एकीकरण

<u>सत्य/असत्य के उत्तर–</u>

3. सत्य 2. असत्य 3.सत्य 4.असत्य 5.असत्य 6.सत्य 7. असत्य 8. असत्य

<u>बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर–</u>

1. (अ) 2. (द) 3. (स) 4. (स) 5. (स)

16.13 स्वपरख प्रश्न

6. निगमीय वित्तीय संरचना से आप क्या समझते हैं? विस्तार से बताइये।
7. वित्तीय पुनर्गठन से क्या आशय है? इसकी आवश्यकता एवं उद्देश्यों पर प्रकाश डालिये।
8. वित्तीय पुनर्गठन की प्रक्रिया विस्तार से समझाइये।
9. आन्तरिक वित्तीय पुनर्निर्माण से क्या आशय है? इसके कारण एवं प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
10. वित्तीय पुनर्गठन से क्या आशय है? पुनर्निर्माण के प्रकार बताते हुए बाह्य पुनर्निर्माण की प्रक्रिया लिखिये।
11. पुनर्निर्माण किन दशाओं में आवश्यक हो जाता है? आन्तरिक एवं बाह्य पुनर्निर्माण में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

16.14 सन्दर्भ पुस्तकें

1. "Financial Management"- M.Y. Khan & P.K. Jain, Tata Mc Graw Hill.
2. "वित्तीय बाजारों की कार्यप्रणाली"– प्रो0 वी0 पी0 अग्रवाल– साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
3. "निगमीय लेखांकन"– सी0 एम0 जैन एवं ए0 के0 अग्रवाल– g Master g Educorp, मेरठ।
4. "प्रबन्ध हेतु वित्तीय विश्लेषण"– डॉ0 ए0 के गर्ग– स्वाती प्रकाशन, बुलन्दशहर।
5. "निगमीय लेखाविधि"– डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 राजकुमार– नवनीत प्रकाशन, नजीबाबाद।
6. https://efinancemenagement.com
7. www.academia.edu
8. www.ICSI.edu > portals
9. "Corporate Restcucturing"- Ranjan Das & Udayan Kumar Basu – Tata Mc Graw – Hill education, New Delhi.
10. www.izito.co.in
11. www.risk-academy.ru
12. "Derivative Markets in India : Trading, Pricing and Risk-Management" – Alok Dixit, S.S. Yadav & P.K. Jain – Tata Mc Graw-Hill, New Delhi.

इकाई – 17 विलय एवं अधिग्रहण

इकाई की रूपरेखा

17.1 प्रस्तावना
17.2 निगमीय पुनर्संरचना – आशय एवं आवश्यकता
17.3 विलय अथवा संविलयन
17.4 विलय के प्रकार
17.5 क्रय प्रतिफल का निर्धारण
17.6 संविलयन के सम्बन्ध में लेखांकन व्यवहार
17.7 अधिग्रहण
17.8 सारांश
17.9 शब्दावली
17.10 बोध प्रश्न
17.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
17.12 स्वपरख प्रश्न
17.13 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- विलय से आशय, प्रकार, क्रय प्रतिफल के निर्धारण को समझ सकें।
- संविलयन, अधिग्रहण एवं धारक कम्पनी, सरकारी आदेश, छद्म अधिग्रहण पर रोकथाम को स्पष्ट कर सकें।

17.1 प्रस्तावना

किसी भी व्यावसायिक कम्पनी या संस्थान के गठन का मूल उद्देश्य लाभ कमाना या लाभार्जन होता है। कम्पनी के जीवनकाल में मंदी, प्रतियोगिता, विस्तार आदि अनेकानेक ऐसे कारण हो सकते हैं जिनके कारण कम्पनी अपना पुनर्संगठन या पुनर्संरचना करने की आवश्यकता अनुभव करने लगती है। इसके अतिरिक्त वित्तीय अवसंरचना में परिवर्तन, संचालनीय प्रवृत्तियों में गम्भीर परिवर्तन, स्वामित्व संरचना में परिवर्तन आदि कारणों से कम्पनी या संस्थान को पुनर्संरचना की आवश्यकता हो सकती है। कई बार संस्थान की नीतियो में आमूल–चूल परिवर्तन करने के उद्देश्य से अथवा लाभ की संभावनाओं में विस्तार की दृष्टि से भी निगमीय पुनर्संरचना आवश्यक हो जाती है।

17.2 निगमीय पुनर्संरचना – आशय एवं आवश्यकता

किसी भी कम्पनी की पुनर्संरचना के लिए एकीकरण, संविलयन, विलय, अधिग्रहण, आन्तरिक पुनर्गठन एवं बाह्य पुनर्गठन आदि अनेकों पद्धतियां भारतीय संदर्भ में प्रचलित हैं। अनेकों बार वैद्याानिक परिवर्तनों या कर ढांचे में परिवर्तन के उद्देश्य से भी पुनर्गठन या पुनर्संरचना अनिवार्य हो जाती है। पुनर्संरचना की कौन सी विधि, नीति या स्वरूप को चुना जाय यह संस्थान या कम्पनी की संरचनात्मक आवश्यकताओं एवं परिस्थिति पर निर्भर करता है। संस्थान अधिकतम लाभ और कम से कम वैधानिकताओं एवं औपचारिकताओं वाले स्वरूप का चयन सर्वश्रेष्ठ

मानते हैं, साथ ही उद्देश्य प्राप्ति भी हो सके यह भी ध्यान में रखना आवश्यक होता है। इस प्रकार के किसी भी स्वरूप को अपनाते समय पुनर्संरचना से प्रभावित होने वाले सभी पक्षकारों (अंशधारी, ऋणपत्रधारी, लेनदार, देनदार आदि) की पारस्परिक सहमति भी प्राप्त की जानी अत्यन्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त पुनर्गठन या पुनर्संरचना में समस्त वैधानिकताओं का अनुपालन करना राज्य सरकार, केन्द्र सरकार या सक्षम न्यायालय की अनुमति यदि आवश्यक हो प्राप्त करना भी एक महत्वपूर्ण क्रिया है।

17.3 विलय अथवा संविलयन

प्राचीन प्रचलित अवधारणा में जब दो या दो से अधिक कम्पनियां मिलकर एक नवीन कम्पनी का निर्माण करती थीं तब उसे एकीकरण कहा जाता था तथा जब एक विद्यमान कम्पनी उसी प्रकार का व्यापार करने वाली कम्पनी दूसरी कम्पनी को आपसी सहमति एवं समझौते के अन्तर्गत निर्धारित प्रतिफल के बदले में क्रय कर लेती थी तो इसे संविलियन दोनों का आशय अलग अलग है और दोनों ही पुनर्संरचना की पृथक क्रियायें हैं।

The Institute of Chartered Accountants of India ने अक्टूबर 1994 में एकीकरण करने वाली कम्पनियों के लिये लेखा प्रमाप–14 (AS-14) जारी किया जो 1 अप्रैल 1995 से प्रभावी हो गया है। ले0प्र0 14 के अनुसार न केवल एकीकरण (एवं संविलियन) की परम्परागत अवधारणाओं को संशोधित किया गया है अपितु एकीकरण करने वाली कम्पनियों द्वारा अपनायी जाने वाली लेखांकन प्रक्रिया में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन स्वीकार किये गये हैं। यह लेखांकन प्रमाप–14 आदेशात्मक प्रवृत्ति का है।

ले0प्र0–14 द्वारा एकीकरण की अवधारणा को ही अत्यन्त व्यापक स्वरूप प्रदान कर दिया गया है। इसके अनुसार एकीकरण किसी एक विद्यमान कम्पनी का दूसरी विद्यमान कम्पनी में विलय करके हो सकता है अथवा दो या दो से अधिक कम्पनियों के विलय द्वारा एक नवीन कम्पनी का निर्माण करके हो सकता है। स्पष्ट है कि ले0प्र0–14 की इस नवीन एवं व्यापक परिभाषा में संविलयन अथवा विलय को भी सम्मिलित कर लिया गया है। इसके अनुसार विक्रेता कम्पनी को अब नवीन स्वरूप में हस्तान्तरक कम्पनी तथा क्रेता कम्पनी को हस्तान्तरी कम्पनी कहा जाता है।

लेखांकन प्रमाप–14 के अनुसार विलय एवं संविलियन की अवधारणा को एकीकरण में ही समावेशित कर दिया गया है। इस प्रमाप के अनुसार एकीकरण में विलय की निम्न दो स्थिति हो सकती हैं –

(i) एक कम्पनी का दूसरी कम्पनी में विलय होना।

(ii) दो या अधिक कम्पनियों के विलय (समापन) द्वारा एक नवीन कम्पनी का गठन करना।

प्रचीन प्रचलित अवधारणा के अनुसार उपरोक्त प्रथम स्थिति को अवशोषण, विलयन या संविलयन कहा जाता था तथा द्वितीय स्थिति एकीकरण है। परन्तु इस ले0प्र0–14 के प्रभावी होने के उपरान्त लेखांकन के उद्देश्य से विलयन या संविलियन की अवधारणा भी एकीकरण में ही सम्मिलित कर ली गयी है।

17.4 विलय के प्रकार

विलय के प्रकार का वर्णन निम्न है:

1. **क्षैतिज या समस्तरीय विलय :–**

जब एक प्रकृति का व्यवसाय करने वाली दो या अधिक कम्पनी आपस में विलित हो जाती है और एक अन्य नवीन संस्था का निर्माण करती हैं तो इसे क्षैतिज या समस्तरीय विलय कहा जाता है। सामान्यतः प्रतियोगिता में कमी करना, लागत में कमी करना ,उत्पादन गुणवत्ता में सुधार, शोध एवं विकास, विपणन एवं प्रबन्धकीय स्तर सुधार आदि के उद्देश्य से क्षैतिज या समस्तरीय विलयन की क्रिया को निष्पादित किया जाता है।

उद्देश्य एवं लाभ :–

प्रतिस्पर्धा की समाप्ति :–

जब एक ही प्रकार का व्यवसाय करने वाली दो या अधिक कम्पनियों में बाजार में अत्यधिक प्रतिस्पर्धा हो जाती है तथा प्रतिस्पर्धा के कारण कम्पनियों को निरन्तर मूल्यों में कमी आदि के कारण हानि की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति में उक्त विपरीत परिस्थितियों को सम बनाने के लिए क्षैतिज विलय उपयोगी सिद्ध होता है।

प्रशासनिक व्ययों में कमी :–

विभिन्न कम्पनियां अपनी व्यापक अवसंरचना के कारण पृथक–पृथक रूप से भारी प्रशासनिक व्यय करती हैं जिससे लाभ की मात्रा एवं अवसरों में कमी आती है। प्रशासनिक व्ययों में कटौती के उद्देश्य से भी क्षैतिज विलय श्रेष्ठ विकल्प है।

लागत में कमी :–

कम्पनियां उत्पादन, विपणन, विज्ञापन, प्रशासन, प्रबन्ध, स्टोर, भंडारण आदि पर पृथक– पृथक व्यय करती हैं, परन्तु विलय के पश्चात इन व्ययों में एक सीमा तक कटौती होने के कारण उत्पादन लागत में कमी तथा लाभ में वृद्धि होती है।

एकाधिकार की स्थापना :–

जब प्रतिस्पर्धी कम्पनियां आपस में विलय कर लेती हैं तो प्रतियोगिता समाप्त होने की दशा में अथवा अल्प या न्यून प्रतियोगिता की दशा में एकाधिकार की सी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिससे लाभ की सम्भावनाओं में वृद्धि होती है।

संसाधनों का विस्तार :–

विलय के पश्चात कम्पनियों के सभी संसाधन भी संयुक्त हो जाते हैं जिसके परिणाम स्वरूप इस संसाधन विस्तार से वृहद् स्तर पर लाभ अर्जित किए जा सकते हैं।

2. **क्षैतिज विलय की सीमायें अथवा दोष :–**

एकाधिकार का उत्पन्न होना –

जब एक सा व्यवसाय करने वाली दो या अनेक कम्पनी क्षैतिज विलियन करती हैं तो उन्हें अति अल्प या न्यून प्रतियोगिता या प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। ऐसे में प्रबन्ध निरंकुश एकाधिकारी प्रवृत्ति के आधीन उपभोक्ता से मनमानी कीमत वसूल कर सकता है।

प्रबन्ध व्यवस्था सम्बन्धी दोष –

विलय के कारण व्यवसाय का विस्तार हो जाता है ऐसी स्थिति में प्रशासनिक कठिनाइयां, श्रम असंतोष, नियन्त्रण का अभाव, कार्यक्षमता का प्रभावित होना आदि अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त विलय करने वाली कम्पनियों के उच्च प्रबन्ध में पारस्परिक सामन्जस्य का अभाव भी अनेकों बार व्यवसाय को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

अति पूंजीकरण की समस्या –

विलय के पश्चात अनेकों बार संस्था में अतिपूंजीकरण की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिससे व्यापार की लाभदायकता पर विपरीत एवं नकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं।

लघु इकाईयों की समाप्ति –

इस प्रकार के विलयों से विशाल अवसंरचना का निर्माण हो जाता है ऐसे में छोटे, लघु एवं कुटीर उद्योगों का प्रतिस्पर्धा में उनके समक्ष टिका रहना कठिन हो जाता है और अन्ततः वह समाप्त हो जाते हैं किसी भी देश के समग्र विकास की दृष्टि से यह उचित नहीं है।

अन्य दोष –

कम्पनी का अस्तित्व समाप्त होने के कारण उसकी ख्याति का नष्ट हो जाना, अलग– अलग प्रवृत्तियों के कारण पारस्परिक सहयोग का अभाव, आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण आदि का सामना भी विलयन की स्थिति में संस्था को करना पड़ता है।

17.5 क्रय प्रतिफल का निर्धारण

लेखांकन प्रमाप–14 के अनुसार क्रय प्रतिफल से आशय, ''हस्तान्तरक कम्पनी के अंशधारियों को हस्तान्तरी कम्पनी द्वारा निर्गमित अंशों एवं अन्य प्रतिभूतियों तथा रोकड़ या अन्य सम्पत्तियों के रूप में किये गये भुगतान के योग से है।'' इस परिभाषा के माध्यम से यह स्पष्ट हो जाता है कि क्रय प्रतिफल या क्रय मूल्य में हस्तान्तरक कम्पनी के अंशधारियों को निर्गमित अंशों के मूल्यों एवं उनको किये गये अन्य भुगतानों को सम्मिलित किया जाता है। परन्तु यदि हस्तान्तरी कम्पनी हस्तान्तरक कम्पनी के किसी दायत्वि का भुगतान प्रत्यक्ष रूप से करती है तो इसे क्रय प्रतिफल में समावेशित नहीं किया जायेगा।

1. एकमुश्त भुगतान विधि –

यदि विलय की दशा में हस्तान्तरी कम्पनी द्वारा प्रतिफल स्वरूप हस्तान्तरक कम्पनी के अंशधारियों को एकमुश्त राशि दी जानी या भुगतान की जानी हो तो यह एकमुश्त राशि ही क्रय मूल्य या क्रय प्रतिफल मानी जाती है और क्रय प्रतिफल की पृथक से कोई गणना नहीं की जाती है।

2. शुद्ध सम्पत्ति विधि –

इस विधि के अन्तर्गत क्रय प्रतिफल की गणना शुद्ध सम्पत्ति के आधार पर अर्थात सम्पत्तियों के मूल्यों के कुल योग में से बाह्य दायित्वों के योग की राशि घटाकर की जाती है। सूत्र रूप में –

क्रय मूल्य / क्रय प्रतिफल = कुल वास्तविक सम्पत्ति – कुल बाह्य दायित्व

शुद्ध सम्पत्ति विधि के अन्तर्गत क्रय प्रतिफल का विलय के समय निर्धारण करते समय हस्तान्तरी कम्पनी को निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए–

1. क्रय प्रतिफल की गणना में उन्हीं सम्पत्तियों एवं दायित्वों को सम्मिलित किया जाना चाहिए जिनको हस्तान्तरी कम्पनी ने विलय की निर्धारित शर्तों के अनुसार लिया या स्वीकार किया हो।
2. सम्पत्तियों एवं दायित्वों को पारस्परिक सहमति के आधार पर वर्तमान या पुनर्मूल्यांकित मूल्य पर दिखाया जा सकता है परन्तु कोई व्यवस्था न होने पर सभी सम्पत्ति एवं दायित्वों को पुस्तकीय मूल्य पर ही प्रदर्शित किया जाना चाहिए।
3. यदि अन्य कोई विपरीत व्यवस्था विलय के समय निर्धारित न हुई हो तो वास्तविक सम्पत्तियों के अन्तर्गत रोकड़ को भी सम्मिलित किया जाता है। इसी प्रकार विपरीत सहमति न होने की दशा में अदृश्य या अमूर्त सम्पत्तियों को भी क्रय प्रतिफल की दृष्टि से सम्मिलित किया जाता है परन्तु कृत्रिम सम्पत्तियों के वास्तविक सम्पत्तियां न होने के कारण छोड़ दिया जाता है और क्रय प्रतिफल में वास्तविक कुल सम्पत्तियों की गणना में सम्मिलित नहीं किया जाता है।

   <u>अदृश्य एवं अमूर्त सम्पत्तियां –</u>

   ख्याति, ट्रेडमार्क, पेटेंट आदि जिनका भौतिक अस्तित्व नहीं होता परन्तु जिनका क्रय– विक्रय संभव है। इनको मुद्रा में मूल्यांकित किया जाना संभव होता है।

   <u>कृत्रिम सम्पत्तियां –</u>

   प्रारम्भिक व्यय, अंशों एवं ऋण पत्रों पर छूट की राशि, स्थगित व्यय, अभिगोपन व्यय अथवा अभिगोपन कमीशन, लाभ–हानि खाते को हानि की स्थिति में सम्पत्ति पक्ष में प्रदर्शन आदि। वास्तव में यह वास्तविक सम्पत्ति है ही नहीं और इनका न तो कोई मौद्रिक मूल्यांकन संभव है और न ही क्रय विक्रय। यह संस्था की हानियां या एकमुश्त भारी व्यय है जिनको क्रमिक अपलेखन की दृष्टि से सम्पत्ति पक्ष में आर्थिक संतुलन बनाये रखने के उद्देश्य से लिख दिया जाता है।
4. बाह्य दायित्व से आशय उन सभी दायित्वों से है जो अंशधारियों एवं कम्पनी के अतिरिक्त तृतीय पक्षकार के प्रति है। इनके अन्तर्गत लेनदार, देय विपत्र, ऋण, बैंक अधिविकर्ष, ऋण पत्र, बांड आदि सम्मिलित किये जाते हैं।
5. व्यापारिक दायित्वों की श्रेणी में व्यापारिक लेनदारों एवं देय विपत्रों को सम्मिलित किया जाता है। ऋण पत्र, बैंक अधिविकर्ष, अदत्त व्यय, कर–प्रावधान आदि दायित्व व्यापारिक दायित्वों में शामिल नहीं किए जाते हैं।
6. दायित्वों की श्रेणी में एकत्रित लाभ या संचय (जैसे – सामान्य संचय, संचय कोष, ह्रास कोष, सिकिंग फंड, लाभांश, समानीकरण कोष, पूंजी संचय, प्रतिभूति प्रीमियम आदि) को सम्मिलित नहीं कया जाता। इसके पीछे मूल अवधारणा यह है कि इनका वितरण अंशधारियों को किया जाना होता है अतः इन्हें बाह्य दायित्वों में सम्मिलित नहीं करते हैं। परन्तु कुछ

कोष तृतीय पक्ष को भुगतान की प्रवृत्ति रखते हैं उन्हें क्रय प्रतिफल की गणना में विलय के समय बाह्य दायित्वों में सम्मिलित किया जाता है।

उदाहरणार्थ – कर्मचारी भविष्य निधि, कर्मचारी बचत बैंक खाता, कर्मचारी लाभ सहभागिता कोष, करों का प्रावधान, अयाचित लाभांश, पट्टा शोधन कोष आदि

नोट – यदि विलय की शर्तों के अनुसार हस्तान्तरी कम्पनी हस्तान्तरक कम्पनी के सम्पूर्ण व्यवसाय को लेती है तो इसका स्पष्ट अर्थ है कि हस्तान्तरी कम्पनी ने हस्तान्तरक कम्पनी की सभी स्वीकार्य या वास्तविक सम्पत्तियों एवं बाह्य दायित्वों को ले लिया है क्योंकि कुल व्यवसाय की अवधारणा में सम्पत्ति एवं दायित्व दोनों ही सम्मिलित किये जाते हैं।

व्यवहारिक प्रश्न सं0 1

अणिमा लि0 एवं संचित लि0 ने एकीकरण द्वारा पारस्परिक विलय एवं नव कम्पनी अणिमा एवं संचित लि0 के गणन का अनुबन्ध किया। दोनों कम्पनी के अन्तिम आर्थिक चिट्ठे निम्न वित्तीय स्थिति प्रदर्शित करते हैं –

विवरण	वर्तमान वर्ष	
	अणिमा लि0	**संचित लि0**
अंशपूंजी एवं दायित्व		
1. अंशधारी कोष		
अंशपूंजी : अंश प्रत्येक 20 रू0	1,50,000	2,50,000
कोष एवं शेष		
कोष	25,000	20,000
लाभ हानि का शेष	10,000	8,000
2. स्थायी दायित्व		
12ः ऋण पत्र		1,00,000
3. चल दायित्व		
विविध लेनदार	30,000	42,000
योग	2,15,000	4,20,000
परिसम्पत्तियां –		
1. अचल सम्पत्ति		
भूमि एवं भवन	80,000	2,00,000
मशीनरी	50,000	70,000
विनियोग	40,000	80,000
2. चल सम्पत्ति		
रहतियां	30,000	40,000
विविध देनदार	10,000	15,000
हाथ में रोकड़	5,000	15,000
योग	2,15,000	4,20,000

उपरोक्त समंकों के आधार विलय की दृष्टि से क्रय मूल्य की गणना कीजिए।

हल/समाधान –

क्रय मूल्य की गणना

विवरण	अणिमा लि0	संचित लि0
सम्पत्तियां –		
भूमि एवं भवन	80,000	2,00,000
मशीनरी	50,000	70,000
विनियोग	40,000	80,000
रहतियां	30,000	40,000
विविध देनदार	10,000	15,000
हाथ में रोकड़	5,000	15,000
योग	2,15,000	4,20,000
दायित्व		
12 ऋणपत्र – 1,00,000		
विविध लेनदार 30,000 42,000	30,000	1,42,000
क्रय मूल्य/क्रय प्रतिफल	**1,85,000**	**2,78,000**

3. शुद्ध भुगतान विधि –

इस विधि के अन्तर्गत हस्तान्तरी कम्पनी द्वारा हस्तान्तरक कम्पनी के अंशधारियों को उनके दावे के भुगतान के रूप में दिये जाने वाले अंशों, ऋणपत्रों तथा रोकड़ के योग को क्रय प्रतिफल कहा जाता है। किन्तु यह भुगतान हस्तान्तरक कम्पनी के अंशधारियों को होना चाहिए। यदि हस्तान्तरी कम्पनी हस्तान्तरक कम्पनी के ऋणपत्रधारियों या लेनदारों को भुगतान करती है तो यह भुगतान क्रय प्रतिफल का भाग नहीं माना जायेगा। इसी प्रकार हस्तान्तरी कम्पनी यदि हस्तान्तरक कम्पनी के समापन व्ययों का भुगतान करती है तो इसे भी क्रय मूल्य में सम्मिलित नहीं किया जाता। इस विधि के अन्तर्गत क्रय प्रतिफल की गणना करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जाता है–

1. हस्तान्तरी कम्पनी द्वारा ली जाने वाली सम्पत्तियां एवं दायित्वों का क्रय मूल्य की गणना से कोई सम्बन्ध नहीं होता। अतः इन पर कोई विचार नहीं किया जाता।
2. यदि हस्तान्तरी कम्पनी द्वारा ली गई शुद्ध सम्पत्तियों का मूल्य इसके द्वारा देय क्रय मूल्य से अधिक (या कम) होता है तो अन्तर को पूंजी संचय या ख्याति के रूप में दिखाया जाता है।
3. हस्तान्तरी कम्पनी द्वारा क्रय प्रतिफल के रूप में निर्गमित अंशों को सदैव उनके चुकता मूल्य पर मूल्यांकित किया जाता है, जब तक इन्हें बाजार मूल्य पर मूल्यांकित करने का स्पष्ट निर्देश न हो।
4. हस्तान्तरी कम्पनी कभी–कभी हस्तान्तरक कम्पनी को उसके अंशों के लिए एक निश्चित अनुपात में अपने अंशों को निर्गमित करती है। ऐसी दशा में यह सम्भव हो सकता है कि अंशों की संख्या पूर्णांक में न हो। जो अंश पूर्णांक में नहीं होते उनका मूल्य उनके बाजार मूल्य पर करके भुगतान नकदी में कर दिया जाता है।

व्यवहारिक प्रश्न सं0 2 –

1 अप्रैल 2014 से राज लि0 को राम लि0 ने निम्नलिखित शर्तों पर लिया –

1. राम लि0 दायित्वों को लेगी तथा सभी सम्पत्तियों को पुस्तक मूल्य पर खरीदेगी।

2. राम लि0, राज लि0 के 8ः ऋणपत्रों को 10ः प्रीमियम पर नये 10ः ऋणपत्रों के निर्गमन द्वारा समाप्त करेगी।

3. राम लि0 राज लि0 के अंशधारियों पर 6 प्रति अंश नकद चुकायेगी तथा राज लि0 में प्रत्येक 20 रू0 अंशपूंजी समापन के अंश पर 10 रू0 वाले 3 अंश सममूल्य पर देगी। क्रय प्रतिफल की गणिना कीजिए। राज लि0 की अंशपूजी रू0 20 वाले 15,000 पूर्णदत्त अंश तथा 8 ऋणपत्र 2,00,000 रू0 राज लि0 के 5,000 रू0 के समापन व्ययों का भुगतान राज लि0 द्वारा किया जाता है। क्रय मूल्य की गणना कीजिए।

हल/समाधान –

रोकड़ में 15,000 × 6

90,000

अंशों में 15,000 × 3 × 10

4,50,000

5,40,000

नोट – (i) राज लि0 के ऋणपत्रों को राम लि0 ने लिया है तथा राम लि0 ने उन ऋणपत्रों को अपने द्वारा निर्गमित 10ः ऋणपत्रों द्वारा (10ः प्रीमियम पर निर्गमित) समाप्त कर दिया है।

(ii) राम लि0 द्वारा राज लि0 के समापन व्ययों का भुगतान क्रय मूल्य में सम्मिलित नहीं किया जाता है।

व्यवहारिक प्रश्न सं0 3 –

31 मार्च 2017 को दो कम्पनियां हर्ष लि0 एवं हिमानी लि0 पारस्परिक विलय के पश्चात हर्ष हिमानी लि0 के नाम से नयी कम्पनी के गठन के लिए सहमत हुई। उनके आर्थिक चिट्ठे निम्न प्रकार थे –

	हर्ष लि0	हिमानी लि0		हर्ष लि0	हिमानी लि0
अंश पूंजी हर्ष – 80,000 अंश 1 रू0 प्रति हिमानी 25,000 अंश 1 रू0 प्रति कुल लेनदार संचय लाभ हानि खाता	80,000 3,000 7,500 2,500	 25,000 1,000 4,000 1,000	हस्तस्थ रोकड़ बैंक में रोकड़ देनदार रहतियां प्लान्ट एवं मशीनरी फ्री होल्ड भवन पेटेन्ट्स	100 3,400 22,500 15,000 12,000 30,000 10,000	50 450 6,000 7,000 4,500 10,000 3,000
	93,000	**31,000**		**93,000**	**31,000**

नवनिर्मित कम्पनी हर्ष हिमानी लि0 का आर्थिक चिट्ठा बनाइये। यह भी स्पष्ट कीजिए कि पुरानी कम्पनी के अंशधारियों को नवनिर्मित कम्पनी में कितने अंश आवंटित किये जायेंगे।

हल/समाधान –

31 मार्च, 2017 को हर्ष हिमानी लि0 का आर्थिक चिट्ठा

अंशपूंजी एवं दायित्व	

निर्गमित अंश पूंजी 1,20,000 अंश 1 रू0 प्रति	1,20,000
संचय	
विविध लेनदार (3,000 + 1,000)	4,000
	1,24,000
परिसम्पत्तियां –	
स्थायी –	
फ्रीहोल्ड भवन	40,000
पेटेन्ट	13,000
प्लान्ट एवं मशीनरी	16,500
चल –	
हस्तस्थ रोकड़	150
बैंक	3,850
विविध देनदार	28,500
रहतियां	22,000
	1,24,000

क्रय प्रतिफल की गणना

	हर्ष लि0	हिमानी लि0
कुल सम्पत्तियां	93,000	31,000
– कृत्रिम सम्पत्तियां	00	00
वास्तविक सम्पत्तियां	93,000	31,000
– बाह्य दायित्व		
लेनदार	3,000	1,000
शुद्ध सम्पत्ति मूल्य	90,000	30,000

हर्ष लिमिटेड के अंशधारी अपने एक रूपये वाले 80,000 अंशों के प्रतिफल में 1 रू0 वाले 90,000 अंश प्राप्त करेंगे अर्थात उन्हें 8 : 9 का अंश प्रतिफल प्राप्त होगा। हिमानी लिमिटेड के अंशधारी अपने 1 रू0 वाले 25,000 अंशों के प्रतिफल में 1 रू0 वाले 30,000 अंश प्राप्त करेंगे अर्थात उनको 5 : 6 का अंश प्रतिफल प्राप्त होगा।

4. अंशविनिमय विधि –

इस विधि के अन्तर्गत क्रय प्रतिफल का निर्धारण उस अनुपात के आधार पर होता है जिस अनुपात में हस्तान्तरी कम्पनी के अंशों का हस्तान्तरक कम्पनी के अंशों से विनिमय होता है। सामान्यतया इस विनिमय अनुपात का निर्धारण दोनों कम्पनियों के आन्तरिक मूल्य के आधार पर होता है। विनिमय अनुपात के आधार पर हस्तान्तरी कम्पनी द्वारा जितने अंश देने होते हैं उनका मूल्यांकन इन अंशों की दत्त लागत या चुकता मूल्य के आधार पर किया जाता है।

खण्डित अंश एवं बाजार मूल्य –

कभी–कभी हस्तान्तरी कम्पनी के अंशों को हस्तान्तरक कम्पनी के अंशधारियों में विभाजित करने पर अंशों की संख्या पूर्णांक में नहीं आती। ऐसी दशा में खण्डित अंशों को बाजार मूल्य पर मूल्यांकित किया जाता है और खण्डित अंशों के भाग का नकद भुगतान किया जाता है।

व्यवहारिक प्रश्न सं0 5 –

विवेक लिमिटेड अनुप्रिया लि0 (हस्तान्तरक कम्पनी) के प्रत्येक 3 अंशों के लिए 10 रू0 प्रति के 8 रू0 प्रदत्त एक अंश निर्ममन के लिए सहमत हुई। हस्तान्तरक कं0 अनुप्रिया लि0 में 50,000 अंश हैं। विवेक लि0 के अंश बाजार में 18 रू0 उद्धृत हैं। बाजार मूल्य का प्रयोग केवल खण्डित अंश के मूल्य ज्ञात करने के लिए किया जाता है। क्रय प्रतिफल की गणना कीजिए।

हल/समाधान –

क्रय प्रतिफल की गणना

अंशधारियों को अंश वितरण

रू0

50,000 × 1/3 = 16,666 अंश प्रत्येक 8 रू0 प्रति

1,33,328

खण्डित अंश का मूल्य

बाजार मूल्य 18 × 2/3 12

कुल क्रय प्रतिफल

1,33,340

17.6 संविलयन के सम्बन्ध में लेखांकन व्यवहार

लेखांकन प्रमाप–14 के अनुसार किये जाने वाले विलय की प्रकृति एवं क्रय की प्रकृति के एकीकरण या संविलयन के सम्बन्ध में हस्तान्तरी कम्पनी (क्रेता कम्पनी) एवं हस्तान्तरक कम्पनी (विक्रेता) कम्पनी की पुस्तकों में पृथक–पृथक लेखा व्यवहार किये जाते हैं जिनको निम्न प्रकार बताया जा सकता है –

1. हस्तान्तरक (विक्रेता) कम्पनी की पुस्तकों में लेखे –

हस्तान्तरक कम्पनी अपनी पुस्तकों को बन्द करने के उद्देश्य से सर्वप्रथम वसूली खाता खोलती है। वसूली खाते को खोलने के सम्बन्ध में निम्न बिन्दु महत्वपूर्ण हैं –

सम्पत्तियों के हस्तान्तरण के सम्बन्ध में –

1. सम्पत्तियों को उनके पुस्तकीय मूल्य पर तथा व्यक्तिगत नाम से पृथक–पृथक उनका मूल्य या लागत प्रदर्शित करते हुए वसूली खाते में हस्तान्तरित किया जाता है।
2. हस्तस्थ रोकड़ अथवा बैंक में रोकड़ को वसूली खाते में तभी हस्तान्तरित किया जाता है जबकि उन्हें हस्तान्तरी कम्पनी ने लिया हो।
3. जिन सम्पत्तियों को हस्तान्तरी कम्पनी नहीं लेती उन्हें भी वसूली खाते में हस्तान्तरित किया जाता है।
4. यदि हस्तान्तरी कम्पनी को अदृश्य या अमूर्तमान सम्पत्तियों (जैसे– ख्याति, ट्रेडमार्क, पेटेन्ट आदि) को लिया है या इन सम्पत्तियों का कोई वसूली मूल्य है तो इन सम्पत्तियों को भी वसूली खाते में हस्तान्तरित किया जाता है।
5. कृत्रिम या बनावटी सम्पत्तियों आदि को वसूली खाते में हस्तान्तरित नहीं किया जाता।

दायित्वों के हस्तान्तरण के सम्बन्ध में –

1. दायित्वों को भी सम्पत्तियों की भांति उनके पुस्तकीय मूल्य पर तथा व्यक्तिगत नाम से पृथक– पृथक उनका मूल्य या लागत प्रदर्शित करते हुए वसूली खाते में हस्तान्तरित किया जाता है।
2. यदि हस्तान्तरी कम्पनी द्वारा किसी दायित्व को नहीं लिया गया है तो वसूली खाते में इसे हस्तान्तरित किये जाने की कोई आवश्यकता नहीं होती।
3. सभी प्रकार के दायित्वों में व्यापारिक दायित्व (जैसे–लेनदार, देय विपत्र आदि) एवं गैर व्यापारिक दायित्व (जैसे ऋण पत्र, बांड आदि) सभी सम्मिलित होते हैं। स्पष्ट निर्देश के अभाव में यह मान लिया जाता है कि हस्तान्तरी कम्पनी ने सभी दायित्वों को ले लिया है अतः ऐसी स्थिति में सभी दायित्वों को वसूली खाते में हस्तान्तरित कर दिया जाता है।
4. अवितरित लाभ या उनके द्वारा बनाये गये संचयों जैसे संचय कोष, सामान्य संचय आदि को वसूली खाते में हस्तान्तरित नहीं किया जाता है इनको अंशधारियों में वितरित किया जाता है अर्थात अंशधारियों के खाते में हस्तान्तरित कर दिया जाता है।

1. **सम्पत्तियों का वसूली खाते में हस्तान्तरण –**

   वसूली खाता ऋणी

   समस्त सम्पत्तियां

   (व्यक्तिगत नाम से पृथक पृथक मूल्य के साथ)

2. दायित्वों का वसूली खाते में हस्तान्तरण –

   विविध दायित्व खाता ऋणी

   (व्यक्तिगत नाम से पृथक पृथक मूल्य के साथ)

   वसूली खाता

3. क्रय प्रतिफल की राशि का प्रदर्शन या लेखांकन –

   हस्तान्तरी कं0 ऋणी

   वसूली खाता

4. क्रय प्रतिफल की विभिन्न स्वरूपों में प्राप्ति –

   हस्तान्तरी कं0 के अंश खाता ऋणी

   हस्तान्तरी कं0 के ऋण पत्र खाता ऋणी

   रोकड़ / बैंक खाता ऋणी

   हस्तान्तरी कं0

5. यदि कोई सम्पत्ति हस्तान्तरी कम्पनी द्वारा नहीं ली जाती उसकी विक्रय राशि प्राप्त होने पर –

   बैंक खाता ऋणी

   वसूली खाता

6. यदि किन्हीं परिस्थितियों में हस्तान्तरी कम्पनी समस्त दायित्वों को नहीं लेती (जैसे ऋणपत्र आदि) तो उनका भुगतान हस्तान्तरक कम्पनी द्वारा किया जाता है। लेखा निम्न होगा –

   सम्बन्धित दायित्व खाता ऋणी

   वसूली खाता

7. समापन या वसूली व्यय के सम्बन्ध में –

(i) यदि समापन व्यय हस्तान्तरक कम्पनी द्वारा वहन किये जाते हैं –

वसूली खाता ऋणी

बैंक खाता

(ii) यदि समापन व्यय हस्तान्तरी कम्पनी द्वारा वहन किये जाते हैं तो ऐसी स्थिति में हस्तान्तरक कम्पनी की पुस्तकों में इसका कोई लेखा किया जाना आवश्यक नहीं होता, परन्तु कुछ विद्वान निम्न प्रकार लेखा करने की संस्तुति करते हैं –

समापन व्यय के भुगतान पर –

हस्तान्तरी कम्पनी ऋणी

बैंक/रोकड़ खाता

हस्तान्तरी कं0 द्वारा उक्त व्ययों की प्रतिपूर्ति पर –

बैंक/रोकड़ खाता ऋणी

हस्तान्तरी कं0 का खाता

यदि हस्तान्तरी कम्पनी द्वारा समापन व्ययों की कुल के स्थान पर आंशिक प्रतिपूर्ति की जाती है तो शेष राशि का भुगतान हस्तान्तरक कम्पनी द्वारा किया जाता है। ऐसी स्थिति में लेखा निम्नवत् होगा–

(प्रतिपूर्ति राशि से) हस्तान्तरी कं0 ऋणी

(शेष राशि से) वसूली खाता ऋणी

बैंक खाता

हस्तान्तरी कम्पनी द्वारा उक्त व्ययों की प्रतिपूर्ति –

(प्रतिपूर्ति राशि से) बैक/रोकड़ खाता ऋणी

हस्तान्तरी कम्पनी का खाता

8. पूर्वाधिकार अंशधारियों को हस्तान्तरक कम्पनी की दशा में भुगतान सममूल्य, अधिमूल्य या कटौती पर हो सकता है। इस सम्बन्ध में निम्न प्रकार लेखे किये जा सकते हैं –

(i) यदि भुगतान सममूल्य पर किया जाना है –

पूर्वाधिकार अंश पूंजी खाता ऋणी

पूर्वाधिकार अंशधारियों का खाता

(ii) यदि भुगतान अधिमूल्य पर किया जाना है –

पूर्वाधिकार अंश पूंजी खाता ऋणी

वसूली खाता (प्रीमियम राशि) ऋणी

पूर्वाधिकार अंशधारियों का खाता

(iii) यदि भुगतान कटौती पर किया जाना है –

पूर्वाधिकार अंशपूंजी खाता ऋणी

वसूली खाता (छूट राशि)

पूर्वाधिकार अंशधारियों का खाता

(iv) पुराने बकाया लाभांश की स्थिति में –

वसूली खाता ऋणी

पूर्वाधिकार अंशधारियों का खाता

पूर्वाधिकार अंशधारियों को हस्तान्तरी कम्पनी द्वारा विभिन्न स्वरूपों में भुगतान –

पूर्वाधिकार अंशधारियों का खाता ऋणी
हस्तान्तरी कं0 में पूर्वाधिकार अंश
हस्तान्तरी कं0 में समता अंश
हस्तान्तरी कं0 द्वारा बैंक/रोकड़

9. विलयन की स्थिति में समता अंशधारियों को भुगतान का लेखा सबसे अन्त में किया जाता है। इसके लिए सर्वप्रथम उन्हें देय शुद्ध राशि की गणना की जाती है। इन लेखों के उपरान्त हस्तान्तरक कम्पनी की पुस्तकों में सभी खाते बन्द हो जाते हैं।

समता अंश पूंजी, सभी संचय एवं कोष जो अंशधारियों को देय हों, लाभ–हानि खाते का आधिक्य या शेष तथा वसूली खाते के लाभ को समता अंशधारियों को हस्तान्तरित किये जाने पर निम्न लेखा किया जायेगा –

समता अंश पूंजी खाता ऋणी
लाभ हानि खाता (लाभ) ऋणी
संचय एवं कोष खाता (पृथक–पृथक) ऋणी
वसूली खाता (लाभ) ऋणी
समता अंशधारियों का खाता

लाभ हानि खाते में यदि हानि हो, वसूली खाते पर हानि हो तथा समस्त कृत्रिम या बनावटी सम्पत्तियों को समता अंशधारियों के खाते में हस्तान्तरित करने पर लेखा निम्न प्रकार किया जायेगा –

समता अंशधारियों का खाता ऋणी
लाभ हानि खाता (हानि)
वसूली खाता (हानि)
कृत्रिम सम्पत्ति खाता (पृथक–पृथक)

उपरोक्त दोनों लेखों के आधार पर समता अंशधारियों के खाते का आकलन कर शेष ज्ञात कर लिया जाता है। इसका भुगतान किये जाने पर लेखा किया जायेगा –

समता अंशधारियों का खाता ऋणी
हस्तान्तरी कं0 में पूर्वाधिकार अंश
हस्तान्तरी कं0 में समता अंश
हस्तान्तरी कं0 में ऋण पत्र
बैंक/रोकड़

2. <u>हस्तान्तरी (क्रेता) कम्पनी की पुस्तकों में लेखे :–</u>

लेखांकन प्रमाप–14 के अनुसार हस्तान्तरी कम्पपनी की पुस्तकों में निम्न दो प्रकार लेखे किये जा सकते हैं –

<u>क्रय विधि –</u>

जब कम्पनियों का विलयन या एकीकरण क्रय की प्रकृति का होता है तो इस विधि के माध्यम से निम्न लेखे किये जाते हैं –

1. क्रय प्रतिफल की राशि देय होने पर –

व्यवसाय क्रय खाता ऋणी
हस्तान्तरक कं0 के निस्तारक का खाता

2. सम्पत्तियों एवं दायित्वों को सम्मिलित करने पर –

इस लेखे को करने से पूर्व हस्तान्तरी कम्पनी को निम्न बिन्दुओं पर ध्यान रखना चाहिए अर्थात इस लेखे के समय निम्न सावधानियां रखी जानी चाहिए।

(i) सभी सम्पत्तियों एवं दायित्वों को उनके व्यक्तिगत नाम से पृथक–पृथक मूल्य सहित प्रदर्शित किया जाना चाहिए।

(ii) सामान्यतया सम्पत्तियों को पुस्तकीय मूल्य पर ही प्रदर्शित किया जाता है परन्तु यदि हस्तान्तरी कम्पनी लेने से पूर्व उनका पुनर्मूल्यांकन कराती है तो इन्हें नये मूल्य पर प्रदर्शित किया जाना चाहिए।

(iii) यदि ली गयी सम्पत्तियों का योग व्यवसाय क्रय + लिये गये दायित्वों से अधिक है तो इस शेष राशि को पूंजी संचय में हस्तान्तरित किया जाता है। परन्तु यदि इसके विपरीत व्यवसाय क्रय + लिये गये दायित्वों का मूल्य कुल ली गयी सम्पत्तियों से अधिक हो जाता है तो आधिक्य राशि को ख्याति के रूप में प्रदर्शित किया जाता है।

(iv) विभिन्न संचय एवं कोष (वैधानिक संचय एवं दायित्व प्रकृति के संचयों को छोड़कर) हस्तान्तरी कम्पनी द्वारा स्वीकार नहीं किये जाते हैं। अतः इनके लेखे की भी हस्तान्तरी कम्पनी की पुस्तकों में कोई आवश्ययकता नहीं होती।

(v) यदि किसी वैधानिक संचय का किसी लागू प्रावधान के अन्तर्गत आने वाले वर्षों में खातों एवं पुस्तकों में दिखाया जाना अनिवार्य हो तो ऐसी स्थिति में हस्तान्तरी कम्पनी निम्न लेखा करती है –

समस्त दायित्व (पृथक–पृथक) खाता ऋणी
    व्यवसाय क्रय खाता
    पूंजी संचय (शेष राशि) खाता

यहां यह ध्यान रखने योग्य बात है कि परिस्थितिनुसार या तो ख्याति खाता होगा या पूंजी संचय खाता।

3. क्रय प्रतिफल का भुगतान करने की दशा में –

हस्तान्तरक कं0 के निस्तारक का खाता ऋणी
    पूर्वाधिकार अंश खाता
    समता अंशपूंजी खाता
    ऋण पत्र खाता
    सुरक्षा अधिमूल्य खाता
    बैंक/रोकड़ खाता

4. हस्तान्तरक कम्पनी द्वारा किये गये समापन व्ययों की प्रतिपूर्ति –

ख्याति खाता ऋणी
    बैंक खाता

5. अपने निर्माण या स्थापना व्ययों का भुगतान किये जाने पर –

प्रारम्भिक या निर्माण व्यय खाता ऋणी
    बैंक खाता

6. अपने द्वारा लिये गये किसी दायित्व का विभिन्न स्वरूपों में भुगतान करना –

सम्बन्धित दायित्व खाता ऋणी
    अंशपूंजी खाता

ऋणपत्र खाता

रोकड़/बैंक खाता

7. ख्याति खाते या प्रारम्भिक व्यय खाते की पूंजी संचय खाते से अपलेखन किए जाने की दशा में–

पूंजी संचय खाता ऋणी

ख्याति खाता

प्रारम्भिक व्यय खाता

व्यवहारिक उदाहरण सं0 5

1 अप्रैल 2017 को चेतन लि0 एवं तृप्ति लि0 परस्पर विलयन के लिये सहमत हुई। साथ ही एक नयी कम्पनी अजय लिमिटेड के गठन की सहमति भी हुई जो 10 रू0 वाले 1,00,000 समता अंशों की अधिकृत पूंजी के साथ स्थापित की गयी। चेतन लि0 एवं तृप्ति लि0 के आर्थिक चिट्ठे 31 मार्च 2017 को निम्न वित्तीय स्थिति प्रदर्शित करती थी –

विवरण	चेतन लि0	तृप्ति लि0
अंशपूंजी एवं दायित्व –		
1. अंशधारी कोष –		
अंशपूंजी : 10 रू0 प्रति अंश	2,24,000	1,75,000
कोष एवं संचय : सामान्य संचय	8,000	12,000
लाभ–हानि खाता	11,000	4,000
2. चल दायित्व		
विविध लेनदार	5,000	6,000
कुल योग	**2,48,000**	**1,97,000**
परिसम्पत्तियां		
1. अचल सम्पत्तियां		
दृश्य : भवन	50,000	60,000
संयंत्र	41,000	10,000
अदृश्य : ख्याति	80,000	32,000
2. चल सम्पत्तियां		
रहतियां	42,000	33,000
विविध देनदार	23,000	40,000
रोकड़ बैंक में	12,000	22,000
कुल योग	**2,48,000**	**1,97,000**

यह तय हुआ कि दोनों कम्पनियों का भवन 10: से अपलिखित किया जाय और अंशोध्य एवं संदिग्ध ऋणों के लिए 5: का आयोजन किया जाये। ख्याति का मूल्यांकन गत दो वर्षों के आधिक्य के औसत के तीन वर्षों के क्रय के आधार पर किया जाये। 2015–2016 का आधिक्य क्रमशः 13,000 रू0 और 6,000 रू0 था। अजय लिमिटेड (हस्तान्तरी कम्पनी) की पुस्तकों में आवश्यक जर्नल प्रविष्टियां कीजिए तथा उसका प्रारम्भिक चिट्ठा भी प्रदर्शित कीजिए।

हल/समाधान –

ख्याति की गणना	चेतन लि0	तृप्ति लि0

2015–16 का लाभ शेष 2016–17 का लाभ शेष	13,000 11,000	6,000 4,000
	24,000	10,000
दो वर्षों का औसत (लाभ / 2)	12,000	5,000
तीन वर्षों के आधार पर ख्याति (औसत×3)	36,000	15,000
ख्याति भवन (10% ह्रास) देनदार (5% अशोध्य) संयंत्र रहतियां रोकड़	36,000 45,000 21,850 41,000 42,000 12,000	15,000 54,000 38,000 10,000 33,000 22,000
कुल योग – लेनदार	1,97,850 5,000	1,72,000 6,000
क्रय मूल्य (प्रतिफल)	1,92,850	1,66,000

<u>अजय लि0 (नयी / हस्तान्तरी कम्पनी) की पुस्तकों में लेखे</u>

1.	व्यवसाय क्रय खाता	ऋणी	3,58,850	
	चेतन लि0 के निस्तारक का खाता			1,92,850
	तृप्ति लि0 के निस्तारक का खाता			1,66,000
	(क्रय प्रतिफल का निस्तारक को हस्तान्तरण)			
2.	ख्याति खाता	ऋणी	51,000	
	भवन खाता	ऋणी	99,000	
	संयंत्र खाता	ऋणी	51,000	
	रहतियां खाता	ऋणी	75,000	
	देनदार खाता	ऋणी	63,000	
	हस्तस्थ रोकड़ खाता	ऋणी	64,000	
	लेनदार खाता			11,000
	अशोध्य ऋण संचय खाता			3,150
	व्यवसाय क्रय खाता			3,58,850
	(समस्त सम्पत्तियों एवं दायित्वों का हस्तान्तरण)			
	चेतन लि0 के निस्तारक का खाता	ऋणी	1,92,850	
	तृप्ति लि0 के निस्तारक का खाता	ऋणी	1,66,000	
	समता अंश पूंजी खाता			3,58,850
	(अंशों में निस्तारक को क्रय प्रतिफल का भुगतान)			

अजय लि0 का 1 अप्रैल 2017 को प्रारम्भिक चिट्ठा

<u>अंशपूंजी एवं दायित्व –</u>	
<u>अंशधारी कोष –</u>	
अंशपूंजी – 35,885 अंश प्रत्येक 10 रू0	3,58,850

चल दायित्व –	
लेनदार	11,000
	3,69,850
परिसम्पत्तियां	
अचल दृश्य –	
भवन	99,000
संयंत्र	51,000
अदृश्य –	
ख्याति	51,000
चल –	
रहतियां	75,000
देनदार	59,850
हस्तस्थ रोकड़	34,000
	3,69,850

हितों का समूहीकरण विधि –

जब विलय की प्रकृति का एकीकरण दो या अधिक कम्पनियों में होता है तो हस्तान्तरी कम्पनी की पुस्तकों में निम्न लेखे किये जाते हैं –

1. व्यवसाय क्रय खाता ऋणी
   हस्तान्तरक कं0 के निस्तारक का खाता
   (क्रय प्रतिफल के अदेय होने पर)
2. हस्तान्तरक कम्पनी की सम्पत्तियों, दायित्वों, संचयों एवं लाभ–हानि के शेष को सम्मिलित करने पर –
   समस्त सम्पत्तियां (पृथक–पृथक) खाता ऋणी
   समस्त दायित्व (पृथक–पृथक) खाता
   लाभ–हानि शेष का खाता
   व्यवसाय क्रय का खाता

इस लेखे को करने से पूर्व निम्न बिन्दुओं पर विचार किया जाना आवश्यक है –

(i) सभी सम्पत्तियों एवं दायित्वों को पृथक–पृथक उनके व्यक्तिगत नाम एवं मूल्य सहित प्रदर्शित करना होता है तथा एकीकृत चिट्ठे में प्रदर्शन से पूर्व हस्तान्तरक एवं हस्तान्तरी कम्पनी के सम्पत्ति एवं दायित्वों को परस्पर जोड़ लिया जाता है तथा हस्तान्तरी कम्पनी के एकीकृत चिट्ठे में यह योग प्रदर्शित किया जाता है।

(ii) हस्तान्तरी कम्पनी हस्तान्तरक कम्पनी के सभी संचयों (पूंजीगत तथा आयगत) तथा लाभ हानि विवरण के आधिक्य के शेष को भी लेती है। हस्तान्तरक कम्पनी के सभी संचयों को अपनी पहचान बनाये रखते हुए उन्हें हस्तान्तरी कम्पनी के सम्बन्धित संचयों में जोड़कर एकीकृत चिट्ठे में दिखाया जाता है। इसी प्रकार हस्तान्तरक कम्पनी के लाभ–हानि विवरण की कमी शेष को हस्तान्तरक कम्पनी के लाभ–हानि विवरण के शेष में

जोड़कर या सामान्य संचय में हस्तान्तरित करके एकीकृत चिट्ठे में दिखाया जाता है।

(iii) हस्तान्तरी कम्पनी द्वारा देय क्रय प्रतिफल तथा हस्तान्तरक कम्पनी की अंशपूंजी की राशि में जो अन्तर होता है उसे हस्तान्तरक कम्पनी के सामान्य संचय (अन्य संचय या लाभ हानि) से समायोजित किया जाता है। दूसरे शब्दों में, यदि क्रय प्रतिफल की राशि हस्तान्तरक कम्पनी की अंशपूंजी से अधिक है तो यह अन्तर हस्तान्तरी कम्पनी के लिए हानि मानी जाती है तथा इसे हस्तान्तरक कम्पनी के सामान्य संचय (या अन्य संचय या लाभ–हानि) के क्रेडिट शेष में से घटा दिया जाता है तथा सामान्य संचय (या अन्य संचय या लाभ–हानि) के क्रेडिट शेष की शेष राशि को ही उपरोक्त प्रविष्टि में दिखाया जाता है।

लाभ–हानि खाते में कमी का खाता	ऋणी
विविध सम्पत्ति (पृथक–पृथक) खाता	ऋणी
विविध दायित्व (पृथक–पृथक) खाता	
व्यवसाय क्रय का खाता	

17.7 अधिग्रहण

अधिग्रहण का आशय किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह अथवा किसी कम्पनी द्वारा किसी अन्य कम्पनी के इतने अधिक अंशों को क्रय कर लेने से है कि जिससे क्रेता को उस कम्पनी में पर्याप्त नियन्त्रक हित प्राप्त हो जाय। इस प्रकार अधिगृहीत कम्पनी अपना पृथक अस्तित्व बनाये रखती है और उसके प्रबन्ध का ढांचा भी लगभग वही बना रहता है जैसा कि पहले था, सिवाय इसके कि उसके संचालक मण्डल में क्रेता को यथोचित प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाता है अनेक दशाओं में विशाल निगमो अथवा औद्योगिक घरानों द्वारा इस प्रकार के अधिग्रहणो का कम्पनी क्षेत्रों में सामान्य चलन रहा है सफल एवं लाभदायक निगमों के लिये निरन्तर विकास करते रहना एक अनिवार्यता होती है और वे पूंजी विनियोग के नवीन अवसरों की खोज में निरन्तर प्रयत्नशील बने रहते हैं। यही कारण है कि उनके कम्पनियों द्वारा अपने पार्षद या सीमानियमों में इस प्रकार के अधिग्रहण के लिए प्रावधान होता है। स्वामित्व में पर्याप्त भागीदारी आ जाने से अधिग्रहीत कम्पनी के प्रबन्ध में स्वतः ही क्रेता पक्ष को अधिक भाग लेने का अवसर प्राप्त हो जाता है। क्रेता पक्ष के कुछ व्यक्ति संचालक मण्डल में आ जाते हैं तथा प्रायः प्रबन्ध–संचालक भी क्रेता पक्ष का व्यक्ति ही नियुक्त हो जाता है।

इधर कुछ वर्षों से अधिग्रहण को व्यापक रूप में परिभाषित किया जाने लगा है। विगत कुछ दशकों से निजी क्षेत्र की कम्पनियों की अंश पूंजी में सार्वजनिक क्षेत्र की वित्तीय संस्थाओं के स्वामित्व में वृद्धि होती रही है। ऐसी संस्थाओं में जीवन बीमा निगम, यूनिट ट्रस्ट, सामान्य बीमा निगम, भारत का औद्योगिक विकास बैंक, भारत का औद्योगिक वित्त निगम, तथा राष्ट्रीयकृत बैंकों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये संस्थाएं निजी क्षेत्र की कम्पनियों को ऋण देने एवं उनके द्वारा निर्गमित ऋणपत्रों में धन लगाने के साथ साथ उनकी अंश पूंजी में भी पर्याप्त रूप से अभिदान करती हैं। केवल अंशों के नवीन निर्गमनों में ही नहीं, अपितु बाद में भी पूंजी बाजार का समर्थन प्रदान करने के लिए इनके द्वारा अंशों का क्रय विक्रय किया जाता है। ऋण समझौतों में परिवर्तनीय शर्त के

अधीन इन्हें सरकार द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार प्रदत्त ऋणों के एक भाग को अंशों में परिवर्तित करने का अधिकार प्राप्त होता है। अतः निजी क्षेत्र की कम्पनियों की अंश पूंजी में सार्वजनिक क्षेत्र के बढ़ते हुए स्वामित्व के कारण भी अधिग्रहण की आशंकाएं बढ़ जाती हैं। इतना अवश्य है कि ऐसा अधिग्रहण जनहित में केवल कुप्रबन्धित कम्पनियों का ही किया जाता है। सर्वविदित है कि इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी की अंश पूंजी में सार्वजनिक क्षेत्र की वित्तीय संस्थाओं का भाग 54 प्रतिशत हो गया था। इस कम्पनी के प्रबन्ध के स्तर में निरन्तर गिरावट आ रही थी और सुधार के कोई चिन्ह नहीं दृष्टिगोचर हो रहे थे। अतः सन् 1972 में इसका अधिग्रहण सरकार द्वारा कर लिया गया तथा कुछ वर्षों बाद इसका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया।

1. **<u>सरकार द्वारा प्रबन्ध का अधिग्रहण :–</u>**

उद्योग (विकास एवं नियमन) अधिनियम के अन्तर्गत सरकार जांच परिणामों के बाद, अथवा बिना जांच के ही, ऐसा करने के औचित्य से सन्तुष्ट होने पर अस्थायी रूप से किसी कुप्रबन्धित उत्पादन इकाई के प्रबन्ध का अधिग्रहण कर सकती है। पिछले पच्चीस वर्षों में निजी क्षेत्र की ऐसी अनेक इकाईयों के प्रबन्ध का अधिग्रहण सरकार द्वारा किया जा चुका है। ऐसी अधिग्रहीत इकाई का प्रबन्ध किसी सरकार, निगम अथवा संगठन को सौंप दिया जाता है। सरकार को यह अधिकार प्राप्त है कि वह लोकसभा के अनुमोदन से ऐसे अस्थायी अधिग्रहणों की अवधि में वृद्धि करती रहे, अथवा उचित समझे जाने पर अधिनियम पास करके इन अधिग्रहीत इकाईयों का राष्ट्रीयकरण कर दे।

सन् 1968 में राष्ट्रीय टैक्सटाइल निगम की स्थापना करके 103 बीमार सूती मिलों के प्रबन्ध को अधिग्रहीत करके इसे सौंप दिया गया। इसके बाद 8 सूती मिलों का प्रबन्ध इसे और सौंपा जा चुका है। सन् 1972 में इस्को के प्रबन्ध का अधिग्रहण कर लिया गया जिसे दो–दो साल के लिए बढ़ाया जाता रहा और सन् 1976 में इसे राष्ट्रीयकृत कर दिया गया। अब यह सेल की एक सहायक कम्पनी है। सन् 1978 में स्वदेशी कॉटन मिल समूह की (जयपुरियाज) छः मिलों के प्रबन्ध को अधिग्रहीत करना पड़ा क्योंकि पारिवारिक झगड़ों के कारण ये मिलें कुप्रबन्धित थीं तथा इनमें श्रमिक अशान्ति बढ़ रही थी। सन् 1980 में लगभग 13 बीमार इकाईयों के प्रबन्ध को सरकार द्वारा अपने हाथ में लिया गया। इनमें हिन्द साइकिल लिमिटेड, सैन रैले लिमिटेड एवं मारूति कम्पनी लिमिटेड के नाम उल्लेखनीय हैं। सरकार द्वारा ऐसे अधिग्रहण जनहित एवं राष्ट्रीय हित को देखते हुए किये गये हैं।

इधर कुछ वर्षों से औद्योगिक इकाईयों के अधिग्रहण के विषय में सरकार की नीति में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। अब केवल उन्हीं इकाईयों के प्रबन्ध का अधिग्रहण किया जायेगा जिनकी आर्थिक जीव्यता की स्पष्ट सम्भावनाएं दिखलायी देती हों। अन्य बीमार इकाईयों को या तो किन्हीं अन्य बड़ी सफल इकाईयों में मिला दिया जायेगा (यदि सम्भव हो तो) अथवा उन्हें समाप्त कर दिया जायेगा। इस नीति के कारण ही 1986–87 के बाद अधिग्रहणों की संख्या बहुत कम रही है।

दिसम्बर, 1985 में पास किये गये बीमार औद्योगिक कम्पनी (विशेष प्रावधान) अधिनियम के अन्तर्गत भारत सरकार द्वारा जनवरी 1987 में औद्योगिक

एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड का गठन किया गया। यह बोर्ड बीमार कम्पनी के विषय में उचित जांच पड़ताल के बाद उसके पुनर्संगठन, पुनुरूत्थान, पुनर्संस्थापन अधिग्रहण अथवा एकीकरण आदि के लिए ऐसी व्यवस्थाएं कर सकती है जैसे उसके द्वारा उचित समझी जाये।

2. छद्मपूर्ण अधिग्रहण को रोकने के उपाय :–

निजी क्षेत्र में कम्पनियों का अधिग्रहण कोई असामान्य घटना नहीं है। बड़े औद्योगिक समूहों द्वारा अन्य समूह की कम्पनियों का अधिग्रहण यदा कदा होता रहता है। इधर कुछ वर्षो से सुप्रबन्धित कम्पनियों के छद्मपूर्ण अधिग्रहण की घटनाओं में वृद्धि हुई है। अब सरकार द्वारा लिस्टिंग एग्रीमेन्ट की धारा 40 के भाग ए और बी में संशोधन करके ऐसे अधिग्रहणों को रोकने का प्रयास किया गया है। संशोधित भाग ए के अनुसार यदि कोई व्यक्ति या कम्पनी किसी अन्य कम्पनी की कुल इक्विटी पूंजी के 5% से अधिक भाग की अवाप्ति करता है तो उसे दो दिन के अन्दर इसकी सूचना स्टॉक एक्सचेंज को देनी होगी। (संशोधन से पूर्व यह प्रतिशत 25 था) संशोधित भाग बी के अनुसार अल्पमत अंशधारियों के समक्ष अधिग्रहण का प्रस्ताव रखने से पूर्व प्रस्तावकर्ता के पास उस कम्पनी की इक्विटी पूंजी के कम से कम 10 प्रतिशत भाग का होना आवश्यक होगा (संशोधन से पूर्व यह प्रतिशत 25 था) साथ ही शर्त यह होगी कि प्रस्तावकर्ता की अल्पमत अंशधारियों से कम्पनी की कुल इक्विटी पूंजी के कम से कम 20 प्रतिशत भाग को उचित मूल्य पर खरीदना होगा। (संशोधन से पूर्व यह प्रतिशत 80 था)

अधिग्रहण का प्रस्ताव सर्वप्रथम बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स के समक्ष रखा जायेगा जिसमें समस्त विवरण दिया जायेगा जैसे प्रस्ताव की शर्तें, प्रस्तावक का परिचय, अनुभव, वित्तीय साधन आदि। संचालक मण्डल अंशधारियों की सामान्य सभा की अनुमति के बिना न तो अधिकृत पूंजी में वृद्धि कर सकेंगे और न ही कम्पनी की सम्पत्तियों के महत्वपूर्ण भाग का विक्रय कर सकेंगे।

आशा है कि उक्त उपायों से सामान्य अंशधारियों के हितों की सुरक्षा हो सकेगी तथा सुव्यवस्थित और सुप्रबन्धित कम्पनियों, सटोरियों एवं अनुभवहीन व्यक्तियों या उनके समूहों की लोलुप दृष्टि से बच सकेंगी।

3. धारक कम्पनी :–

जब कोई कम्पनी किसी कम्पनी की सामान्य अंश पूंजी के अधिकांश भाग का स्वामित्व प्राप्त कर लेती है अथवा अन्य किसी प्रकार से कम्पनी को नियन्त्रित एवं प्रभावित करने की स्थिति में होती है तो उसे धारक कम्पीन तथा उस अन्य कम्पनी को उसकी सहायक कम्पनी कहा जाता है। धारक एवं सहायक कम्पनियों की प्रणाली व्यावसायिक संयोग का एक ऐसा स्वरूप है जिसका उद्देश्य प्रबन्ध एवं नियन्त्रण में समान सुविधाएं प्राप्त करके उत्पादन तथा क्रय विक्रय सम्बन्धी एक सुनिश्चित नीति का पालन करना है।

कम्पनी अधिनियम में धारक कम्पनी की प्रत्यक्षतः कोई परिभाषा नहीं दी गयी है। किन्तु अधिनियम की धारा 4 में सहायक कम्पनी को परिभाषित किया गया है जिसके आधार पर यह स्पष्टतः माना जा सकता है कि वैधानिक दृष्टि से धारक कम्पनी से क्या आशय है। इस धारा के अनुसार कोई कम्पनी किसी अन्य कम्पनी की सहायक केवल तभी मानी जायेगी जबः

(i) इस अन्य का इसके संचालक मण्डल के गठन पर नियन्त्रण हो।

(ii) वह अन्य कम्पनी इसके सामान्य अंशों के आधे से अधिक भाग की स्वामी हो अथवा

(iii) यह कम्पनी किसी ऐसी कम्पनी की सहायक हो जो स्वयं उस कम्पनी की सहायक है।

उपर्युक्त परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि धारक कम्पनी के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसका सहायक कम्पनी की सामान्य अंश पूंजी में स्वामित्व हो ही। यह स्वामित्व वह अप्रत्यक्ष रूप में प्राप्त करके भी धारक कम्पनी बन सकती है जैसे कि उपुर्यक्त धारा के तृतीय खण्ड से प्रकट होता है। उदाहरण के लिए यदि ख कम्पनी क कम्पनी की सहायक है तथा ग कम्पनी ख कम्पनी की सहायक है तो ग कम्पनी भी उपर्युक्त व्यवस्था के आधार पर क कम्पनी की सहायक मानी जायेगी। इसी प्रकार यदि कोई कम्पनी किसी अन्य कम्पनी की अंष पूंजी के आधे से अधिक भाग की स्वामी न होते हुए भी किसी समझौते के अन्तर्गत उस अन्य कम्पनी के संचालक मण्डल के अधिकांश संचालकों की नियुक्ति करने का अधिकार रखती है, तो वह अन्य कम्पनी की धारक कम्पनी मानी जायेगी।

4. धारक कम्पनियों के प्रकार :–

धारक कम्पनियों के कई प्रकार प्रचलित हैं। इनके संगठन एवं कार्यों की दृष्टि से इनमें भेद किया जा सकता है। धारक कम्पनियों के जो प्रकार प्रायः पाये जाते हैं, वे निम्नलिखित हैं –

1– शुद्ध धारक कम्पनी :–

यह वह कम्पनी होती है जो अन्य कोई व्यवसाय नहीं करती। इसकी स्थापना केवल अन्य कम्पनियों की सामान्य अंश पूंजी में धन लगाने के लिए की जाती है। स्वामित्व के आधार पर इसे अन्य कम्पनियों में मतदान का अधिकार एवं संचालकों की नियुक्ति का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार यह कम्पनी अपनी सहायक कम्पनियों का निर्देशन अथवा नियन्त्रण करती है।

2– मिश्रित धारक कम्पनी –

यदि कोई कम्पनी अपना स्वयं का व्यवसाय भी करती है और साथ ही किसी अन्य कम्पनी या कम्पनियों में धन लगाकर धारक कम्पनी भी बन जाती है तो उसे मिश्रित धारक कम्पनी कहा जाता है। इस प्रकार की धारक कम्पनियों का मुख्य उद्देश्य सहायक कम्पनियों द्वारा व्यवसाय में संयोग का लाभ प्राप्त करके कार्य को सरल बनाना है।

3– माध्यमिक धारक कम्पनी –

इस प्रकार की कम्पनी किसी अन्य कम्पनी की सहायक होने के साथ साथ अन्य कम्पनी या कम्पनियों की धारक भी होती है। सर्वोपरि एक शीर्ष धारक कम्पनी होती है, उसकी सहायक यह माध्यमिक कम्पनी होती है जो स्वयं एक या अनेक कम्पनियों की धारक भी होती है। इस प्रकार कम्पनियों का एक पिरामिड बन जाता है जिसकी श्रृंखला में कई कम्पनियां सम्मिलित होती है।

4– एकीकृत धारक कम्पनी –

व्यावसायिक संयोग का लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से सब कुछ विद्यमान कम्पनियां एक नवीन कम्पनी का निर्माण करके उसे अपने पर्याप्त अंश बेच देती है तथा बदले में उस कम्पनी के अंश खरीद लेती है तो उस नवीन कम्पनी को एकीकृत धारक कम्पनी कहा जाता है। इस व्यवस्था में सब कम्पनियों का अस्तित्व

तो पृथक रहता ही है, साथ ही नवीन कम्पनी के हाथों में उन सबको नियन्त्रित करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

5– **प्राथमिक या प्रमुख धारक कम्पनी –**

यह धारक एवं सहायक की श्रृंखला में सबसे ऊपर होती हे। यह स्वयं किसी कम्पनी की सहायक नहीं होती, किन्तु इसके नीचे अन्य कई धारक तथा सहायक कम्पनियों की श्रृंखला होती है।

6– **वित्त एवं विनियोग धारक कम्पनियां –**

ऐसी धारक कम्पनियों की स्थापना का उद्देश्य सहायक कम्पनियों का प्रबन्ध तथा नियन्त्रण प्राप्त करना नहीं होता। वित्त धारक कम्पनी किसी नयी प्रवर्तित की जाने वाली कम्पनी का वित्त पोषण करने के लिए अंश खरीदती है और इस प्रकार उसकी धारक बन जाती है। विनियोग धारक कम्पनी वस्तुतः विनियोग प्रन्यास होती है जो अपने सदस्यों को विभिन्न विनियोगों का लाभ प्रदान करने के उद्देश्य से सहायक कम्पनियों में धन लगाती है।

5. धारक कम्पनियों के गुण–दोष –

गुण –

(i) संगठन की सरलता एवं लोच,
(ii) कार्यक्षेत्र की व्यापकता
(iii) पूंजी की सरल व्यवस्था
(iv) प्रबन्धकीय कुशलता का लाभ
(v) बड़े पैमाने की बचत का लाभ
(vi) आधुनिकीकरण एवं तकनीकी स्तर में सुधार की सुविधाएं
(vii) अन्वेषण एवं अनुसन्धान की दिशा में सुविधाएं
(viii) कम जोखिम पूंजी लगाकर व्यापक वित्तीय कोषों पर नियन्त्रण का अवसर
(ix) विभिन्न गतिविधियों के विकेन्द्रीकरण में सरलता

दोष –

(i) आर्थिक सत्ता का केन्दीकरण
(ii) अनेक शुल्कों की वसूली
(iii) अनतर कम्पनी विनियोगों एवं ऋणों के आधार पर सहायक कम्पनियों के कोषों के अनुचित उपयोग की सम्भावनाएं
(iv) उपभोक्ताओं को हानि (ऊंचे मूल्यों के कारण)
(v) प्रबनध में अनुचित हस्तक्षेप
(vi) एकाधिकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन आदि

कई बार उत्तम पूंजी ढांचा होते हुए भी प्रबन्धकों की असावधानी एवं अदूरदर्शिता के कारण कम्पनियां वित्तीय कठिनाईयों में फंस जाती हैं तथा उनमें आर्थिक संकट उत्पन्न हो जाता है। ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जब पूंजी ढांचा एवं योग्य तथा कुशल प्रबन्धकों के होते हुए भी बाहरी कारणों से कम्पनी आर्थिक संकटों में फंस जाती है। यदि संकट साधारण होता है तो कम्पनी अपने सुरक्षित कोषों का उपयोग करके अथवा अल्कालीन ऋण लेकर इनसे छुटकारा पा लेती है। किन्तु यदि कम्पनी आन्तरिक अथवा बाहरी कारणों से ऐसे घोर आर्थिक संकटों में फंस गयी है जिनके कारण यह समय पर अपने दायित्वों की पूर्ति करने की

क्षमता नहीं रखती, तो फिर ऐसी दशा में पुनर्संगठन और पुनर्निर्माण ही कम्पनी के लिए एकमात्र उपचार रह जाता है।

17.8 सारांश

इस इकाई में किसी भी निगमीय पुनर्संरचना पर विस्तृत चर्चा की गयी है। किसी भी कम्पनी के जीवनकाल में मंदी, बाजार में असामान्य उच्चावचन, परियोजना एवं व्यवसाय विस्तार, स्वामित्व संरचना में परिवर्तन, वित्तीय अवसंरचना में परिवर्तन, संचालनीय प्रवृत्तियों में गम्भीर परिवर्तन आदि कारणों से पुनर्संरचना की आवश्यकता अनुभव हो सकती है। किसी भी कम्पनी की पुनर्संरचना के लिए एकीकरण, संविलयन या विलय, अधिग्रहण, आन्तरिक पुनर्गठन एवं बाह्य पुनर्गठन आदि अनेकों पद्धतियां भारतीय संदर्भ में प्रचलित हैं।

प्राचीन प्रचलित अवधारणा में जब दो या अधिक कम्पनियां मिलकर एक नवीन कम्पनी का निर्माण करती थीं, उसे एकीकरण तथा जब एक विद्यमान कम्पनी उसी प्रकार का व्यापार करने वाली कम्पनी को पारस्परिक सहमति एवं समझौते के आधार पर निर्धारित प्रतिफल के बदले क्रय कर लेती थी तो इसे संविलयन कहा जाता था। अक्टूबर 1994 में The Institute of Chartered Accountants of India द्वारा प्रभावी लेखांकन प्रमाप 14 के द्वारा एकीकरण किसी एक अत्यन्त व्यापक कर दिया गया है। इसके अनुसार एकीकरण किसी एक विद्यमान कम्पनी का दूसरी विद्यमान कम्पनी में विलय से अथवा दो या दो से अधिक कम्पनियों के विलय द्वारा एक नवीन कम्पनी का निर्माण करके हो सकता है। स्पष्ट है कि इस नवीन अवधारणा में संविलयन अथवा विलय को भी सम्मिलित कर लिया गया है। विलय के प्रकार, उद्देश्य लाभ, सीमायें या दोषों का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त विभिन्न व्यवहारिक प्रश्नों के माध्यम से क्रय प्रतिफल की गणना, नवीन एकीकृत चिट्ठा आदि भी समझाये गये है।

इसी इकाई में अधिग्रहण, सरकार द्वारा अधिग्रहण, छदम् अधिग्रहण को रोकने के उपाय आदि को विस्तार से बताया गया है। इसके अतिरिक्त धारक कम्पनी, धारक कम्पनी के प्रकार, धारक कम्पनी के गुण–दोष के सम्बन्ध में भी विस्तृत चर्चा की गयी है।

17.9 शब्दावली

लेखा प्रमाप – Institute of Chartered Accountants of India 1994 द्वारा लेखांकन के लिये जारी नियमावली एवं प्रमाप।

एकाधिकार – प्रतियोगिता के न होने पर एक ही का आधिपत्य

केन्द्रीयकरण – शक्तियों, संसाधनों आदि का एकत्रीकरण

फ्रीहोल्ड – किसी भी प्रभाव से मुक्त

एकीकृत चिट्ठा – दो या अधिक कम्पनियों का संयुक्त चिट्ठा

राष्ट्रीयकरण – सरकार द्वारा अधिग्रहण

बीमार या रूग्ण इकाई – संसाधनों का उचित उपयोग न होने या अकुशल प्रबन्ध से निरन्तर हानि दे रही इकाई

17.10 बोध प्रश्न

निम्नलिखित कथनो में से कौन सा कथन सत्य और कौन सा असत्य है –

25. विलय एवं अधिग्रहण निगमीय पुनर्संरचना का स्वरूप है।

26. दो कम्पनी आपस में मिलकर नवीन कम्पनी का निर्माण करती है तो संविलयन कहलाता है।
27. एकाधिकार का उत्पन्न होना विलय या अधिग्रहण का दोष है।
28. प्रारम्भिक व्यय एक कृत्रिम सम्पत्ति है।
29. बैंक अधिविकर्ष एक बाह्य सम्पत्ति नहीं है।
30. धारक कम्पनी का 51% या अधिक स्वामित्व पर अधिकार आवश्यक है।

बहुविकल्पीय प्रश्न–

11. एकीकरण का स्वरूप –
(अ) क और ख मिलें और क का अस्तित्व रह जाये
(ब) क और ख मिलें और ख का अस्तित्व रह जाये
(स) क और ख मिलकर नयी कम्पनी ग का निर्माण करें
(द) उपरोक्त में से कोई नहीं
12. विलय का लाभ है –
(अ) प्रतिस्पर्धा की समाप्ति (ब) प्रशासनिक व्ययों में कमी
(स) संसाधनों का विस्तार (द) उपरोक्त सभी
13. कृत्रिम सम्पत्ति है –
(अ) भूमि एवं भवन (ब) ख्याति (स) अभिगोपन व्यय
(द) उपरोक्त में से कोई नहीं
14. बाह्य दायित्व हैं –
(अ) अंश पूंजी (ब) ऋण पत्र (स) पूंजी संचय (द) बैंक अधिविकर्ष
15. धारक कम्पीन का गुण है –
(अ) सरलता एवं लोच (ब) आधुनिकीकरण एवं तकनीक में सुधार
(स) कार्यक्षेत्र की व्यापकता (द) उपरोक्त सभी

17.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

सत्य/असत्य के उत्तर–

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य 6. सत्य

बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर–

1. (स) 2. (द) 3. (स) 4. (द) 5. (द)

17.12 स्वपरख प्रश्न

12. निगमीय पुनर्संरचना से आप क्या समझते हैं? इसकी आवश्यकता एवं प्रकार बताइये।
13. संविलयन से क्या आशय है? संविलयन के प्रकार एवं उनके गुण दोष बताइये।
14. संविलयन के सम्बन्ध में किये जाने वाले लेखांकन व्यवहारों को काल्पनिक उदाहरण के माध्यम से प्रस्तुत कीजिए।
15. वित्तीय पुनर्निर्माण की प्रक्रिया एवं परिणामों की विस्तृत चर्चा कीजिए।
16. अधिग्रहण से आप क्या समझते हैं? छदम् अधिग्रहण को रोकने के लिए सरकारी प्रयासों का वर्णन कीजिए।

17.13 सन्दर्भ पुस्तकें

1. “Financial Management”- M.Y. Khan & P.K. Jain, Tata Mc Graw Hill.
2. ″वित्तीय बाजारों की कार्यप्रणाली″– प्रो0 वी0 पी0 अग्रवाल– साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
3. ″निगमीय लेखांकन″– सी0 एम0 जैन एवं ए0 के0 अग्रवाल– g Master g Educorp, मेरठ।
4. ″प्रबन्ध हेतु वित्तीय विश्लेषण″– डॉ0 ए0 के गर्ग– स्वाती प्रकाशन, बुलन्दशहर।
5. ″निगमीय लेखाविधि″– डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 राजकुमार– नवनीत प्रकाशन, नजीबाबाद।
6. https://efinancemenagement.com
7. www.academia.edu
8. www.ICSI.edu > portals
9. “Corporate Restcucturing”- Ranjan Das & Udayan Kumar Basu – Tata Mc Graw – Hill education, New Delhi.
10. www.izito.co.in
11. www.risk-academy.ru
12. “Derivative Markets in India : Trading, Pricing and Risk-Management” – Alok Dixit, S.S. Yadav & P.K. Jain – Tata Mc Graw-Hill, New Delhi.

इकाई 18 वित्तीय प्रबन्ध के समकालीन बिन्दु

इकाई की रूपरेखा

18.1 प्रस्तावना
18.2 वित्तीय प्रबन्ध की परम्परागत अवधारणा
18.3 वितीय प्रबन्ध की आधुनिक विचारधारा
18.4 आधुनिक परिवेश में वित्तीय प्रबन्ध के समकालीन प्रमुख बिन्दु
18.5 जोखिम प्रबन्धन
18.6 संकर वित्त पोषण
18.7 व्युत्पन्न या डेरीवेटिव बाजार
18.8 पट्टा वित्त पोषण से आशय
18.9 मर्चेन्ट बैंकिंग सेवायें
18.10 क्रेडिट रेटिंग
18.11 सारांश
18.12 शब्दावली
18.13 बोध प्रश्न
18.14 बोध प्रश्नों के उत्तर
18.15 स्वपरख प्रश्न
18.16 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- वित्तीय प्रबंध की परम्परागत अवधारणा, सीमायें नवीन अवधारणा को स्पष्ट कर सकें।
- जोखिम आकलन की विभिन्न विधियां व जोखिम प्रंबधन को समझ सकें।
- संकर वित्त पोषण को समझ सकें।
- व्युत्पन्न या डेरीवेटिव बाजार की व्याख्या कर सकें।
- पट्टा वित्त पोषण, मर्चेंट बैकिंग सेवायें, क्रेडिट रेटिंग, भारत में क्रेडिट रेटिंग वाली संस्थाओं का वर्णन कर सकें।

18.1 प्रस्तावना

पिछले कुछ दशकों में वित्त प्रबन्ध के कार्यक्षेत्र में क्रमिक, नवीन एवं क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं जिसके परिणामस्वरूप वित्तीय प्रबन्ध का कार्यक्षेत्र अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक हुआ है और कुछ विशिष्ट अवसरों तक ही सीमित न रहकर व्यवसाय की प्रक्रिया में निरन्तर प्रशासनिक कार्य बन गया है। वर्तमान समय में प्रत्येक क्षेत्र में तीव्र प्रतिस्पर्धा का युग है जहां एक ओर लाभार्जन के नए–नए अवसर उपलब्ध हो रहे हैं वहीं दूसरी ओर वित्तीय विनियोग में जोखिम की मात्रा में भी वृद्धि हुई है।

18.2 वित्तीय प्रबन्ध की परम्परागत अवधारणा

वित्तीय प्रबन्ध की परम्परागत विचारधारा के अनुसार व्यवसाय के लिए आवश्यक वित्त संग्रह अर्थात पूंजी संग्रह करना ही वित्त का प्रमुख कार्य माना जाता था। परम्परागत अवधारणा में यह प्रमुख रूप से कोषों की व्यवस्था करने

तथा समय समय पर आवश्यकतानुसार कतिपय अन्य कार्यों को सम्पन्न करने तक ही सीमित था जिनमें पूंजी प्राप्ति के साधनों, संस्थागत स्रोतों तथा प्रचलित व्यवहारों का ही अध्ययन किया जाता है। इसके अतिरिक्त वित्तीय संस्थाओं से सम्पर्क स्थापित करना, पूंजी प्राप्ति हेतु उनसे विचार विनिमय एवं तत्सम्बन्धी व्यवस्थायें करना और अनुबन्ध आदि करना भी वित्तीय प्रबन्ध का कार्यक्षेत्र और वित्तीय प्रबन्धक द्वारा लिये जाने वाले निर्णयों में सम्मिलित था। यह समस्त अध्ययन निवेशक के दृष्टिकोण का परिचायक था जिससे ऐसा प्रतीत होता था कि वित्तीय प्रबन्ध का उद्देश्य आन्तरिक प्रबन्ध से न होकर मात्र बाह्य पक्षकारों (पूंजी निवेश करने वाले व्यक्ति, बैंकरों एवं वित्तीय संस्थाओं) का मार्गदर्शन एवं उनसे व्यवहार के लिए ही अधिक था।

परम्परागत विचारधारा की सीमायें :–

1. **एक पक्षीय विचारधारा –**

परम्परागत विचारधारा का सबसे बड़ा दोष यह है कि यह कोष के संग्रहण पर ही ध्यान देती है तथा उपयोग की उपेक्षा करती है। यह मात्र बाह्य विनियोजकों के साथ सामन्जस्य तक ही सीमित होकर रह जाती है।

2. **नैत्यक समस्याओं की अनदेखी :–**

परम्परागत विचारधारा कम्पनी प्रवर्तन, प्रतिभूतियों, पूंजी बाजार, एकीकरण, संविलयन जैसी यदाकदा घटने वाली घटनाओं तक ही सीमित है। इसमें नैत्यक समस्याओं की अवहेलना की जाती है जिससे संस्था के समक्ष विभिन्न समस्याओं एवं कठिनाइयां उत्पन्न होने की आशंका बनी रहती है।

3. **दीर्घकालीन विश्लेषण तक सीमित :–**

इस विचारधारा में वित्त सम्बन्धी दीर्घकालीन परियोजनाओं या समस्याओं का अध्ययन किया जाता है जबकि अल्पकालीन समस्यायें भी उतनी ही महत्वपूर्ण होती है अतः उनकी उपेक्षा समस्याओं को जन्म दे सकती हैं।

4. **कार्यशील पूंजी अर्थप्रबन्धन की उपेक्षा :–**

वर्तमान में किसी भी संस्थान अथवा संगठन के लिए कार्यशील पूंजी का उचित प्रबन्धन एक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक किया है जिसकी परम्परागत अवधारणा उपेक्षा करती है।

18.3 वित्तीय प्रबन्ध की आधुनिक विचारधारा

आधुनिक विचारधारा के अनुसार, वित्तीय प्रबन्ध का कार्य केवल वित्त जुटाना ही नहीं है वरन् उसका प्रभावशाली एवं सर्वश्रेष्ठ ढंग से प्रयोग करना भी है। आधुनिक विचारधारा के अन्तर्गत वित्तीय प्रबन्ध, व्यावसायिक प्रबन्ध का एक अभिन्न अंग बन गया है जिसका सम्बन्ध व्यवसाय के आन्तरिक संचालन से अधिक है। कोषों का प्रभावशाली उपयोग करने के लिए एक वित्तीय प्रबन्धक को तीन महत्वपूर्ण निर्णय लेने पड़ते हैं – विनियोग सम्बन्धी, वित्तीय सम्बन्धी एवं लाभांश सम्बन्धी। वस्तुतः वर्तमान आधुनिक विचारधारा के परिप्रेक्ष्य में वित्तीय प्रबन्ध का कार्यक्षेत्र केवल वित्तीय आयोजन, वित्तीय पूर्वानुमान तथा सम्पत्ति प्रशासन तक ही सीमित नहीं है वरन् इसके अन्तर्गत वित्तीय मूल्यांकन आदि कार्य भी सम्मिलित किए जाते हैं। आधुनिक विचारधारा के समर्थकों में जे0एफ0 ब्रेडले, डाटन, एम0जी0 ब्राइट, एफ0डब्ल्यू0 पेश आदि वित्तीय विशेषज्ञों के नाम प्रमुख हैं।

वित्तीय प्रबन्ध की आधुनिक, व्यापक एवं परिमार्जित विचारधारा की निम्न विशेषतायें बतायी जा सकती हैं :–

1. **सतत् प्रशासनिक प्रक्रिया :–**

परम्परागत रूप में व्यवसाय में वित्तीय प्रबन्ध एक यान्त्रिक क्रिया के रूप में कार्य करता था परन्तु नवीन आधुनिक विचारधारा में वित्तीय प्रबन्ध का कार्य एक सतत् प्रशासनिक क्रिया के रूप में परिवर्तित हो गया है। अब व्यवसाय के सफल संचालन के लिए कोषों के लाभपूर्ण एवं सम्यक उपयोग का दायित्व भी एक क्षेत्र की परिधि में सम्मिलित हो गया है।

2. **व्यापक एवं विश्लेषणात्मक :–**

आधुनिक विचारधारा के अनुसार वित्तीय प्रबन्ध की व्यापकता एवं विश्लेषणात्मकता में वृद्धि हुई है। इसके अन्तर्गत अब बाह्य परिस्थितियों के अतिरिक्त आन्तरिक परिस्थितियो का व्यापक वित्तीय विश्लेषण एवं श्रेष्ठ प्रबन्ध भी आता है।

3. **समन्वय कारक –**

किसी भी उपक्रम में वित्तीय प्रबन्धक अन्य विभागों के सहयोग एवं समन्वय के बिना सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। अतः आधुनिक विचारधारा में वित्तीय प्रबन्ध उपक्रम के विभिन्न विभागों एवं कार्यों में सामन्जस्य स्थापित करने का कार्य भी करता है।

4. **केन्द्रीयकृत प्रकृति :–**

व्यावसायिक प्रबन्ध के विभिन्न क्षेत्रों में मात्र वित्तीय प्रबन्ध ही एक ऐसा क्षेत्र है जिसकी प्रकृति मूलतः केन्द्रीयकृत है। आधुनिक औद्योगिक उपक्रम में विपणन एवं उत्पादन कार्यों का विकेन्द्रीकरण तो सम्भव है परन्तु वित्त कार्य का विकेन्द्रीकरण व्यवहारिक दृष्टि से वांछनीय नहीं होता है क्योंकि वित्तीय समन्वय एवं वित्तीय नियन्त्रण केन्दीयकरण की प्रकृति में ही सफलता से सम्भव हो सकता है।

परम्परागत एवं आधुनिक विचारधारा में अन्तर :–

1. परम्परागत विचारधारा वर्णनात्मक एवं संकुचित थी जबकि आधुनिक विचारधारा विश्लेषणात्मक, व्यापक एवं परिमार्जित है।
2. परम्परागत विचारधारा में वित्तीय प्रबन्ध एक यांत्रिक क्रिया थी जबकि आधुनिक परिप्रेक्ष्य में यह एक अनवरत एवं सतत् प्रशासनिक क्रिया है।
3. पूर्व अवधारणा में मात्र कोषों की उपलब्धि वित्तीय प्रबन्ध का लक्ष्य था परन्तु अब कोषों के सर्वश्रेष्ठ एवं सम्यक उपयोग को भी इसके कार्यक्षेत्र में समावेशित कर लिया गया है।
4. परम्परागत अवधारणा में वित्तीय प्रबन्ध की सक्रिय भूमिका नहीं थी जबकि अब इसे सक्रिय एवं महत्वपूर्ण भूमिका प्राप्त है।
5. पहले प्रबन्धकीय निर्णयन के आधार अन्तः प्रेरणा तथा अनुभव थे परन्तु अब निश्चयीकरण के लिए वैज्ञानिक विश्लेषण की आधुनिक प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है।
6. परम्परागत विचारधारा के अन्तर्गत वित्त के दीर्घकालीन कोषों के प्रबन्ध पर अधिक बल दिया जाता था, जबकि अब कार्यशील पूंजी के प्रबन्ध एवं

अल्पकालीन कोषों के प्रबन्ध के साथ साथ वित्तीय प्रबन्ध के अनेक नवीन आयामों पर भी उतना ही ध्यान दिया जाता है, जैसे– पूंजी की लागत, पूंजी बजटन की नवीन विधायें आदि।

18.4 आधुनिक परिवेश में वित्तीय प्रबन्ध के समकालीन प्रमुख बिन्दु

वित्तीय प्रबन्ध की आधुनिक अवधारणा में इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हुआ है और इसे एक सतत् प्रशासनिक प्रक्रिया के रूप में मान्यता प्राप्त हुई है। अब वित्तीय प्रबन्ध के क्षेत्र में कोषों के प्रबन्ध के अतिरिक्त वित्तीय विश्लेषण, वित्तीय नियन्त्रण, अल्पकालीन कोषों का श्रेष्ठ संयोजन, पूंजी बजटन के सर्वोत्तम उपलब्ध विकल्पों का चुनाव, नवीनीकरण को अंगीकार करना, बाह्य एवं आन्तरिक वित्तीय संयोजनों को श्रेष्ठतम बनाना आदि भी सम्मिलित किये जाते हैं। अब वित्तीय प्रबन्ध के अन्तर्गत संस्था के वित्तीय कार्यों का नियोजन, संगठन, निर्देशन एवं नियन्त्रण किया जाता है जिससे संस्था के वित्तीय कार्यों एवं क्रियाओं का प्रभावपूर्ण एवं कुशल संचालन संभव हो सके। वित्तीय प्रबन्ध वर्तमान में वित्तीय नियोजन, वित्तीय नियन्त्रण, विनियोग, चल अचल सम्पत्ति का संयोजन, लाभ नियोजन, मूल्य निर्धारण नीति, पूंजी लागत, पूंजी बजटन आदि से सम्बन्धित समस्याओं को सुलझाने में सक्रिय भूमिका का निर्वाह करता है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में वित्तीय प्रबन्ध के भी अनेकों सिद्धान्त है जिनका प्रतिपादन वित्तीय समस्याओं के कारण एवं परिणाम के रूप में किया गया है। वित्तीय विश्लेषण हेतु अनेक सांख्यिकीय तथा गणितीय विधियां उपलब्ध है जिनमें परिस्थिति अनुसार सर्वश्रेष्ठ का चयन करके संस्था की वित्तीय समस्याओं का निराकरण किया जा सकता है। वित्तीय निष्पादन एवं विश्लेषण के लिए अनुपात विश्लेषण, प्रवृत्ति विश्लेषण, कोष प्रवाह विश्लेषण, लागत मात्रा लाभ विश्लेषण आदि तकनीकों का प्रयोग व्यापक रूप से किया जाता है। वित्तीय प्रबन्ध के क्षेत्र हो रहे नित नवीन परिवर्तनों की श्रृंखला में अनेकों नवीन विधाओं का जन्म हुआ है तथा नित नयी रीति एवं नीति विकसित करने की चेष्टा की जा रही है। अब वित्तीय प्रबन्ध का कार्य यांत्रिक से तार्किक, वैज्ञानिक एवं तर्कसम्मत में परिवर्तित हो गया है। आधुनिक विचारधारा के अनुसार वित्तीय प्रबन्ध के निम्न समकालीन बिन्दु उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं –

18.5 जोखिम प्रबन्धन

यदि निगमीय जगत की दृष्टि से जोखिम का विश्लेषण किया जाये तो इसका सीधा सम्बन्ध पूंजी बजटन सम्बन्धी वित्तीय प्रबन्ध से है। वहीं दूसरी ओर यह भी तर्कसंगत है कि कुशल पूंजी बजटन पर ही किसी संस्थान की लाभदायकता निर्भर करती है। यदि जोखिम की मात्रा अत्यधिक हो तो विनियोजक परियोजना में विनियोग करने से परहेज करते हैं परन्तु यदि जोखिम की मात्रा कम है तो विनियोग प्राप्ति भी सुलभ हो जाती है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि विनियोग से पूर्व विनियोगकर्ता जोखिम एवं लाभदायकता का तुलनात्मक विवेचन करता है और तत्पश्चात ही विनियोग निर्णय को अन्तिम रूप प्रदान करता है। पूंजी बजटन निर्णय किसी भी परियोजना की लाभदायकता के आधार पर तथा रोकड़ प्रवाह के मूल्यांकन के आधार पर किए जाते हैं। किसी भी परियोजना में पूंजी बजटन निर्णय रोकड़ प्रवाह मूल्यांकन एवं लाभदायकता के अतिरिक्त अन्य बहुत से बिन्दु एवं परिस्थिति पर निर्भर करते हैं। वर्तमान समय में किसी भी

विनियोग निर्णय पर पहुंचने से पूर्व विनियोगकर्ता संस्थान की मूल्य नीति, उत्पादन नीति, विक्रय नीति एवं मात्रा, उत्पादन लागत, प्रतियोगिता का स्तर, विज्ञापन नीति एवं उसकी प्रभावशीलता आदि विभिन्न अवयवों को दृष्टिगत रखता है। इसके अतिरिक्त विशेषकर भारतीय संदर्भ में राजकीय आर्थिक नीति एवं राजनैतिक परिस्थिति को भी दृष्टिगत रखा जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में यह भी महत्वपूर्ण है कि यदि जिस परियोजना में कोष विनियोजन किया जाना है उस तरह की अन्य परियोजनायें पूर्व में संचालित हैं तो तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन के आधार पर उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर विश्लेषण किया जा सकता है तथा लाभदायकता की संभावना एवं जोखिम की मात्रा का आकलन कर भावी संभावनाओं पर विचार कर निष्कर्षों पर सुगमता से पहुंचा जा सकता है अर्थात ऐसी परियोजनाओं में अपेक्षाकृत जोखिम की मात्रा कम होती है। परन्तु यदि कोष विनियोजन पूर्णतः नवीन विचार की परियोजना में किया जाना है तो जोखिम की मात्रा अधिक होती है क्योंकि विश्लेषण के लिए पूर्व अनुभव या आंकड़े उपलब्ध नहीं होते और विनियोगकर्ता को उद्यम प्रवृत्ति के आधार पर मात्र भविष्य के लाभ के अनुमान के आधार पर ही विनियोग करना होता है। संक्षेप में यदि जोखिम को सरल रूप में परिभाषित करना हो तो यह कहा जा सकता है कि पूंजी बजटन में लाभदायकता एवं प्रत्याय का लगाया गया अनुमान एवं परियोजना पर कार्य होने पर प्राप्त हुए वास्तविक लाभ एवं प्रत्याय का अन्तर ही जोखिम है। वर्तमान युग में जोखिम का आकलन भी वैज्ञानिक, तार्किक एवं सांख्यिकीय आधार पर करने की अनेकों विधियां प्रचलित हैं।

1. **संवेदनशीलता विश्लेषण –**

परियोजना की संवेदनशीलता एक महत्वपूर्ण अवयव है जिसका जोखिम निर्धारण के लिए परीक्षण किया जाना अति अनिवार्य है। परियोजना की संवेदनशीलता का आकलन एवं मूल्यांकन करने के लिए अनुमानित रोकड़ प्रवाह, परियोजना पर अनुमानित कटौती दर, परियोजना का जीवनकाल, अनुमानित त्रुटियां एवं परियोजना का जीवनकाल आदि अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इस प्रकार के मूल्यांकन में तीन परिस्थितियों का आंकलन किया जाता है। सर्वश्रेष्ठ या सर्वोत्तम विकल्प (सभी परिस्थितियों के अनुमानित आधार पर अनुकूल होने की दशा) सामान्य (सामान्य उतार चढ़ाव के आधार पर मूल्यांकन की दशा) यह विकल्प सर्वग्राही माना जाता है तथा तीसरा निकृष्टतम (सभी अनुमानों एवं परिस्थितियों के विपरीत होने की दशा)। इन उक्त गणनाओं के लिए वर्तमान मूल्य एवं शुद्ध वर्तमान मूल्य तालिकाओं के आधार पर शुद्धतम परिणाम प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है और उसी आधार पर विनियोगकर्ता विनियोजन सम्बन्धी अन्तिम निर्णय करता है।

2. **प्रायिकता आबंटन –**

संवेदनशीलता विश्लेषण के आधार पर मूल्यांकन में परिवर्तनों को ध्यान में नहीं रखा जाता। किसी भी व्यवसाय एवं परियोजना में समयानुसार परिवर्तन अवश्य होते हैं उन परिवर्तनों का अनुमान लगाये बिना परिणाम सत्यता के निकट होने की संभावना कम हो जाती है। अतः सम्भावना अथवा प्रायिकता आबंटन विधि में संवेदनशीलता विश्लेषणों को सुधारने का प्रयास किया गया। इसके अन्तर्गत परिवर्तित परिस्थितियों के अनुमान के आधार पर प्रत्याय या लाभ के विभिन्न

विकल्पों को तलाश किया जाता है। इसके अतिरिक्त इन गणनाओं में सम्भावित त्रुटियों को भी दृष्टिगत रखा जाता है। प्रत्येक सम्भावित घटना या परिवर्तन को तर्क आधारित अंकीय प्रायिकता प्रदान की जाती है। इसके अतिरिक्त शुद्ध मूल्य, मौद्रिक मूल्य, रोकड़ प्रवाह आदि सभी की संभावना का अंकगणितीय आंकलन प्रायिकता आवंटन को अधिक विश्वसनीय बना देता है तथा परिगणित परिणाम सत्यता के निकट होने की संभावना अधिक हो जाती है।

3. **परिदृश्य विश्लेषण –**

यह विचारधारा यद्यपि संवेदनशीलता विश्लेषण से प्रभावित है परन्तु तुलनात्मक रूप से यह एक अत्यन्त व्यापक विचारधारा है। संवेदनशील विश्लेषण में एक समय में एक ही अवयव का प्रभाव देखा जाता है और अध्ययन का केन्द्र होता है। परिदृश्य विश्लेषण में विभिन्न अवयवों एवं परिवर्तनों का एक साथ अध्ययन किया जाता है जैसे रोकड़ अन्तर्वाह, रोकड़ बाह्य प्रवाह, पूंजी की लागत आदि। इसके अतिरिक्त इसके अन्तर्गत उत्पादन, विक्रय, कार्मिक आदि अवयवों को भी विश्लेषण करते समय दृष्टिगत रखा जाता है। एक ओर अध्ययनकर्ता अधिक स्थायी लागत, अधिक परिवर्तनशील लागत, अधिक पूंजी लागत, निम्न विक्रय मूल्य, निम्न विक्रय मात्रा को आधार बनाकर परिणाम ज्ञात करता है वहीं दूसरी ओर वह अधिक विक्रय मूल्य, अधिक विक्रय मात्रा, निम्न स्थायी लागत, निम्न पूंजी लागत का परिस्थिति के परिणामों के तुलनात्मक अध्ययन के लिये प्रयोग करता है। इसके अतिरिक्त संलग्न जोखिम की गणना के लिए शुद्ध वर्तमान मूल्य तालिका के आधार पर जांच की जाती है। इन दोनों परिस्थितियों के आकलन के पश्चात उपलब्ध आंकड़ों या अनुमानों के आधार पर विनियोगकर्ता आदर्श स्थिति का अनुमान लगा कर भविष्य के विनियोग के लिए सर्वोत्तम निर्णय ले सकता है।

4. **कृत्रिम विधि –**

यह एक पूर्णतः वैज्ञानिक एवं सांख्यिकीय विधि है। इसमें गणना के लिए दैव प्रतिचयन एवं प्रायिकता वितरण तकनीक का प्रयोग किया जाता है। एक प्रभावशाली आकलन के लिए इस विधि का प्रयोग करने के लिए योग्य, कुशल गणना करने वाले विशिष्ट योग्यता प्राप्त दक्ष विशेषज्ञ की आवश्यकता होती है। इसमें कम्प्यूटर ग्राफिक्स, अनुमानित गणनाओं, परियोजना के जोखिम के आधार पर काल्पनिक आंकड़ों एवं अनुमानों के आधार विभिन्न स्तर के मॉडल बना लिये जाते हैं। भिन्न–भिन्न दशाओं में समस्त प्रभावशील अवयवों का अनुमान एवं मूल्यांकन करके विभिन्न मॉडल बनाये जाते हैं और फिर सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोत्तम का आकलन कर विनियोगकर्ता को विनियोग सम्बन्धी आवश्यक सुझाव दिये जाते हैं। इसमें बाजार का आकार, विकास दर, प्रस्तावित बाजार में परियोजना की भागीदारी का अनुमान, अविशिष्ट मूल्य का आकलन आदि सभी अवयवों का तकनीकी एवं सांख्यिकीय आधार पर मूल्यांकन संभव होता है। इसमें परियोजना का कार्यशील जीवन काल, परियोजना की अनुमानित अवधि, कार्यशील पूंजी की आवश्यकता, कर की दर आदि सभी सूक्ष्म से सूक्ष्म बिन्दुओं का आकलन एवं विश्लेषण किया जाना संभव है। परन्तु अति विशाल परियोजना में ही इस प्रकार की तकनीक का प्रयोग संभव है क्योंकि यह अधिक लागत वाली, दक्ष विशिष्ट योग्यता प्राप्त विशेषज्ञ द्वारा ही प्रयोग में लायी जाने वाली विधि है।

कुछ विद्वान अनुमानित जोखिम की गणना में प्रमाप विचलन, विचरण आदि सांख्यिकीय विधियों के प्रयोग को भी उचित आकलन एवं श्रेष्ठ परिणाम के लिये प्रयोग करते हैं।

जोखिम को परिकलित करने के लिये कुछ सैद्धान्तिक विधियां भी प्रचलित हैं जिनमें प्रमुख निम्न प्रकार हैं :–

1. **जोखिम–समायोजित छूट दर विधि :–**

यह एक अत्यन्त सरल एवं स्पष्ट विधि है तथा सामान्य रूप से इसका प्रयोग अत्याधिक प्रचलन में है। इस विधि में भविष्य के जोखिम के आधार पर कटौती दर का अनुमान लगा लिया जाता है और फिर वर्तमान मूल्य और शुद्ध वर्तमान मूल्य के आधार पर परियोजना सम्बन्धी प्रत्याय की गणनायें कर ली जाती है। शुद्ध मूल्य एवं शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना के लिये छूट दर के आधार पर पारम्परिक तालिकाओं के प्रयोग से ही मूल्य ज्ञात कर लिये जाते हैं। परियोजना की परिस्थिति एवं स्वीकार्यता के आधार पर विभिन्न कटौती दर पर विभिन्न विकल्पों का आकलन कर लिया जाता है। जहां एक ओर प्रत्याय की न्यूनतम दर की गणना की जाती है वहीं दूसरी ओर औसत एवं अधिकतम प्रत्याय की गणना भी की जाती है। विनियोगकर्ता अनुमानित जोखिमों का आकलन कर प्राप्त हुई गणना के आधार पर विनियोग के निर्णय कर सकता है।

स्वीकार एवं अस्वीकार निर्णय :–

जोखिम–समायोजित कटौती दर विधि का प्रयोग आन्तरिक प्रत्याय दर एवं शुद्ध वर्तमान मूल्य दोनों के आधार पर ही किया जा सकता है। शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना जोखिम–समायोजित कटौती दर के आधार पर की जाती है। यदि शुद्ध वर्तमान मूल्य सकारात्मक है तो इसका अर्थ परियोजना उचित है और विनियोग प्रस्ताव स्वीकार करने योग्य है जबकि शुद्ध वर्तमान मूल्य के नकारात्मक होने पर परियोजना में विनियोग अस्वीकृत होता है। आन्तरिक प्रत्याय दर के आधार पर गणना करने में इसकी तुलना जोखिम–समायोजित कटौती दर से की जाती है यदि आन्तरिक प्रत्याय दर तुलनात्मक रूप से अधिक होती है तो परियोजना में विनियोग स्वीकार कर लिया जाता है और यदि आन्तरिक प्रत्याय दर कम होती है तो परियोजना में विनियोग अस्वीकार कर दिया जाता है।

2. **निश्चियात्मक–समकक्ष विधि :–**

जोखिम समायोजित विधि में कटौती दर के आधार पर रोकड़ प्रवाहों को समायोजित किया जाता है तथा छूट दर में परिवर्तन नहीं किया जाता। इस कमी को दूर करने के लिये इस पद्धति का प्रतिपादन उस पर सुधार के रूप में किया गया। इस विधि में पूंजी बजटन विश्लेषण के लिये संभावित जोखिमों के आधार पर रोकड़ प्रवाह को संशोधित कर लिया जाता है। जोखिम समायोजन क्रमांक एक गुणांक के रूप में ज्ञात किया जाता है जिसके आधार पर निश्चित रोकड़ प्रवाह एवं अनिश्चित रोकड़ प्रवाह का विश्लेषण किया जाता है। इन जोखिम एवं अनिश्चितताओं के तार्किक विश्लेषणों के आधार पर ही विनियोग का निर्णय लिया जाता है। जोखिम निश्चितता गुणांक अनुमानित 0 से 1 के बीच में कर लिया जाता है जिसका कम या अधिक होना जोखिम के कम या अधिक होने का परिचायक होता है। इसके पश्चात वर्तमान मूल्य दर के आधार पर सामान्य

पूंजीगत व्ययों को ध्यान में रखते निर्धारित कटौती दर में आगामी एवं अंतिम गणनायें कर ली जाती है।

स्वीकार एवं अस्वीकार निर्णय :–

इस विधि में भी गणना शुद्ध वर्तमान मूल्य अथवा आन्तरिक प्रत्याय दर के आधार पर की जा सकती है। शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि के प्रयोग में यदि रोकड़ प्रवाह की गणना सकारात्मक होती है तो विनियोग प्रस्ताव स्वीकार कर लेते हैं एवं गणना के नकात्मक होने पर विनियोग प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया जाता है। यदि आन्तरिक प्रत्याय दर रीति के प्रयोग द्वारा गणनायें की जाती है तो यदि आन्तरिक प्रत्याय दर जोखिम मुक्त दर से अधिक है तो विनियोग प्रस्ताव स्वीकार योग्य माना जाता है तथा कम होने पर अस्वीकार योग्य।

3. **प्रायिकता–वितरण विधि :–**

इस विधि में विनियोग में संलग्न विभिन्न जोखिमों का आकलन पूंजी बजटन में विभिन्न अनुमानों के आधार पर प्रायिकता–वितरण से किया जाता है। अनुमानों या प्रायिकता के मूल्यों की गणना आश्रित एवं अनाश्रित रोकड़ प्रवाह के आधार पर की जाती है। गत वर्षों के आंकड़ों के आधार पर तुलनात्मक रोकड़ प्रवाह की स्थितियों का अध्ययन इस विधि के माध्यम से किया जाता है। कुछ विद्वान इस विधि में सामान्य प्रायिकता–वितरण सिद्धान्त के प्रयोग को अधिक उपयोगी एवं श्रेष्ठ मानते हैं। इसी आधार पर विनियोगकर्ता परियोजना में विनियोग करने अथवा न करने का निर्णय ले सकता है। इसके अतिरिक्त यदि विनियोगकर्ता विनियोग करने का निर्णय लेता है तो प्रस्तुत विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन एवं अनुसरण करके परियोजना की लाभदायकता में वृद्धि का अवसर प्राप्त कर सकता है।

4. **निर्णय वृक्ष या निर्णय श्रंखला विधि :–**

इस विधि में एक वृक्ष के रूप में चित्रमय प्रदर्शन के माध्यम से सभी प्रभावित करने वाले कारकों जैसे परिमाण, प्रायिकता, अन्य कारकों के अन्तर्सम्बन्ध आदि को प्रदर्शित किया जाता है। यह विनियोग के जोखिम की गणना करने की एक अन्य वैकल्पिक रीति है। इस पद्धति में विनियोग को प्रभावित करने वाले सभी तत्वों को उनकी उपयोगिता एवं महत्ता के आधार पर भार प्रदान किया जाता है। इस निर्णय वृक्ष के माध्यम से रोकड़ प्रवाह के मूल एवं वैकल्पिक स्त्रोतों को अध्ययन किया जाता है। इस विधि में इन विकल्पों की गणना में शुद्ध वर्तमान मूल्य एवं आन्तरिक प्रत्याय दर का प्रयोग भी किया जा सकता है।

18.6 संकर वित्त पोषण

स्पष्ट ऋण एवं स्पष्ट समता पूंजी के मध्य की अवधारणा को संकर वित्त पोषण कहा या माना जाता है। अपेक्षाकृत कम जोखिम लेकर विनियोग करने की इच्छा रखने वाले विनियोगकर्ता अपना धन या कोष इस प्रकार की प्रतिभूतियों में विनियोग करते हैं। वित्त प्राप्त करने वाली संस्थायें भी इन्हें प्राथमिकता प्रदान करती हैं क्योंकि इनमें देयता अथवा लाभांश या ब्याज की दर अधिकांशतः पूर्व निर्धारित होती है। प्रमुख संकर वित्त उपकरणों में पूर्वाधिकार अंश, परिवर्तनीय ऋणपत्र, वारंट अथवा अन्य वित्त विकल्प सम्मिलित होते हैं। इनके निर्गमन आदि की प्रक्रिया समता अंशों की भांति ही होती है।

1. **पूर्वाधिकार अंश पूंजी :–**

यह दीर्घकालीन वित्त अर्जित करने की एक विशिष्ट विधि है तथा ऋणपत्र और समता अंशों का मिश्रित स्वरूप माना जाता है। ऋणपत्रों पर ब्याज की भांति इन पर लाभांश दर स्थिर व निश्चित होती है, इनको समता अंशों पर ऋणपत्रों की भांति ही प्राथमिकता होती है तथा ऋणपत्रों की भांति ही सामान्यतः इन्हें मताधिकार नहीं होता। समता अंशों की भांति यह कर पश्चात् लाभांश में से लाभांश प्राप्ति के अधिकारी होते हैं, इनका भुगतान भी समता अंशों की भांति प्रबन्ध के निर्णयों पर निर्भर होता है तथा समता अंशों की भांति इनकी भी कोई परिपक्वता तिथि नहीं होती है।

विशेषतायें :–

1. **लाभांश एवं सम्पत्तियों पर पूर्वाधिकार –**

समता अंशधारियों को लाभांश का भुगतान किये जाने से पूर्व निर्धारित दर पर पूर्वाधिकार अंशधारियों को भुगतान किया जाता है। इसके अतिरिक्त कम्पनी के समापन की दशा में भी पूर्वाधिकार अंशधारियों को कोष वापसी की प्राथमिकता प्राप्त होती है। इन पर जोखिम की मात्रा भी समता अंशधारियों की तुलना में कम होती है। इनको इनकी इसी स्थिति के कारण ऋणपत्रों से कनिष्ठ परन्तु समता अंशों से वरिष्ठ स्थिति में माना जाता है।

2. **संचयी लाभांश –**

पूर्वाधिकार अंशों पर लाभांश भुगतान संचयी आधार पर एक निश्चित समयावधि (छमाही) पश्चात परन्तु समता अंशों को किसी भी लाभांश भुगतान से पूर्व किया जाता है।

3. **विमोचनशीलता –**

पूर्वाधिकार अंशों की निश्चित सीमा होती है अर्थात इनका जीवन काल/परिपक्वता तिथि पूर्व निर्धारित होती है, यह भी है कि विमोचनशीलता परिवर्तित होने पर गम्भीर जुर्माने की व्यवस्था नहीं है। परन्तु यह विशेषता विमोचनशील पूर्वाधिकार अंशों में ही होती है जो निर्गमन प्रस्ताव में स्पष्ट होती है।

पूर्वाधिकार अंशों का मांग मूल्य होता है जो कि मूल निर्गमन लागत से अधिक होता है और समय के साथ परिवर्तित होता है। अन्य बांड की विशेषताओं की भांति निर्गमन कम्पनी को पूर्वाधिकार अंशों के निर्गमन के सम्बन्ध में लोचशीलता प्राप्त रहती है।

4. **स्थायी लाभांश –**

पूर्वाधिकार लाभांश एक प्रतिशत दर के रूप में स्थायी एवं निर्धारित रहता है। यह एक अनिवार्य वैधानिकता नहीं है अर्थात इनके लाभांश का भुगतान न कर पाना दिवालियापन नहीं है। पूर्वाधिकार अंशों को स्थायी आय प्रतिभूति भी कहा जाता है।

5. **परिवर्तनशीलता –**

यदि कम्पनी द्वारा प्रारम्भिक निर्गमन शर्तों में उल्लिखित हो तो एक निश्चित समयावधि पश्चात इन्हें समता अंशों में पूर्णतः आंशिक या आनुपातिक रूप से परिवर्तित किया जा सकता है।

6. **मतदान अधिकार –**

सामान्यतः पूर्वाधिकार अंशधारियों को मतदान का अधिकार नहीं होता है परन्तु अधिनियम द्वारा निर्धारित प्रावधानों के अनुसार निश्चित लाभांश की अदेयता की स्थिति में सम्बन्धित सभी प्रस्तावों के सम्बन्ध में मताधिकार प्राप्त होता है।

2. <u>विमोचनशील एवं परिवर्तनीय ऋण पत्र –</u>

परिवर्तनशील ऋणपत्रों को उसकी प्रारम्भिक निर्गमन शर्तों या प्रावधानों के आधार पर एक निश्चित समयावधि के बाद समता अंशों में परिवर्तित किया जा सकता है। ऐसे ऋण पत्रधारी परिवर्तन की अवधि तक स्थायी एवं निर्धारित दर से ब्याज प्रतिफल स्वरूप प्राप्त करते हैं तथा परिवर्तन की अवधि के पश्चात समता अंशधारियों को प्राप्त होने वाले लाभ अर्जित करते हैं। इनसे सम्बन्धित सभी शर्तें एवं प्रावधान इनके प्रस्ताव पत्र अथवा प्रविवरण में उल्लिखित होते हैं जैसे– परिवर्तन अवधि, परिवर्तन अनुपात, परिवर्तन मूल्य/प्रीमियम आदि। निर्गमन करने वाली संस्था पूर्णतः परिवर्तनीय या आंशिक परिवर्तनीय जैसा चाहे ऋणपत्रों का निर्गमन कर सकती है। इनके साथ परिवर्तन का विकल्प एक निर्धारित अवधि के पश्चात उपलबध होता है। निर्धारित अवधि में ऋणपत्रधारी पूर्णः या आंशिक रूप से अपने इस विकल्प के अधिकार का प्रयोग कर सकते हैं। ऋणपत्रधारियों को इस विकल्प अवधि में पुनः विक्रय का अवसर भी प्रदान किया जाता है। इस प्रकार के पूर्णतः विमोचनशील ऋणपत्रों के निर्गमन के लिए निर्गमन संस्था को क्रेडिट रेटिंग कराना अनिवार्य होता है।

<u>निर्गमन प्रक्रिया –</u>

विमोचनशील या परिवर्तनीय ऋणपत्रों या ऋण प्रतिभूतियों के निर्गमन में अंश निर्गमन की सम्पूर्ण सामान्य प्रक्रिया लागू होती है परन्तु अधिकार/सार्वजनिक निर्गमन प्रक्रिया में सामान्य प्रावधानों के अतिरिक्त निम्न शर्तों का पूर्ण किया जाना भी अनिवार्य होता है –

1. क्रेडिट रेटिंग प्राप्त करना;
2. ऋणपत्र ट्रस्टी की नियुक्ति;
3. ऋणपत्र शोधन कोष का निर्माण;
4. सम्पत्तियों पर प्रभार;
5. शोधन हेतु पर्याप्त राशि; एवं
6. पूर्णतः भार रहित।

भारतीय संदर्भ में परिवर्तनशील ऋणपत्र तीन प्रकार के होते हैं –

(i) 18 माह के अन्दर अनिवार्यतः परिवर्तनशील
(ii) 36 माह में विकल्प के साथ परिवर्तनीय एवं
(iii) 36 माह में परिवर्तनशील (Call एवं Put विकल्प के साथ) सामान्यतः प्रथम दो का ही प्रचलन अधिक है।

3. <u>अधिपत्र या वारंट :–</u>

अंश अधिपत्र भी कम्पनी की समता अंशपूंजी के भागीदार होते हैं उनको अंशधारियों की तरह अधिकार प्राप्त होते हैं परन्तु समता अंशधारियों की भांति अंशधारिता की आवश्यकता नहीं होती। अंशअधिपत्र सामान्यतः अन्य प्रतिभूतियों या सहयोगी प्रतिभूतियों से जोड़कर निर्गमित किये जाते हैं उदाहरण के लिए 1992 में टिस्को ने प्रीमियम सुरक्षा बांड तथा 1995 में रैनबैक्सी एवं रिलायंस ने अपना

निर्गमन किया था। यद्यपि यदि संस्था चाहे तो इन्हें स्वतन्त्र रूप से भी निर्गमित कर सकती है।

विशेषतायें :–

1. **मूल्य निर्धारण –**

यह वह निर्धारित मूल्य है जिस पर अधिपत्र धारक को अंश अधिपत्र निर्गमित किये जाते हैं। सामान्यत यह सामान्य समता अंशों के निर्गमन मूल्य से अधिक होता है।

2. **निर्धरित अनुपात –**

यह वह अनुपात हैं जो अधिपत्र या वारंट के अंशों की संख्या से सम्बन्ध को प्रकट करता है उदाहरणार्थ 1:1 अनुपात का अर्थ है कि एक अंश अधिपत्र का मूल्य एक समता अंश के बराबर होगा।

3. **परिपक्वता अवधि –**

इसका अर्थ अंश अधिपत्रों के जीवनकाल से हैं जो कि सामान्यत – 5 से 10 वर्ष तक रहता है यदि संस्था चाहे तो निरन्तर स्वमाव के अंशअधिपत्र भी निगमित कर सकती हैं।

4. **विकल्प–** (इनका विस्तृत वर्णन व्युत्पन्न बाजार के अन्तर्गत किया गया है)

18.7 व्युत्पन्न या डेरीवेटिव बाजार

व्युत्पन्न या डेरीवेटिव का आशय है किसी वस्तु से वस्तु को निकालना जैसे दूध से मक्खन निकालना यहां मक्खन दूध का व्युत्पन्न उत्पाद है। वयुत्पन्न बाजार के सन्दर्भ में इसका आशय है यह एक वित्तीय प्रपत्र है जिसने अपना मूल्य किसी अन्य निहित वित्तीय सम्पत्ति अंश, बांड, करेंसी या वस्तु से प्राप्त किया है। डेरीवेटिव का मूल्य निहित वित्तीय सम्पत्ति, घटक या विपत्र के भविष्य मूल्य पर निर्भर करता है। इन वित्तीय प्रपत्रों का प्रयोग भविष्य के जोखिम की सुरक्षा के लिए किया जाता है। उदाहरणार्थ यदि आप कोई सम्पत्ति एक माह पश्चात क्रय करना चाहते हैं, परन्तु उसके भविष्य के मूल्य के सम्बन्ध में निश्चित नहीं है। इस मूल्य अनिश्चितता की जोखिम से सुरक्षा के लिए आप ऐसा व्युत्पन्न विपत्र (वायदा/भावी) क्रय कर लेते हैं जो एक माह पश्चात उस वस्तु को आज निश्चित मूल्य पर विक्रय करने का वचन देता है। स्पष्ट है कि यह व्युत्पन्न या डेरीवेटिव प्रपत्र भविष्य की अनिश्चितता या जोखिम से सुरक्षा प्रदान करने का कार्य करते हैं।

डेरीवेटिव विपत्रों को सौदे के आधार पर इन्हें दो प्रमुख श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है– प्रथम ऐसे विपत्र जिनमें ओवर द काउन्टर सौदे होते हैं एवं द्वितीय ऐसे विपत्र सौदे स्टॉक एक्सचेंज पर क्रियान्वित होते हैं। ओवर द काउन्टर सौदों का आशय दो पक्षकारों के मध्य सीधे होने वाले स्वयं निर्धारित सौदों से होता है इनके निष्पादन में कोई मध्यस्थ नियामक संस्थान नहीं होता है जबकि दूसरी श्रेणी के लेन देनों में स्टॉक एक्सचेंज मध्यस्थ के रूप में कार्य करता है।

व्युत्पन्न प्रपत्रों का वर्गीकरण –

अनुबन्ध की प्रकृति के आधार पर डेरीवेटिव प्रपत्रों को निम्न तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है –

1. **आगामी या फारवर्ड अनुबन्ध :–**

फारवर्ड अनुबन्ध किसी सम्पत्ति के एक निश्चित मूल्य एवं तिथि पर क्रय या विक्रय का भावी सौदा है। ऐसे सौदों में दो पक्षकार एक ही सम्पत्ति के क्रय विक्रय के लिए सहमत होते हैं परन्तु सौदों का निष्पादन भविष्य की किसी तिथि पर आज निर्धारित मूल्य पर किया जाता है। इन सौदों में निष्पादन की तिथि, मूल्य एवं निहित सम्पत्ति की मात्रा दोनों पक्षकारों के मध्य पारस्परिक सहमति से निर्धारित की जाती है। यह लेन देन ओवर द काउन्टर पारस्परिक सहमति से निष्पादित किये जाते हैं और विवाद या असफलता के लिए कोई मध्यस्थ या नियामक संस्था नहीं होती है।

विशेषतायें :–

(i) ऐसे अनुबन्धों में मध्यस्थ न होने के कारण जोखिम बना रहता है।

(ii) प्रत्येक अनुबन्ध दोनों पक्षकारों की सहमति से होने के कारण उसमें निहित सम्पत्ति का विवरण या मात्रा, मूल्य एवं निस्तारण तिथि आदि प्रत्येक अनुबन्ध में विशिष्ट होती है।

(iii) अनुबन्ध के मूल्य आदि से बाह्य पक्ष अनभिज्ञ रहते हैं।

(iv) निस्तारण या सुपुर्दगी तिथि पर सम्पत्ति हस्तान्तरण के पश्चात ही लेन देन पूर्ण माना जाता है।

(v) यदि कोई पक्षकार अनुबन्ध के विपरीत कार्य करता है अथवा सौदे से हटना चाहता है तो उसे दूसरे पक्षकार को नियत हर्जाने का भुगतान करना होता है।

2. **भावी या फ्यूचर्स अनुबन्ध :–**

आगामी या फारवर्ड सौदों के दोषों का निवारण भावी या फ्यूचर्स अनुबन्धों में हो जाता है। यह अनुबन्ध एवं सौदे भी फारवर्ड सौदों की भांति दो पक्षकारों के मध्य किसी निर्दिष्ट सम्पत्ति को भविष्य में किसी पूर्व निश्चित मूल्य या अवधि पर क्रय या विक्रय का सौदा होता है। परन्तु फारवर्ड अनुबन्ध के विपरीत भावी या फ्यूचर्स अनुबन्धों में प्रमुख शर्तें प्रमापित होती हैं और स्टॉक एक्सचेंज के माध्यम से नियामित होने के कारण स्थगन जोखिम प्रायः शून्य होता है। फ्यूचर्स बाजार में तरलता उत्पन्न करने हेतु स्टॉक एक्सचेंज अनुबन्ध को प्रमापित करता है साथ ही निष्पादन की निश्चितता की गारन्टी भी प्रदान करता है। यह एक प्रमापित अनुबन्ध एवं प्रमापित विपत्र होता है जिसमें निहित सम्पत्ति की संख्या, मूल्य एवं निष्पादन की तिथि आदि प्रमापित होती है। भविष्य के अनुबन्ध को समय से पूर्व निरस्त करने के लिए उतनी ही मात्रा में विपरीत अनुबन्ध करना आवश्यक है। इन अनुबन्धों के सम्बन्ध में निम्नांकित मुख्य शर्तें स्टॉक एक्सचेंज द्वारा प्रमापित की जाती है –

(i) निहित सम्पत्ति की मात्रा/संख्या,

(ii) निहित सम्पत्ति का गुण,

(iii) सुपुर्दगी या निस्तारण की तिथि एवं माह,

(iv) मूल्य की इकाई एवं न्यूनतम स्वीकृत परिवर्तन, एवं

(v) निस्तारण या निष्पादन का स्थान।

3. **विकल्प या ऑप्शन्स :–**

विकल्प एक विशिष्ट प्रकार का व्युत्पन्न प्रपत्र होता है जिसमें क्रेता को यह विकल्प होता है (बाध्यता नहीं) कि वह विपत्र में निहित सम्पत्ति का क्रय या विक्रय एक पूर्व निश्चित मूल्य पर करे या ना करे। संक्षेप में, विकल्प एक विशिष्ट प्रकार का समझौता होता है जिसमें एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को यह वैकल्पिक अधिकार देता है कि वह किसी निर्दिष्ट सम्पत्ति को निश्चित मूल्य एवं समय पर क्रय या विक्रय करे अथवा ना करे। विकल्प के क्रेता को यह अधिकार होता है (दायित्व नहीं) कि वह निश्चित मूल्य एवं समय पर या उससे पूर्व भी क्रय या विक्रय करे।

विकल्प के प्रकार –

1. निर्देशांक या सूचकांक विकल्प –
   ऐसे विकल्प जो स्टॉक एक्सचेंज के सूचकांकों पर आधारित होते हैं जैसे BSE का सैंसेक्स तथा NSE का निफ्टी सूचकांक।
2. स्कन्ध या स्टॉक विकल्प –
   ऐसे विकल्प जिनमें किसी स्टॉक एक्सचेंज के सूचीकृत अंश सम्पत्ति के रुप में निहित होते हैं उन्हें स्टॉक विकल्प कहा जाता है। वर्तमान में NSE के माध्यम से काफी सौदे इस प्रकार प्रचलन में हैं।
3. अमरीकन विकल्प –
   ऐसे विकल्प सौदों में अनुबन्ध धारक द्वारा अन्तिम तिथि को या उससे पूर्व भी निस्तारित किया जा सकता है। भारत में इस पद्धति का प्रचलन स्टॉक विकल्प के सौदों में पाया जाता है।
4. यूरोपयीन विकल्प –
   ऐसे विकल्प सौदों का निष्पादन धारक द्वारा परिपक्वता या अन्तिम तिथि को ही किया जा सकता है उससे पूर्व नहीं किया जा सकता है। सूचकांक पद्धति में इस विकल्प पद्धति का प्रयोग होता है।
5. कॉल विकल्प पुट विकल्प –
   विकल्प सौदों मे अन्तर्निहित सम्पत्ति के मूल्य के सम्बन्ध में विकल्प धारक तेजी या मंदी के रूझान के आधार पर कॉल (तेजी की आशा में) तथा पुट (मंदी की आशा में) विकल्प क्रय कर सकता है।

कॉल विकल्प का क्रय करना –

जब कोई विकल्प धारक कॉल विकल्प क्रय करता है तो उसे यह अधिकार होता है कि वह सौदे में निर्दिष्ट सम्पत्ति निश्चित मूल्य पर परिपक्वता तिथि पर अथवा उससे पूर्व क्रय कर सके। यदि कोई व्यक्ति विकल्प में निर्दिष्ट सम्पत्ति के भावी मूल्य के बढ़ने की आशा रखता है तो उसे यह कॉल विकल्प क्रय करना चाहिये। यदि परिस्थितियां के अनुकूल रहने पर उस सम्पत्ति का मूल्य यदि इतना बढ़ जाये कि निश्चित मूल्य + विकल्प प्रीमियम से अधिक हो वो ऐसा आधिक्य क्रेता को लाभ होगा। इस लाभ को प्राप्त करने के लिये उसे अपने विकल्प के प्रयोग द्वारा अन्तर्निहित सम्पत्ति उसे हाजिर बाजार में उसी समय विक्रय कर देना चाहिये। इसके विपरीत परिस्थितियां प्रतिकूल रहने पर यदि अन्तर्निहित सम्पत्ति का मूल्य आशानुकूल नहीं बढ़ता है तो वह सम्पत्ति को प्राप्त करने के विकल्प का परित्याग कर सकता है। ऐसी स्थिति में उसकी हानि माल विकल्प प्रीमियम की चुकायी गयी राशि के बराबर होगी भले ही निहित सम्पत्ति

का मूल्य निश्चित मूल्य से कितना भी नीचे चला जाये। भारत में समता विकल्पों तथा भावी विकल्पों का निबटारा रोकड़ के आदान–प्रदान के माध्यम से किया जाता है, सुपुर्दगी द्वारा नहीं।

पूट विकल्प क्रय करना –

पुट विकल्प के क्रेता को यह वैकल्पिक अधिकार होता है कि अर्न्तनिहित सम्पत्ति की निर्धारित संख्या परिपक्वता की तिथि पर या इससे पूर्व विक्रय करे अथवा न करे। यदि वह निहित सम्पत्ति के भावी मूल्य के गिरने के प्रति आश्वस्त है तो उसे पुट विकल्प का क्रय करना चाहिये क्योंकि वह हाजिर बाजार से कम मूल्य पर निहित सम्पत्ति क्रय करके तत्काल उसे निश्चित मूल्य पर बेच कर लाभ कमा सकता है। यदि निहित सम्पत्ति का मूल्य नहीं गिरता या निश्चित मूल्य में कितनी भी वृद्धि हो जाये तो ऐसी स्थिति में तो वह अपने विक्रय के विकल्प का परित्याग करके अपनी हानि विकल्प प्रीमियम की चुकायी गयी राशि तक सीमित रख सकता है।

काल एव पुट विकल्प का विक्रय –

विक्रेता से विकल्प क्रय करने में वह क्रेता के निर्णय से बाध्य रहता है जिसके प्रतिफल के रूप मे विक्रेता को प्रीमियम के रूप मे शुल्क प्राप्त होता है। यदि क्रेता अपने विकल्प का प्रयोग करता है तो विक्रेता को हानि होती है जो निश्चित मूल्य तथा हाजिर मूल्य के मूल्यान्तर में से प्राप्त विकल्प प्रीमियम घटाने के पश्चात बची हुयी शेष राशि होती है। यदि क्रेता अपना विकल्प त्याग देता है तो विक्रेता की आय प्राप्त प्रीमियम के बराबर ही होती है परन्तु विकल्प के क्रेता द्वारा प्रयोग किये जाने की दशा में असीमित हानि हो सकती है। सरल शब्दों में बाजार की स्थिति में विक्रेता की आय सदैव प्राप्त प्रीमियम तक सीमित रहती है परन्तु हानि की सम्भावना असीमित रहती है।

कॉल एवं पुट विकल्पों का सर्वोत्तम प्रयोग –

1. यदि किसी अंश के मूल्य में वृद्धि की सम्भावना हो तो कॉल विकल्प क्रय करना चाहिये।
2. यदि किसी अंश के मूल्य में गिरावट की सम्भवना हो तो पुट विकल्प क्रय करना चाहिये।
3. यदि किसी अंश के मूल्य में वृद्धि की सम्भावना न हो तो कॉल विकल्प का विक्रय किया जाना चाहिये।
4. यदि किसी अंश के मूल्य में गिरावट की सम्भावना न हो तो पुट विकल्प का विक्रय किया जाता चाहिये।

फ्यूचर्स एवं फारवर्ड बाजार में अन्तर

	फ्यूचर्स बाजार	फारवर्ड बाजार
1	व्यवहार प्रतिस्पर्धी वातावरण में होते हैं।	व्यवहार टेलेक्स या फोन पर होते हैं।
2	अनुबन्ध की शर्तें प्रमापित होती हैं अतः क्रेता एवं विक्रेता केवल मूल्य के बारे में सौदेबाजी करते हैं।	अनुबन्ध की सभी शर्तें दोनों पक्षकारों द्वारा आपसी सहमति से निश्चित होती हैं। अतः लम्बी सौदेबाजी होती है।
3	सौदे प्रायः ब्रोकर्स के माध्यम से किये	प्रधान से प्रधान आधार पर दोनों

	जाते हैं।	पक्षकार सौदे करते हैं। अतः ब्रोकर नहीं होता है।
4	इसके पक्षकार बैंक, कार्पोरेशन्स, वित्तीय संस्थान व्यक्तिगत निवेशक एवं सट्टेबाज हो सकते हैं।	इसके पक्षकार प्रायः संस्थागत इकाईयां होती हैं जो आपस में सौदे करते हैं।
5	सभी पक्षकारों द्वारा सौदा पूर्व मार्जिन जमा कराना आवश्यक होता है।	सामान्यतः सुपुर्दगी तक कोई भौतिक लेन देन नहीं होता है। यद्यपि कुछ विशिष्ट अवसरों पर कुछ पक्षकारों से अल्पमार्जिन लिया जा सकता है।
6	एक्सचेंज क्लीयरिंग हाउस के माध्यम से नित्य प्रति सैटिलमेंट होता रहता है।	सौदे के निष्पादन तिथि को दोनों पक्षकारों के मध्य सैटलमेंट होता है।
7	क्रय या विक्रय के सौदे प्रायः आसानी से विपरीत अनुबन्ध करके समाप्त किये जा सकते हैं।	ऐसे अनुबन्ध आसानी से दूसरे पक्षकार को हस्तान्तरित तथा समाप्त नहीं होते हैं।
8	सैटलमेंट प्रायः नकद होता है यद्यपि वास्तविक सुपुर्दगी हो सकती है।	अधिकांश सौदों में सुपुर्दगी होती है।
9	सौदे स्टॉक एक्सचेंज द्वारा नियमित होते हैं।	सामान्यतः सौदे नियमित नहीं होते हैं।
10	सुपुर्दगी मूल्य उस दिन का हाजिर मूल्य (Spot Price) माना जाता है।	सुपुर्दगी मूल्य अगाऊ मूल्य होता है जो पूर्व निश्चित होता है।

विकल्प तथा भावी सौदों में अन्तर

1. **अनुबन्ध का निष्पादन –** विकल्प के सौदों में क्रेता को मान्य अवधि में अपने सौदे का निष्पादन करना अनिवार्य नहीं है। विकल्प का दूसरा विक्रेता पक्षकार क्रेता के आग्रह पर ही अनुबन्ध के निष्पादन के लिए बाध्य होता है। जबकि भावी सौदे में क्रेता एवं विक्रेता दोनों ही पक्षकार अनुबन्ध के निष्पादन के लिए बाध्य होते हैं।
2. **रोकड़ प्रवाह –** विकल्प के अनुबन्ध में प्रारम्भिक शर्त के रूप में क्रेता पक्षकार प्रीमियम की राशि अनिवार्य रूप से विक्रेता पक्षकार को भुगतान करता है अर्थात इसमें रोकड़ प्रवाह क्रेता से विक्रेता की ओर रहता है जबकि भावी सौदों में प्रारम्भ में कोई रोकड़ प्रवाह पक्षकारों के मध्य होता ही नहीं है।
3. **जोखिम एवं आय सम्बन्ध –** भावी या फ्यूचर सौदों में क्रेता को लाभ तब प्राप्त होता है जब भावी अनुबन्ध के मूल्य बढ़ते हैं एवं मूल्यों में गिरावट से हानि होती है। भावी विक्रेता की दशा में यह स्थिति विपरीत होती है। विकल्प के सौदों में जोखिम एवं आय का ऐसा समरूप सम्बन्ध नहीं होता है।

4. अदला–बदली या स्वैप सौदे :–

अदल बदल सौदे एक ओर विशिष्ट प्रकार का व्युत्पन्न (डेरीवेटिव) प्रपत्र है। इन सौदों के अन्तर्गत एक पक्षकार अपने रोकड़ प्रवाह को दूसरे पक्षकार के रोकड़ प्रवाह से बदल लेता है। रोकड़ प्रवाह की गणना एक काल्पनिक मूल राशि पर की जाती है। स्वयं या अदल बदल का प्रयोग सट्टेबाजी के लिए भी किया जाता है।

अदल बदल अनुबन्ध दो पक्षकारों के मध्य निजी तौर पर किया जाता है। यह सौदे स्टॉक एक्सचेंज द्वारा नियन्त्रित नहीं होते हैं। सामान्यतः इस प्रकार के सौदों का प्रचलन विदेशी विनिमय के डीलरों के मध्य होता है।

अदल बदल सौदे ओवर द काउन्टर प्रकृति का व्युत्पन्न प्रपत्र होता है जिसका सृजन एवं नियमन दोनों पक्षकारों द्वारा पारस्परिक सहमति के आधार पर बिना किसी मध्यस्थ के होता है। इन्हें प्रतिभूतियों की भांति क्रय एवं विक्रय नहीं किया जा सकता। प्रत्येक अदल बदल सौदा अपने आपमें विशिष्ट होने के कारण इससे मुक्त होने का एकमात्र उपाया पक्षकारों की पारस्परिक सहमति अथवा इसका तीसरे पक्षकार को पुनः अभिहस्तांकन है, जबकि पुनः अभिहस्तांकन के लिए भी दूसरे पक्षकार की स्वीकृति आवश्यक है।

18.8 पट्टा वित्त पोषण

आशय :–

पट्टा वित्त पोषण का अध्ययन करने से पूर्व पट्टे की परिभाषा जानना एवं समझना अत्यन्त आवश्यक है। (सामान्यजन पट्टे और किराये को समानार्थी मानते हैं जबकि दोनों में तकनीकि दृष्टि से अंतर है। किराये में वस्तु या सेवा किराये पर लेने वाला व्यक्ति वस्तु या सेवा के प्रयोग के बदले में निश्चित किराया राशि का भुगतान करता है बदले में उसे वस्तु के प्रयोग अथवा सेवायें प्राप्त करने का अधिकार मात्र ही हस्तान्तरित होता है न कि वस्तु का स्वामित्व) जैसे भवन किराये पर लिये जाने पर किरायेदार भवन के स्वरूप में परिवर्तन या निर्माण कार्य नहीं कर सकता, इसी प्रकार टैक्सी में बैठकर जाने वाला व्यक्ति टैक्सी की सेवायें किराया देकर मात्र गन्तव्य पर पहुंचने के लिए ही कर सकता है।

पट्टे पर यदि कोई सम्पत्ति दी जाती है तो उसमें मुख्यतः दो पक्षकार होते हैं एक तो सम्पत्ति का मालिक जिसे भू–स्वामी कहा जाता है और दूसरा पट्टेदार जो सम्पत्ति को पट्टे पर प्रापत करता है। पट्टेदार पट्टे की राशि का भुगतान करता है तथा भू स्वामी उस राशि को प्राप्त करता है। पट्टे की अवधि में निर्धारित शर्तों के अनुसार स्थायी अथवा उत्पादन के अनुसार भुगतान सुनिश्चित किया जाता है। पट्टेदार एवं भू स्वामी के मध्य एक अनुबन्ध पट्टे के सम्बन्ध में किया जाता है तथा प्रयोग के साथ परिवर्तन के अधिकार भी पट्टेदार को प्राप्त हो जाते हैं निर्धारित अवधि में वस्तु का स्वामित्व भी पट्टेदार के पास ही रहते हैं। कुछ विद्वानों ने इसे परिभाषित करते हुए कहा है कि पट्टे की अवधि में भू स्वामी एवं उसकी पट्टे पर दी गयी सम्पत्ति के मध्य तलाक की स्थिति होती है।) पट्टेदार पट्टे की अवधि समाप्त होने पर (नवीनीकरण का प्रावधान न होने की दशा में) सम्पत्ति भू स्वामी को वापिस कर देता है और भू स्वामी का स्वामित्व पुनर्जीवित हो जाता है। सामान्यतः पट्टे का प्रयोग खानों, भट्टों की जमीन, खेती की जमीन आदि के सम्बन्ध में किया जाता है।

1. **पट्टा वित्त पोषण के प्रकार :–**

1. वित्तीय पट्टा, 2. परिचालन या सेवा पट्टा – द्विपक्षीय एवं तृपक्षीय, 3. घरेलू पट्टे, 4. अन्तर्राष्ट्रीय पट्टे – आयात पट्टा एवं सीमापार पट्टा

2. **पट्टा वित्त पोषण के लाभ –**

1. पूंजी सम्पत्ति पर सुगम वित्त, 2. अतिरिक्त वित्त का माध्यम, 3. मितव्ययी, 4. प्रवर्तकों अपरिवर्तनीय स्वामित्व, 5. औपचारिकता की सीमितता, 6. लोचपूर्णता, 7. सरलता, 8. करारोपण के लाभ, 9. अप्रचलन अथवा ह्रास से मुक्ति, 10. पूर्ण सुरक्षा

3. **पट्टा वित्त पोषण की सीमायें –**

1. सम्पत्ति का प्रतिबंधित प्रयोग, 2. वित्तीय पट्टे रद्द करने में आर्थिक हानि, 3. अपलिखित मूल्य का पट्टेदार को प्राप्त न होना, 4. अनुबन्ध की विफलता पर क्षतिपूर्ति, 5. दोहरा कर

4. **पट्टा का वित्तीय मूल्यांकन की विधियां –**

1. प्रत्यावर्तन अवधि विधि, 2. निवेश पर प्रत्याय की औसत दर, 3. विनियोग पर प्रत्याय की समायोजित दर विधि (i) वर्तमान मूल्य विधि (ii) प्रत्याय की आन्तरिक दर विधि, 4. अपरिहार्यता विधि

18.9 मर्चेन्ट बैंकिंग सेवायें

प्रारम्भिक अवस्थाओं में जो छोटे छोटे व्यापारी कमीशन लेकर ऋण देने एवं दिलाने का कार्य करते थे उन्हें मर्चेन्ट बैंकर कहा जाता था। वर्तमान मर्चेन्ट बैंकिंग इससे कहीं अधिक परिवर्तित, परिमार्जित एवं व्यापक अवधारणा है। वर्तमान समय में मर्चेन्ट बैंकिंग में कम्पनियों एवं निगमों की ओर से पूंजी बाजार में सार्वजनिक निर्गमन का प्रबन्ध किया जाता है। विश्व की दृष्टि से सन् 1967 में ग्रिडलेज बैंक द्वारा मर्चेन्ट बैंकिंग का कार्य प्रारम्भ किया गया। भारत में मर्चेन्ट बैंकिंग प्रभाग की स्थापना सर्वप्रथम भारतीय स्टेट बैंक द्वारा की गयी, बैंकिंग नियमन अधिनियम में संशोधन के साथ देश के प्रमुख अनुसूचित बैंकों ने मर्चेन्ट बैंकिंग अनुषंगियों की स्थापना के साथ इस क्षेत्र में विशेषज्ञ सेवायें प्रदान करना प्रारम्भ किया।

अर्थ –

मर्चेन्ट बैंक निर्गमन गृह के रूप में होते हैं। किसी भी कम्पनी, निगम या अन्य संस्थान को यह अपनी सेवायें किसी भी वृहद् औद्योगिक परियोजना की स्थापना, नवीन परियोजनाओं के प्रवर्तन, नियोजन एवं क्रियान्वयन के लिए प्रदान करते हैं। मर्चेन्ट बैंक परामर्शदाता के रूप में तकनीकी, वित्तीय, प्रबन्धकीय एवं संगठनात्मक क्षेत्र के लिए अपनी विशेषज्ञ सेवायें प्रदान करते हैं। यह अपनी सेवाओं को वर्तमान समय में किसी कम्पनी या निगम की पुनर्संरचना, सम्पत्तियों के पुनर्मूल्यांकन, कम्पनियों के विलय, एकीकरण एवं अधिग्रहण आदि क्रियाओं के लिए भी प्रदान करते हैं। सेबी द्वारा मर्चेन्ट बैंकिंग नियमावली 1992 में मर्चेन्ट बैंकर्स को निम्न प्रकार परिभाषित किया गया है –

''प्रतिभूतियों के विक्रय, क्रय या अभियाचना के सम्बन्ध में व्यवस्था करके निर्गमन प्रबन्ध के व्यवसाय में लगा या प्रबन्धक/परामर्शदाता/सलाहकार के रूप

में कार्य कर रहा या ऐसे निर्गमन प्रबन्ध के सम्बन्ध में परामर्शदात्री सेवायें प्रदान कर रहा व्यक्ति।''

1. **मर्चेन्ट बैंक एवं वाणिज्यिक बैंक में अन्तर :–**

वाणिज्यिक बैंक जनता के धन को जमा करने, उन्हें विभिन्न कार्यों हेतु ऋण प्रदान करने, मूल्यवान वस्तु या प्रपत्र सुरक्षित रखने हेतु लॉकर सुविधा प्रदान करने के अतिरिक्त अपने ग्राहकों को अन्य सुविधाओं के रूप में ट्रस्टी या वसीयत प्रबन्धक सुविधायें, साख स्थानान्तरण, क्रेडिट कार्ड, विदेशी विनिमय पूर्ति आदि अन्य सेवायें भी प्रदान करते हैं।

मर्चेन्ट बैंकों की कार्य प्रणाली वाणिज्यिक बैंकों की तुलना में पृथक होती है। मूलतः मर्चेन्ट बैंक कम्पनियों एवं निगमों के सार्वजनिक निर्गमनों का प्रबन्ध करते हैं तथा अन्य वित्तीय परामर्श भी प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त व्यापार को वित्त उपलब्ध कराना, किस्त क्रय प्रदान करना, नवीन निर्गमन का बीमा कराना, एकीकरण, विलय या अधिग्रहण के समय विशेषज्ञ परामर्शदात्री सेवायें प्रदान करना, अप्रवासी निवेशों का प्रबन्ध आदि सेवायें भी प्रदान करते हैं।

2. **मर्चेन्ट बैंकर्स की सेवायें या कार्य :–**

1. **परियोजना प्रबन्ध –**

    किसी परियोजना के प्रारम्भ से उसके पूर्ण रूप से क्रियाशील होने और संचालन सम्बन्धी सेवायें जैसे परियोजना के लिए विशेषज्ञ सलाह या परामर्श, परियोजना प्रतिवेदन, सरकारी या अन्य संस्थाओं से निकासी या अनापत्ति प्रमाण पत्र प्राप्त करना, विदेशी निवेश आदि प्रदान करते हैं।

2. **निवेश संविभाग या पोर्टफोलियो प्रबन्ध –**

    अधिक मात्रा में कोषों का विनियोग करने वाले बड़े विनियोजक अपने निवेश प्रबन्ध की व्यवस्था करने के लिए निर्धारित शुल्क के प्रतिफल में मर्चेन्ट बैंकर्स की सेवायें प्राप्त करते हैं।

3. **परामर्शदाता के रूप में –**

    वर्तमान प्रतिस्पर्धा एवं नवीनीकरण के युग में प्रतियोगिता का स्तर वैश्विक हो गया है। तकनीकों एवं संरचना में नवीन परिवर्तनों को स्वीकार करना प्रतियोगिता में बने रहने के लिए अनिवार्यता बन गया है। अतः ऐसी स्थिति में रूग्ण इकाईयों के पुनरूद्वार, एकीकरण, विलय, अधिग्रहण, पुनर्गठन, तकनीक परिवर्तन आदि के सम्बन्ध में मर्चेन्ट बैंक अपनी विशेषज्ञ परामर्शदात्री सेवायें उपलब्ध कराते हैं।

4. **निर्गमन प्रबन्धन –**

    पूंजी संरचना का निर्धारण, कोष की आवश्यकता का मूल्यांकन, विभिन्न विभागों से अनापत्ति प्राप्त करना, अभिगोपकों आदि से सम्पर्क कराना, प्रविवरण की संरचना एवं स्वीकृति में सहयोग करना आदि प्रारम्भ से अन्त तक अंश/प्रतिभूति निर्गमन प्रक्रिया में मर्चेन्ट बैंक सहयोग करते हैं एवं सम्बन्धित प्रत्येक क्रिया के निस्तारण हेतु अपनी सेवायें प्रदान करते हैं।

5. **अनिवासी भारतीयों को विनियोग परामर्श –**

मर्चेन्ट बैंक अपने विशिष्ट विभाग के माध्यम से विदेशी विनियोगों को आकर्षित करने का कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त यदि कोई अनिवासी या प्रवासी भारतीय भारत में कोष विनियोजन करना चाहता है, संयुक्त उपक्रम लगाना चाहता है तो मर्चेन्ट बैंक कहां, कैसे, कब आदि सभी के सम्बन्ध में आवश्यक विशेषज्ञ परामर्श प्रदान करते हैं तथा समस्त क्रियाओं के निस्तारण में सक्रिय सहयोग प्रदान करते हैं।

3. **मर्चेन्ट बैंकर्स का नियमन :–**

सेबी मर्चेन्ट बैंकर्स नियमावली 1992 के अन्तर्गत सेबी के यहां अनिवार्य रूप से पंजीकरण कराना होता है। इसके अतिरिक्त सेबी द्वारा जारी नियमों, उपनियमों एवं आचार संहिता का अनुपालन मर्चेन्ट बैंक के लिए अनिवार्य है। इसका तीन वर्ष का पंजीकरण शुल्क रू0 5,00,000 तथा नवीनीकरण शुल्क प्रतिवर्ष रू0 2,50,000 ड्राफ्ट द्वारा देय होता है। प्रारम्भ में मर्चेन्ट बैंकर्स को उनके उत्तरदायित्व एवं कार्यक्षेत्र के आधार पर चार श्रेणियों में विभाजित किया गया था, परन्तु अब सेबी द्वारा प्रथम श्रेणी के मर्चेन्ट बैंकर्स के अतिरिक्त अन्य सभी श्रेणी विभाजन समाप्त कर दिये गये हैं। संस्थान या मर्चेन्ट बैंकर की न्यूनतम नेटवर्थ 5 करोड़ होना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त उसे अपने कर्मचारियों, अवसंरचना, चारित्रिक स्वच्छता, योग्यता अयोग्यता आदि के सम्बन्ध में सेबी को विस्तृत विवरण प्रस्तुत करना अनिवार्य होता है।

4. **मर्चेन्ट बैंक के लिए आचार संहिता :–**

प्रत्येक मर्चेन्ट बैंकर को अनूसूची III में वर्णित आचार संहिता का अनुपालन अनिवार्य है। इसके प्रमुख प्रावधान निम्न प्रकार हैं –

1. अपने ग्राहक के साथ व्यवहार में ईमानदारी के उच्च निर्धारित मानकों का अनुपालन।
2. ग्राहक को श्रेष्ठतम सेवा प्रदान करना तथा पेशेवर मानकों का अनुपालन।
3. किसी भी अनुसूचित प्रतियोगिता में प्रतिभाग से स्वयं को अलग रखना।
4. अपने कार्य एवं सेवाओं को ग्राहकों के सामने यथावत प्रस्तुत करना अर्थात अतिश्योक्ति से बचना।
5. अपने ग्राहक के विषय में गोपनीय जानकारी अपने तक सीमित रखना।
6. निवेशकों को शिकायतों/शंकाओं एवं पूछताछ का शीघ्र, सामयिक एवं उचित समाधान करना तथा प्रगति के सम्बन्ध में आवधिक रूप से उन्हें उचित सूचना प्रदान करना।
7. अन्य किसी पक्षकार को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी प्रकार की निवेश सलाह नहीं देगा जिससे उसके ग्राहक के हित पर प्रतिकूल प्रभाव हो। यह प्रतिबन्ध मर्चेन्ट बैंकर के कर्मचारियों पर भी लागू होगा।
8. सभी आवश्यक एवं वैधानिक तथ्यों, सूचनाओं एवं विवरण का प्रकटीकरण सुनिश्चित करना जिससे निवेशक को तत्सम्बन्धी निर्णय लेने में सुगमता हो।
9. अपने पंजीकरण के सम्बन्ध में होने वाले किसी परिवर्तन अथवा सेबी द्वारा किसी दोष के कारण हुई सम्बन्धित कार्यवाही, वित्तीय स्थिति में परिवर्तन आदि ऐसी सभी क्रियाओं की स्पष्ट एवं समय सूचना ग्राहक को देगा

जिससे ग्राहक के हित पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता हो अथवा हानि हो सकती हो।

10. प्रविवरण, आमन्त्रण प्रपत्र अथवा सम्बन्धित अनिवार्य एवं आवश्यक प्रपत्र निर्गमन अवधि में ससमय निवेशकों के अवलोकनार्थ प्रस्तुत करना।

18.10 क्रेडिट रेटिंग

भारत में सर्वप्रथम सन् 1987 में पहली साख क्षमता मूल्यांकन संस्था Credit Rating & Information Services of India Ltd. (CRISIL) स्थापित की गयी। वर्तमान समय इस क्षेत्र में दो अन्य संस्थायें Credit Analysis and Research Ltd. (CARE) एवं Information and Credit Agency of India Ltd. (ICRAL) भी कार्य कर रही हैं।

वर्तमान प्रतियोगी युग में प्रत्येक निवेशक विशेषकर बड़े कोषों के विनियोजक किसी भी संस्था में कोष विनियोजन से पूर्व उस संस्था की विनियोग गुणवत्ता के विषय में पूर्णतः आश्स्त होना चाहता है कि वह संस्था विनियोग का उचित प्रतिफल भुगतान समयानुसार कर पायेगी अथवा नहीं। निर्गमन संस्था निवेशकों को अपनी शोधन क्षमता का विश्वास दिलाने हेतु ऋण प्रतिभूति का विशिष्ट एवं मान्य संस्थान द्वारा रेटिंग कराती है। इस रेटिंग के अन्तर्गत निर्गमन संस्था की साख एवं शोधन क्षमता का मूल्यांकन यह विशिष्ट संस्थायें अपने विशेषज्ञों के विश्लेषण के आधार पर करती है और उसी आधार पर उनकी साख श्रेणी निर्धारित की जाती है। उच्चतम विनियोग सुरक्षा व्यक्त करने वाली साख श्रेणी सर्वोत्तम मानी जाती है। यह साख श्रेणी ऋण प्रतिभूति के मूल्य एवं शोधनक्षमता संभावना को प्रतीकात्मक रूप में व्यक्त करती है जैसे ए, बी, ए ए, ए+, बी, एएए आदि। यह साख श्रेणी संस्था की साख गुणवत्ता की मापक या निवेश स्वीकार करने की योग्यता का परिचायक होती है। यह साख श्रेणी निर्गमित ऋण प्रतिभूति की वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर होती है, यह आकलन या श्रेणी निर्गमन संस्था की नहीं होती है। यह श्रेणी परिस्थितियों एवं समयानुसार परिवर्तित होकर निम्नतर या उच्चतर हो सकती है।

1. <u>क्रेडिट रेटिंग के उद्देश्य :–</u>

1. विनियोगकर्ता तक उचित एवं प्रमाणित सूचनायें कम लागत में उपलब्ध कराना।
2. संस्थागत विनियोगकर्ताओं के लिए जनता के मार्गदर्शी सिद्धान्तों को लागू कराना।
3. सूचनायें, एकत्र करवाना, लेखा मानकों का अनुपालन करवाना एवं तद्नुसार वित्तीय सूचनाओं में सुधार करवाना।
4. मर्चेन्ट बैंकर, अभिगोपक अथवा अन्य सम्बन्धित अधिकारियों को ऋण सम्बन्धी मामलों में सहयोग प्रदान करना।
5. उच्च श्रेणी में मूल्यांकित निगम या कम्पनी की ब्याज लागत में कमी करना।
6. ऋणी के अनुशासन एवं मनोबल में वृद्धि करना जिससे वह समयानुसार भुगतान कर सके।

2. <u>क्रेडिट रेटिंग को प्रभावित करने वाले प्रमुख तत्व :–</u>

क्रेडिट रेटिंग किसी भी संस्था की सामयिक शोधन क्षमता का परिचायक है परन्तु अनेकों आर्थिक एवं अनार्थिक कारण इसको प्रभावित एवं परिवर्तित कर सकते हैं। संक्षेप में साख श्रेणी को प्रभावित करने वाले प्रमुख बिन्दु निम्नवत् है –

3. क्रेडिट रेटिंग के कार्य :–

1. क्रेडिट रेटिंग संस्था विनियोगकर्ता के हित में सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूचनाओं का संग्रह कर उन तक पहुंचाती है तथा संलग्न प्रतिभूतियों के सम्बन्ध में निष्पक्ष जांच कर जोखिम की सूचना विनियोजकों तक पहुंचाती है।
2. संस्थाओं की साख क्षमता का मूल्यांकन क्रेडिट रेटिंग एजेंसी उनकी विश्वसनीयता स्थापित करती हैं जिसके आधार पर संस्था को अपनी प्रतिभूति सम्बन्धी सार्वजनिक नीति निर्धारण में सहायता प्राप्त होती है।
3. क्रेडिट रेटिंग एजेंसी संस्था के पूर्व वित्तीय परिणामों, कार्यों, नियोजन एवं नियन्त्रण प्रणाली के आधार पर संस्था का मूल्यांकन करके उसकी प्रबन्धकीय क्षमताओं का आकलन करती है। इसके अतिरिक्त प्रबन्धकीय योग्यता एवं कार्यक्षमता, भविष्य की योजना, पूंजी संरचना, अंशधारियों एवं संचालक मंडल के पारस्परिक सम्बन्ध, औद्योगिक सम्बन्ध आदि का भी मूल्यांकन एवं विश्लेषण किया जाता है।
4. क्रेडिट रेटिंग एजेंसी द्वारा किसी भी संस्था की साख श्रेणी निर्धारित करने की प्रक्रिया में बाजार की दशाओं, व्यवसाय संचालन क्षमता, वैधानिक परिवेश एवं स्थिति एवं जोखिम की मात्रा आदि का भी आकलन एवं विश्लेषण किया जाता है।
5. क्रेडिट रेटिंग एजेंसी किसी भी संस्था की साख श्रेणी निर्धारित करने में उसकी चल एवं अचल सम्पत्ति का तकनीकी विश्लेषण करती है। चल सम्पत्ति के सम्बन्ध में मात्रा, तरलता, जोखिम आदि का विश्लेषण किया जाता है तथा अचल सम्पत्ति पर जीवनकाल ह्रास की दर, ह्रास नीति आदि मूल्यांकन के आधार होते हैं।
6. क्रेडिट रेटिंग एजेंसी अपने प्रशिक्षित, योग्यता प्राप्त, विशेषज्ञ कर्मचारियों के माध्यम से प्राथमिक एवं द्वितीयक सूचना, सर्वेक्षण, सरकारी एवं गैर सरकारी प्रपत्रों के अवलोकन आदि के माध्यम से सूचना एकत्र करती है, विश्लेषण करती है तथा परिणाम प्राप्त करती है। संस्था को अपने स्तर से यह सूचना प्राप्त करने के लिए अत्यधिक व्यय करना पड़ सकता है तथा सूचना की सत्यता और प्रमाणिकता भी संदिग्ध रहती है।

4. भारत में क्रेडिट रेटिंग :–

भारत में क्रेडिट रेटिंग की अवस्था अभी अपने शैशव काल यानि कि अपरिपक्व स्थिति में ही है। भारत में दो दशक पूर्व ही इस प्रकार की क्रियाओं का निष्पादन प्रारम्भ हुआ है। तीन पूर्व वर्णित प्रमुख एजेंसियों के अतिरिक्त FITCH, DUFF & PHELPS, ONICRA आदि कुछ छोटी एजेंसियां भी क्रेडिट रेटिंग के लिए सक्रिय है। आज भी प्रमुख विनियोगकर्ता CRISIL को ही अधिक प्रमाणिक एवं विश्वसनीय मानते हैं। सत्यता यह है कि भारत में इसे मात्र एक वैधानिक औपचारिकता के रूप में ही संस्थायें स्वीकार करती हैं। यद्यपि कम्पनियों द्वारा स्थायी जमा, म्युचुअल फंड तथा वाणिज्यिक प्रपत्रों को स्वीकार करने से पूर्व अनिवार्य रूप से क्रेडिट रेटिंग करानी होती है।

5. **Credit Rating Information Services of India Ltd. (CRISIL) :-**

इसकी स्थापना सन् 1987 में ICICI, UTI, LIC, GIC, ADB तथा जनता के अभिदान द्वारा सार्वजनिक कम्पनी के रूप में की गयी इसका प्रमुख कार्यालय मुंबई में स्थित है। आज भी विनियोगकर्ताओं के मध्य यह सर्वाधिक विश्वसनीय एवं लोकप्रिय है। इसी ने सन् 1989 में सर्वप्रथम वाणिज्यिक प्रपत्रों की साख श्रेणी निर्धारित करने की प्रक्रिया प्रारम्भ की। 1992 में CRISIL ने सम्पत्ति आधारित ऋण प्रतिभूतियों की रेटिंग भी प्रारम्भ की। इस संस्था की सेवाओं का लाभ वर्तमान में संयुक्त पूंजी कम्पनियों के अतिरिक्त बैंक, वित्तीय संस्थान, निगम, मर्चेन्ट बैंकर्स तथा विभिन्न अधिकृत प्राधिकरण भी प्राप्त कर रहे हैं। इसका प्रमुख कार्य निगमित संस्था या निगमों द्वारा निर्गमित ऋण प्रतिभूतियों की साख श्रेणी निर्धारित करना है।

6 कार्य प्रणाली

किसी भी संस्थान या कम्पनी द्वारा निर्गमन से पूर्व अपनी क्रेडिट रेटिंग निर्धारण के लिए अनुरोध करने पर CRISIL द्वारा अपने योग्य, निपुण, विशिष्ट योग्यता प्राप्त विशेषज्ञों की टीम को इस कार्य पर नियुक्त किया जाता है। वह संस्था के सम्बन्ध में अधिकृत एवं निजी स्रोतों के माध्यम, प्रकाशित व अप्रकाशित आंकड़ों के आधार पर सर्वेक्षण के द्वारा आवश्यक जानकारी एकत्र करते हैं तथा इस सम्बन्ध में उन प्राप्त तथ्यों का मान्य विधि से अध्ययन एवं विश्लेषण करते हैं। प्राप्त निष्कर्षों को साख श्रेणी निर्धारण समिति को सौंप दिया जाता है जो प्रतिभूति के सम्बन्ध में उसकी रैंक/ग्रेड/रेटिंग निर्धारित करती है। इस सम्बनध में सम्बन्धित निर्गमित करने वाली संस्था को रेटिंग से अवगत करा दिया जाता है जो असन्तुष्ट होने पर रेटिंग के पुनर्निर्धारण का अनुरोध कर सकती है ऐसी स्थिति अतिरिक्त तथ्य एवं आंकड़े एकत्र कर विशेषज्ञ टीम रेटिंग कम्पनी को दे देती है तत्पश्चात अन्तिम रेटिंग औपचारिक रूप से प्रदान करके निर्गमन कम्पनी को सूचित कर दिया जाता है। CRISIL इस सम्बन्ध में सामयिक परिवर्तनों को दृष्टिगत रखते हुए अपने द्वारा प्रदत्त साख श्रेणी की निरन्तर समीक्षा करती रहती है जिसके परिणामस्वरूप पूर्व प्रदत्त या घोषित साख श्रेणी सकारात्मक या नकारात्मक रूप से परिष्कृत या परिमार्जित की जाती है जिसकी सूचना सार्वजनिक माध्यम या अखबार के माध्यम से जनता या सम्बन्धित पक्ष को प्रदान की जाती है।

18.11 सारांश

वित्तीय प्रबन्ध की परम्परागत विचारधारा के अनुसार व्यवसाय के लिए आवश्यक वित्त संग्रह अर्थात पूंजी संग्रह करना ही वित्त का प्रमुख कार्य माना जाता था। आधुनिक विचारधारा के अनुसार, वित्तीय प्रबन्ध का कार्य केवल वित्त जुटाना ही नहीं है वरन् उसका प्रभावशाली एवं सर्वश्रेष्ठ ढंग से प्रयोग करना भी है। आधुनिक विचारधारा के अन्तर्गत वित्तीय प्रबन्ध, व्यावसायिक प्रबन्ध का एक अभिन्न अंग बन गया है जिसका सम्बन्ध व्यवसाय के आन्तरिक संचालन से अधिक है। स्पष्ट ऋण एवं स्पष्ट समता पूंजी के मध्य की अवधारणा को संकर वित्त पोषण कहा या माना जाता है। अपेक्षाकृत कम जोखिम लेकर विनियोग करने की इच्छा रखने वाले विनियोगकर्ता अपना धन या कोष इस प्रकार की प्रतिभूतियों में

विनियोग करते हैं। डेरीवेटिव विपत्रों को सौदे के आधार पर इन्हें दो प्रमुख श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है– प्रथम ऐसे विपत्र जिनमें ओवर द काउन्टर सौदे होते हैं एवं द्वितीय ऐसे विपत्र सौदे स्टॉक एक्सचेंज पर क्रियान्वित होते हैं। वर्तमान प्रतियोगी युग में प्रत्येक निवेशक विशेषकर बड़े कोषों के विनियोजक किसी भी संस्था में कोष विनियोजन से पूर्व उस संस्था की विनियोग गुणवत्ता के विषय में पूर्णतः आश्स्त होना चाहता है कि वह संस्था विनियोग का उचित प्रतिफल भुगतान समयानुसार कर पायेगी अथवा नहीं। निर्गमन संस्था निवेशकों को अपनी शोधन क्षमता का विश्वास दिलाने हेतु ऋण प्रतिभूति का विशिष्ट एवं मान्य संस्थान द्वारा रेटिंग कराती है।

18.12 शब्दावली

समामेलन – पंजीकरण या रजिस्ट्रेशन

अनुबंध – राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय ठहराव

प्रवर्तन – कम्पनी के समामेलन से पूर्व स्थापना सम्बन्धी क्रियायें

कार्यशील पूंजी – कुल चल सम्पत्ति एवं कुल चल दायित्व का अन्तर

निकृष्टतम – सबसे कम या सर्वाधिक निम्न

प्रायिकता – अनुमान या सम्भावना

एकीकरण – जो स्थापित संस्थायें परस्पर मिलकर तीसरी नवीन संस्था का निर्माण करे। दो संस्थाओं का अस्तित्व समाप्त हो जायेगी और नवीन संस्था समामेलित होगी।

संविलयन या विलय – एक संस्था अपने आपको दूसरे में विलय करें अर्थात विलय होने वाली संस्था समाप्त हो जायेगी तथा विलय करने वाली संस्था का अस्तित्व रहेगा।

प्रतिवेदन – आख्या या रिपोर्ट

प्रविवरण – अंशों के सार्वजनिक निर्गमन सम्बन्धी प्रलेख जिसमें कम्पनी के सम्बन्ध में सभी आवश्यक सूचना होती है

18.13 बोध प्रश्न

(I) निम्नलिखित कथनो में से कौन सा कथन सत्य और कौन सा असत्य है –

31. एक पक्षीय होना परम्परागत विचारधारा की प्रमुख सीमा है।
32. कार्यशील पूंजी कुल चल सम्पत्ति और कुल चल दायित्वों का अंतर है।
33. वित्तीय प्रबन्ध की आधुनिक अवधारणा में इसे एक सतत् प्रशासनिक क्रिया नहीं माना गया है।
34. संवेदनशीलता विश्लेषण जोखिम प्रबन्धन की एक विधि है।
35. अधिपत्र धारियों को समता अंशधरियों की भांति अधिकार प्राप्त नहीं होते हैं।
36. मर्चेंट बैंकिग में सार्वजनिक निर्गमन का प्रबन्ध किया जाता है।

(II) बहुविकल्पीय प्रश्न –

1. वित्तीय प्रबन्ध की परम्परागत अवधारणा की सीमायें –

(अ) एकपक्षीय विचारधारा (ब) नैत्यक समस्याओं की अनदेखी

(स) दीर्घकालीन विश्लेषण (द) उपरोक्त सभी

2. वित्तीय प्रबन्ध की आधुनिक अवधारणा की विशेषता –
(अ) सतत् प्रशासनिक क्रिया (ब) व्यापक एवं विश्लेषणात्मक
(स) समन्वय कारक (द) उपरोक्त सभी

3. कौन सी जोखिम आकलन की विधि नहीं है –
(अ) संवेदनशीलता विश्लेषण (ब) क्रेडिट रेटिंग विधि
(स) प्रायिकता आबंटन विधि (द) परिदृश्य विश्लेषण विधि

4. संकर वित्त पोषण में सम्मिलित नहीं है –
(अ) समता अंश (ब) पूर्वाधिकार अंश
(स) परिवर्तनीय ऋणपत्र (द) अंश अधिपत्र

5. पट्टा वित्त पोषण का लाभ नहीं है –
(अ) अतिरिक्त वित्त का साधन (ब) लोचपूर्णता
(स) करारोपण के लाभ (द) सम्पत्ति का प्रतिबन्धित प्रयोग

6. मर्चेन्ट बैंक क्या कार्य नहीं करते –
(अ) परियोजना प्रबन्ध (ब) लॉकर सुविधा प्रदान करना
(स) पोर्टफोलियो प्रबन्ध (द) निर्गमन प्रबन्ध

18.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

(I) सत्य/असत्य के उत्तर–

1. सत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. सत्य 5. असत्य 6. सत्य

(II) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर–

1. द 2. द 3. ब 4. अ 5. द 6. ब

18.15 स्वपरख प्रश्न

17. वित्तीय प्रबन्ध की आधुनिक अवधारणा के प्रमुख तत्वों का वर्णन कीजिए। क्या ये परम्परागत अवधारणाओं पर एक सुधार हैं ?
18. वित्तीय प्रबन्ध की आधुनिक अवधारणा में क्या क्या सम्मिलित हैं? संक्षेप में वर्णन कीजिए।
19. जोखिम प्रबन्धन से आप क्या समझते हैं? इसकी विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिए।
20. संकर वित्त पोषण से आप क्या समझते हैं? इसकी विशेषतायें बताइये।
21. व्युत्पन्न बाजार से क्या अर्थ है? व्युत्पन्न प्रपत्रों का वर्गीकरण कीजिए।
22. भावी बाजार से आप क्या समझते हैं? कॉल या पुट विकल्प क्या हैं? भावी एवं आगामी बाजार में अन्तर बताइये।
23. पट्टा वित्त पोषण से क्या आशय है? पट्टा वित्त पोषण के विभिन्न प्रकार बताइये।
24. मर्चेन्ट बैंकिंग सेवायें क्या हैं? इनके क्या कार्य हैं तथा यह वाणिज्यिक बैंकों से किस प्रकार भिन्न हैं?
25. क्रेडिट रेटिंग का अर्थ, उद्देश्य एवं कार्य का वर्णन कीजिए।

18.16 सन्दर्भ पुस्तकें

1. "Financial Management"- M.Y. Khan & P.K. Jain, Tata Mc Graw Hill.

2. "वित्तीय बाजारों की कार्यप्रणाली"– प्रो0 वी0 पी0 अग्रवाल– साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
3. "निगमीय लेखांकन"– सी0 एम0 जैन एवं ए0 के0 अग्रवाल– g Master g Educorp, मेरठ।
4. "प्रबन्ध हेतु वित्तीय विश्लेषण"– डॉ0 ए0 के गर्ग– स्वाती प्रकाशन, बुलन्दशहर।
5. "निगमीय लेखाविधि"– डॉ0 जे0 सी0 वार्ष्णेय एवं डॉ0 राजकुमार– नवनीत प्रकाशन, नजीबाबाद।
6. https://efinancemenagement.com
7. www.academia.edu
8. www.ICSI.edu > portals
9. "Corporate Restcucturing"- Ranjan Das & Udayan Kumar Basu – Tata Mc Graw – Hill education, New Delhi.
10. www.izito.co.in
11. www.risk-academy.ru
12. "Derivative Markets in India : Trading, Pricing and Risk-Management" – Alok Dixit, S.S. Yadav & P.K. Jain – Tata Mc Graw-Hill, New Delhi.